ॐ

श्री कैयदेव विरचितः

पथ्यापथ्यविबोधको ग्रन्थः

वा

कैयदेवनिघण्टुः

प्रथमो भागः (ओषधिवर्गः)

Kaiya Dev Nighantu Part 1

सम्पादक (Editor)—

आयुर्वेदाचार्य पं० सुरेन्द्र मोहन, बि० ए०, वैद्यविद्यानिधि (कलकत्ता), आचार्य दयानन्दायुर्वेदिक कालेज, लाहौर ।

प्रकाशक (Publisher)—

मेहरचन्द लछमणदास

अध्यक्ष संस्कृत पुस्तकालय, सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर ।

प्रथम वार] २० मार्च १९२८ [१००० प्रति

प्रकाशक (Publisher)—

मेहरचन्द लच्छमणदास

अध्यक्ष संस्कृत पुस्तकालय, सैदमिठा बाज़ार, लाहौर ।

मुद्रक:—

पं० महावीर प्रसाद

अध्यक्ष "विद्याप्रकाश प्रेस", चङ्गड़ मुहल्ला रोड, अनारकली, लाहौर ।

——:०:——

मिलने का पता:—

मेहरचन्द लक्ष्मणदास

संस्कृत पुस्तकालय, सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर ।

Maher Chand Lachhaman Das

Booksellers & Stationers

Sanskrit Book Depot,

SAID MITHA BAZAR, LAHORE.

ॐ

भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमा
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ यजु० अ० ३६॥

प्रस्तावना (Introduction).

श्री नरहरि ने अपने ग्रन्थ राजनिघण्टु में लिखा है, कि :—

निघण्टुना विना वैद्यो विद्वान्व्याकरणं विना ।
अनभ्यासेन धानुष्कस्त्रयो हास्यस्य भाजनम् ॥ १ ॥

अर्थात् वैद्य निघण्टु के विना, विद्वान् व्याकरण से शून्य और धानुष्क (तीर अन्दाज़–Archer) अभ्यास से हीन—यह तीनों (निज कार्य में अनभ्यस्त वा अशक्त होने से) हास्य के पात्र होते हैं, अतः

वैद्येन पूर्वं ज्ञातव्या द्रव्यनामगुणागुणाः ।
तदायत्तं हि भैषज्यं यज्ज्ञाने स्यात्क्रियाक्रमः ॥ २ ॥

वैद्य को पहले द्रव्यों के नाम, गुण और अगुण जानने चाहियें, क्योंकि भेषजनिर्माण (Pharmacy) द्रव्यज्ञान पर आश्रित है, जिस के सम्यक् ज्ञान होने से चिकित्साक्रम सफल होता है ।

एवं यह बात अनेक प्रमाणों द्वारा तथा स्वतः सिद्ध है, कि चाहे कोई भी चिकित्सा शैली हो, तदनुसार द्रव्यज्ञान (Phramacology) अत्यावश्यक है । इसु से सुभूषित वैद्य सर्वत्र निजकार्य करने में समर्थ होता हुआ संसार के प्रत्येक पदार्थ को अपने अभिप्राय की सिद्धि के लिए व्यवहार कर सकता है, जैसा कि श्री वाग्भट ने कहा है —

......................जगत्येवमनौषधम् ।
किञ्चिद्विद्यते द्रव्यं वशान्नानार्थयोगयोः ॥ (अष्टां०सूत्र०अ० ६)

अर्थात् जगत् में कोई द्रव्य ऐसा नहीं, जो भेषजार्थ व्यवहार न हो सके, नाना प्रकार के प्रयोजनों और युक्तियों (योजनाविधियों) के कारण से ।

इस हेतु से आयुर्वेद में वह द्रव्य, जिन्हें संसार निकृष्ट वा घृणित समझता है, चिकित्सार्थ प्रयुक्त होते हैं, यथा पक्षियों के पक्ष, तुण्डादि और पशुओं के केश, चर्म, खुरादि धूम्रार्थ (जिन से प्रायः अमोनिया गैस Ammonia Gas उत्पन्न हो कर प्रतिश्याय, मूर्च्छादि को लाभ पहुंचता है), मयूरपुच्छ (भस्म) हिक्का में, शृङ्ग (भस्म) पार्श्वशूल, कासश्वासादि में, कपोतविष्ठा व्रणदारण में, बालुका स्वेदनार्थ, गोमूत्र नाना विषों के शोधन, धातु मारण, तथा प्लीह, गुल्मादि रोगों में, इत्यादि । यदि हम अपने शास्त्रों को विवेकदृष्टि से देखें, तो अनेक अमूल्य रत्न प्राप्त हो सकते हैं ।

१. यह ग्रन्थ क्यों रचा गया ?

राजनिघण्टु, धन्वन्तरिनिघण्टु, मदनपालनिघण्टु, भावप्रकाश निघण्टु, आदि ग्रन्थों की विद्यमानता में इस ग्रन्थ की क्या आवश्यकता थी ? यह प्रश्न इस निघण्टु के पढ़ने से सिद्ध हो जाता है । प्रायः निम्नलिखित भाव मेरे सम्मुख हैं:—

(१) राजनिघण्टु आदि प्राचीन ग्रन्थ, जो इस समय मिलते हैं, या तो मूलरूप हैं, या केवल वाक्यार्थ सहित, जिनसे पाठक बहुत लाभ नहीं उठा सकते। निःसन्देह अनुवाद श्लोकों को समझने के लिए आवश्यक है, परन्तु किसी भी निघण्टु के दो चार पृष्ठ सार्थ पढ़ लिए जावें, पुनः उसे पाठक स्वयं समझ लेता है, क्योंकि निघण्टु में १०० वा २०० सामान्य शब्दों के अतिरिक्त नवीन शब्द कम मिलते हैं। इस भाव से मैंने आरम्भ में ६०–७० पृष्ठ तक समग्र अर्थ कर दिए हैं, ताकि पाठक निघण्टूक्त सामान्य शब्द तथा शैली समझ ले, तदनन्तर केवल क्लिष्ट शब्दों के अर्थ कर दिए गए हैं, जिस से सम्पूर्ण श्लोक के समझने में सुगमता हो। समग्र ग्रन्थ के अर्थ करना पुस्तक को व्यर्थ बढ़ाना है।

(२) पर्याय (नामान्तर) द्रव्यों को समझने में अति सहायक हैं, जैसा कि आगे दर्शाया जायगा, परन्तु श्री शालिग्राम की तरह पर्यायों को एकत्र कर देना बहुत लाभदायक नहीं हो सकता, जब तक कि उन की व्याख्या न की जावे । इस ग्रन्थ में पर्यायों के अर्थ कर के पर्याय-कथन का महत्त्व दर्शाया गया है ।

(३) गुण जो निघण्टुओं के मूलपाठ में मिलते हैं, वह आ... क्योंकि समय के परिवर्तन तथा भारत में भिन्न २ जातियों के आगमन तथा संघर्षण से रोगों एवं द्रव्यों के गुणों में बड़ा परिवर्तन हो गया है। जो द्रव्य पूर्व कई विशिष्ट रोगों में काम आते थे, वह अब उन रोगों में कम व्यवहृत होते हैं, प्रत्युत अन्य रोगों के लिए उपयोगी समझे जाते हैं। यह भाव पुस्तक को पढ़ने से स्पष्ट हो सकता है । द्रव्यों के विशिष्ट गुण, जो प्रायः आजकल वैद्य तथा डाक्टर प्रधान समझते हैं, वह पुस्तक में मूलपाठ से पूर्व ही दे दिए गए हैं, और व्याख्या नीचे टिप्पणी में की गई है।

(३) मात्रा (Dose) का ज्ञान अत्यावश्यक है, परन्तु निघंटुओं में उस का उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता । चिकित्साग्रन्थों में घृत, लेह, क्वाथ, वस्ति आदि की मात्रा का वर्णन है, परन्तु अमुक द्रव्य की मात्रा क... समस्या ग्रन्थों से हल नहीं हो सकती । टिप्पणी

में द्रव्यों की मात्रा दे दी गई है, और मात्रा पर एक सामान्य लेख आगे इसी भूमिका में देखें।

(४) युक्ति (व्यवहाररूप) प्रचलित ग्रन्थों से यह स्पष्ट नहीं होता, कि कौन सा द्रव्य किस रूप में व्यवहार किया जावे—अर्थात् चूर्ण, लेह, काथादि किस प्रकार और कितनी मात्रा में ग्रहण किए जावें, यह भी टिप्पणी में प्रत्येक द्रव्य के प्रति स्पष्ट दर्शाया गया है।

(५) द्रव्यविवेक (Differentiation of Drugs) यह विषय बड़ा विवादास्पद है, कि अनेक द्रव्य भिन्न २ प्रान्तों में भिन्न २ देखे जाते हैं, जैसे हपुषा, अम्लवेतस, रास्ना, गजपिप्पली, नागबला, खर्परादि। आयुर्वेद के समस्त द्रव्यों में से ⅓ वा ½ द्रव्य ऐसे हैं, जो संशयग्रस्त हैं। इन पर अनुसन्धान करना बड़ा आवश्यक है, परन्तु इस काम को कोई व्यक्ति विशेष नहीं कर सकता। इस के लिए वैद्यसमाज को मिल कर प्रयत्न करना चाहिए। मैं ने इस ग्रन्थ में निजज्ञात संशयास्पद द्रव्यों के आगे संशयचिह्न (?) दे दिया है, और टिप्पणी में उस के सम्बन्ध में विविध प्रचलित मत दिखा दिए हैं और कहीं २ निश्चयात्मक लेख भी दे दिया है, यथा हपुषा, मूर्वादि पर। यदि कोई वैद्य इस विषय पर मुझे अपने भावों से सूचित करें, तो मैं अति कृतज्ञ हूंगा, और उस का लेख वा भाव दूसरे संस्करण में दे दूंगा।

अन्य निघंटुकारों ने यह प्रयत्न नहीं किया, प्रत्युत जो चित्त में आया, वही लिख दिया, जैसा कि श्री शालिग्राम ने सोमलता को थोहर, वाकुची और काली जीरी को एक द्रव्य बना दिया है। सचाई इस में है कि जो द्रव्य अज्ञात हो, उसे अज्ञात कह देना चाहिए। इस में हानि क्या है?

(६) द्रव्यलक्षण—किस द्रव्य की क्या आकृति है? यह कहीं २ पर्यायों से स्पष्ट हो जाता है और कहीं आकृति का उल्लेख भी है, परन्तु यह अपर्याप्त है। आज कल समय यह चाहता है कि द्रव्य के आकार का वर्णन पूरा हो, ताकि भविष्य में उस वर्णन को पढ़ कर द्रव्यपरिचय हो सके। प्रचलित निघंटुओं से यह पता नहीं चलता, कि अमुक द्रव्य वृक्ष है वा लता वा तृण वा गुल्म (झाड़ी) इत्यादि? एवं अमुक द्रव्य का मूल व्यवहार करना है वा फल वा कन्द वा पत्र वा पुष्प वा समग्र? इस निघंटु में संक्षेप से द्रव्यों की आकृति तथा प्रयोजनीय भागों का वर्णन कर दिया गया है।

(७) वानस्पतिक नाम (Botanical Names)—अर्वाचीन विद्या के अनुसार वनस्पतियों के वैज्ञानिक नाम लेटिन भाषा में नियत कर गए हैं। यह नाम समस्त वनस्पतिशास्त्रों में प्रचलित हैं

आकृतिविज्ञान (Morphology) दिया गया है। आयुर्वैदिक ओषधियों के वानस्पतिक नाम इस पुस्तक में भाषा नामों के सम्मुख दे दिए गए हैं, ताकि वज्ञानिक महाशय सुगमता से उन्हें समझ सकें। आङ्गलभाषा के नाम भी यथालाभ उन के नीचे लिखे गए हैं।

(८) देश—प्रत्येक वनस्पति सर्वत्र नहीं मिल सकती, प्रत्युत कुछ सामान्य वनस्पतियों के अतिरिक्त, जो सर्वत्र सुलभ हैं, अन्य ओषधियें विशेष २ स्थलों में मिलती हैं, यथा मरिच, पिप्पली, चन्दन, जातिफल, त्वक्, असन, तुवरकादि दक्षिण में, चव्य, रोहीतक, अगस्ति, भल्लातकादि बङ्गदेश में, गुग्गुलु मरुभूमि में, दार्वी, सरल, देवदारु, कुटज, अष्टवर्ग, मंजिष्ठादि हिमालय में, कुंकुम, कुष्ठ, पुष्कर मूलादि काश्मीर में, नारिकेल, सुपारी, ताड़ादि मद्रास, बंगाल तथा बम्बई के समुद्रतट पर, कर्पूर, लवंगादि चीन, जापान, जावादि में, इत्यादि। अतः वैद्यों को देश देशान्तर घूम कर यह देशज्ञान दृढ़ करना चाहिए। कुछ वैद्य तो यह समझते हैं, कि जहां हम रहते हैं, वहीं सब वनस्पति मिल सकती है, अतः अपने इतस्ततः के विप्रों को अशुद्ध नाम देकर भ्रमजाल फैलाते हैं। भारत बड़ा विस्तृत देश है और वनस्पतिसंसार भी अति विशाल है, अतः बहुत सावधानी और अन्वेषणशीलता से इस विज्ञान में काम करना चाहिए।

(९) द्रव्यसत्त्व (Active principles)—भिन्न २ द्रव्यों में कौन सा सत्त्व विशेष है, जो अमुक द्रव्य को अमुक रोग में लाभकारी सिद्ध करता है, यह सत्त्वनिश्चय अनेक द्रव्यों के विषय में पाश्चात्य अनुसन्धान द्वारा किया जा चुका है, जैसे कुचले में Strychnine, अहिफेन में Morphine, इत्यादि। इन सत्त्वों का वर्णन निघंटु में यथास्थान कर दिया गया है, परन्तु इस पर अधिक बल नहीं दिया गया, क्योंकि वैद्यक चिकित्सा में यह सत्त्व लाभकारी नहीं हो सकते।

(१०) सत्त्वपातन—ऊपरोक्त सत्त्व किस प्रकार प्राप्त होते हैं, यह विषय अति विस्तीर्ण और हमारी सीमा के बाहर होने से छोड़ दिया गया है। आयुर्वेद में उन की सत्त्वप्राप्ति क्वाथ, रसक्रिया, क्षारादि द्वारा हो सकती है। क्वाथादि में द्रव्य का क्रियात्मक सत्त्व आ जाता है, जो रोग को नष्ट करता है। स्निग्ध द्रव्यों का सत्त्व स्नेहविशेष हुआ करता है, जो पातालयन्त्र वा निष्पीड़न (Press) वा ऊर्ध्वपातन (Distil-[illegible]n) द्वारा प्राप्त हो जाता है। ऐसी अनेक विधियां स्थल २ पर दे [illegible] से पाठक लाभ उठा सकता है।

२. कैयदेवनिघण्टु कैसे मिला ?

१९२२–३ में डी० ए० वी० कालेज कमेटी की अज्ञानुसार वंगदेश, यू० पी०, मलयावार (Malabar), लंका, महाराष्ट्र, अहमदाबाद, मरुदेशादि का पर्यटन करने से अनेक वैद्यों से सत्संग करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन के औषधालय में वा उन के साथ बाहर उद्यान, वन, पर्वतादि पर जा कर द्रव्यविवेक करने से यह आश्चर्य हुआ कि प्रसिद्ध सुलभ द्रव्यों के अतिरिक्त अनेक द्रव्य ऐसे थे, जो स्थल २ पर भिन्न २ मिलते थे। जहां जाओ, उसी नाम से नवीन द्रव्य मिल जाता था—यथा रास्ना, अम्लवेतस, रेणुका, कंकोलादि। मैंने भी पूछने के लिए सन्दिग्ध द्रव्यों की एक सूची बना रखी थी, जिस में प्रतिदिन नवीन नाम लिखने पड़ते थे। जिन द्रव्यों को मैं आज निश्चयात्मक समझता था, वह अगले दिन सर्वथा भिन्न रूप मिलने से सन्देहग्रस्त हो जाते थे। मैं उन के नमूने एकत्र करता गया और वनस्पतियों के पत्रादि वैज्ञानिक रीति से सुरक्षित करता रहा, जो अब तक दयानन्दायुर्वैदिक कालेज की सम्पत्ति हैं। मेरे यजमान वैद्य इस संचय को रुचि से देखते थे और आग्रह करते थे, कि जो भाव मैंने देशदेशान्तर फिर कर संग्रह किए हैं, वह वैद्यों के लाभार्थ एक पुस्तक के रूप में लाने चाहिएं।

जनवरी १९२४ में लाहौर को लौटने पर कालेज में मुझे निघंटु पढ़ाना पढ़ा, इस से और भी द्रव्यविवेक में सहायता मिली; अनेक ग्रन्थ देखने पड़े, न केवल वैद्यक, प्रत्युत अंग्रेज़ीके भी, यथा Indian Medicinal Plants, आदि। उन्हों ने कुछ और दृष्टि विशाल की। तब मन में उत्कट इच्छा हुई, कि कोई ऐसा ग्रन्थ रचा जावे, जिसमें ऊपरोक्त १० भाव प्रकट हो सकें।

ऐसी दशा में मेरे परम मित्र पं० भगवद्दत्त जी, बि० ए०, अधिष्ठाता अनुसन्धानविभाग (Research Department), डी० ए० वी० कालेज लाहौर, ने कैयदेव निघण्टु का हस्तलिखित पुस्तक दिखाया कि यह अभी तक नहीं छपा, उसे प्रकाशित किया जावे। मैंने उसे पढ़ा और देखा कि यह विस्तृत ग्रन्थ अनेक बातों में अन्य निघण्टुओं से विशिष्ट गुणसम्पन्न है, उस के प्रकाश के साथ मेरे भाव भी प्रकट हो सकते हैं।

३. हस्तलेख (Manuscripts)

ऊपरोक्त हस्तलेख के अतिरिक्त, जो पं० भगवद्दत्त जी ने अपने अनु[illegible]
विभाग से दिया, द्वितीय हस्तलेख पंजाब यूनिवर्सिटी के [illegible]
हुआ और तृतीय हस्तलेख इस ग्रन्थके [illegible]

चन्द लच्छमनदास द्वारा बम्बे के सुप्रसिद्ध विद्वान वैद्य आचार्य त्रिकमजी यादव जी से मंगाया गया। यह तीनों हस्तलेख देवनागरी लिपी में हैं और प्राप्तिस्थान के अनुसार उन्हें द०, यू० और ब० संकेत दिए गए हैं, जो मूलपाठ का भेद दर्शाने के लिए टिप्पणी में व्यवहृत हैं। इन तीनों में से सर्वोत्तम पाठ द० का है, तदुत्तर ब० और यू० का। द० और यू० दोनों पुस्तकों के आरम्भ और अन्त के कुछ पृष्ठ जीर्णप्राय हैं, परन्तु ब० पुस्तक सुरक्षित और सम्पूर्ण है। उस का कागज़ भी ताज़ा प्रतीत होता है, जो १०० वर्ष से कम का ही होगा। द० और यू० पुस्तक बहुत प्राचीन प्रतीत होते हैं। यह तीनों पुस्तक उक्त स्थानों में कहां से आए? इस का अन्वेषण करके कैयदेव निघंटु के द्वितीय भाग की भूमिका में लिखूंगा।

४. श्री कैयदेव कौन था ?

ग्रन्थकर्त्ता ने अपनी वंशावली देवपूजा के पश्चात् स्पष्ट लिख दी है, तथापि अपने समय, राज्य वा देश का कुछ भी उल्लेख नहीं किया। यह हम ने पुस्तक की आन्तरिक रचना से निश्चय करना है। कैयदेव ने द्रव्यों के भाषा नाम भी दिए हैं, जो वर्तमान हिन्दी भाषा से भिन्न हैं; गुर्जर भाषा का उन में अधिक अंश प्रतीत होता है। भावप्रकाश और कैयदेव के कुछ श्लोक परस्पर मिल जाते हैं, एवं अन्य ग्रन्थों से भी। ऐसी अवस्था में यह कहना कि किसने किसकी नकल की? अति कठिन समस्या है। पुस्तक की समाप्ति पर इस विषय की समालोचना पूर्ण रूप से करके कैयदेव के समय, देशादि पर निश्चयात्मक लेख लिखा जायगा।

५. ग्रन्थ का नाम।

कैयदेव ने अपने ग्रन्थ का नाम पथ्यापथ्य विबोधक ही लिखा है, तथापि वर्तमान शैली के अनुसार उसका समीचीन नाम कैयदेव निघंटु ही प्रतीत होता है, क्योंकि उस में बहुधा द्रव्यों के गुणों का ही वर्णन है- चाहे वह द्रव्य स्थावर हों वा जंगम, पक्व वा अपक्व।

६. निघण्टुपरिभाषा।

(Tecnical Terms of Ayurvedic Pharmacohpia.)

भिन्न २ चिकित्सापद्धतियों के निघंटु भिन्न २ हैं और उन में द्रव्यों के गुणों की प्रदर्शनशैली एक दूसरे से पृथक् है, अतः उनमें पारिभाषिक शब्द (Technical Terms) भी अपने मतानुवाची देखे जाते हैं। अर्वाचीन निघंटुओं में द्रव्यविवेक कुछ और रीति से किया गया है, जिसे यु[illegible] (Rational) माना जाता है, और आयुर्वेद के द्रव्यविवेक [illegible] (Empirical) वा अवैज्ञानिक (Un-

scientific) वा अयुक्त (Irrational) कहा जाता है। यह पाश्चात्य भाव भ्रममूलक है। जिस रीति से आयुर्वेद में द्रव्यों का वर्णन है, यदि उसे अच्छी तरह विचारा जावे, तो उसे युक्तिहीन नहीं कहा जा सकता।

अब मैं नीचे वैद्यक मत को पूर्व ही उपस्थित करके पुनः अर्वाचीन दृष्टिकोण से द्रव्यविवेक दर्शाऊंगा, ताकि पाठकों को दोनों पद्धतियों के पारिभाषिक शब्दों का ज्ञान होकर लाभ हो सके।

७. द्रव्य—(Substance)

हरीतकी, कर्पूर, बालुका, लवण, मांस, घृत, मधु, स्वर्णादि पदार्थ द्रव्य (Substances) कहलाते हैं। उनके दो भेद हैं:—

(क) स्थावर द्रव्य (Stable or unanimal substances), यथा आमलकी, शर्करा, लोह, लवण, मदनफलादि।

(ख) जंगम द्रव्य (Animal substances), यथा मांस, मूत्र, सर्पविष, सर्प, कीटादि।

स्थावर के पुनः दो भेद हो सकते हैं, (१) उद्भिज्ज (Vegetable kingdom)—गुडूच्यादि, (२) खनिज (Mineral)—लोहादि धातु, कासीसादि उपधातु, वा रस, उपरस। एवं जंगम द्रव्यों के भी अनेक भेद हो सकते हैं।

एक अन्य भाव से द्रव्य के ३ भेद किए गए हैं:—

शमनं कोपनं स्वस्थहितं द्रव्यमिति त्रिधा। (अष्टांग० सू० १)

अर्थात् शमन, कोपन और स्वस्थहित होने से द्रव्य ३ प्रकार का है।

(क) शमन (Soothing) द्रव्य जो प्रकुपित वा विषम दोषों को शान्त वा सम करने वाला हो, जैसे घृत, गुडूची, शर्करा, पटोल आदि पित्त के लिए तैल, रास्ना, गुग्गुलु, मांसरस आदि वायु के लिए; मधु, पिप्पली, शुंठी, यव आदि कफ के लिए वा जो विशेष गुणों से विशेष रोगों को शान्त करें, जैसे चिरायता, गिलोय आदि ज्वर को, पिप्पली, शृंगी, भार्गी, कासश्वास को, हिंगु और यवानी शूल को इत्यादि (विस्तार आगे देखें)।

एवं द्रव्यों को अनेक वर्गों वा गणों में किसी भावविशेष से विभक्त कर सकते हैं, जैसा कि चरक, सुश्रुत, वाग्भटादि मुनियों ने अपने २ सूत्रस्थानों में किया है, यथा मधुरगण, ज्वरघ्न, स्तन्यवर्द्धक, वातहर, पित्तहर, कासहरादि गण।

(ख) कोपन (Irritative) द्रव्य वह हैं, जो सम वा शान्त

वा क्षोभ (Irritation or Excitement) करें, जैसे दधि, माषादि कफ का; मरिच, सर्षप, राजिका पित्त का; यव आदि रूक्ष द्रव्य वात का; तथा यवक, सम मधुघृत, मत्स्य और दधि आदि विरुद्ध भोजन स्वास्थ्य को बिगाड़ देते हैं, एवं अति चिन्ता, शोक, मोह, व्यायाम, मैथुनादि भी स्वास्थ्य का नाश करते हैं।

(ग) स्वस्थहित द्रव्य—गोधूम, घृत, दुग्ध, जल, पानक, मांस, फल आदि; यह बाल्यावस्था से सात्म्य होने के कारण जीवन की रक्षा करते हैं। उन के परिमित व्यवहार से कोई हानि नहीं पहुंचती।

द्रव्य का लक्षण।

द्रव्य का स्वरूप क्या है? द्रव्य किसे कहते हैं? यह कार्य है वा कारण? द्रव्यों में परस्पर रूप, रस, गन्ध, वर्णादि का भेद क्यों है? द्रव्यों का प्रभाव दोषों वा रोगों पर क्यों और किस प्रकार पड़ता है? यह प्रश्न अति गम्भीर और दार्शनिक हैं, उन का सम्पूर्ण वा विस्तृत उत्तर इस लघु भूमिका में देना कठिन है, तथापि इस आवश्यक विषय का दिग्दर्शन कराना आवश्यक है।

चरक मुनि ने द्रव्य का लक्षण इस प्रकार किया है:—

यत्राश्रिताः कर्मगुणाः कारणं समवायि यत्।
तद्द्रव्यम् ....। (च० सूत्र० १)

अर्थ—द्रव्य समवायि कारण है, जिस में (शोधन, शमन, चालनादि) कर्म तथा स्निग्ध, रूक्षादि गुण स्थित हैं।

व्याख्या—जो भाव किसी वस्तुविशेष पर आश्रित हों वा उस से पृथक् न हो सकें, उस वस्तु और उन भावों का सम्बन्ध समवाय सम्बन्ध कहलाता है, जैसे मधुरता और शर्करा, तिक्तता और गुडूची, पट और तन्तु, स्निग्धता और घृत में मधुरतादि गुण शर्करादि द्रव्यों पर आश्रित हैं। कर्म (Motion or Action) भी द्रव्य पर आश्रित हैं, जैसे भागना और जंघा वा पाद, गोली और गोली की चेष्टा (गोली के न होने पर गोली का चलाना वा तत्सम्बन्धी कर्म असम्भव है), व्यायाम और शरीर इत्यादि। यह गुण और कर्म नहीं रह सकते, जब तक द्रव्य न हो, अतः द्रव्य इन गुणों और कर्मों का समवायि कारण है, अर्थात् इन में समवाय (न टूटने वाला) सम्बन्ध है।

[illegible] समवाय सम्बन्ध में गुणों और कर्मों की शक्ति गुप्त रूप से उपस्थित [illegible] ([illegible] का प्रकाश तब होता है, जब उन्हें कोई अन्य शक्ति [illegible] यथा शर्करा का माधुर्य उस में होते हुए

देवनागराक्षरमुद्रितानां संस्कृतपुस्तकानां

सूचीपत्रम् ।

All prices in this list are now increased by 25%.

व्याकरणशास्त्रम् ।

※ १ अष्टकं पाणिनीयम् [पाणिनिकृतसूत्रपाठः] ... ॥०

२ आशुबोधव्याकरणम् [श्रीतारानाथतर्कवाचस्पतिकृतम्] २)

३ उणादिसूत्रम् [उज्ज्वलदत्तकृतवृत्तिसहितम्] ... २)

४ ~~कलापव्याकरणं वा कातन्त्रम् [शर्ववर्मकृतम् + दुर्गसिंह-कृतवृत्तिसहितम्]~~ ... ... २)

५ कविकल्पद्रुमः [वोपदेवकृतः, विस्तृतटीकासहितः] १॥०

६ कविकल्पद्रुमः [धातुपाठः] मूलमात्रम् ... ।०

७ कारकचक्रम् [टीकया टिप्पन्या च सहितम्] ... १।०

८ धातुरूपादर्शः [श्रीतारानाथतर्कवाचस्पतिकृतः] [redacted] २) २।~

※ ९ परिभाषेन्दुशेखरः [नागोजीभट्टकृतः, भैरवमिश्रकृत-टीकासहितः] ... ... १॥०

१० प्राकृतप्रकाशः (वररुचिकृतः) [भामहकृतवृत्त्या तथा टीकादिना च सहितः] ... ... १।०

११ मुग्धबोधव्याकरणम् [वोपदेवकृतम्] (रामतर्कवागीश-दुर्गादास-कृतविस्तृतव्याख्यासहितम्) ... ४)

१२ लकारार्थनिर्णयः [सटीकः वङ्गानुवादसहितश्च] ।॥०

१३ लघुकौमुदीव्याकरणम् (वरदराजकृतम्) ... ।॥/०

१४ लिङ्गानुशासनम् [तर्कवाचस्पतिकृतटीकासहितम्] ।/०

१५ ~~वाक्यमञ्जरी (वङ्गाक्षरैर्वङ्गभाषया च मुद्रिता)~~ ।०

१६ वैयाकरणभूषणसारः [कौण्डभट्टकृतः] ... ।॥/०

१७ शब्दरूपादर्शः ... ... ॥/०

१८ शब्दार्थरत्नम् [श्रीतारानाथतर्कवाचस्पतिकृतम्] ।॥०

Our own publications of the books marked ※ are out of print, but available of other publicatio[ns]. Price will vary neccessarily in this case.

१९ सङ्क्षिप्तसारव्याकरणम् [क्रमदीश्वरकृतम्, श्रीमज्जुमर-
नन्दिपरिशोधितवृत्ति-गोयीचन्द्रकृत 'विवरणी' नाम-
टीकासमेतम्] वङ्गाक्षरैः मुद्रितम् ... ५)

२० सारमञ्जरी [विस्तृतटीकासहिता] ... ॥/०

२१ सारस्वतव्याकरणम् पूर्वार्द्धम् [वासुदेवभट्टकृतप्रसाद-
टीकासहितम्] ... ... १।०

२२ सारस्वतव्याकरणम् उत्तरार्द्धम् [चन्द्रकीर्त्तिसूरिकृत-
टीकयाऽन्वितम्] ... ... २)

२३ सिद्धान्तकौमुदी [श्रीतारानाथतर्कवाचस्पतिकृत 'सरला'
व्याख्यासहिता] ... ... १०)

काव्यशास्त्रम् ।

२४ ऋतुसंहारकाव्यम् (सटीकम्) [कालिदासकृतम्] ॥/०

२५ काव्यसङ्ग्रहः (प्रथमभागः) [अत्र ग्रन्थे एतानि काव्यानि व्याख्या-
सहितानि एकत्र विद्यन्ते ; यथा,—१ आर्य्यासप्तशती, २ पञ्चरत्नम्, ३ षड्रत्नम्,
४ सप्तरत्नम्, ५ अष्टरत्नम्, ६ नवरत्नानि, ७ नवरत्नम्, ८ गुणरत्नम्, ९ नीतिरत्नम्,
१० यतिपञ्चकम्, ११ साधनपञ्चकम्, १२ अमराष्टकम्, १३ [illegible]राष्टकम्,
१४ वान्यष्टकम्, १५ पूर्वचातकाष्टकम्, १६ उत्तरचातकाष्टकम्, १७ शुका-
ष्टकम्, १८ गङ्गाष्टकम्, १९ शृङ्गार-रसाष्टकम्, २० मणिकर्णिकामहिमा,
२१ मणिकर्णिकाऽष्टकम्, २२ मोहमुद्गरः, २३ घटकर्परयमककाव्यम्,
२४ नीतिप्रदीपः २५ नीतिसारम्, २६ धर्मविवेकः, २७ वेदसारशिवस्तवः,
२८ पद्यसङ्ग्रहः, २९ महापद्यम्, ३० मुकुन्दमाला, ३१ व्रजविहारः,
३२ अपराधभञ्जनस्तोत्रम्, ३३ शृङ्गारतिलकम् ३४ हंसदूतम्, ३५ पदाङ्क-
दूतम्, ३६ उद्धवदूतम्, ३७ चौरपञ्चाशिका] ... ... ।)

२६ काव्यसङ्ग्रहः (द्वितीयभागः) अत्र ग्रन्थे एतानि काव्यानि व्याख्या-
सहितानि एकत्र विद्यन्ते, यथा,—१ अमरुशतकम्, २ शृङ्गारशतकम्,
३ दृष्टान्तशतकम्, ४ नीतिशतकम्, ५ वैराग्यशतकम्, ६ सूर्य्यशतकम्,
७ शान्तिशतकम्, ८ वृन्दावनशतकम्, ९ चाणक्यशतकम्] ... ... २॥०

All prices in this list are now increased by 25%.

२७ काव्यसङ्ग्रहः (तृतीयभागः) [अत्र ग्रन्थे एतानि काव्यानि व्याख्यासहितानि एकत्र विद्यन्ते ; यथा,—१ आनन्दलहरी, २ श्रीकृष्णलहरी, ३ गङ्गालहरी, ४ श्रुतबोधः, ५ विदग्धमुखमण्डनम्, ६ रतिमञ्जरी, ७ जगन्नाथाष्टकम्, ८ यमुनाष्टकम्, ९ उद्धवसन्देशः, १० काशीस्तोत्रम्, ११ आत्मबोधः, १२ भक्तामरस्तोत्रम्, १३ रावणकृतशिवताण्डवः, १४ कृष्णताण्डवस्तोत्रम्, १५ राघवसंकाव्यम्, १६ सप्तश्लोकीयभागवतम्, १७ एकश्लोकीयभागवतम्, १८ एकश्लोकीयरामायणम्, १९ एकश्लोकीयभारतम्, २० विष्णुस्तवः, २१ रसमञ्जरी, २२ विद्यासुन्दरम्, २३ रामकृष्णविलोमकाव्यम्, २४ वृन्दावनयमकम्, २५ राजप्रशस्तिः] ... ... २॥०

२८ किरातार्ज्जुनीयम् (भारविकृतम्) मल्लिनाथकृतटीकासहितम् [सूत्राङ्क-अन्वयनिर्देश-सङ्क्षिप्तकथा-टिप्पन्यादिसमन्वितञ्च] ... ... २॥०

※ २९ कुमारसम्भवम् (पूर्वखण्डम्) मल्लिनाथकृतव्याख्यया तथा तर्कवाचस्पतिकृत-धातुरूप-टिप्पन्यादिना च सहितम् १।०

३० कुमारसम्भवम् (उत्तरखण्डम्) विस्तृतटीकासहितम् ॥०

३१ गीतगोविन्दकाव्यम् (सटीकम्) जयदेवकृतम् ॥०

३२ चन्द्रशेखरचम्पूकाव्यम् 2nd part only. ... ३)

३३ चम्पूरामायणम् (भोजचम्पूकाव्यम्) सटीकम् १।०

३४ चम्पूरामायणम् (भोजचम्पूकाव्यम्) मूलमात्रम् ॥०

३५ नलोदयकाव्यम् (कालिदासकृतम्) सटीकम् ।✓०

※ ३६ नैषधचरितं पूर्वखण्डम् (प्रथमसर्गतो नवमसर्गपर्य्यन्तम्) विस्तृतटीकासहितम् ... ... ४)

३७ नैषधचरितम् उत्तरखण्डम् (दशमसर्गतो द्वाविंशसर्गपर्य्यन्तम्) विस्तृतटीकासहितम् ... [illegible] ५) S|-

३८ पुष्पबाणविलासकाव्यम् (कालिदासकृतम्) सटीकम् ॥०

३९ भट्टिकाव्यम् (जयमङ्गल-भरतमल्लिककृतटीकाद्वयसहितम्) प्रथमतः पञ्चमसर्गान्तम् ... १॥०

※ ४० भट्टिकाव्यम् (जयमङ्गल-भरतमल्लिककृतटीकाद्वय-सहितम्) षष्ठसर्गतः नवमसर्गान्तम् ... २)

४१ भट्टिकाव्यम् (जयमङ्गल-भरतमल्लिककृतटीकाद्वय-सहितम्) दशमसर्गतो द्वाविंशसर्गपर्य्यन्तम् २)

४२ भामिनीविलासकाव्यम् [जगन्नाथकृतम्] सटीकम् ॥/ -/10/-

४३ माघवचम्पूकाव्यम् ... ... ।०

४४ मेघदूतम् [कालिदासकृतम्] सटीकम् ... ॥०

४५ मेघदूतम् (सटीकम्) सुलभमूल्यकम् ... ।/०

४६ रघुवंशम् (मल्लिनाथकृतटीकासहितम्) ... २॥०

४७ राजप्रशस्तिः (तर्कवाचस्पतिकृता) सटीका ... /०

※ ४८ विद्वन्मोदतरङ्गिणी (चम्पूकाव्यम्) ... ।।०

४९ शतकावलिः [महिषशतकम् + पदारविन्दशतकम् + स्तुतिशतकम् + मन्दस्मितशतकम् + कटाक्षशतकम्] ॥/०

५० शिशुपालवधः [माघकविकृतः] मल्लिनाथकृतटीका-सहितः [सूत्राङ्क-अन्वयनिर्देश-सङ्क्षिप्त-~~...~~-टिप्पन्यादिसमन्वितश्च] ... ... ५)

गद्यकाव्यानि ।

५१ कथासरित्सागरः (गद्यात्मकः) [स्वल्पायासेन संस्कृतभाषया वक्तुमिच्छूनां महोपकारो एष ग्रन्थः] ८)

※16/- well. ५२ कादम्बरी [बाणभट्टविरचिता] विस्तृतव्याख्यासहिता ४)

५३ दशकुमारचरितम् [दण्डिकृतम्] विस्तृतटीकाऽन्वितम् २॥०

५४ द्वात्रिंशत्पुत्तलिकासिंहासनम् (गद्यकाव्यम्) विस्तृतटीकोपेतम् [विशुद्धाभिनवसंस्करणम्] ... १।/०

५५ पञ्चतन्त्रम् [विष्णुशर्मकृतम्] परिवर्द्धितटीकासहितम् ३)

५६ बहुविवाहवादः (तर्कवाचस्पतिकृतः) ... ।०

५७ भोजप्रबन्धः (सरलगद्यकाव्यम्) विस्तृतटीकासहितः १॥०

All prices in this list are now increased by 25%.

५८ ~~भोजप्रबन्धः (मूलमात्रम्)~~ ... ... ॥०

५९ वासवदत्ता (सुबन्धुकृता) सटीका ... १।०

६० वेतालपञ्चविंशतिः (सरलगद्यकाव्यम्) विस्तृतटीकासहिता २)

६१ शङ्करविजयः (श्रीमच्छङ्कराचार्य्यस्य जीवनचरितम्) १॥०

६२ श्रीतारानाथतर्कवाचस्पतेः जीवनचरितम् ... ।०

६३ श्रीहर्षचरितम् (बाणभट्टकृतम्) सङ्क्षिप्तकथा-विस्तृत-टीकासहितञ्च ... ... ५)

६४ श्रीहर्षचरितम् (मूलमात्रम्) ... १।०

६५ संस्कृतशिक्षामञ्जरी प्रथमभागः (सचित्रः) ... ।≈०

६६ संस्कृतशिक्षामञ्जरी द्वितीयभागः ... ।⅟. [-|6|-]

६७ संस्कृतशिक्षामञ्जरी तृतीयभागः ... ॥० [-|12|-]

६८ संस्कृतशिक्षामञ्जरी चतुर्थभागः ... ।/०

६९ हितोपदेशः (परिवर्द्धिताभिनवटीकासहितः) ... २॥०

अभिधानानि ।

७० अमरकोषः (अमरसिंहकृतः) ... ॥/०

७१ मेदिनीकोषः ... ... १।०

७२ शब्दकल्पद्रुमम् (श्रीतारानाथतर्कवाचस्पतिकृत-बृहदभिधानम्) द्वाविंशखण्डे सम्पूर्णम् ... [illegible] [४००) ५००|-]

[अकारादिक्रमेण संस्कृतशब्दाः तदर्थाः व्युत्पत्तयश्च सरलसंस्कृतभाषया व्याख्याताः विद्यन्ते। तत्र प्रतिपाद्यविषयाः,—१ सव्युत्पत्त्युदाहरणं पाणिनीयलिङ्गानुशासनम्। २ पाणिनीयप्रत्ययपरिनिष्ठितरूपम्। ३ उणादिप्रत्ययपरिनिष्ठितरूपम्। ४ रूढ़यौगिकादिशब्दभेदनियमविशेषाः। ५ शब्दानां पूर्वोत्तरपदयोः परिवृत्तिसहत्वासहत्वे। ६ डाक्तार उइलसन्-प्रणीताभिधान-शब्दकल्पद्रुमाभिधान-प्रदर्शितशब्दानां व्युत्पत्तयस्तदर्थाश्च। ७ यथासम्भवं तेषामर्थभेदेषु उदाहरणानि। ८ तत्र अनुक्तानां जर्मणीय-संस्कृताभिधानोक्तानां वैदिकानाञ्च शब्दानां व्युत्पत्तयस्तदर्थाश्च। ९ तत्रापि अनुक्तानां बहूनां वैदिकशब्दानां निम्ननिर्दिष्टचार्वाकादिपरिभाषितशब्दानाञ्च अर्थाः। १० चार्वाकपरिभाषितानां शब्दानामर्थाः तन्मतञ्च। ११ माध्यमिकपरिभाषितशब्दा-

नामर्थास्तन्मतञ्च। १२ योगाचारपरिभाषितशब्दानामर्थाः तन्मतञ्च। १३ वैभाषिक-परिभाषितशब्दानामर्थास्तन्मतञ्च। १४ सौत्रान्तिकपरिभाषितशब्दानामर्थास्तन्मतञ्च। १५ आर्हतपरिभाषितशब्दानामर्थास्तन्मतञ्च। १६ रामानुजपरिभाषितशब्दानामर्था-स्तन्मतञ्च। १७ माध्वपरिभाषितशब्दानामर्थास्तन्मतञ्च। १८ पाशुपतपरिभाषितशब्दाना-मर्थास्तन्मतञ्च। १९ शैवदर्शनपरिभाषितशब्दानामर्थास्तन्मतञ्च। २० प्रत्यभिज्ञदर्शन-परिभाषितशब्दानामर्थास्तन्मतञ्च। २१ रसेश्वरदर्शनपरिभाषितशब्दानामर्थास्तन्मतञ्च। २२ कणादपरिभाषितशब्दानामर्थास्तन्मतञ्च। २३ गौतमन्यायपरिभाषितशब्दानामर्था-स्तन्मतञ्च। २४ जैमिनीयपरिभाषितशब्दानामर्थास्तन्मतञ्च। २५ पाणिनीयपरिभाषित-शब्दानामर्थास्तन्मतञ्च। २६ साङ्ख्यपरिभाषितशब्दानामर्थास्तन्मतञ्च। २७ पातञ्जल-परिभाषितशब्दानामर्थास्तन्मतञ्च। २८ वेदान्तपरिभाषितशब्दानामर्थास्तन्मतञ्च। २९ आश्वलायनादिश्रौतगृह्यसूत्रपरिभाषितशब्दानामर्थाः। ३० मन्वादिस्मृतिपरिभाषित-शब्दानामर्थाः। ३१ सर्वपुराणप्रतिपाद्यविषयाः। ३२ सर्वोपपुराणप्रतिपाद्यविषयाः। ३३ वाल्मीकिरामायण-महाभारतप्रतिपाद्यविषयाः। ३४ पुराणादिषु प्रसिद्धराजर्षीणां सङ्क्षेपेण इतिवृत्तानि। ३५ देशविशेषलक्षण-तत्स्थानानि। ३६ स्वयोतिशास्त्रपरि-भाषितशब्दानामर्थाः। ३७ सुश्रुतादिवैद्यकपरिभाषितशब्दानामर्थाः। ३८ तदुक्तशरी-रादिसंस्थानम्। ३९ तदुक्तद्रव्यगुणादिलक्षणानि। ४० ज्योतिषस्य चतुःषष्ट्यङ्गानि। ४१ तेषु परिभाषितशब्दानामर्थाः। ४२ तथा सिद्धान्तशिरोमणिपरिभाषितशब्दाना-मर्थाः। ४३ भूमेः स्थिरत्वे चलत्वे च आर्यभट्टस्य मतम्। ४४ सौरादिपरिभाषित-शब्दानामर्थाः। ४५ भूगोलसंस्थानप्रमाणादि। ४६ खगोलसंस्थानप्रमाणादि। ४७ बृहत्संहिताप्रतिपाद्यविषयास्तच्छब्दार्थाश्च। ४८ वाशिष्ठादिपरिभाषितशब्दाना-मर्थाः। ४९ नरपतिजयचर्यापरिभाषितशब्दानामर्थास्तत्रत्यचक्राणि च। ५० शकुन-शास्त्रप्रसिद्धशब्दानामर्थाः। ५१ ताजिकपरिभाषितशब्दानामर्थाः। ५२ वास्तुशास्त्रादि-प्रसिद्धगृहकुड्यादिलक्षणानि। ५३ सर्वदेवमूर्त्तिलक्षणानि। ५४ तन्त्रशास्त्रपरि-भाषितशब्दानामर्थाः। ५५ तन्त्रोक्तषट्चक्रस्वरूपाणि। ५६ सारदातिलकादिपरि-भाषितशब्दानामर्थाः। ५७ नीतिशास्त्रपरिभाषितशब्दानामर्थाः। ५८ अश्वशास्त्र-परिभाषितशब्दानामर्थाः। ५९ धनुर्वेदपरिभाषितशब्दानामर्थाः। ६० गान्धर्ववेदपरि-भाषितशब्दानामर्थाः। ६१ शिक्षापरिभाषितशब्दानामर्थाः। ६२ कल्पपरिभाषित-शब्दानामर्थाः। ६३ छन्दःशास्त्रोक्तशब्दानामर्थास्तल्लक्षणभेदाश्च। ६४ अलङ्कारशास्त्र-परिभाषितशब्दानामर्थाः। ६५ शब्दार्थालङ्काराणां लक्षणोदाहरणानि। ६६ दशरूप-कादिपरिभाषितशब्दानामर्थास्तल्लक्षणोदाहरणानि च। ६७ सैन्यव्यूहादिलक्षणानि।

All prices in this list are now increased by 25%.

६८ सैन्यपरिमाणभेदाः। ६९ पाकशास्त्रपरिभाषितशब्दानामर्थास्तत्प्रकारभेदाश्च]।
तदेवं षड्भागविभक्तं स्वर्णाङ्काङ्कितनवचर्मवस्त्रावरकसमन्वितम् ... [redacted] ४२२)

---

७३ शब्दसागरः (संस्कृत-इंलण्डीयभाषाकृतम् अभिधानम्) अकारादिक्रमेण संस्कृतशब्दानाम् अर्थाः व्युत्पत्तयश्च इंलण्डीयभाषया व्याख्याताः विद्यन्ते ... १०) Sanskrit-English Dictionary.

७४ शब्दस्तोममहानिधिः (संस्कृताभिधानम्) अकारादिक्रमेण संस्कृतशब्दाः तदर्थाः तद्व्युत्पत्तयश्च सरलसंस्कृतभाषया व्याख्याताः विद्यन्ते [परिवर्द्धितसंस्करणम्] [redacted] २२) Sanskrit-Sanskrit Dictionary.

नाटकानि।

७५ अनर्घराघवम् [मुरारिकृतम्] सटीकम् ... २॥०

७६ अनर्घराघवम् (मूलमात्रम्) ... १)

※ ७७ अभिज्ञानशकुन्तलम् [परिवर्द्धितटीका-दोषगुण-रीत्यलङ्कारविचार-विस्तृतसमालोचनादिसहितं, सचित्रञ्च] ... ... ५)

७८ उत्तररामचरितम् [भवभूतिकृतम्] परिवर्द्धितटीका-दोष-गुणरीत्यलङ्कारविचार-सहितम् ... ३॥०

७९ कर्पूरमञ्जरी नाटिका [राजशेखरकृता] सटीका ॥/०

८० चण्डकौशिकम् [आर्य्यक्षेमीश्वरकृतम्] सटीकम् १।०

८१ चैतन्यचन्द्रोदयनाटकम् सटीकम् [अयं वैष्णवसम्प्र-दायग्रन्थः] (अस्मिन्नाटके श्रीचैतन्यदेवस्य जीवन-चरितम् अस्ति) ... ... २।०

८२ धनञ्जयविजयव्यायोगः व्याख्यासहितः ... ।०

८३ नागानन्दम् [श्रीहर्षकृतम्] विस्तृतटीकासहितम् १)

८४ नागानन्दम् (मूलमात्रम्) ... ।०

※ ८५ प्रबोधचन्द्रोदयः (व्याख्यासहितः) ... १।०

८६ प्रसन्नराघवनाटकम् [श्रीजयदेवकृतम्] ... १)

Books of other publications are also supplied

८७ प्रियदर्शिका नाटिका [श्रीहर्षकृता] सटीका ॥०
८८ बालरामायणनाटकम् [राजशेखरकृतम्] सटीकम् ३)
८९ मल्लिकामारुतप्रकरणम् [दण्डिकृतम्] सटीकम् २।०
९० महानाटकम् (हनूमन्नाटकम्) सटीकम् ... २॥०
९१ महानाटकम् (मूलमात्रम्) ... ॥०
९२ महावीरचरितम् [भवभूतिकृतम्] सटीकम् २)
९३ महावीरचरितम् (मूलमात्रम्) ... १)
* ९४ मालतीमाधवप्रकरणम् [भवभूतिकृतम्] सटीकम् १॥०
९५ मालविकाऽग्निमित्रम् [तर्कवाचस्पतिकृतटीकोपेतम्] १॥०
९६ मुद्राराक्षसम् [विशाखदत्तकृतम्] विस्तृतटीकाऽन्वितं तथा पूर्वपीठिकासमेतम् ... १॥०
९७ मृच्छकटिकम् [शूद्रककृतम्] परिवर्द्धितटीका-दोषगुण-रीत्यलङ्कारविचार-विस्तृतसमालोचनादिसहितम् ३)०
९८ रत्नावली नाटिका (श्रीहर्षकृता) सटीका ॥०
९९ वसन्ततिलकभाणम् [वरदाचार्य्यकृतम्] ... ।✓०
१०० विक्रमोर्वशी त्रोटकम् [कालिदासकृतम्] सटीकम् १)
१०१ विद्धशालभञ्जिका नाटिका [राजशेखरकृता] सटीका ॥०
१०२ वेणीसंहारम् [तर्कवाचस्पतिकृतटीकासहितम्] १॥०
१०३ हास्यार्णवप्रहसनम् सटीकम् ... ॥✓०

अलङ्कारशास्त्रम् ।

१०४ काव्यदीपिका सटीका ... ... १✓०
१०५ काव्यप्रकाशः [मम्मटाचार्य्यकृतः] विस्तृतटीकासहितः ४)
१०६ काव्यादर्शः [दण्डिकृतः] विस्तृताभिनवटीकासहितः २॥०
१०७ काव्यालङ्कारसूत्रवृत्तिः [वामनाचार्य्यकृता] कामधेनु-टीकाऽन्विता ... ... १॥०
१०८ कुवलयानन्दः [अप्पयदीक्षितकृतः] सटीकः २)

All prices in this list are now increased by 25%.

१०९ चन्द्रालोकः [जयदेवकृतः प्राचीनालङ्कारग्रन्थः] ।/०

११० दशरूपकम् [धनञ्जयकृतम्] ध्वनिककृतटीकाऽन्वितम् १।०

१११ वाग्भटालङ्कारः[वाग्भटकृतः]विस्तृताभिनवटीकोपेतः १॥०

११२ सरस्वतीकण्ठाभरणम् [भोजराजकृतम्] सटीकम् ४)

११३ साहित्यदर्पणः [विश्वनाथकृतः] विस्तृताभिनवटीका-
ऽन्वितः तथा ग्रन्थस्य प्रथमतः शेषं यावत् प्रतिपरि-
च्छेदं सङ्गृहीतेन, दोषाणामलङ्काराणाञ्च परस्परभेदै-
रत्यावश्यकेन सारसङ्क्षेपेण सहितश्च ... [redacted] ५) 5|-

११४ ~~साहित्यदर्पणः (मूलमात्रम्)~~ ... १)

सङ्गीतशास्त्रम् ।

११५ सङ्गीतपारिजातः ~~[अहोबलकृतः] ... ८॥०~~

छन्दःशास्त्रम् ।

११६ छन्दोमञ्जरी वृत्तरत्नाकरश्च (एतौ विस्तृताभिनव-
टीकासहितौ ... ... १)

११७ पिङ्गलच्छन्दःशास्त्रम् [भट्टहलायुधकृतवृत्त्या विस्तृत-
टीकया च सहितम्] ... ... ३)

११८ श्रुतबोधः [कालिदासकृतः] सटीकः ... ॥०

तन्त्रशास्त्रम् ।

११९ इन्द्रजालविद्यासङ्ग्रहः (इन्द्रजालविद्या + कामरत्नम् +
दत्तात्रेयसंहिता + षट्कर्मदीपिका + सिद्धनागार्ज्जुन-
कक्षपुटम् ; अत्र एतानि पुस्तकानि एकत्र सन्ति) ३)

१२० कुलार्णवतन्त्रम् ... ... २)

१२१ तारारहस्यतन्त्रम् ... ... १)

१२२ त्रिपुरासारसमुच्चयतन्त्रम् ... ... १॥) 1|8|-

१२३ प्राणतोषिणीतन्त्रम् ... ... ८)

१२४ मन्त्रमहोदधिः (सटीकः) ... ... ५)

१२५ महानिर्वाणतन्त्रम् (पूर्वकाण्डम्) सटीकम् ४)

१२६ योगिनीतन्त्रम् ... ... ३)

१२७ रुद्रयामलतन्त्रम् (उत्तरभागः) ... ३)

१२८ श्यामारहस्यतन्त्रम् ... ... २)

१२९ सारदातिलकतन्त्रम् ... ... ३)

नीतिशास्त्रम् ।

※ १३० कामन्दकीयनीतिसारः विस्तृताभिनवटीकासहितः २॥०

१३१ चाणक्यशतकम् (सटीकम्) ... ... ॥०

※ १३२ शुक्रनीतिसारः (विस्तृतव्याख्यासहितः) ... ४)

कर्म्मकाण्डपद्धतिः ।

१३३ गयाश्राद्धादिपद्धतिः [तर्कवाचस्पतिसङ्कलिता] १)

१३४ तुलादानादिपद्धतिः + नवग्रहहोमपद्धतिः + प्रायश्चित्त-
पद्धतिः + विष्णुयागपद्धतिः (अनपत्यानां पुत्रकाम-
नया अनुष्ठेयः यागविशेषः विष्णुयागः) ... ४)

स्मृतिशास्त्रम् ।

※ १३५ दत्तकचन्द्रिका तथा दत्तकमीमांसा (सव्याख्या) १॥०

१३६ दायभागः [जीमूतवाहनकृतः, श्रीकृष्णतर्कालङ्कार-
कृतव्याख्यासहितः] ... ... २)

१३७ धर्मशास्त्रसङ्ग्रहः [अस्मिन् ग्रन्थे एतानि धर्मशास्त्राणि एकत्र सन्ति
यथा,—१ लघु अत्रिसंहिता, २ अत्रिसंहिता, ३ वृद्धात्रिसंहिता, ४ विष्णु-
स्मृतिः, ५ लघुहारीतसंहिता, ६ वृद्धहारीतसंहिता, ७ याज्ञवल्क्यस्मृतिः,
८ औशनसं धर्मशास्त्रम्, ९ औशनसस्मृतिः, १० आङ्गिरसस्मृतिः, ११ यम-
स्मृतिः, १२ आपस्तम्बस्मृतिः, १३ संवर्त्तस्मृतिः, १४ कात्यायनस्मृतिः,
१५ बृहस्पतिस्मृतिः, १६ पराशरसंहिता, १७ बृहत्पराशरसंहिता, १८ लघु-
व्याससंहिता, १९ व्याससंहिता, २० शङ्खसंहिता, २१ लिखितसंहिता,

All prices in this list are now increased by 25%.

२२ दक्षसंहिता, २३ गौतमसंहिता, २४ शातातपसंहिता, २५ वशिष्ठ-संहिता, २६ वृद्धगौतमसंहिता] ... ... ११)

१३८ प्रायश्चित्तविवेकः [शूलपाणिकृतः] गोविन्दानन्दकृत-टीकासहितः ... ... ३)

१३९ मनुसंहिता [कुल्लूकभट्टकृतटीकासहिता] ... २॥०

१४० वीरमित्रोदयः [व्यवहाराध्यायः] मित्रमिश्रकृतः ५)

१४१ स्मृतितत्त्वम् (रघुनन्दनभट्टाचार्य्यकृतम्, अष्टाविंशति-स्मृतितत्त्वसङ्ग्रहः) [यस्मिन् ग्रन्थे एतानि धर्मशास्त्राणि एकत्र सन्ति, यथा,—१ तिथितत्त्वम्, २ श्राद्धतत्त्वम्, ३ आह्निकतत्त्वम्, ४ प्रायश्चित्त-तत्त्वम्, ५ ज्योतिषतत्त्वम्, ६ मलमासतत्त्वम्, ७ संस्कारतत्त्वम्, ८ एका-दशीतत्त्वम्, ९ उद्वाहतत्त्वम्, १० व्रततत्त्वम्, ११ दायतत्त्वम्, १२ व्यव-हारतत्त्वम्, १३ शुद्धितत्त्वम्, १४ वास्तुयागतत्त्वम्, १५ कृत्यतत्त्वम्, १६ यजुर्वेदिश्राद्धतत्त्वम्, १७ देवप्रतिष्ठातत्त्वम्, १८ जलाशयोत्सर्गतत्त्वम्, १९ छन्दोगवृषोत्सर्गतत्त्वम्, २० श्रीपुरुषोत्तमतत्त्वम्, २१ दिव्यतत्त्वम्, २२ मठप्रतिष्ठातत्त्वम्, २३ शूद्रकृत्यविचारणतत्त्वम्, २४ यजुर्वेदिवृषोत्सर्ग-तत्त्वम्, २५ दीक्षातत्त्वम्, २६ श्रीदुर्गार्चनपद्धतिः] ... १०)

वेदान्तदर्शनशास्त्रम् ।

१४२ अपरोक्षानुभूतिः [शङ्कराचार्य्यविरचिता] विद्यारण्य-मुनिकृतटीकासहिता ... ... ।≠०

१४३ अष्टावक्रसंहिता [अष्टावक्रमुनिकृता] विस्तृत-व्याख्यासहिता ... ... १)

१४४ आत्मानात्मविवेकः आत्मबोधश्च [एतौ शङ्कराचार्य्य-कृतौ सटीकौ च] ... ... ।≠०

१४५ पञ्चदशी [भारतीतीर्थविद्यारण्यमुनीश्वरकृता] राम-कृष्णकृतव्याख्यासहिता ... ... ३)

१४६ पूर्णप्रज्ञदर्शनम् [आनन्दतीर्थकृतं मध्वभाष्यसहितम्] १।०

१४७ भामती [शारीरकभाष्यव्याख्या] वाचस्पतिमिश्रकृता ३॥०

१४८ विवेकचूड़ामणिः [शङ्कराचार्य्यविरचितः] ।/०

※ १४९ वेदान्तदर्शनम् (व्याससूत्रेण शङ्कराचार्य्यकृतभाष्येण गोविन्दानन्दकृतटीकया तथा वैयासिकन्यायमालया च सहितम्) ... ... ६)

१५० वेदान्तपरिभाषा (धर्मराजाध्वरीन्द्रविरचिता) विस्तृत-व्याख्यासहिता ... ... १॥०

१५१ वेदान्तपरिभाषा (मूलमात्रम्) ... ॥०

१५२ वेदान्तसारः [सदानन्दयोगीन्द्रविरचितः] नृसिंह-सरस्वतीविरचितया सुबोधिन्या श्रीरामतीर्थयति-कृतविद्वन्मनोरञ्जन्या च नाम टीकया समलङ्कृतः, तथा श्रीमच्छङ्करभगवत्कृतभाष्योपेतहस्तामलकान्वितश्च ... ... १।०

१५३ वेदान्तसिद्धान्तमुक्तावली [प्रकाशानन्दकृता] विस्तृत-व्याख्यासहिता ... ... २॥०

१५४ सिद्धान्तलेशसङ्ग्रहः [अप्पयदीक्षितविरचितः] विस्तृत व्याख्यासहितः ... ... ४॥०

१५५ सिद्धान्तविन्दुसारः तथा ब्रह्मस्तोत्रं व्याख्यासहितम् [श्रीतारानाथतर्कवाचस्पतिकृतम्] ... ॥०

साङ्ख्यदर्शनशास्त्रम् ।

१५६ साङ्ख्यकारिका [ईश्वरकृष्णकृता] गौड़पादकृतभाष्य-सहिता ... ... ।/०

※ १५७ साङ्ख्यतत्त्वकौमुदी [वाचस्पतिमिश्रकृता श्रीतारा-नाथतर्कवाचस्पतिकृतव्याख्यासहिता ... २)

१५८ साङ्ख्यदर्शनम् [कपिलकृतसूत्रम्] विज्ञानभिक्षुकृत-"साङ्ख्यप्रवचनभाष्य" सहितम् ... २)

१५९ साङ्ख्यसारः (विज्ञानभिक्षुकृतः) ... ।०

All prices in this list are now increased by 25%.

१६० साङ्ख्यसूत्रम् (कपिलसूत्रम्) अनिरुद्धकृतवृत्त्या महामहोपाध्याय-श्रीप्रमथनाथ-तर्कभूषणकृत-विस्तृतटीकया च समलङ्कृतम् ... ... १॥०

मीमांसादर्शनशास्त्रम्।

१६१ अर्थसङ्ग्रहः [लौगाक्षिभास्करकृतः पूर्वमीमांसाऽर्थसङ्ग्रहः] विस्तृतव्याख्यासहितः ... ... १)

१६२ अर्थसङ्ग्रहः (मूलमात्रम्) ... ... ।०

१६३ जैमिनीयन्यायमालाविस्तरः [माधवाचार्य्यकृतः] मीमांसादर्शनस्य अधिकरणमाला ... ६)

१६४ मीमांसादर्शनम् (जैमिनीयसूत्रं) शवरकृतभाष्योपेतम् १०)

१६५ मीमांसान्यायप्रकाशः [आपोदेवकृतः] ... ॥॥०

१६६ मीमांसापरिभाषा [कृष्णयज्वकृता] ... ।/०

१६७ शाण्डिल्यसूत्रम् (भक्तिमीमांसा) स्वप्नेश्वरकृतभाष्यसहितम् ॥/०

न्यायदर्शनशास्त्रम्।

१६८ अनुमानचिन्तामणिः [गङ्गेशोपाध्यायकृतः] काणभट्ट-(शिरोमणि) कृत "दीधिति" नामकटीकासहितः ४॥०

१६९ आत्मतत्त्वविवेकः (बौद्धाधिकारः) उदयनाचार्य्यकृतः २)

१७० उपमानचिन्तामणिः [गङ्गेशोपाध्यायकृतः] ।/०

१७१ कुसुमाञ्जलिः [उदयनाचार्य्यकृतः] हरिदासभट्टाचार्य्यकृतटीकासहितः ... ... ॥/०

१७२ केवलान्वयी [शिरोमणिकृतटीकया जागदीशविवृत्या जगदीशकृतटीकाया वादार्थेन च सहिता] १)

१७३ तर्कसङ्ग्रहः [दीपिका-नीलकण्ठी-व्याख्याभ्यां सहितः] ॥/०

१७४ तर्कसङ्ग्रहः [इंलण्डीय अनुवादसहितः] ... ॥०

१७५ तर्कामृतम् [जगदीशभट्टाचार्य्यकृतम्] मूलमात्रम् ।०

१७६ न्यायदर्शनम् [गोतमसूत्रम्, विश्वनाथकृतवृत्त्या वात्स्यायनकृतभाष्येण च सहितम्] ... २॥०

१७७ पक्षता [शिरोमणि-मथुरानाथ-जगदीशकृतटीकात्रय-सहिता, जागदीशटीकाया वादार्थविवृता च] १।०

१७८ भाषापरिच्छेदः [विश्वनाथकृतः] तत्कृत-मुक्तावली-टीकया दिनकरकृत-तद्व्याख्यया च सहितः ... २॥०

१७९ भाषापरिच्छेदः (मुक्तावलीसहितः) ... ॥०

१८० व्याप्तिपञ्चकम् (गङ्गेशोपाध्यायकृतम्) [शिरोमणिटीका + जगदीशकृतशिरोमणिटीकाविवृति + जागदीशविवृतटिप्पणी + गदाधरकृत-शिरोमणिटीकाविवृति + माथुरीटीका + माथुरी-जागदीशी-गादाधरीटीका-पत्रिकाचतुष्टयसमन्वितम्] ... १)

१८१ शब्दशक्तिप्रकाशिका ... ... १।०

१८२ सामान्यनिरुक्तिः [शिरोमणि-गदाधरकृतविवृतिद्वय-सहिता, गदाधरकृतटीकाया वादार्थेनान्विता च] २)

१८३ सिद्धान्तलक्षणम् (गङ्गेशोपाध्यायविरचितम्) [शिरोमणिटीका + जगदीशकृत-शिरोमणिटीकाविवृति + माथुरीटीकाभिः सहितं, जगदीशकृतविवृतेः फक्किकाविवृतिसमन्वितञ्च] १)

पातञ्जलदर्शनशास्त्रम् ।

१८४ पातञ्जलदर्शनम् (योगसूत्रम्) भोजवृत्तिसहितम् १)

१८५ पातञ्जलदर्शनम् [योगसूत्रम्] वाचस्पतिकृतवृत्ति-वेदव्यासकृत-भाष्यसहितम् ... ... २।०

१८६ पातञ्जलदर्शनम् [योगसूत्रम्] वेदव्यासकृतभाष्य-विज्ञानभिक्षुकृतयोगवार्त्तिकाख्यव्याख्यासहितम् ३)

१८७ पातञ्जलदर्शनं [योगसूत्रं] मणिप्रभाख्यटीकासहितम् १।०

वैशेषिकदर्शनशास्त्रम् ।

१८८ वैशेषिकदर्शनम् [कणादसूत्रम्] शङ्करमिश्रकृतोपस्काराख्य-व्याख्यासहितम् ... ... ३)

All prices in this
now increased by

१८९ सर्वदर्शनसङ्ग्रहः [माधवाचार्य्यकृतः] [अत्र ग्रन्थे एतानि दर्शनानि सङ्क्षेपेण सन्ति, तत् यथा,—१ चार्वाक, २ बौद्ध, ३ आर्हत ४ रामानुज, ५ पूर्णप्रज्ञ, ६ नकुलीशपाशुपत, ७ शैव ८ प्रत्यभिज्ञा, ९ रसेश्वर, १० औलूक्य, ११ अक्षपाद, १२ जैमिनि, १३ पाणिनि, १४ साङ्ख्य १५ पातञ्जल] ... ... १॥०

वैदिकग्रन्थाः ।

१९० आथर्वणोपनिषदः [नारायणकृतवृत्तिसहिताः] [अस्मिन् ग्रन्थे एते उपनिषद्ग्रन्थाः विद्यन्ते, तत् यथा,—१ शिर, २ गर्भ, ३ नादबिन्दु, ४ ब्रह्मबिन्दु, ५ अमृतबिन्दु, ६ ध्यानबिन्दु, ७ तेजोबिन्दु, ८ योगशिखा, ९ योगतत्त्व, १० संन्यास, ११ आरुणेय, १२ ब्रह्मविद्या, १३ क्षुरिका, १४ चूलिका, १५ अथर्वशिरा, १६ ब्रह्म, १७ प्राणाग्निहोत्र, १८ नीलरुद्र, १९ कण्ठश्रुति, २० पिण्ड, २१ आत्मा, २२ रामपूर्वतापनी, २३ रामोत्तरतापनी, २४ हनुमदुक्तरामोपनिषद्, २५ सर्वोपनिषत्सार, २६ हंसोपनिषद्, २७ परमहंसोपनिषद्, २८ जाबालोपनिषद्, २९ कैवल्योपनिषद्] ... ... ३)

१९१ आर्षेयसंहिता (सामवेदस्य) सायणाचार्य्यकृतभाष्यसहिता ॥/०

१९२ आश्वलायनगृह्यसूत्रम् [गर्ग्यनारायणकृतवृत्तिसहितम्] २)

१९३ ईश-केन-कठ-प्रश्न-मुण्ड-माण्डूक्योपनिषदः (शङ्कराचार्य्यकृतभाष्य-आनन्दगिरिकृतटीकासहिताः) ५)

१९४ गायत्री [तर्कवाचस्पतिकृतव्याख्यासहिता] ... ॥०

१९५ गोपथब्राह्मणम् (अथर्ववेदस्य) ... १)

१९६ छान्दोग्योपनिषद् [शङ्कराचार्य्यकृतभाष्येण आनन्दगिरिकृतटीकया च सहिता] ... ५)

१९७ तैत्तिरीय-ऐतरेय-श्वेताश्वतरोपनिषदः [शङ्कराचार्य्यकृतभाष्येण आनन्दगिरिकृतटीकया च सहिताः] ५)

१९८ दैवतब्राह्मणं तथा षड्विंशब्राह्मणम् [सायणाचार्य्यकृतभाष्यसहितम्] ... ... २)

क वायु आदि
झें। शूरए के।
प होजाती है।
धुरादि
विशेष
में

१९९ निरुक्तम् [यास्ककृतम्] (सभाष्यं सटीकं) देवराज-
यज्व-दुर्गाचार्य्यकृतव्याख्याद्वयसहितञ्च १२)
२०० नृसिंहतापनी [शङ्कराचार्य्यकृतभाष्यसहिता] (अथर्व-
वेदीया उपनिषत्) ... ... २)
२०१ मुक्तिकोपनिषत् ... ... ।/०
२०२ बृहदारण्यकोपनिषत् [शङ्कराचार्य्यकृतभाष्येण आनन्द-
गिरिकृतटीकया च सहिता] ... ६)
२०३ शुक्लयजुर्वेदसंहिता [महीधरकृतभाष्यसहिता] १०)
२०४ शुक्लयजुर्वेदस्य प्रातिशाख्यम् (उव्वटकृतभाष्यसहितम्) २)
२०५ सामवेदसंहिता [सायणाचार्य्यकृतभाष्यसहिता]

पुराणग्रन्थाः ।

२०६ अग्निपुराणम् ... ४)
२०७ अध्यात्मरामायणम् [रामवर्मकृतटीकासहितम्] ३)
२०८ कालिकपुराणम् ... ... २)
२०९ गरुड़पुराणम् [अस्मिन् पुराणे धन्वन्तरिसंहिता, ज्योतिष-
शास्त्रं, रत्नपरीक्षाशास्त्रं नीतिशास्त्रञ्च अस्ति] ३)
२१० ब्रह्मवैवर्त्तपुराणम् [ब्रह्मखण्डं + प्रकृतिखण्डं + गणेश-
खण्डं + श्रीकृष्णजन्मखण्डञ्च] ... ६)
२११ मत्स्यपुराणम् ... ... ४)
२१२ मार्कण्डेयपुराणम् ... ... २)
२१३ लिङ्गपुराणम् ... ... ५)
२१४ वाल्मीकिरामायणस्य बालकाण्डम् [विस्तृतव्याख्या-
सहितम्] ... ... २)
२१५ विष्णुपुराणम् [श्रीधरस्वामिकृतव्याख्यासहितम्] ३॥०
२१६ श्रीमद्भगवद्गीता [शङ्कराचार्य्यकृतभाष्य-आनन्दगिरिकृत-
टीका-श्रीधरस्वामिकृतव्याख्याभिः सहिता] ५)

पुराने अन्नों का लघुत्व और शैत्य उन पर दीर्घ काल तक वायु आदि के प्रभाव पर निर्भर है। एवं शुष्क शाकादि में समझें। शूरण की कटुता तथा दाहक शक्ति उबालने से वा घृतमें भूनने से कम होजाती है।

१२. विपाक।

जाठरेणाग्निना योगाद्यदेति रसान्तरम्।
रसानां परिणामान्ते स विपाक इति स्मृतः॥

— जठराग्नि (पाचकाग्नि, पित्तादि पाचक रसों) के संयोग से मधुरादि रसयुक्त द्रव्य रसों के पाक होने पर जो रसान्तर वा जैसी रसविशेष को प्राप्त होते हैं, वह रसविशेष विपाक कहलाता है।

व्याख्या—हम जिस द्रव्य को खाते हैं, वह हमारे आमाशय में (Stomach) में पहुंचकर आमाशायिक रस (Gastric Juice), तदनन्तर क्लोमरस (Pancreatic Juice), पित्त (Bile) आदि के संयोगसे कई प्रकार के रूपान्तरों को प्राप्त होता है। एक द्रव्य मधुर होते हुए भी गरमी करता है, यथा मधु, व्रीहीधान्य आदि। कटु द्रव्य अवृष्य हुआ करते हैं, परन्तु पिप्पली और शुण्ठी वृष्य (वीर्य वर्धक) हैं। अम्ल द्रव्य उष्ण होते हैं, जैसे कपित्थ, परन्तु आमलकी शीत है। तिक्त द्रव्य शीत होते हैं, जैसे पर्पट, निम्बादि, परन्तु चिरायता, कुटकी, अर्क (आक) उष्ण हैं। इन उदाहरणों से सिद्ध होता है कि द्रव्यों के गुण सदैव रसों के तुल्य नहीं होते, प्रत्युत विप्रीत हुआ करते हैं। इस विप्रीतता का कारण, द्रव्यों के पाककाल में रसान्तर की उत्पत्ति है। इसी को ही विपाक कहते हैं। यह विपाक द्रव्य के कर्म विशेष से जाना जाता है, "विपाकः कर्मनिष्ठया" (च० सू० २६)।

विपाक के प्रकार।

कटुतिक्तकषायाणां विपाकः प्रायशः कटुः।
अम्लोऽम्लं पच्यते स्वादुर्मधुरं लवणस्तथा॥ (च० सू० २६)

कटु, तिक्त और कषाय द्रव्यों का विपाक प्रायः कटु होता है, अम्ल (खट्टे) द्रव्यों का अम्ल, मधुर और लवण द्रव्यों का मधुर।

श्री वाग्भट का भी यही मत है :—

स्वादुः पटुश्च मधुरमम्लोऽम्ल पच्यते रसः।
तिक्तोषणकषायाणां विपाकः प्रायशः कटुः॥ (अष्ट० सू० ९)

मधुर और लवण रस वा द्रव्य मधुरपाकी होते हैं, अम्ल अम्लपाकी और तिक्त, कटु तथा कषाय प्रायः कटुपाकी।

'प्रायः' शब्द इसलिए आया है कि इन रसों के विप्रीत भी पाक

हो सकता है, जैसे कषाय हरीतकी और कटु पिप्पली, और तिक्त मुद्गपर्णी प... मधुर हैं, अम्ल आमलकी भी मधुरपाकी है। मधुर मधु और यव कटुपाकी हैं।

पुनः सुश्रुत के मतानुसार विपाक दो प्रकार का है, मधुर और कटु :—

द्रव्येषु पच्यमानेषु येष्वम्बुपृथिवीगुणाः।
निर्वर्तन्तेऽधिकास्तत्र पाको मधुर उच्यते॥
तेजोऽनिलाकाशगुणाः पच्यमानेषु येषु तु।
निर्वर्तन्तेऽधिकास्तत्र पाकः कटुक उच्यते॥ (सु० सू० ४०)

जिन द्रव्यों के पाककाल में पृथिवी और जल तत्वों की अधिकता होती है, उनका पाक मधुर कहलाता है, और जहां अग्नि, वायु और आकाश की अधिकता हो, वहां पाक कटु हुआ करता है।

सुश्रुत के मतानुसार मधुरपाक वाले द्रव्य गुरु, स्निग्ध और शीत हैं, और कटुपाकी द्रव्य लघुरूक्ष और उष्ण समझने चाहिएं। वस्तुतः चरकोक्त अम्लपाक सुश्रुतोक्त कटुपाक में गिना जाता है।

चरकानुसार विपाकों के यह कृत्य हैं :—

शुक्रहा बद्धविण्मूत्रो विपाको वातलः कटुः।
मधुरः सृष्टविण्मूत्रो विपाकः कफशुक्रलः॥
पित्तकृत्सृष्टविण्मूत्रः पाकोऽम्लः शुक्रनाशनः।
तेषां गुरुः स्यान्मधुरः कटुकाम्लावतोऽन्यथा॥ (च० सू० २६)

कटु पाक (वा कटुपाकि द्रव्य) शुक्रनाशक, मूत्र और मल संग्राहक, और वायुप्रकोपक है। मधुर पाक मूत्र और मल का उत्पादक, कफ और शुक्र का वर्धक है। अम्ल पाक पित्तकारक, मलमूत्रजनक और शुक्र नाशक है। उन में से मधुर पाक गुरु, और कटु तथा अम्ल लघु होते हैं।

सुश्रुत ने कटु और अम्ल पाकों को एकत्र करके केवल दो पाक मधुर और कटु कहे हैं। एवं विपाक के सम्बन्ध में अन्य बातें संहिता ग्रन्थों में देखें।

कई आचार्य रसों के तुल्य ६ विपाक मानते हैं, परन्तु यह मत सर्वमान्य नहीं। यदि मान भी लें, तब रस और विपाक में क्या भेद रहेगा ?

१३. रस, विपाक और वीर्य में परस्पर भेद।

रसो निपाते द्रव्याणां विपाकः कर्मनिष्ठया।
वीर्यं यावदधीवासान्निपाताच्चोपलभ्यते॥ (च० सू० २६)

रस का ज्ञान द्रव्यों के जिह्वा पर पड़ने से हो जाता है और विपाक का ज्ञान कर्म की परिसमाप्ति पर, परन्तु वीय अधिवास (शरीर के साथ सहवास) और निपात (जिह्वा पर पड़ने) से प्रतीत होता है।

जब कोई द्रव्य जिह्वा पर पड़ता है, तो मधुरादि रस और अनुरस का ज्ञान तब ही हो जाता है द्रव्यों के पचने के उपरान्त शुक्रवृद्धि, मल-मूत्रादि के उत्पत्ति आदि कर्मों से विपाक जाना जा सकता है। वीर्य पुनः रस और विपाक की मध्यम अवस्था है। यह दो प्रकार से जाना जाता है। (१) सहवास से, जैसे मत्स्य आनूप (जलज) होने से शीत वीर्य होना चाहिए, परन्तु जब उसे खाया जाता है, तो वह शरीर में गरमी करती है, अतः अधिवास से उसके उष्ण वीर्य का ज्ञान होता है। एवं मधु का; (२) निपात (Contact) से, जैसे मरिच और राई की तीक्ष्णता उन्हें उष्णवीर्य प्रकट करती है।

..................तत्र द्रव्यं शुभाशुभम्।
किञ्चिद्रसेन कुरुते कर्म पाकेन वापरम्।
गुणान्तरेण वीर्येण प्रभावेणैव किञ्चिन॥ (अष्टा० सू० ९)

द्रव्यों का शुभ और अशुभ कर्म कहीं रस से, कहीं विपाक से, कहीं वीर्य से और कहीं प्रभाव से हुआ करता है।

यद्द्रव्ये रसादीनां बलवत्त्वेन वर्त्तते।
अभिभूयेतरांस्तत्तत्कारणत्वं प्रपद्यते॥ (अष्टां० सू० ९)

द्रव्य में रस, वीर्यादि चारों में से जो बलवान् होता है, वह शेष तीनों को दबाकर स्वयं कर्म का कारण बनता है। क्योंकि :—

विरुद्धगुणसंयोगे भूयसाल्पं हि जीयते।

विरुद्ध गुणों के संयोग में जो गुण बलवान् होता है, वह अपने हीन गुण को जीत लेता है (जिसकी लाठी उसी की भैंस), परन्तु प्रायः यह देखा जाता है किः—

रसं विपाकस्तौ वीर्यं प्रभावस्तानपोहति।
बलसाम्यं रसादीनामिति नैसर्गिकं बलम्॥ (च० सू० २६)

समबल होने पर भी रस को विपाक, इन दोनों को वीर्य और प्रभाव इन तीनों को जीत लेता है। यह इनमें स्वाभाविक शक्ति है।

१४. प्रभाव (Specific Actions)

रसवीर्यविपाकानां सामान्यं यत्र [illegible] ...चीनी), लवंग, एल.
विशेषः कर्मणां चैव प्रभा[illegible] ...सैन्धवादि लवण, नद[illegible]
...धा. अतिविषा...

रस, वीर्य और विपाक की जहां समानता हो, परन्तु कर्म विशेष देखा जावे, तो उस द्रव्य का प्रभाव समझना चाहिए।

रसादिसाम्ये यत्कर्म विशिष्टं तत्प्रभावजम् (अ० सू० ९)

रसादि की समानता होने पर जो कर्म विशेष हुआ करता है, वह प्रभावज है, यथाः—

कटुकः कटुकः पाके वीर्योष्णश्चित्रको मतः।
तद्वद्दन्ती प्रभावात्तु विरेचयति मानवम् ॥ (च० सू० २६)

चित्रक रस तथा विपाक में कटु और उष्णवीर्य है, और दन्ती भी उसकी तरह है, परन्तु प्रभाव से मनुष्य को रेचन (दस्त) लाती है (और चित्रक ग्राही है)।

एवं मधूक और द्राक्षा सम होते हुए भी द्राक्षा रेचक है। घृत और दुग्ध सम हैं, तथापि घृत अग्निदीपक है। कुचला और अहिफेन तिक्त, रूक्षादि समगुण होते हुए परस्पर विरुद्ध हैं, जैसे अहिफेन निद्राजनक (Narcotic) तथा सादक (Sedative) और कुचला निद्राहर तथा उत्तेजक(Exciting) है। परस्पर विरुद्ध प्रभाव रखते हुए अन्योऽन्य नाश करते हैं। वस्तुतः द्रव्य का प्रभाव ही एक ऐसा बलवान् गुण है, जो उसके रस, वीर्य और विपाक तीनों गुणों को दबाकर अपना कार्य करता है, जैसा पीछे कहा गया है, "रसं विपाकस्तौ वीर्यं प्रभावस्तानपोहति"। कुचला और चिरायता दोनों तिक्त और रूक्ष हैं, परन्तु चिरायता ज्वरघ्न है और कुचले का ज्वर पर कोई प्रभाव नहीं। चिरायता और कुनीन दोनों तिक्त हैं, परन्तु चिरायता यकृत् और प्लीहा के दोषोंको दूर करता है, और कुनीन निष्क्रिय है। एवं सहस्रों उदाहरण दिए जा सकते हैं। "प्रभावोऽचिन्त्य उच्यते" (चरक)—प्रभाव अचिन्त्य है अर्थात् उसे युक्तियों से सिद्ध नहीं कर सकते, प्रत्युत वह व्यवहारसिद्ध (Empirical) हुआ करता है।

अमुक द्रव्य अमुक रोग को क्यों नष्ट करता है, यह प्रभाव ही के आश्रय है। उस रोग और द्रव्य में परस्पर विशेष सम्बन्ध है, जो प्रभाव (Specific Effect) के नाम से पुकारा जा सकता है।

दन्ती (जयपाल), त्रिवृत, एरण्ड, स्नुही आदि क्यों रेचक हैं? गुडूची कुनीन, चिरायता, संखिया (Arsenic), पर्पट, फटकड़ी, आदि क्यों ज्वरनाशक हैं? अर्जुन क्यों हृद्य (Cordial) है? रोहीतक और शरपुंखा क्यों प्लीहघ्न हैं? अहिफेन निद्राजनक और शूलघ्न क्यों है? मदन वा[illegible] यावद[illegible]शक और अश्वगन्धा वीर्यवर्द्धक क्यों हैं। ऐसे प्र[illegible]

डाक्टर लोग इसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि जयपालादि द्रव्य अन्तड़ियों में एक विशेष संकोचप्रसाररूपी चेष्टा उत्पन्न करके उससे मलादि को बाहर निकालने की शक्ति रखते हैं, अतः वह रेचक हैं, परन्तु क्यों वह ऐसा करते हैं, इसका कोई उत्तर न मिलेगा, केवल यही कि उनका यह कर्म विशेष (Specific Action) है। अहिफेन मूर्छा को क्यों मुग्ध करती है ? इसका प्रभाव ही ऐसा है। तथा कुनीन आदि अनेक द्रव्य ऐसे हैं, जिन की क्रिया के सम्बन्ध में कोई युक्तियुक्त कारण नहीं बतलाया जाता। कोई मैटीरिया मैडिका (Materia Medica) उठालें, पृष्ठ २ पर आपको लेखक के ऐसे शब्द मिलेंगे कि अभी यह बात अज्ञात है कि अमुक द्रव्य कैसे काम करता है ? अन्ततः "प्रभावोऽचिन्त्यः उच्यते"। चरक का यह वचन मानना पड़ता है।

१५. वर्गीकरण (Classification)

प्रभावानुसार ऋषियों ने द्रव्यों के वर्ग बना दिए थे, जैसे ज्वरघ्न (Febrifuge), शूलघ्न (Pain-killer, Aneasthetic), क्रिमिघ्न (Germicide), रेचक (Purgative), ग्राही (Costipative), आदि, ताकि अल्प बुद्धि वाला मनुष्य इन वर्गों को स्मरण करता हुआ समय पर यथालाभ द्रव्य प्रयोग कर सके। देखो चरक सूत्र स्थान ४, अष्टांग हृदय सूत्र स्थान ६, सु० सू० ४४-४५।

पाश्चात्य मतानुसार निघंटु (Materia Medica) में भी द्रव्यों को कर्म वा प्रभाव के अनुसार वर्गों (Groups) में बांटकर वर्णन किया गया है।

१६. वर्ग (Groups)

अब नीचे कुछ प्रसिद्ध वर्ग दिए जाते हैं, ताकि पाठक उनसे चिकित्सा में लाभ उठा सकें। यह द्रव्य पृथक् वा मिश्रित तथा क्वाथ, चूर्णादि नाना रूपों में प्रयुक्त हो सकते हैं। द्रव्यों का पृथक् २ वर्णन पुस्तक में देखें। यहां केवल उनका समुदायप्रभाव दिखाया गया है :—

(१) अग्निदीपक द्रव्य (Stomachics & Carminatives)—मरिच, पिप्पली, शुण्ठी, चित्रक, त्वक् (दालचीनी), लवंग, एला, पत्र, धान्यक, यमानी, शतपुष्पा, कर्पूर, क्षार, सैन्धवादि लवण, नवसादर, हिंगु, वचादि कटु द्रव्य। गुडूची, पर्पट अश्वगन्धा अतिविषा

तिक्त द्रव्य । आम्र, दाड़िमादि अम्लद्रव्य ।

यह द्रव्य आमाशय, अन्त्रादि भागों को शक्ति देते हैं, पित्तपाचकादि रसों को पुष्ट करते हैं, हिंग्वादि कटु द्रव्य विशेषतः अन्तडियोंसे वायु को निकालते हैं, अतः उन्हें वातानुलोमक (Carminative) कहा जाता है। आनाहादि रोगों में वायु को उदर से निकालने के लिए हिंग्वादि द्रव्य लाभकारी हैं। इन की प्रयोगविधि पुस्तक में अपने २ स्थान में देखो ।

(२) अग्निसादक—घृत, दुग्ध, गुड़, मिठाई, गोधूमादि (अतियुक्त)। समस्त गुरु मधुर पिच्छिल द्रव्य तथा कत्थादि कषाय द्रव्य ।

(३) अतिसारघ्न वा ग्राही (Intestinal Astringents, or Constipatives)—अहिफेन, अतिविषा, सीसकभस्म, सिन्दूर, वंग, स्फुटिका कीकर, खदिर, शमी आदि की छाल फल वा सारादि, कत्था, कमरकस, गोन्द, शुंठी, त्वक् क्षार, अनार, सेब, अमरूद, चूना, तिन्दुक (गाभ), कांचनार, सिम्बल, मोचरस, केला, निम्ब, बिल्व, धुस्तूर, पाठा, माचिका, माजुफल, इन्द्रयवादि । कटु, तिक्त और कषाय द्रव्य प्रायः अतिसारघ्न होते हैं। कटु और तिक्त अग्नि दीपन करते हुए अतिसार को रोकते हैं, परन्तु कषाय केवल ग्राही और गुरु समझने चाहिएं। यह अन्त्र के जलांश का शोषण करके उन के क्षोभ (Irritation) को बन्द करते हैं।

(४) अरुचिघ्न—दाड़िमादि अम्ल पदार्थ, लवण, मरिचादि कटु, और कर्पूरादि सुगन्धित (Aromatic) द्रव्य ।

(५) अर्शोघ्न—(Curer of piles), जैसे—

(क) रक्तार्श (Bleeding Piles)—कुटज, इन्द्रयव, मूलक, रसांजन, कृष्ण तिल और मक्खन, गन्धक, नागकेशर, पद्मकाष्ठ, बला, यवासा, तक्र, अश्वत्थ, वटादि ।

(ख) वातकफ अर्श (Blind piles)—शूरण (जिमी कन्द), अपामार्ग, त्रिवृतादि रेचक द्रव्य, भल्लातक, हरीतकी, सौंफ, चित्रक, चव्य, तक्रादि। स्नूही दुग्ध, अर्कक्षीरादि लेपार्थ ।

(६) अश्मरीघ्न (Antilithic)—पाषाणभेद, गोखुरु, अर्जुन, दूर्वाकाशादि तृण, कूष्मांड, पुनर्नवा, वरुणादि । सब मूत्रल (Diuretic) द्रव्य ... में लाभ करते हैं ।

मदन ... यावदध ... शाक और अश्म

...से प्र...

(७) आनाहघ्न वा वातानुलोमक (Carminatives)--हिंगु, क्षार, शंखभस्म, यमानी, शतपुष्पादि (देखो नम्बर १)।

(८) आमपाचक (Digestive, Stimulant)-शुंठी, मुस्तक, अतिविषा, पर्पट, बिल्व, इन्द्रयव, यमानी, जीरक, धान्यकादि।

(९) आमवातघ्न (Antirheaumatic)-शुण्ठी, एरण्ड, अर्क, कुलत्थ, गुडूची, गोखुरू, पुनर्नवा, प्रसारणी, दशमूल (शूलघ्न) आदि।

(१०) आस्यरेचक वा लालास्रावी (Sialogogues)—दाड़िम, चिञ्चादि अम्लवर्ग, लवण, तुम्बरु, मदनादि वामक द्रव्य, पारद, सीसकादि धात्विक विष। यह लालाग्रन्थियों (Salivary Glands) को उत्तेजित कर के उन से लाला (थूक) निकालते हैं।

(११) आस्यशोषक वा लालारोधक (Anti-sialcgogues)— धुस्तूर, कुचला, अहिफेन, क्षार, सोडादि।

(१२) आक्षेपनिवारक (Anti-spasmodic)—धुस्तूर, अहिफेन, भंगा, कर्पूर, हिंगु, जातिफल, यमान्यादि। यह श्वास, कास, शूलादि में मांसपेशियों के अनुचित वेग वा संकोच प्रसार को बन्द कर उन्हें यथोचित कर्म में परिणत करते हैं।

(१३) उपदंशघ्न (Antisyphilitic)—पारद के योग रसकर्पूरादि, करवीरमूल, चोबचीनी, सारिवा; संखियादिरक्तशोधक द्रव्य।

(१४) कण्डूघ्न (Counter-irritant)—चक्रमर्द, कुष्ठ, गन्धक, कटुतैल, राजिका (लेपार्थ), चोक, कत्था, घृत, मखनादि।

(१५) कर्णरोगघ्न—तैल, मदिरा (Spirit), रसाञ्जन, धुस्तूरस्वरस, अहिफेन, गुलाब का इत्तर या निम्बतैल, सुदर्शन, पारिभद्रादि। यह क्वाथ, स्वरसादि द्रव रूप में डालने चाहिएं वा तैल में पकाकर वा मिला कर वा मदिरा में घोलकर (जैसे अहिफेन)।

(१६) कफघ्न—त्रिकटु आदि कटु [illegible] तथा तिक्त कुट[illegible]

(७२) हिक्कायां (For Hiccough)-श्वासकासघ्न द्रव्य।

(७३) रजःशोधक (Emmenogogue)--कलौंजी, कार्पासमूलत्वक्, अभया, मिश्रेया, हिंगु, एल्वादि।

(४७) प्रमेहघ्न (In urinary diseases)—त्रिफला, दार्वी, अर्जुन, गोक्षुर, शतावरी, आम्रत्वक्, वंग, प्रवाल आदि ।

(४८) प्लीहरोगे (For Enlarged Spleen)—रोहीतक, कुमारी, किराततिक्त, इन्द्रायण, अर्क, शरपुंखा, हपुषा, लोह (रक्तजननार्थ), आदि ।

(४९) मधुमेहे (For Diabetes Milletus)—बिम्बी, हरिद्रा, आम्रास्थि, जम्बु अस्थि, शिलाजतु, वंग, प्रवाल, कुंकुम, त्रिफला, यव, क्षुद्र धान्य, चणकादि ।

(५०) मूत्रकृच्छ्रे (For Dysuria)—सर्व मूत्रल द्रव्य ।

(५१) मूत्रल (Diuretic)—गोक्षुर, पुनर्नवा, कुशकासादि पंचतृणमूल, शिलाजतु, शोरक, इक्षु, शर्करा, एला, कूष्माण्ड, चन्दन, नारीकेलजल, दुरालभा, आमलकी ।

(५२) मूत्राघाते (For Retention of Urine)—मूत्रकृच्छ्रवत् ।

(५३) मेध्य (Nervine Tonic)—स्वर्ण, रजत, ब्राह्मी, मण्डूकपर्णी, शंखपुष्पी, बादाम, वचादि ।

(५४) रक्तपित्तघ्न—चन्दन, आमलकी, शर्करा, इक्षु, पटोल, पर्पट, निम्ब, नीलोत्पल, पद्मकाष्ठ, वट, बलाचतुष्टय, बालक, वासक, कुटज, भूनिम्बादि ।

(५५) रक्तस्तंभक (Styptic)—पंचवल्कल, खड़िया, सीसक, रसांजन, चन्दनादि तथा रक्तपित्तघ्न द्रव्य ।

(५६) रसायण (General Tonic)—हरीतकी, अष्टवर्ग, शिलाजतु, स्वर्णादि धातु, गुडूची, शतावरी, विदार्यादि मधुरवर्ग ।

(५७) रेचक (Purgatives)—इन्द्रायण, जयपाल, त्रिवृत्, आरग्वध, एरण्ड, कुटकी, दन्तीमूल, स्नूही, अर्क, सनामक्की, कंकुष्ठ, स्नूही दुग्ध, अर्कक्षारादि लेपार्थ ।

नवृत ... हरीतकी ... ल्पमात्रा में मृदुरेचन करते हैं ।

(६) अश्मरीघ्न (Antilithic)—पाषाणभेद, गोखुरु, अर्जुन, दूर्वाकामादि तृण, कूष्मांड, पुनर्नवा, वरुणादि । सब मूत्रल (Diuretic) द्रव्य ... में लाभ करते हैं ।

मदन ... यावदश ... शक और अश्व ...

ऐसे प्र ...

(६०) विषघ्न (For poisons) वामक और रेचक, द्रव्य, तथा अगदों वा प्रतिविषों (Antidotes) का प्रयोग—यथा शिरीष, अहिफेन, कुचला, पुनर्नवादि ।

(६१) वीर्यस्तम्भक—शतावरी, मूसली, कोकिलाक्ष, विदारी, कार्पिकच्छू, बलाबीज, अश्वगन्धा, अष्टवर्ग, शाल्मलीमूलादि ।

(६२) वीर्यरेचक—कामोत्तेजकवत् (नम्बर १८) ।

(६३) शूलघ्न (Anaesthetic)—अहिफेन, धुस्तूर, पारसीकयवानी, गुगुलु, कर्पूर, यवानी, अजमोदा, एरण्डतैल, त्रिवृतादि(रेचनार्थ) ।

(६४) शोथघ्न— पुनर्नवा, काकमाची, अपराजिता, गुगुल, दशमूल, एरण्डमूलादि ।

(६५) श्वासकासघ्न (For Asthma and Bronchitis)—त्रिकटु, तालीसपत्र, कुष्ठ, पुष्करमूल, शृंगी, भारंगी, कंटकार्यादि, विभीतक, मधुयष्टि, श्लेष्मातक, द्राक्षा, गाजवानादि ।

(६६) शिरोरोगघ्न—कट्फल, अर्कपत्र, करवीरादि, नस्यार्थ, कुचला, अहिफेन, धुस्तूर, भंगा, मुचकुन्दादि ।

(६७) स्तन्यशोधक—निम्ब, कुटकी, गुडूची, पाठा, रसाञ्जन, सारिवादि, तिक्त, रक्तशोधक, द्रव्य ।

(६८) स्तन्यवर्धक (Galactogogue)—कार्पासीबीज वा तैल, माष, अश्वगन्धा, विदारीकन्द, शालि, षष्टि, सुरा आदि ।

(६९) स्वेदल (Diaphoretic)—मुस्तक, अहिफेन, मरिच, तुलसी, वत्सनाभ, टकण, हिंगुलादि ।

(७०) स्वेदघ्न(Antidiaphoretic)—कुचला, गुडूची, दाड़िमादि अम्ल द्रव्य ।

(७१) हृदयरसायन (Cardiac or Heart Tonics)—अर्जुन, गाजवान, आमलकी, स्वर्ण, करवीरमूलादि ।

(७२) हिक्कायां (For Hiccough)—श्वासकासघ्न द्रव्य ।

(७३) रजःशोधक (Emmenogogue)—कलौंजी, कार्पासमूलत्वक्, अभया, मिश्रेया, हिंगु, एल्वादि ।

(७४) रजःप्रसादक—अशोकादि प्रदरघ्नवत (नं॰ ४६)

इन के अतिरिक्त अनेक वर्ग हैं, जो संहिताग्रन्थों में वर्णित हैं, वहाँ देख लें, यथा पुरीषरंजक, पुरीषविरजनीय, मूत्रविरजनीय, स्नेहोपगादि। यहां द्रव्यों का नाममात्र दिया गया है, उपयोग करते समय उन का सविस्तर वर्णन पुस्तक में देख लें। इन संस्कृत नामों के पृष्ठ का उल्लेख संस्कृतसूची में देखें।

१७. अंगों पर द्रव्यों का प्रभाव।

ऊपरोक्त वर्गों में दिए हुए द्रव्य इस बात को स्पष्ट करते हैं कि अमुक द्रव्य किस रोग में लाभ करता है, परन्तु यह लाभ शरीर के अंग विशेष पर प्रभाव से प्राप्त होता है, जैसे मूत्रल द्रव्य वृक्क, मूत्राशयादि मूत्रयन्त्रों पर, हृद्य द्रव्य हृदय पर, केश्य द्रव्य केशभूमि पर, रक्तशोधक रक्त पर, इत्यादि। तथापि निम्नलिखित सूची में इस भाव को स्थूल रूप से प्रसिद्ध २ अंगों के विषय में प्रकट किया जाता है। यह समस्त भाव चरक, सुश्रुतादि चिकित्सा ग्रन्थों में मिल जाते हैं। छात्र इन ग्रन्थों में रोगों की चिकित्सा को पढ़ते हुए स्वयं नोट करते जावें, कि अमुक अध्याय में वर्णित द्रव्य अमुक अंग विशेष पर प्रभाव डालते हैं, जैसे यकृत् के रोगों की चिकित्सा में जो द्रव्य वर्णित हैं, वह यकृत् के लिए उपयोगी हैं। वर्तमान काल की शैली यह है कि द्रव्यों के प्रभाव अंगों पर जरूर दिखाया जावें। कुछ हद तक यह बात लाभकारी है, परन्तु द्रव्य नानात्मक महाभूतों, गुणों और रसों का समुच्चय होने के कारण नानात्मक शरीर पर आयु, देश, काल, मात्रा, अनुपानादि से भिन्न २ प्रभाव डाल सकता है। एवं अन्य अंगों वा धातुओं के लिए उपयोगी द्रव्य स्वयं सोचलें वा पिछले वर्गों (अंक १६) में देखें।

१८. युक्ति (द्रव्यों की व्यवहारविधि)।

(Modes of Administration of Drugs).

द्रव्यों के व्यवहार करने की विधि का नाम युक्ति है:—

मात्राकालाश्रया युक्तिः सिद्धिर्युक्तौ प्रतिष्ठिता।
तिष्ठत्युपरि युक्तिज्ञो द्रव्यज्ञानवतां सदा॥

युक्ति (योजनाविधि) मात्रा और काल के आश्रित है, वैद्य की सिद्धि युक्ति में स्थित है। युक्ति जानने वाला वैद्य द्रव्यज्ञानियों में उत्तम समझा जाता है।

बुद्धिमान् वैद्य थोड़े से द्रव्य अपने पास रखकर नाना रोगों पर भिन्न २ अनुपानों से प्रयोग कर के लाभ उठा सकता है, यथा शिलाजतु, हृदय, वृक्क, यकृदादि रोगों में अर्जुनादि काथों से गुण कर सकती है।

योजनाप्रकार—द्रव्य निम्नलिखित रूपों में व्यवहार हो सकते हैं:—

(१) चूर्ण (Powders), (२) काथ (Decoctions), (३) फाण्ट (Infusions), (४) आसवारिष्ट (Tinctures), (५) लेह, मोदकादि (Confections), (६) कल्क, (७) स्वरस (Juice),(८) लेप (Plasters), (९) तैल, (१०) घृत, (११) क्षार, (१२) नस्य, (१३) धूम्रादि। द्रव्यों का शरीर में प्रवेश प्रायः मुख द्वारा कराया जाता है, परन्तु मुख के अतिरिक्त रोगानुसार गुदा, योनि, शिश्न, कर्ण, नेत्र, नासा, त्वचादि द्वारा भी होता है। आजकल पश्चिमी विज्ञान में अन्य सब विधियों की अपेक्षा सूची द्वारा प्रवेश (Injection) को उन्नत तथा चलित किया जा रहा है।

चूर्णादि की निर्माणविधि चिकित्सा ग्रन्थों में देखें।

१९. मात्रा (Dose)

किसी रोगविशेष में पुरुष विशेष की अपेक्षा जो तोल किसी द्रव्य का प्रयोग किया जावे, वह उस द्रव्य की मात्रा (Dose) कहाती है, जैसे अभया चूर्ण ३ माषे, अहिफेन ½ रक्ति, शिलाजतु ४ रक्ति, इत्यादि। मात्रा सब पुरुषों तथा सब रोगों में वा सब ऋतुओं और आयु आदि में एक जैसी नहीं होती। वह बदल जाया करती है। जैसा कि—

मात्राया नास्त्यवस्थानं दोषमग्निं बलं वयः।
व्याधिं द्रव्यञ्च कोष्ठञ्च वीक्ष्य मात्रां प्रयोजयेत्॥
(चक्र० ज्वरचिकित्सा)

मात्रा का कोई नियत प्रमाण नहीं हो सकता, प्रत्युत वह दोष, अग्नि (पाचनशक्ति), शारीरिक बल, आयु, रोग, द्रव्य (औषध), कोष्ठ (उदरादि) देखकर वैद्य (द्रव्यों की) मात्रा प्रयोग करे।

श्री चक्रपाणि ने यह बड़ा सुन्दर भाव प्रकट किया है, तथापि मात्रा निर्धारित करनेके बिना कार्य चलना कठिन है। जो मात्राएं प्राचीन ग्रन्थों

में दी गई हैं, वह इस समय के अनुसार अत्यधिक हैं। प्राचीन समय में लोगों की आयु, शक्ति, सत्त्व, शरीरप्रमाणादि आज की अपेक्षा बहुत बड़ा हुआ करता था, अतः मात्रा भी अधिक देनी पड़ती थी। आज कल उसकी आधी वा चतुर्थ भाग पर्याप्त समझें।

शुद्ध कोष्ठ में अल्प मात्रा भी बहुत काम करती है, अशुद्ध कोष्ठ में द्रव्य निष्क्रिय पड़ा रहता है। कुछ द्रव्य बच्चों पर बड़ों की अपेक्षा अधिक प्रभाव डालते हैं, जैसे अहिफेन, जो बच्चों को सावधानी से देनी चाहिये। संखिया बच्चे अधिक सह सकते हैं, परन्तु पुरुष कम।

अभयादि मृदु द्रव्यों के चूर्णों की मात्रा प्रायः २, ४ माषे, क्वाथ ५ तो० से १० तो० तक, फाण्ट १० से १५ तो० तक, स्नेह १-२ तो०, अवलेह १-२ तो०, आसवारिष्ट १-३ तो० इत्यादि। मरिच, जातिफल, पिप्पली, शुण्ठी, चित्रकादि तीक्ष्ण द्रव्य (चूर्ण) प्रायः ४ रत्ति से १ माषा तक एक काल के लिए। कस्तूरी, अहिफेन, कुचला, भस्मादि प्रायः ¼ से १ रत्ति तक। ताम्र, संखिया, कुचला, धुस्तूरादि विषों की मात्रा बड़ी सावधानी से दें। उनकी मात्राएं पुस्तक में यथास्थल देखें।

आयु के अनुसार मात्रा का ध्यान रखें। पूर्ण मात्रा प्रायः १६ वर्ष वा अधिक की आयु में दें, उस से कम आयु में प्रतिवर्ष 1/16 भाग कम यथा-क्रम, जैसे, १ वर्ष में पूर्ण मात्रा का 1/16 भाग, २ वर्ष में ⅛ भाग, ४ वर्ष में ¼ भाग, ८ वर्ष में ½ भाग, १२ वर्ष में ¾ भाग इत्यादि। इस क्रम का ध्यान रखें। वृद्धावस्था में (५०-६० वर्षसे ऊपर), दुर्बल, स्त्री, व्याधिकर्षितादि रोगियों को मात्रा थोड़ी दें। कास, श्वास, हिक्का, मुखशोष, तृष्णादि औषध पुनः २ दें। ज्वररोध के लिए ज्वर के नियत काल से ३, ४ घण्टे पूर्व लोगों की प्रकृति, सात्म्यतादि का भी ध्यान रहे, जैसे अहिफेनसात्म्य पुरुष को अहिफेन की अधिक मात्रा देनी होगी। रेचक द्रव्य सात्म्य होने पर वा अल्प मात्रा में क्रिया नहीं कर सकते। गोली, चक्रिकादि पीस कर और मधु आदि अनुपान से मिलाकर दें, तो अधिक लाभ होगा। सम्पूर्ण गोली उदर में नहीं घुलेगी वा देर से घुलेगी। तिक्त रस के कारण वा अन्य किसी भाव से गोली साबित देनी हो, तो कोई हानि नहीं। कोष्ण क्वाथ वा फाण्ट आमाशय में शीघ्र लीन होने से अधिक गुण करते हैं, परन्तु जहां रोगी को उत्क्लेश हो, वहां तिक्त क्वाथ अरुचिकर होने से वान्ति लाते हैं। ऐसी अवस्था में क्वाथ न दें वा अल्प दें वा गोली लेहादि दें।

अनुपान औषध को शीघ्र पचाने के लिए तथा सद्यः गुण करने में सहायक हुआ करते हैं। अनुपान यथारोग होना चाहिए, जैसे अर्जुनकाथ हृदय-रोगों में, दुग्ध, मलाई, रबड़ी, शतावरी रसादि, वाजिकरणार्थ, गुडूची, कुटकी आदि काथ वा स्वरस ज्वर में, अनारादि का रस अतिसार में, कार्पासमूलकाथ रजःकृच्छ्र में। एवं मात्रा और अनुपान का बहुत ध्यान रखना चाहिए।

आसवारिष्ट, मदिरादि, जिन में मद्य (Alcohol) हो, खाली पेट न दें, क्योंकि वह आमाशय की श्लेष्मिक कला को हानि पहुंचाते हैं और उत्क्लेश आदि करते हैं। इन्हें भोजन के एक घण्टा बाद दें, तो अच्छा है।

२०. पर्याय (Syn onyms)

आयुर्वैदिक निघण्टुग्रन्थों में द्रव्यों का गुण वर्णन करने से पूर्व ग्रन्थकारों की यह शैली रही है, कि द्रव्यके सब नाम दे दिए जावें। नामों की अधिकता से कहीं २ योगों के बनाने में बाधा पड़ती है, जैसे अमृता (गिलोय, हरीतकी आदि), खर्जूर (खजूर, चान्दी), जया (जयन्ती, अग्निमन्थ, भंगा), इत्यादि। परन्तु यह कठिनता प्रायः प्रसंग से दूर हो जाती है। पर्यायों से निम्नलिखित भाव प्रकट होते हैं:—

(१) गुणप्रकाशक पर्याय—यथा अभया (भयरहित), उन्मत्तकः (धुस्तूर, उन्मादक), ऊषण (मरिच, गरम होने से), चक्रमर्द (चक्राकार दद्रुमंडल का मर्दन करने वाला), बला (बलवर्धक), इत्यादि।

(२) आकृतिबोधक—श्रीफल (सुन्दर फल), काकजंघा (काक-तुल्य जंघा वा कांड वाला), कुम्भबीज (घड़े के तुल्य फल वाला अरिष्ट), हलिनी (हलाकार वक्र कांड वाला), कंटकारी (कांटेवाली), नल (नलाकार), वत्सनाभादि इन नामों से बहुत द्रव्य पहचाने जासकते हैं, इत्यादि।

(३) उत्पत्तिबोधक—(क) देशप्रकाशक—मागधी (मगधदेशजा पिप्पली), काश्मरी (काश्मीरजा गंभारी), (ख) उत्पत्तिसमयादिज्ञापक—चिरपुष्प (वकुल), वासन्ती, शिलाजतु आदि।

(४) रूढि संज्ञा—(प्रयोगसिद्ध)—गुडूची, चन्दन, गुग्गुल, कस्तूरी यवादि। यह नाम ऐसे हैं, जो प्रायः सर्वत्र प्रसिद्ध हैं, परन्तु उनका अर्थ कुछ नहीं हो सकता।

(५) पार्वतीय संज्ञा—क्षीतक, गरगरक, सैरेयकादि। अब तक पर्वतों में अनेक वनस्पतियां मिलती हैं, जो वहां पार्वतीय नामों से प्रसिद्ध हैं। यदि उन्हें व्यवहार में लाया जावे, तो वही नाम प्रचलित रखने पड़ेंगे। एवं

प्रत्येक देश में नाना द्रव्य हैं। जो वहां ही कई देशीय नामों से प्रसिद्ध हैं, परन्तु अब उन्हें कोई ग्रान्थिक नाम देना कठिन है।

२१. मान (Wheigts)

न मानेन विना युक्तिर्द्रव्याणां जायते क्वचित् ।
अतः प्रयोगकार्यार्थं मानमत्रोच्यते मया । (भैषज्य० र०)

अर्थ—मान (तोल) के बिना द्रव्यों का प्रयोग नहीं हो सकता, अतः प्रयोग करने के लिए द्रव्यों का मान कहा जाता है।

आयुर्वेद में तोल का विषय बड़ा विवादास्पद है। प्रायः दो मत हैं, (१) सुश्रुत, (२) चरक। चरक का मान सुश्रुत से दुगना है। यदि चरक का पल ८ तोले का है, तो सुश्रुत का ४ तोले का होगा। चरक का एक कर्ष २ तोले का होगा, तो सुश्रुत का १ तोले का। इस प्रकार सर्वत्र समझ लें। भारतीय तोलों की इकाई रत्ती वा तोला समझनी चाहिए। आज कल ८ रत्ती का एक माषा और १२ माषे का एक तोला समझा जाता है, ८० तोले का १ सेर। रत्ती को ४ धान वा ८ चावलों के बराबर जानें। ६ सरसों से १ यव (जौ) और ३ जौ से १ रत्ती बनती है। माषा शास्त्रों में छः प्रकार का है:—

माषस्तु पंचभिः षड्भिस्तथा सप्तभिरष्टभिः ।
दशभिर्द्वादशभिश्च रक्तिभिः षड्विधो मतः ।
चरकस्य तु माषस्तु दशगुंजाभिरेव च ।
चरकस्य तु चार्द्धेन सुश्रुतस्य तु माषकः ॥ (भै० र०)

माषा ५, ६, ७, ८, १० और १२ रत्तियों से छः प्रकार का है। चरक का माषा १० रत्ती का, और सुश्रुत का चरक से आधा होता है।

शाण (धरण) ४ माषे का, १ टंक कोल वा तोला २ शाण का होता है। २ कोल वा तोलों का एक कर्ष, ४ कर्षों का १ पल, २ पल की १ प्रसृति, २ प्रसृति वा ४ पलों का एक कुडव, २ कुडवों का १ शराव (सेर), २ शरावों का १ प्रस्थ, ४ प्रस्थों का १ आढ़क, ४ आढ़कों का १ द्रोण, ४ द्रोणों की १ गोणी (वा द्रोणी), जो १२८ शराव (लगभग २½मन) की होगी, ४ गोणियों की १ खारी। तुला १०० पल की होती है।

अब प्रश्न यह है कि पल कितना है। चरक के अनुसार ८ तोलों का और सुश्रुत के अनुसार ४ तोलों का। मद्रास में दुकानों पर पल का मान (वाट) होता है, उस के अनुसार व्यवहार चलता है, यथा २ पल शर्करा, ४ पल घी आदि। यह पल ४ तोले (वा लगभग १छटांक) का है, जो सुश्रुत का

समझना चाहिए। बंगाल में वैद्य औषध बनाते समय जहां पल मान हो, गोल मोल भाव से ½ पाव (१० तोले) डाल देते हैं। यदि यह ठीक मान लें, तो कुडव ½ सेर, शराव १ सेर, प्रस्थ २ सेर, आढ़क ८ सेर, द्रोण ३२ सेर, ४ द्रोणों (१२८ सेर) की १ गोणी (बोरी) जोकि आज कल २½ मन की प्रसिद्ध है। ४ गोणियों की एक खारी होगी। तुला १२½ सेर की।

यदि हम बंगाली मान के अनुसार पल को ½ पाव (१० तोल) मान लें, तो ऊपरोक्त रीति से व्यवहार में बहुत सुविधा हो सकती है और प्रचलित तोलों यथासेर, पाव आदि से काम चल सकता है। इस में सन्देह नहीं, कि पल शास्त्रों में ८ तोले का है, तदपि उसे १० तोले का मान कर ½ पाव समझने में हर्ज नहीं। मद्रासी पल १ छटांग का हो सकता है।

आज कल विदेशी तोल भी बहुत प्रसिद्ध हो रहे हैं। शीशी, बोतलादि सब उसके अनुसार मिलते हैं, तरल द्रव्यों की मात्रा वैद्यों को भी औंसों में बतानी पड़ती है, जैसे द्राक्षारिष्ट ½ औंस (½ oz.) भोजन के १ घंटा बाद।

नवीन तोल यह हैं:—

१ ग्रेन (One grain)	= ½ रक्ति (½ Ratti)	
६० ग्रेन (60 Grains)	= १ ड्राम (1 Drams)	= ३¾ माषा।
८ ड्राम (Drams)	= १ औंस (1 Ounce)	= २½ तोला।
१६ औंस (16 Ounces.)	= १ पौंड (1 Pound)	= ½ सेर (लगभग)

वस्तुतः ४३७.५ ग्रेन का १ औंस होता है। तरल द्रव्यों के लिए यह मान है:—

१ बिन्दु (1 Minim)	= १ ग्रेन (लगभग ½ रक्ति)
६० बिन्दु (60 Minims)	= १ तरल ड्राम (1 Fluid Dram)
८ तरल ड्राम (8 F. Drams)	= १ तरल औंस (1 F. Oz.)
२० तरल औंस (20 F. Oz.)	= १ पाइंट (२½ पाव लगभग)
८ पाइंट (8 pints)	= १ गेलन (1 gallon)=५ सेर लगभग

एवं हमें यह मान ध्यान में रखने चाहिऐं। हम भी अहिफेनासवे

प्रत्येक देश में नाना द्रव्य हैं। जो वहां ही कई देशीय नामों से प्रसिद्ध हैं, परन्तु अब उन्हें कोई ग्रान्थिक नाम देना कठिन है।

२१. मान (Wheigts)

न मानेन विना युक्तिर्द्रव्याणां जायते क्वचित् ।
अतः प्रयोगकार्यार्थं मानमत्रोच्यते मया । (भैषज्य० र०)

अर्थ—मान (तोल) के बिना द्रव्यों का प्रयोग नहीं हो सकता, अतः प्रयोग करने के लिए द्रव्यों का मान कहा जाता है।

आयुर्वेद में तोल का विषय बड़ा विवादास्पद है। प्रायः दो मत हैं, (१) सुश्रुत, (२) चरक। चरक का मान सुश्रुत से दुगना है। यदि चरक का पल ८ तोले का है, तो सुश्रुत का ४ तोले का होगा। चरक का एक कर्ष २ तोले का होगा, तो सुश्रुत का १ तोले का। इस प्रकार सर्वत्र समझ लें। भारतीय तोलों की इकाई रत्ती वा तोला समझनी चाहिए। आज कल ८ रत्ती का एक माषा और १२ माषे का एक तोला समझा जाता है, ८० तोले का १ सेर। रत्ती को ४ धान वा ८ चावलों के बराबर जानें। ६ सरसों से १ यव (जौ) और ३ जौ से १ रत्ती बनती है। माषा शास्त्रों में छः प्रकार का है:—

माषस्तु पंचभिः षड्भिस्तथा सप्तभिरष्टभिः ।
दशभिर्द्वादशभिश्च रक्तिभिः षड्विधो मतः ।
चरकस्य तु माषस्तु दशगुंजाभिरेव च ।
चरकस्य तु चार्द्धेन सुश्रुतस्य तु माषकः ॥ (भै० र०)

माषा ५, ६, ७, ८, १० और १२ रत्तियों से छः प्रकार का है। चरक का माषा १० रत्ती का, और सुश्रुत का चरक से आधा होता है।

शाण (धरण) ४ माषे का, १ टंक कोल वा तोला २ शाण का होता है। २ कोल वा तोलों का एक कर्ष, ४ कर्षों का १ पल, २ पल की १ प्रसृति, २ प्रसृति वा ४ पलों का एक कुडव, २ कुडवों का १ शराव (सेर), २ शरावों का १ प्रस्थ, ४ प्रस्थों का १ आढ़क, ४ आढ़कों का १ द्रोण, ४ द्रोणों की १ गोणी (वा द्रोणी), जो १२८ शराव (लगभग २३⁄४मन) की होगी, ४ गोणियों की १ खारी। तुला १०० पल की होती है।

अब प्रश्न यह है कि पल कितना है। चरक के अनुसार ८ तोलों का और सुश्रुत के अनुसार ४ तोलों का। मद्रास में दुकानों पर पल का मान (वाट) होता है, उस के अनुसार व्यवहार चलता है, यथा २ पल शर्करा, ४ पल घी आदि। यह पल ४ तोले (वा लगभग १छटांक) का है, जो सुश्रुत का

समझना चाहिए। बंगाल में वैद्य औषध बनाते समय जहां पल मान हो, गोल मोल भाव से ½ पाव (१० तोले) डाल देते हैं। यदि यह ठीक मान लें, तो कुडव ½ सेर, शराव १ सेर, प्रस्थ २ सेर, आढ़क ८ सेर, द्रोण ३२ सेर, ४ द्रोणों (१२८ सेर) की १ गोणी (बोरी) जोकि आज कल ३½ मन की प्रसिद्ध है। ४ गोणियों की एक खारी होगी। तुला १२½ सेर की।

यदि हम बंगाली मान के अनुसार पल को ½ पाव (१० तोल) मान लें, तो ऊपरोक्त रीति से व्यवहार में बहुत सुविधा हो सकती है और प्रचलित तोलों यथासेर, पाव आदि से काम चल सकता है। इस में सन्देह नहीं, कि पल शास्त्रों में ८ तोले का है, तदपि उसे १० तोले का मान कर ½ पाव समझने में हर्ज नहीं। मद्रासी पल १ छटांग का हो सकता है।

आज कल विदेशी तोल भी बहुत प्रसिद्ध हो रहे हैं। शीशी, बोतलादि सब उसके अनुसार मिलते हैं, तरल द्रव्यों की मात्रा वैद्यों को भी औंसों में बतानी पड़ती है, जैसे द्राक्षारिष्ट ½ औंस (½ oz.) भोजन के १ घंटा बाद।

नवीन तोल यह हैं:—

१ ग्रेन (One grain) = ½ रत्ति (½ Ratti)
६० ग्रेन (60 Grains) = १ ड्राम (1 Drams) = ३¾ माषा।
८ ड्राम (Drams) = १ औंस (1 Ounce) = २½ तोला।
१६ औंस (16 Ounces.)= १ पौंड (1 Pound) = ½ सेर (लगभग)

वस्तुतः ४३७.५ ग्रेन का १ औंस होता है। तरल द्रव्यों के लिए यह मान है:—

१ बिन्दु (1 Minim) = १ ग्रेन (लगभग ½ रत्ति)
६० बिन्दु (60 Minims) = १ तरल ड्राम (1 Fluid Dram)
८ तरल ड्राम (8 F. Drams) = १ तरल औंस (1 F. Oz.)
२० तरल औंस (20 F. Oz.) = १ पाइंट (२½ पाव लगभग)
८ पाइंट (8 pints) = १ गेलन (1 gallon)=५ सेर लगभग

एवं हमें यह मान ध्यान में रखने चाहिऐं। हम भी अहिफेनासवे

१ बिन्दु (m. 1), कपूरासव ५ बिन्दु (m. 5), कनकासाव १ ड्राम, द्राक्षारिष्ट ½ औंस (½oz.) आदि मान व्यवहार कर सकते हैं।

२२. अन्तिम वचन।

मैंने इस भूमिका में कुछ अन्य उपयोगी बातें भी देनी थीं, तथापि पंजाब प्रान्तीय वैद्यसम्मेलन के निकट होने से समय न पाकर छोड़ दी हैं, दूसरे भाग की भूमिका में दे दूंगा।

भूमिका समाप्त करने से पूर्व मेरा कृत्य है, कि मैं पं० भगवद्दत्त जी, बी० ए०, का धन्यवाद करूं, जिन्होंने मुझे स्थल २ पर ग्रन्थ को उपयोगी बनाने का उपदेश किया है। श्री मेहरचन्द लक्ष्मणदास का भी ऋणी हूं, जिन्होंने बहुत धन व्यय करके इस पुस्तक को प्रकाशित किया है, अन्यथा धनाभाव से इसका छपाना कठिक था।

इस ग्रन्थ के मूलपाठ को पढ़ने के लिए श्री त्रिकम जी जादव जी आयुर्वेदाचार्य बम्बे वाले ने अपना हस्तलिखित ग्रन्थ भेजकर मेरी बड़ी सहायता की है, जिस के लिए उन्हें हार्दिक धन्यवाद देता हूं।

पुस्तक के निर्माण में भावप्रकाश, मदनपाल, शालिग्राम, धन्वन्तरि आदि निघण्टुओं से बड़ी सहायता मिली है, तदतिरिक्त श्रीवासुकृत इंडियन मैडिसिनल प्लांटस (Indian Medicinal Plants) से अनेक भाव लिए गए हैं, जो पाठकों के लिए बहुत उपयोगी हैं। इस पुस्तक के कर्त्ता का मैं अति ऋणी हूं। एवं श्री के० एस० नादकर्णी का भी जिन्होंने इंडियन मैटीरिया मैडिका (Indian Materia Medica) नामक पुस्तक थोड़े दिन हुए प्रकाशित किया है।

पुस्तक के सम्पादन में मैंने श्लोकों को बदलने वा ठीक करने का प्रयत्न नहीं किया, क्योंकि यह वैज्ञानिक शैली के विरुद्ध है। जैसा पाठ मिला, वैसे का वैसा ही छपवा दिया गया है। उत्तम पाठ मूल में और शेष पाठान्त टिप्पणी में दिए गए हैं।

पुस्तक के छपने में कई अशुद्धियां रह गई हैं; जो प्रायः हुआ करती हैं। उनके लिए क्षमा चाहता हूं। द्रव्यों की आकृति वा गुण के वर्णन में अज्ञानवश कहीं अशुद्धि हो, तो पाठक महाशय मुझे सूचित करदें, ताकि दूसरे संस्करण में ठीक कर दूं।

दयानन्द आयुर्वैदिक कालेज,
लाहौर।
तिथि २० मार्च १९२८

आयुर्वेदहितेच्छुक
सुरेन्द्र मोहन, बि० ए०,
आयुर्वेदाचार्य।

ॐ

कैयदेव-निघण्टुः

वर्णक्रमसूची (Alphabetical Index)

१. संस्कृतनामानि ।

द्रव्याङ्काः	द्रव्यानामानि	पृष्ठाङ्काः
	अ	
४५	अक्षः	४६
६८	अक्षोटकः	७५
२४५	अगस्तिकः	२१३
२६७	अगरुः (अगुरुः)	२३२
४३७	अग्निः	३७४
४	अग्निमन्थः	७
२४२	अङ्कोटः	२११
२२७	अङ्गारवृक्षः	१६६
४४७	अजगन्धा	३८२
४४४	अजमोदा	३८०
३६७	अतिबला	३४२
३२७	अतिमुक्ता	२८७
४१७	अतिविषा	३५७
३८७	अधःशल्यः	३३४
३७३	अनन्ता	३१९
१६६	अपराजिता	१४७
३८७	अपामार्गः	३३४
४२	अभया	४५
३७२	अमरवल्ली	३१८
१६२	अम्बष्टकी	१४४
१९९	अम्बष्ठा	१७४
५९	अम्लवेतसः ?	६५
४२३	अम्बुप्रसादनम्	३६२
६५	अम्ला	७३
३४४	अम्लातकः ?	२६७
६५	अम्लिका	७३
४	अरंणिः	७
४१३	अरण्यहरिद्रा	३५४
१०	अरलुः	१०
२१५	अरिमेदः ?	१८७
२५८	अरिष्टकः	२२४
३४७	अर्कः	२६८
३५६	अर्जकः	३०७
२१३	अर्जुनः	१८५
४७१	अर्शोघ्नः	४००
४७५	अलम्बुषा	४०३
३४८	अलर्कः	३६६
३३३	अशोकः	२९१
३६६	अश्मन्तकः	३१५
४२७	अश्मभेदः	३६५
२२२	अश्वकर्णः	१६२
३६३	अश्वगन्धा	३२६
८४	अश्वत्थः	८६
३४९	अश्वमारकः	३०१
..	अष्टवर्गः ?	१८

यह (?) चिह्न सन्दिग्ध वा अनिश्चित द्रव्यों को प्रकट करता है ।

द्रव्याङ्काः	द्रव्यनामानि	पृष्ठाङ्काः
२०९	असनः	१८१
४७२	अस्थिसंहारः	४०१
	आ	
३७२	आकाशवल्ली	३१८
४२५	आच्छादनफला	३६४
२	आटरूषः	४
१३२	आत्मगुप्ता	१२८
४३	आमलकी	४७
६१	आम्रः	६२
४१४	आम्रगन्धिहरिद्रा	३५४
..	आम्रचूर्णम्	६९
७९	आम्रातकः	८४
२४६	आरग्वधः	२१५
४२६	आरामशीतला ?	३६७
७०	आरुकम् ?	७७
८९	आर्त्तगलः ?	१०१
४३१	आर्द्रकम्	३६८
४३०	आर्द्रनागरम्	३६८
..	आलुकभेदाः	४०६
	इ	
३२	इक्षुः	३१
४०७	इक्षुरकः	३५०
..	इक्षुविकाराः	३३
२२७	इङ्गुदः	१९३
२३४	इन्द्रयवः	२०२
३८५	इन्द्रवारुणी	३३२
२१५	इरिमेदः ?	१८७
	उ	
२०५	उत्तमारणी ?	१८०
२६	उत्तानपत्रकः	२५
३७३	उत्पलसारिवा	३१९
८३	उदुम्बरः	८७
३५२	उन्मत्तकः	३०३
४४०	उपकुञ्चिका ?	३७७
१५६	उपोदिका	१४०
४७१	उल्लः	४००
२९७	उशीरम्	२६२
	ऋ	
१९	ऋद्धिः ?	२१
१८	ऋषभकः ?	२०
	ए	
४६०	एरका	३९२
२६	एरण्डः	२५
१७१	एरगजः	१५१
२८१	एलवालुकम् ?	२५०
२८८-९	एलाद्वयम्	२५५-६
१०६	एलानम् ?	१०९
..	एलीयकः	४११
	ऐ	
३८५	ऐन्द्रवारुणी	३३२
	ओ	
३४१	ओण्ड्रपुष्पः	२९६
	औ	
४७१	औल्लः	४००
..	औद्दालकमधु	४०
	क	
२१३	ककुभः	१८५
३९७	कङ्कतिका	३४२
३८४	कङ्कुष्ठम् ?	३३०
२८४	कङ्कोलम् ?	२५२
१७७	कङ्गुणिका	१५६
२२८	कटभी	१९७
२२९	कटम्भरः	१९७
११४	कटुतुम्बी	११६

द्रव्याङ्काः	द्रव्यनामानि	पृष्ठाङ्काः
४१८	कटुरोहिणी	३५८
४२२	कट्फलः	३६१
४१८	कट्वी	३५८
४३३	कणा	३७०
२५३	कण्टकरञ्जः	२२१
११	कण्टकारी (क्षुद्रा)	१२
..	कण्टकारीद्वयम्	१२
९२	कण्टकीफलः	९३
..	कण्टकपञ्चमूलम्	१८
४२३	कतकम्	३६२
९३	कदम्बः (फलम्	१०१
२५०	कदम्बः (वृक्षः)	२१९
३६७	कदम्बिका	३१५
५०	कदली	५७
..	कदलीभेदाः	५९
३५२	कनकः	३०३
३८३	कनकक्षीरी	३२९
२१७	कन्थारी	१८८
८०	कपित्थः	८५
८१	कपित्थपत्रिका	८६
३१५	कमलम्	२७६
२५१	करञ्जः	२१९
२५२	करञ्जिका	२५०
६७	करमर्द्दिका	७५
३४९	करवीरः (श्वेतः)	३०१
६९	करीरः	७६
९९	कर्कटम् ?	१०३
४२०	कर्कटशृंगी	३६०
११५	कर्कटी	११७
६४	कर्कन्धुः	७२
३०५	कर्चूरः	२६६
३२५	कर्णिका	२८५
३३६	कर्णिकारः	२९२
२६९	कर्पूरः	२३४
६१	कर्मरङ्गम्	६८
१४८	कलायम्	१३७
२३३	कलिङ्गः	२०३
४७९	कसेरुकम्	४०५
२७०	कस्तूरी	२३८
..	कस्तूरीपरीक्षा	२४०
३२०	कह्लारम्	२८१
१७५	काकजंघा	१५४
१७६	काकनासा	१५५
१७४	काकमाची	१५३
८८	काकोदुम्बरिका	९२
१३	काकोली	१९
२४४	काञ्चनारः	२१३
२४७	काम्पिल्लकः	२१६
१६३	कारफलम्	१४५
६३	कारस्करः	८२
४४०	कारवी	३७७
१२८	कारवेल्लकम्	१२५
४२४	कार्पासी	३६३
४३९	कालाजाजी	३७३
११२	कालिङ्गकम्	११५
१४१	कालशाकम्	१३२
६	काष्ठपाटला	९
१६४	कासमर्दः	१४५
४५७	काशः (कासः)	३९१
५	काश्मरी	८
२२५	किंकिणी	१८५
३३५	किंकिरातः	२९३
२१८	किंशुकः	१८०
३६४	किराततिक्तः	३१२

द्रव्याङ्काः	द्रव्यनामानि	पृष्ठाङ्काः
२७३	कुङ्कुमम्	२४३
२३२	कुटजः	२०२
२६४	कुटंनटम्	२६४
१५२	कुठिञ्जरः ?	१३९
३५६	कुठेरकः	३०७
३६६	कुद्दालकः	३१५
४६५	कुन्तलवर्द्धनः	३६५
१५३	कुन्तलिका ?	१३४
३३४	कुन्दः	२९५
३००	कुन्दरुः	२६४
३२५	कुब्जकः	२८५
४६४	कुमारी	४१०
३१८	कुमुदम्	२७४
..	कुमुदनालम्	२८२
..	कुमुदिनी	२८०
१५८	कुरण्टी	१४०
..	कुरण्डिका	१४०
..	कुलिञ्जनम्	११०
४५८	कुशः	३६१
१४४	कुसुम्भशाकम्	१३४
४४३	कुस्तुम्बरुः	३७४
२७४	कुष्ठम्	२४८
११०	कूष्माण्डम्	११३
४२८	कृमिघ्नम्	३३६
४३४	कृष्णजीरकम्	३७६
३५४	कृष्णतुलसी	३०५
..	कृष्णबीजम्	१७७
३७४	कृष्णसारिवा	३२०
४३२	कृष्णा	३७०
१५७	कृष्णार्जकः	३०७
३२६	केतकी	२८६
४७६	केमुकः	४०३
४७६	केम्बुकः	४०३
४८४	केलूटम्	४०७
२७३	केशरम्	२४४
४६५	केशराजः	३६६
३६४	कैरातकः	३१३
२६४	कैरातचन्दनम्	२२४
२८४	कैवर्तमुस्तकः	२५४
४०७	कोकिलाक्षः	३५०
२४३	कोविदारः	२१२
४३५	कोलवल्ली	३७३
१३२	कोशशिम्बी	१२७
७१	कोशाम्रः	७८
१०९	क्रमुकम्	१११
२१८	क्षारश्रेष्ठः	१८०
१४	क्षीरकाकोली	१४
७२	क्षीरनी	७९
२०१	क्षीरमोरटः	१७६
४६७	क्षीरविदारी	३९७
१६९	क्षीरावी	१४१
..	क्षीरीवृक्षाः	८०
३५६	क्षुद्रतुलसी	३०७
३७८	क्षुद्रदन्ती	३२३
४१०	क्षेत्रपर्पटः	३५२
..	क्षौद्रम्	३४
	ख	
५१	खर्जूरः	५४
२१४	खदिरः	१८६
	ग	
४६०	गजकर्णी	४०७
४३६	गजपिप्पली ?	३७२

द्रव्याङ्काः	द्रव्यनामानि	पृष्ठाङ्काः
४	गणिकारिका	७
४५६	गण्डदूर्वा	३९०
१३७	गन्धनाकुली ?	१७२
२३२	गन्धप्रियंगुः ?	२५८
३०६	गन्धशठी	२६६
३३३	गन्धाढ्या	३४३
५	गम्भारी	८
३८५	गवाक्षी	३३२
३९८	गांगेरुकी ?	३४२
४९३	गाञ्जा	४०३
४०५	गिरिकर्णिका	३४३
२३३	गिरिमल्लिका	२०३
३११	गुग्गुलुः	२६९
२०३	गुञ्जा	१७८
३३	गुडः	३९
२८६	गुड़त्वक्	२५४
३४	गुडशर्करा	३४
१	गुडूची	२
..	गुडूचीसत्त्वम्	३
३९३	गुन्थः	३३२
४६०	गुन्द्रा	३३२
१६१	गृञ्जनः (गर्जरः)	१४३
४५३	गृञ्जनः (वनपलाण्डुः)	३८८
४३४	गृहकन्या	४१०
१२	गोक्षुरः	१५
१८३	गोजिह्वा	१६०
४३४	ग्रन्थिकम्	३७२
३०१	ग्रन्थिपर्णः	२६४
	घ	
२५१	घृतकरञ्जः	२१६
१५०	घोटी	१३३
	च	
१७१	चक्रमर्दः	१५०
१५०	चञ्चुः	१३८
१४७	चणकशाकम्	१३६
३५०	चण्डालः	३०२
२४६	चतुरङ्गुलः	२१५
..	चतुरूषणम्	३७२
..	चतुर्जातम्	२५७
३६१	चन्दनम्	२२७
३३१	चम्पकः	२३०
४३५	चविका (चव्यम्)	३७३
४३६	चविकाफलम् ?	३७३
३७५	चर्मरङ्गा	३२१
१७०	चाङ्गेरी	१४३
६२	चिञ्चा	७३
४३७	चित्रकः	३७४
११७	चिर्भटम्	११८
११८	चीनाकम् ?	११८
१७०	चुक्रा	१४८
६२	चुक्रिका	७३
१९५	चूड़ाला ?	१७२
६२	चूतः	६८
३८३	चोकम्	३२३
३०३	चोरकः ?	२६५
	छ	
४६२	छत्रा	३३४
२३६	छर्दनः	२०५
३६५	छिक्किका (छिक्कनी)	३१५
१	छिन्नरुहा	२
	ज	
२९५	जटामांसी	२६०

द्रव्याङ्काः	द्रव्यनामानि	पृष्ठाङ्काः
३१९	जतुका ?	२७३
३४१	जपा	२९६
५७	जम्बीरः	६४
६३	जम्बुः	७०
५७	जम्भलः	६४
४११	जयन्ती	३५२
३८०	जयपालः	३२५
४११	जया	३५२
१२६	जलकारवेल्लकम्	१२५
१८७	जलपिप्पली	१६०
१०१	जलभल्लातकः	१०५
६१	जलमधूकः	६५
१८६	जलवेतसः	१६८
२५७	जलशिरीषः	२२४
३८९	जलापामार्गः	३३५
३४१	जवा	२९६
३२३	जाती (मालती)	२८४
२८३	जातीपत्री	२५२
२८२	जातीफलम्	२५१
२२५	जिङ्गणी	१९५
२०४	जीमूतः	१७६
..	जीरकत्रयम्	३७६
१७	जीवकः ?	२०
..	जीवनपञ्चमूलम्	१७
..	जीवनीयगणः	२५
२१	जीवन्ती ?	२१
१३६	जीवन्तीशाकम्	१३२
१७७	ज्योतिष्मती	१५५
	झ	
३९४	झिण्टी	३४०

द्रव्याङ्काः	द्रव्यनामानि	पृष्ठाङ्काः
	ट	
७	टिण्टुः	१०
	ड	
६३	डहुः	६७
	ढ	
२५७	ढिढिणिका	२२४
	त	
२६८	तगरम् ?	२३२
१४२	तण्डुलीयः	१३३
२०८	तमालः ?	१८२
२८७	तमालपत्रम्	२५५
..	ताड़ी	६८
४५	तामलकी	५०
१०८	ताम्बूलम्	१०६
६४	तालः	६८
४६६	तालमूली	३६८
६९०	तालीशपत्रम्	३३६
१२३	तिक्तकोशातकी	१२१
४१८	तिक्ता	३५८
२११	तिनिशः	१८३
६५	तिन्तिणी	७३
११६	तिन्दिसम्	११८
७५	तिन्दुकः	८१
३३४	तिलकः	२९१
१५४	तिलपर्णी	१३८
४१६	तिल्वकः	३५६
४१	तुगाक्षीरी	४४
२४८	तुणी	२१७
२९९	तुम्बरुः	२६२
३७४	तुरुष्कः	२४४
३५४	तुलसीत्रयम्	३०५

द्रव्याङ्काः	द्रव्यनामानि	पृष्ठाङ्काः
१०२	तुवरकः	१०५
९८	तूतम्	१०२
..	तृणपञ्चकम्	१७
..	तृणपञ्चमूलम्	१७
३९१	तेजोवती	३३६
३८६	त्रायमाणा	३३३
..	त्रिकटु	३७२
..	त्रिजातम्	२५७
..	त्रिफला	५०
३८१	त्रिवृत्	३२७
..	त्रिसुगन्धि	२५७
..	त्र्यूषणम्	३७२
२८६	त्वक्	२५४
	द	
१७१	दद्रुघ्नः	१५०
८०	दधिफलः (दधित्थः)	८५
१७०	दन्तशठा	१४९
५७	दन्तहर्षणः	६४
३७८	दन्ती	३२३
३८०	दन्तीबीजम्	३२५
३५९	दमनकः	
४५८	दर्भः	३९१
..	दशमूलम्	१६
५५	दाडिमः	६२
२८६	दारुसिता	२५४
४१५	दारुहरिद्रा	३५५
४१५	दार्वी	३५५
४४५	दीप्यका	३८०
१६९	दुग्धिका	१४९
३६८	दुरालभा	३१५
४५४	दूर्वा	३८९
२८५	देवकुसुमम्	२५३
४२६	देवगन्धा ?	३६४
२७५	देवदारुः	२४५
२.४	देवदाली	२०४
२७६	देवधूपः	२४६
२५५	देवशिरीषः	२२२
३७९	द्रवन्ती	३२४
५४	द्राक्षा	६१
१५९	द्रोणपुष्पी	१४१
	ध	
२ ०	धन्वनः	१९१
३६८	धन्वयासः	३१५
२१०	धर्मणः	१९२
२१९	धवः	१९१
४०३	धातकी	३४७
४४३	धान्यकः	३७९
३५२	धुस्तूरः	३०२
	न	
२५१	नक्तमालः	२१९
४०८	नदीकान्ता ?	३५१
८७	नन्दीवृक्षः	९२
४०६	नमस्कारी	३४९
३०	नलः	२९
३०८	नलिका	२६७
२६६	नाकुली ?	१७२
२८०	नागकेसरः ?	२५६
१९१	नागदमनी ?	१७०
३९८	नागबला ?	३४२
४२९	नागरम्	३६७
१०८	नागवल्ली	११९
५६	नारङ्गम्	६३

द्रव्याङ्काः	द्रव्यनामानि	पृष्ठाङ्काः
५६	नारिकेलः	५४
४८२	नालिका ?	४०७
३७८	निकुम्भी	३२३
१०४	निकोचकम्	१०८
२३१	निम्बः	१६८
६०	निम्बुकम्	६७
२७	निर्गुण्डी	२८
४१२	निशा	३५३
३८१	निशोथः	३२७
४५४	नीलदूर्वा	३८६
२०२	नीली	१७६
२१६	नीलोत्पलम्	२७८
३४५	नैपाली ?	२६७
	प	
०	पञ्चकोलम्	३७९
..	(कराटकाख्यम्)	
	पञ्चमूलम्	१८
..	(जीवनाख्यम्) ,,	१७
..	(तृणाख्यम्) ,,	१७
..	(बृहत्) ,,	१६
..	(मध्यमम्) ,,	१७
..	(लघु) ,,	१६
..	(वल्ली) ,,	१७
..	पञ्चवल्कलम्	६०
२६	पञ्चाङ्गुलः	२६
१२२	पटोलः	१२०
३१३	पतङ्गम्	१७४
२८७	पत्रम्	२५५
७२	पथ्या	४५
३१५	पद्मम्	२७७
..	पद्मकन्दम्	१८२

द्रव्याङ्काः	द्रव्यनामानि	पृष्ठाङ्काः
३०९	पद्मकाष्ठम्	२६८
..	पद्मकेशरम्	२८१
..	पद्मबीजम्	२८१
६२	पनसः	६३
७३	परूषकः	७६
४१०	पर्पटः	३५२
३१२	पर्पटी ?	२७३
४५२	पलाण्डुः	३८७
२१८	पलाशः	१८९
४४२	पशुगन्धा	३८२
६	पाटला	६
१६२	पाठा	१४४
४४६	पारसीकयवानी	३८१
२३५	पारिभद्रः	२०४
८५	पारिशपिप्पलः	८९
२१३	पार्थः	१८६
१४६	पालङ्क्या	१३७
९	पालेवतम्	१००
४२७	पाषाणभेदः	३६५
२३१	पिचुमर्दः	१६६
५२	पिण्डखर्जूरः	५९
४८१	पिण्डालुकः	४०६
२३७	पिण्डीतकभेदः	२०९
८४	पिप्पलः	८९
४३२	पिप्पली	३७०
४३४	पिप्पलीमूलम्	३७२
३५१	पीतकरवीरः	३०२
२६३	पीतचन्दनम्	२२९
४१५	पीतदारु	३५५
९६	पीलुः	६३
२५	पुत्रञ्जीवः	२५

द्रव्याङ्काः	द्रव्यनामानि	पृष्ठाङ्काः
१८६	पुनर्नवा	१६५
३३२	पुन्नागः	२९०
२८०	पुष्करमूलम् ?	२५०
१०८	पूगम्	१११
९	पृथक्पर्णी	११
९	पृश्निपर्णी	११
१५३	पोतकी	१५६
३५	पौण्ड्रजा शर्करा	३५
१७१	प्रपुन्नाटः	१५१
३१०	प्रपौण्डरीकम् ?	२९८
३६८	प्रसारणी	३४३
४६	प्राचीनामलकम्	५१
२८२	प्रियङ्गुः	२५८
७४	प्रियालः	८०
८६	प्लक्षः	९०
	फ	
१५५	फञ्जी	१३८
३५५	फणिज्झकः	३०६
२८२	फलिनी	२५८
८८	फल्गुः	९२
३७	फाणितम्	३५
१३७	फांफटफलम् ?	१३०
२५२	फेनिलः	२२४
	ब	
३३८	बकः	२९५
३३७	बकुलः	२९४
६४	बदरी	७१
३४२	बन्धूकः	२९६
१३०	बन्ध्याककोंटी	१२६
३३५	बब्बूलः	२९३
३८५	बला	३४०
,,	बलाचतुष्टयम्	३४०
४६४	बल्वजा	३९५
४४	बहेड़कः	४९
३४४	बाणपुष्पः	२९७
१२०	बालकम् ?	११८
१२७	बिम्बी	१२४
३	बल्वः	५
२१०	बीजकः	१८२
४७	बीजपूरः	५२
१०	बृहती	१२
,,	बृहत्पञ्चमूलम्	१६
३८९	बृहदेला	२५६
३७८	बृहद्दन्ती	३२४
१६१	बृहल्लोणिका	१३८
४२१	ब्राह्मणयष्टिका	३६१
१७८	ब्राह्मी ?	१५६
	भ	
१२	भक्षटः	१५
४८३	भङ्गा	४०८
४१७	भङ्गुरा	३५७
२८३	भद्रमुस्तकः	२५८
२६१	भद्रश्रियम्	२१८
१००	भल्लातकम्	१००
४२१	भार्गी	३६१
५३	भूखर्जूरः	५९
४५	भूधात्री	५०
३६४	भूनिम्बः	३१२
१५७	भूमिपोतिका	१४०
४५	भूभ्यामलकी	५८
२१२	भूर्जः	१८४
४६२	भूस्तृणः	३९४
४६५	ंगरंजः	३९५

द्रव्याङ्काः	द्रव्यनामानि	पृष्ठाङ्काः
	म	
३६१	मञ्जिष्ठा	३१०
१७६	मण्डूकपर्णी	१५७
”	मत्स्यण्डी	३३
१८१	मत्स्याक्षी	१५६
२३६	मदनः	२०५
४१	मधु	३७
४८	मधुकर्कटी	५३
३२	मधुशर्करा	३४
९०	मधूकः	६४
३८	मधूकफाणितम्	३५
३८	मध्यमपञ्चमूलम्	१७
३४२	मध्याह्नकः	२९६
४८४	मध्वालुकम्	४०७
२३५	मन्दारः	२०४
२५२	मयूरशाखा	३०५
४३२	मरिचम्	३६६
३६०	मरुबकः	३०९
८८	मलयुः	६२
३२२	मल्लिका	२८३
१०५	मूलकम्	१०८
१२५	महाकोशातकी	१२२
१६३	महाजम्बु	७०
३८५	महाजालनी ?	३२१
२३२	महानिम्बः	२०१
३९६	महाबला	३४१
३७१	महामुण्डी	३१७
१६	महामेदा?	२०
४०१	महाशतावरी	३४५
३७१	महाश्रावणी	३१७
”	मौक्तिकम्	३८
४३३	मागधी	३७०
१९९	माचिका	१७४
४७८	माणकः	४०४
३२७	माधवी	२८७
४९१	मानिनीमूलम् ?	४०८
३७६	मार्कण्डी ?	३२१
४६५	मार्कवः	३६५
२७२	मार्जारी	२४१
३२३	मालती	२८४
१४३	मारिषः	१३३
२३	माषपर्णी	२३
४७३	मांसरोहिणी	४०२
२६५	मांसी	२६०
४४२	मिश्रेथा	३७९
४४२	मिसिः	३७६
३४०	मुचकुन्दः	२९५
३२२	मुक्तबन्धना	२८३
४५६	मुञ्जः	३६२
३७०	मुण्डीद्वयम्	३१७
२४	मुद्गपर्णी	२४
३०४	मुरा	२६५
२९३	मुस्तकः	२५६
२००	मूर्वा	१७४
१६०	मूलकम्	१४२
१९०	मूषाकर्णी	१६८
२७०	मृगनाभिः	२३८
”	मृणालम्	२८२
५४	मृद्विका	६१
१५२	मेघनादः	१३३
१५	मेदा ?	२०
४७५	मेदोगला	४०३

द्रव्याङ्काः	द्रव्यनामानि	पृष्ठाङ्काः
१८४	मेषशृंगी	१६१
४०६	मेषान्त्री ?	३५१
२३०	मोक्षकः	१९८
२३८	मोचरसः	२०७
५०	मोचा	५७
	य	
३२९	यवतिक्ता	२८८
१४०	यवशाकम्	१३२
४४५	यवानी	३८०
,,	यवानीचतुष्टयम्	३८०
३६	यवासशर्करा	३५
३६९	यवासा	३१६
२२	यष्टिमधु	२२
४४६	यावनी यवानी	३८१
३६९	यासः	३१६
३२४	यूथिका	२८४
	र	
३५०	रक्तकरवीरः	३०२
२६२	रक्तचन्दनम्	२२८
१८७	पुनर्नवा	१६६
३८८	रक्तापामार्गः	३३५
४८६	रक्तालुकम्	४०७
२०३	रक्तिका	१७८
३१७	रक्तोत्पलम्	२७९
२३	रक्तैरण्डम्	१७८
४१२	रजनी	३५३
५०	रम्भा	५७
४१६	रसाञ्जनम्	३५६
४५१	रसोनः	३८६
१११	राजकर्कटी	११४
१२४	राजकोशातकी	१२५
२४६	राजवृक्षः	२१५
७२	राजादनः	७८
७८	राजाम्रः	८४
३४८	राजार्कः	३००
१४६	राजिका	१३५
४४८	रामठम्	३८२
४६३	रामशरः	३९४
२७६	रालः	२४६
३९२	रास्ना ?	३३७
२९१	रेणुका?	२५७
४६१	रोहिषम्	३९३
२३९	रोहीतकः	२०८
	ल	
,,	लकुचार्द्रकम्	३६९
९३	लकुचः	९०
४७४	लक्ष्मणा	४०२
४०६	लज्जालुः	३४९
२५३	लताकरञ्जः	२२१
२७१	लताकस्तूरी	२४१
२८५	लवङ्गम्	२५३
१०७	लवलीफलम्	१०९
४५१	लशुनः	३८६
३१४	लाक्षा	२७४
४०४	लांगली	३४८
२९८	लामज्जकम्	२६२
१५१	लोणी	१३८
४१९	लोध्रः	३५९
३२	लोहितेक्षुः	३२
,,	लघुपञ्चमूलम्	१६
,,	लवणार्द्रकम्	३६९

द्रव्याङ्काः	द्रव्यनामानि	पृष्ठाङ्काः
	व	
३१	वंशः	३०
४१	वंशरोचना	४३
३३८	वकः	२९५
३३७	वकुलः	२९४
४५०	वचा	३८५
८२	वटः	८६
४२५	वटपत्री ?	३६४
२३३	वत्सकः	२०३
१२१	वनत्रपुसम्	११६
३४५	वनमल्लिका	२९७
४५३	वनपलाण्डुः	३८८
४४७	वनयवानी	३८२
३७७	वनशणः	३१२
१३४	वनशिम्बी	१२९
४७१	वनशूरणः	४००
४१३	वनहरिद्रा	३५४
३६२	वन्दा	३११
४८३	वन्यकन्दः	४०६
४९२	वन्यमानिनी ?	४०८
२२३	वरुणः	१९३
२६५	वर्वरचन्दनम्	२३०
३५८	वर्वरी	३०८
१८६	वर्षाभूः	१६२
२१६	वल्लीखदिरः	१८८
..	वल्लीपञ्चमूलम्	१७
४३७	वह्निः	३७४
१७२	वाकुचीं	१५१
३९५	वाट्यालकः	३४०
१०३	वातामम्	१०६
४६८	वराहीकन्दः	३९८
३२१	वारिपर्णी	२८३
१२६	वार्त्ताकम्	१२३
१०	वार्त्ताकी	१२
३४६	वार्षिकी	२९८
२	वालकः	४
३२८	वासन्ती	२८८
१२८	वास्तुकः	१२१
७७	विकंकतः	७७
४९३	विजया	४०८
२१५	विट्खदिरः	१८६
४२८	विडंगः	३६६
४३७	विदारीकन्दः	३९७
४४	विभीतकः	४९
३७८	विशल्या	३२३
३८५	विशाला	३३२
७६	विषतिन्दुकः	८१
१३१	विषमुष्टिः	१२७
१६६	विष्णुक्रान्ता	१४७
२९७	वीरणमूलम्	२६२
२५१	वृक्षकरञ्जः	२१९
३६२	वृक्षादनी	३११
६६	वृक्षाम्लम्	७४
४६६	वृद्धदारकः	३९६
२०	वृद्धिः	२१
१९८	वेतसः	१६७
४६६	वेत्रकः	३९४
२२४	वेल्लन्तरुः	१९४
१३६	व्याघ्राटकम् ?	१३०
४३७	व्यालः	३७४
	श	
३३०	शंखपुष्पी	२८९

द्रव्याङ्काः	द्रव्यनामानि	पृष्ठाङ्काः
४८५	शंखालुकम्	४०७
३२४	शंखिनी	२८८
३०५	शठी	२६६
३७७	शणपुष्पी	३२२
३२५	शतपत्री	२८५
४४१	शतपुष्पी	३७८
४००	शतमूली	३५४
४००	शतावरी	३४४
२५४	शमी	२२५
२४६	शम्पाकः	२१५
४५४	शरः	३६२
२२६	शल्लकी	२६५
३००	शल्लकीनिर्यासः	२६४
२०६	शाकः	१८०
२४१	शातला ?	२१०
२०७	शालः	१८१
२७३	शालनिर्यासः	२४६
८	शालपर्णी	११
२३८	शाल्मली	२०६
४१४	शावरः	३५४
२५६	शिंशिपा	२२३
३८७	शिखरी	३३४
१८५	शिग्रुत्रयम्	१६२
१६५	शितिवारः	१४६
२५४	शिरीषः	२२२
२७४	शिलारसः	२४४
४१७	शुक्लकन्दा	३५८
४३८	शुक्लजीरकम्	३७६
४२४	शुण्ठी	३६७
१३३	शूकशिम्बी	१२७
४६८	शूकरी	३९८
४७०	शूरणः	३९९
४३१	शृंगवेरम्	३६८
४८०	शृंगाटकः	४०५
४२०	शृंगी	३६०
२६	शेफाली	२८
३२१	शैवालम्	२८३
३८२	श्यामा त्रिवृत्	३२८
७	श्योनाकः	१०
३७०	श्रावणी	३१७
२८५	श्रीपुष्पम्	२५३
४३	श्रीफला	४७
२७८	श्रीवासः	२४७
१३५	श्लेष्मातकः	१२९
२६४	श्वेतकरवीरः	३०१
३६१	श्वेतचन्दनम्	२२७
४५५	श्वेतदूर्वा	३६०
४८२	श्वेतपिण्डालुकन्दः	४०६
१८६	श्वेतपुनर्नवा	१६५
१८५	श्वेतमरिचम्	१६३
	ष	
..	षडूषणम्	३७५
	स	
४०६	संकोचनी	३४६
२४४	सप्तपर्णः	२१८
२४१	सप्तला?	२१०
२७७	सरलः	२४६
२७८	सरलस्रावः	२४७
१७८	सरस्वती?	१५७
२२१	सर्जकः	१९२
४७७	सर्पच्छत्रम्	४०२
१६७	सर्पाक्षी	१४८
१४५	सर्षपशाकम्	१३५

द्रव्याङ्काः	द्रव्यनामानि	पृष्ठाङ्काः
६	सर्वतोभद्रा	८
६२	सहकारः	६९
३९४	सहचरः	३५०
३९६	सहदेवी	३५२
३९५	सहा	३५१
५९	साराम्लम् ?	६६
३७३	सारिवा	३१९
४९३	सिद्धिः	४०८
३४३	सिन्दूरी	२९६
२८	सिन्दुवारः	२८
२७४	सिह्लकः	२४४
१९२	सुदर्शनः	१७३
१६५	सुनिषण्णकम्	१४६
२७५	सुरदारुः	१४४
६७	सुषेणा	७५
२८८	सूक्ष्मैला	२५५
१८०	सूर्यावर्त्ता	१५८
२४०	सेहुण्डः	२०९
३९४	सैरेयः	३५०
१७३	सोमराजी	१५१
१९४	सोमलता ?	१७१
१९४	सोमवल्ली ?	१७१
६४	सौवीरकः	७२
३१९	स्थलपद्मिनी	२८०
३०२	स्थौणेयकम् ?	३६५
२४०	स्नूही	२०९
३०७	स्पृक्का ?	२६७
१३३	स्वयंगुप्ता	१९८
३२६	स्वर्णकेतकी	२८६
३८३	स्वर्णक्षीरी	३२९
३३१	स्वर्णचम्पकः	२९०
३७५	स्वर्णपत्रिका	३२१
११३	स्वादुतुम्बी	११५
	ह	
१९१	हंसपदी	१६९
१९१	हंसराजः	१६९
४०२	हपुषा (हवुषा)	३७६
२४९	हयमारकः	३०१
२६६	हरिचन्दनम्	२३०
४१२	हरिद्रा	३६१
४२	हरीतकी	४५
४८७	हस्त्यालुकम्	४०७
४४८	हिंगु	३८२
४४९	हिंगुपत्री	३८४
१६८	हिलमोचिका	१४८
२९६	ह्रीवेरम्	२६१
३८३	हेमाह्वा	३२९

इति !

संस्कृत वा हिन्दी नामों की सूची में जहां यह चिन्ह (··) दिया गया है, उन का वर्णन मूलपाठ वा टिप्पणी में देखें !

२. हिन्दीभाषानामानि

अङ्क	द्रव्यनाम	पृष्ठ
	अ	
२४२	अंकोट ढेरा	२११
५४	अंगूर	६१
८८	अंजीर	९२
२६	अंड	२५
६२	अंब	६८
..	अंबचूर	६९
८०	अंबाड़ा	८४
४१४	अंबिया हलदी	३५४
१७२	अकलीलुलमलिक	१७३
६८	अखरोट	७५
२६७	अगर	२३२
२४५	अगस्तिया	२४५
४	अगेथु	७
४४४	अजमोद	३८०
४४५	अजवायन	३८१
२	अडूसा	४
४१७	अतीस	३५७
४३१	अदरक	३६८
३७३	अनंतमूल	३१८
५५	अनार	६२
१९२	अफसंतीन	१७०
३७२	अमर बेल	३१८
९५	अमरूद	१००
२४६	अमलतास	२१५
५८	अमलवेद	६५
४	अरणी	७
२६	अरंड	२५

अङ्क	द्रव्यनाम	पृष्ठ
..	अरबी	४६
७	अरलु	१०
..	अरारूट	४४
२१३	अर्जुन	१८५
७०	अलूचा	७७
३८४	अशारा रेवन्द	३३०
३३३	अशोक (अशोगि)	२९१
..	अष्टवर्ग?	१८
..	अष्टवर्ग के प्रतिनिधि	१९
३९३	असगन्ध	३३९
२०९	असना	१८२
..	असवरग	२६७
	आ	
४३	आंवला	४७
३४७	आक	२९८
३७२	आकाशवेल	३१८
४४५	आजमान	३८०
..	आडू	७७
७५	आबनूस	८१
६२	आम	६८
..	आमचूर	६९
..	आम पापड़ी	६९
४३	आमला	४७
४१४	आमा हलदी	३५४
..	आलू के भेद	४०६
२०९	आसन	१८२

१ इस सूची में पंजाबी तथा प्रसिद्ध यूनानी वा फारसी नाम भी सम्मिलित हैं।

अङ्क	द्रव्यनाम	पृष्ठ
	इ	
१८७	इटूँ सिटू	१६६
२३४	इन्द्रजौ	२०२
३८५	इन्द्रायण	३३२
६५	इमली	७३
	ई	
३२	ईख	३१
	उ	
३८९	उजड़ कांटा	३२९
	ऊ	
३२	ऊख	३१
	ए	
३०४	एकांगी	२६६
२८८	एलाची छोटी	२५५
२८९	एलाची बड़ी	२५६
..	एल्वा	४११
	क	
४२०	ककड़ासिंगी	३६०
११५	ककड़ी	११७
३९७	ककहिया	३४२
..	कक्कर (वृक्ष)	३६०
३९७	कंघी	३४२
११७	कचरी	११८
२४४	कचनार लाल	२१३
२४३	कचनार सफेद	२१२
..	कचालू	४०६
३०५	कचूर	२६६
३९४	कटसरैया	३४०
९२	कटहर (ल)	९६
१०	कटाई	१२
७७	कटी	८३

अङ्क	द्रव्यनाम	पृष्ठ
१०	कटेरी छोटी	१२
११	कटेरी बड़ी	१२
..	कठारू	४०६
१२२	कड़वा परवल	१२२
११४	कड़वी तुंबी	११६
१२३	कड़वी तोरी	१२१
४१८	कद्दू	३५८
७७	कंटाई	८३
११	कंडियारी	१२
४६१	कत्तृण	३९३
८०	कत्थ बेल	८५
९३	कदम	१०१
२५०	कदम (वृक्ष)	२१९
११३	कद्दू	११५
३५१	कनेर पीली	३०२
३५०	कनेर लाल	३०१
३४९	कनेर सफेद	३०१
२१७	कन्तार	१८८
१२७	कन्दूरी	१२४
४२४	कपास	३६३
३७६	कपूर कचरी	२६६
२८४	कबाब चीनी	२५२
२८९	कबाब (बे)	२६३
२१०	कमरकस	१८२
६१	कमरख	६८
३१५	कमल	३७६
३१५	कमलकेसर	२८१
..	कमलगट्टा	२८१
२४७	कमीला (कंबीला)	२१६
३१८	कमोदनी	२७९
२५३	करंज (लता)	२२१

अङ्क	द्रव्यनाम	पृष्ठ
२५१	करंज (वृक्ष)	२१९
२५३	करंजुआ	२११
२३६	कटहर	२०५
२२८	करही	१९७
६९	कटील	७६
६९	करींह	७६
१२८	करेला	११५
६७	करौंदी (करौंदी)	७५
६९	कर्वील	७६
२६३	कलवंक	२२९
४०४	कलियारी	३४८
४०४	कलिहारी	३४८
..	कलौंजी	३७७
३१५	कंवल (कंवि)	२७६
१७४	कवैया	१५३
४७९	कसेरु	४०५
१६४	कसौंदी	१४५
२७०	कस्तूरी	२३८
..	कस्तूरी की पहचान	२४०
३२१	काई	२८३
१७५	काकजंघा	१५४
४२०	काकड़ासिंगी	३६०
१३	काकोली	१९
६०	कागज़ी निंबू	६७
१७७	कांगुनी	१५५
१४२	कांटेदार चुलाई	१३२
४५३	कांडा	३८८
२६९	काफूर	२३४
१७४	कां पीलू	१५३
४२२	कायफल	३६१
८८	काला गूलर	९२
४३९	काला जीरा	३७६
..	काला धत्तूरा	३०३
३९४	काला बांसा	३४०
..	काला भंगरा	३९५
१७३	काली जीरी	१५२
३८२	काली निसोथ	३२८
४३२	काली मरिच	३६९
३७४	काली सर	३२०
१११	काशी फल	११४
४५७	काही (कांह)	३९१
२६०	किक्कर	२२६
७७	किंकिणी	८३
३६४	किराता	३१२
४३९	किर्मानी जीरा	३७६
५४	किशमिश	६१
२६०	कोकर	२२६
७३	कुचला	८१
४१८	कुटकी	३५८
२७९	कुठ	२४८
२३३	कुड़ा	२०२
२३३	कुड़ा सक	२०२
३३९	कुन्द	२९५
५	कुबेर	८
११०	कुम्हड़ा	११३
२२८	कुंभी	१९७
१५८	कुरंड	१४०
४०७	कुलिया कांटा	३५०
१५१	कुल्फ़ा	१८३
४९४	कुवार पाठा	४१०
४५८	कुशा	३९१
१४४	कुसुंभ	१३७
२७९	कूट	२४८
४७६	केऊं (केऊंआ)	४०३
३२६	केतकी	२८६
५०	केला	५७
२६४	केवटी मोथा	२५९
३२६	केवड़ा	२८६
२७३	केसर,	२४३
२१८	केसू	१८

अङ्क	द्रव्यनाम	पृष्ठ
८०	कैथ	८५
२२५	कैमल	१९५
३१९	कोई	२७९
..	कोकन बेर	७२
१६६	कोयल	१४७
७१	कोशाम	७८
१७६	कौआ डोडी	१५५
१३३	कौंच बीज	१२७
४१८	कौड़	३५८
२३३	कौरेया	२०२
२१३	कोह	१८५
	क्ष	
१४	क्षीर काकोली	१९
	ख	
५१	खजूर	५९
५७	खट्टा	६४
१७०	खट्टी बूटी	१४९
२१४	खदिर	१८६
८८	खबारा	९२
५	खंभारी	८
३९४	खरैंटी	३४०
२९७	खस	२६२
३४	खांड	३४
३९९	खिप	३४३
७२	खिरनी (खिन्नी)	७८
११६	खीरा	११७
..	खुंबां	४०३
४४६	खुरासानी अजवायन	३८१
..	खुरासानी वच	३८५
५२	खुर्मा	५९

अङ्क	द्रव्यनाम	पृष्ठ
	ग	
३९८	गंगेरन	३४२
८५	गजदंड	८९
४३६	गजपीपल ?	३७६
३४२	गजुनिया	२९६
३०१	गठिवन	२६४
४५६	गंड दूब	३९०
१८७	गदहपूर्णा	१६६
४६२	गंधतृण	३९४
३०६	गन्धपलाशी	२६६
३९९	गन्धप्रसारनी	३४३
३२	गन्ना	३१
५७	गलगल	६४
१८४	गाज़बान	१६१
१६१	गाजर	१४३
४९३	गांजा	४०८
४५६	गांडर दूब	३९०
७५	गाभ	८१
१६७	गिन्नी	१४८
१	गिलोय	२
..	गिलोय का सत	३
३११	गुगल	२६९
..	गुछी	४०३
३९	गुड़	२५
१८४	गुड़मार	१६१
३४१	गुड़हर	२९६
१५९	गुम्मा	१४१
३४२	गुलदुपहरिया	२९६
३२५	गुलाब	२८५
८३	गूलर	८७

अङ्क	द्रव्यनाम	पृष्ठ
..	गेंठी	३६८
१२	गोखरू	१५
१८३	गोजिया	१६०
४६०	गोंद पटेर	३९२
१८३	गोभी	१६०
१५६	गोमा	१४१
११७	गोरख ककड़ी	११८
३७०	गोरख मुंडी	३१७
३७३	गोरीसर	३१६
१११	गोलकद्द	११४
२७२	गौरासार	२४१
	घ	
२०४	घट [illegible] बेल	१७९
२४६	घन बहेड़ा	२१५
३७७	घागरी	३२२
११३	घियाकद्दू	११५
१२४	घिया तोरई	१२२
४६४	घी कुवार	४१०
२०३	घुंघची	१७८
१६२	घोड़ा सुमी	१४४
	च	
६२	चक्की	६६
१५०	चञ्चु	१३८
१४७	चना	१३६
२६३	चन्दन पीला	२२६
२६२	चन्दन लाल	२२८
२६१	चन्दन सफेद	२२७
४३५	चव	३७३
३२३	चमेली (चंबेली)	२८४
३३१	चंपा (चंबा)	२९०
४६३	चरस	४०८
१७६	चरेली	१५७
४१४	चवां हलदी	३५४
१०२	चालगुगरा	१०५
४.६	चिचोड़	४०५
११७	चिभड़	११८
२०३	चिरमिटी	१७८
३६४	चिरायता	३१२
७४	चिरौंजी	८०
१०४	चिलगोज़ा	१०८
४३७	चीता (चित्रा)	३७४
..	चीनी काफ़ूर	२३८
२७७	चील (चीड़)	२४६
१४२	चुलाई	१३३
१७०	चूका	१४६
२००	चूर्णहार	१७४
१५०	चेवुना	१३८
..	चोक	३३०
..	चोबचीनी	३८६
१६५	चौपतिया	१४६
	छ	
२४९	छतिवन	२१८
४७७	छाता	४०३
४०६	छुई मुई	३४६
४४७	छुहारी अजमोद	३८२
१९६	छोटा चान्द	१७२
२८८	छोटी इलायची	२५५
११	छोटी कटेरी	१२
५३	छोटी खजूर	५९
३५६	छोटी तुलसी	३०७
..	छोटी पंचमूल	[illegible]

अङ्क	द्रव्यनाम	पृष्ठ
१४७	छोला	१३३
५२	छोहारा	५९
	ज	
७१	जंगली आम	७८
१२१	जंगली खीरा	११९
१२३	जंगली तोरई	१२१
४५३	जंगली प्याज़	३८८
२३	जंगली मांह	२३
२४	जंगली मूंग	२४
३७७	जंगली सन	३२२
४७१	जंगली सूरन (जंगली ज़िमींकन्द)	४००
१३४	जंगली सेम	१२९
४१३	जंगली हलदी	३५४
२५९	जंड (जंडी)	२२५
४११	जंतर	३५२
३८०	जपोलोटा	३२५
३८०	जमालगोटा	३२५
५७	जंबीरी	६४
७०	ज़रदालू	७७
१६२	जल जमनी	१४४
१७८	जल नीम	१५६
१८२	जल पीपर	१६०
१८९	जल बेंत	१६८
३४१	जवा (ज़पा)	२९६
३९९	जवासा (जवांह)	३१६
३४३	जाफर	२९६
६३	जामुन	७०
२८२	जायफल	२५१
[illegible]२१	जारूल	१८३
२[illegible]	जाल	९३
४११	जाही	३५२
२२५	जिगन	१९५
४७०	जिमींकन्द	३९९
२५	जिया पोता	२५
४३९	जीरा काला	३७६
४३८	जीरा सफेद	३७६
२१	जीवन्ती (जीवई)	२१
२१३	जुमरा	१५८
३२४	जूही	२८४
४११	जैन्त (जैन्तर)	३५२
१३८	औसाग	१३१
	झ	
३९४	झांटी	३४०
	ट	
२५६	टाहलो	२२३
११९	टिंडा (टेंडा)	११२
७	टेंटु	
२१८	टेसु	१८९
	ड	
९३	डहू	९७
४५८	डाभ	३९१
४४९	डीकामाली	३८४
२९३	डील	२५९
६९	डेहा	७६
२१	डोडी	२१
	ढ	
२१८	ढाक	१८९
..	ढाक की गोंद	१९०
..	ढींगरी	४०४
११९	ढेंडसा	११८
९३	ढेहू	९

अङ्क	द्रव्यनाम	पृष्ठ
	त	
२६८	तगर	२३३
२८६	तज	२५४
४१	तवाशीर	४७
११५	तर	११७
११२	तरबूज	११५
७	तलवारफली	१०
९४	ताड़ (ताल)	६८
..	ताड़ी	६८
४०७	ताल मखाना	३५०
३६०	तालीस पत्र	३३६
११४	तित् लोकी	११६
२११	तिनिश	१८३
२११	तिरिच्छ	१८३
३७८	तिरिफल	३२३
२९९	तुमरु	२६३
३६	तुरंजवीन	३५
३५४	तुलसी	३०५
६९	तूत	१०१
२४८	तूनी (तूनी)	२१७
३६१	तेजबल	३३६
२८७	तेजपात	२५५
७५	तेन्दु	८१
१२४	तोरई	१२२
५०	त्रिफला	५०
३८१	त्रिवी	३२७
	थ	
४५१	थोम	३८६
२४०	थोहर	२०६
	द	
३७७	दंती	३२३
२७५	दयार	२४५
३५८	दमना (दवना)	३०८
८६	दरख्त-ए-मिसलाक	९३
२२७	दलेल	१९६
..	दशमूल	१६
५४	दाख	६७
१७१	दादमारी	१५०
४५८	दाभ	३६१
४१५	दारुहलदी	३५५
२८६	दाल चीनी	२५४
१६६	दुद्धि (दुधिया)	१३१
२१५	दुर्गन्धि खैर	३१२
३७४	दुधोलता	१७०
४५४	दुग्ध	३८८
२७१	देवदारु	२२६
३७३	देसी उशबा	२८३
१६९	दोधक	१४३
३५९	दौना	३५[illegible]
	ध	
३५२	धत्तूरा	३०३
४४३	धनियां (धने)	३७४
३६८	धमासा (धमांह)	३१५
२३२	धरेक	२०१
४०३	धाय के फूल	३४७
२१६	धावा (धौं)	१८१
२२०	धामन (धामनी	१९१
२७७	धूपसरल	२४६
	न	
३०	नरसल	२८
४४	नरेल	५[illegible]
३०	नल	[illegible]

अङ्क	द्रव्यनाम	पृष्ठ
३७८	नली	२६७
१४३	नवड़ा	१३३
३६५	नाकछिक्कनी	३१४
२९०	नागकेसर	२५६
१४१	नाड़ीशाक	१३२
१९२	नाग दवन	१७०
१९२	नाग दौन	१७०
..	नागफणी (थोहर)	२१०
[illegible]०८	नागर बेल	१०९
[illegible] ६	नारंगी	६३
४९	नारियल	५४
१०४	निओजा	१०८
६०	निंबु	६७
[illegible]८	नियाज़बो	३०८
[illegible]३	निर्मली बीज	३६२
[illegible]	निसोथ	३२७
[illegible]	[illegible]ोम	१९८
[illegible]	[illegible]ल	१७६
[illegible]	[illegible]ीलोफर	२७८
२९६	नेत्रवाला	२६१
२९९	नेपाली धनियां	२६३
३२८	नेवारी	२८८
१५१	नोनिया	१३८
	प	
..	पंचकोल	३७५
..	पंचमूल	१६
..	पंचमूल बड़ी	१६
..	पंचवल्कल	९०
४६०	पदेर	३९२
४२७	पठान गंढी	३६५
४१९	पठानी लोध	३५९

अङ्क	द्रव्यनाम	पृष्ठ
..	पतंग (चन्दनभेद)	२३०
३१३	पतंग „	२७४
४१७	पतीस	३५७
२०९	पद्माक	३६८
३८१	पनिलर	३२७
३१२	पपड़ी	२७३
३१५	पब्बन	२७६
१७१	पमार (पंवार)	१५०
१२२	परवल	१२०
७३	परूषा	७९
३०८	पवारी	२६७
३९९	पसरन	३४३
२९	पहर बूटी	४८
८६	पाकर	९०
२३५	पांगरा	२०४
१६२	पाढ़	१४४
६	पाढल	९
१०८	पान	१०९
..	पान की जड़	११०
४६	पानी आमला	५१
४२३	पाय पसारी	३६२
८५	पारस पिप्पल	९०
..	पारसी वच	३८५
१४९	पालक	१३७
४२७	पाषाणभेद	३६५
९	पिठवन	११
४१०	पितपापड़ा	३५२
८४	पिप्पल (पीपल)	८९
४३३	पिप्पली	३७०
४३३	पिप्पला दराज	३७०
४३४	पिपलीमूल	३७२

अंक	द्रव्यनाम	पृष्ठ
३९४	पिया बांसा	३४०
७४	.पियाल	८०
८६	पिलखन	९०
२१०	पीत सार	१८२
४३३	पीपल	३७०
३५१	पीली कनेर	३०२
२६३	पीला चन्दन	२२९
८९	पीलू	९३
३१०	पुंडेरी	२६८
२५	पुत्रंजीव	२५
३३२	पुन्नाग	२९०
३३२	पुलाक	२९०
११०	पेठा	११३
१५६	पोईं का शाक	१४०
३२	पौंडा	३१
..	पोलियां	१३४
२८०	पौहकर मूल	२५०
४५२	प्याज़	३८७
३०८	प्रवाली	२६७
२९	प्रियंगु	२५८
	फ	
७३	फगवाड़ा	९२
३८५	फरफेंद	३३३
२३५	फरहद	२०४
७३	फालसा	७९
३८३	फिरंगी धत्तूरा	३२९
२१५	फुलाई (ही)	१८७
२९२	फूलफिरंग	२५८
२९२	फूलप्रियंगु	२५८
	ब	
..	बकम काष्ठ	२३०
२३२	बकायन	२०१
३३७	बकुल	२९४
४५०	बच	३८५
७७	बंज	८३
८२	बड़	८६
९३	बड़हर	९७
४७	बड़ा निम्बू	५२
२८९	बड़ी एलायची	२५५
१०	बड़ी कटेरी	१२
३९३	बड़ी खरैंटी	३४७
३७९	बड़ी दन्ती	३२४
..	बड़ी पंचमूल	१६
४०१	बड़ी शतावर	३४५
१३८	बथूआ	१३१
३६२	बंदा (बंदाल)	३१२
२०४	बंदाल	१७[illegible]
३५८	बबरी	३०८
२६०	बब्बूल	२२६
३३५	बब्बूल	२९३
२२३	बरना	१९३
४११	बल मोटा	३५२
४४	बहेड़ा	४९
१७२	बाकुची	१५१
१३०	बांझ ककोड़ा	१२६
१०३	बादाम	१०६
४४१	बादियां	३७८
१३८	बाथू	१३१
३६२	बांदा	३११
४२१	बामनहटी	३६७
२९५	बालछड़	२६०
१७२	बावची दाना	[illegible]

अङ्क	द्रव्यनाम	पृष्ठ
३१	बांस	३०
२	बांसा	४
१७६	बिछुआ	१५५
४७	बिजोरा निंबू	५२
४६७	बिदारी कन्द	३९७
४६६	बिधारा	३९६
३	बिल	५
२८५	बिल्ली लोटन	२६०
४६७	बिलाई कन्द	३९७
२	बिसूटी	४
२१०	बीजा	१८१
६४	बेर	७१
३	बेल	५
..	बेल का शर्बत	५
३२२	बेला (रवेल)	२८३
१२६	बैंगन	१२३
१९८	बैंत	१६७
[illegible]	बोर	८६
८३	बोहर	८६
३८३	ब्रह्मदण्डी	३२९
४२१	ब्रह्मनटी	३६१
१७९	ब्रह्ममण्डूकी	१५७
४२१	ब्रह्मयष्टि	३६१
१७८	ब्राह्मी	१५६
	भ	
१२	भखरा	१५
४८३	भंग	४०८
४६५	भंगरा	३९५
११	भटकटैया	१२
२८३	भद्रमोथा	२५९
९९	भसीड़ा	२८२
४१९	भांग	४०८
४२१	भारंगी	३६१
३८३	भारवन्द	३२९
१००	भिलावा (मा)	१०३
४५	भूई आमला	५०
४६२	भूतृण	३९४
..	भैंसा गुगल	२७२
२१२	भोजपत्र	१८४
	म	
१७४	मकोय	१५३
४३३	मघां	३७०
१८१	मछेली	१५९
१४८	मटर	१३७
२९३	मघारी	२५४
४०	मधु	३७
..	मधु के प्रकार	३८
३४७	मंदार	२९८
१४३	मरसा	१३३
४६२	मरिच	३९४
३६०	मरुवा	३०४
३६०	मर्वा	३०४
१०५	मलोख	१०८
२३	मषवन	२३
१७५	मसी	१५४
३२९	महातिया	२८८
२३२	महानीम	२०१
८०	महुआ	८४
१८९	माईं	१७४
४०	माखी	३७
३२७	माधवी	२८७
४७८	मानकन्द	४०४
१७७	मालकंगुनी	१५५
४८	मिट्ठा	५३

अंक	द्रव्यनाम	पृष्ठ
४६१	सिरचिया घास	३९[illegible]
१११	मीठा कद्दू	११४
४८	मीठा नींबू	५३
२२	मीठी काठी	२२
३७९	मुगलाई अंड	३२४
२४	मुंगवन	२४
१२५	मुगी तोरई	१२२
३४०	मुचकुन्द	२९४
४५९	मुंज	३९२
३७०	मुएडी छोटी	३१७
३७१	मुएडी बड़ी	३१७
२९३	मुथरां	[illegible]९
५४	मुनक्का	६१
१६०	मुरई	१४२
२००	मुर्हरी	१७४
२२	मुलहटी	२२
२२	मुलैठी	२२
२७१	मुष्कदाना	२४१
२९६	मुष्कबाला	२६१
२७२	मुष्क बिलाई	२४१
..	मुसब्बर	४११
१६०	मूली	१४२
१९०	मूसाकानी	१६८
१८४	मेढासिंगी	१६२
१६	मेदा छोटी	२०
१५	मेदा बड़ी	२०
२३६	मैनफल	२०५
१९९	मोईया	१७४
२३०	मोखा	१९८
३१२	मोतिया	१८३
२९३	मोथा	२९३

अंक	द्रव्यनाम	पृष्ठ
३५३	मो[illegible] शिखा	३०५
२३०	[illegible]षा	१९८
३३७	मौलसरी	२९४

र

अंक	द्रव्यनाम	पृष्ठ
..	रक्त मरिच	३७०
..	रत्तालू	४०६
२०३	रत्ती	१७८
४१६	रसौंत	३५६
३२२	रबेल	२८३
१४६	राई	१२५
२३६	राड़ा	२०५
३७	राब	३५
३५५	रामतुलसी	३०६
४५२	रामलड्डू	३८७
४५८	रामसर	३९२
२२१	राल	१९२
२७६	राल	२४६
३९२	रास्ना ?	३३७
..	राहसन ?	३३७
२५८	रीठा	२२४
४२४	रूई	३६३
४६१	रूसा घास	३९३
..	रूमी मस्तकी	२६४
२६	रेंड़ि	२५
२९१	रेणुका ?	२५७
३८४	रेवन्द शारा	३३०
२३९	रोहेड़ा	२०८
४७३	रोहणी	४०२
४७३	राहण	४०२

अंक	द्रव्यनाम	पृष्ठ
	ल	
३४३	लटकन	२४६
४५१	लसीन	३८६
१३५	लसूड़ा	१२९
४५१	लहसन	३८६
१५६	लाई	१३५
११३	लाऊ	११५
३१४	लाख	२७४
४०६	लाजवन्ती	३४९
३४७	लाल आक	२४८
..	लाल एरण्ड	२७
१११	लाल कद्दू	११४
३१६	लाल कंवल	१७८
..	लाल गन्ना	३२
२६२	लाल चन्दन	२२८
..	लाल मरिच	३७०
३५३	लाल मुर्गा	३०५
१३५	लिसोड़ा	१२९
२०२	लील	१७६
११३	लौंकी	११५
४१६	लोध (लोधर)	२५६
१५१	लोनी	१३८
३००	लोबान	२६४
२८५	लौंग	२५३
	व	
४५०	वच (वर्च)	३८५
८९	वण	९३
४४७	वनअजवायन	३८२
२३	वन उरद	२३
१३०	वन ककोड़ा	१२६
३३८	वन तुलसी	३०८
३७७	वन सन	३२२
४१३	वन हलदी	३५४
२२४	वरतुली	१८४
२२४	वरवेल	१८४
१०	वरहंटा	१२
४१	वंशलोचन	४३
२२८	वाकंब	१९७
४२८	वायविडंग	३६६
४६८	वाराही कन्द	३९८
३९५	वारियारी	३४०
३२८	वासन्ती	२८८
२१०	विजयसार	१८२
४६७	विदारीकन्द	३९७
२०४	विदाली	१७९
१८६	विषखपरा	१६५
२९७	वीरण	२६२
४६३	वेतस	३९४
२२४	वेलन्तर	१८४
	श	
..	शकर कन्दी	४०६
३२९	शंखिनी	२८८
४००	शतावर	३४५
४०६	शर्मानी	३४९
९८	शहतूत	१०२
४०	शहद	३७
४१०	शाहतरा	३५२
१६५	शिरिआरी	१४६
२७४	शिलारस	२४५
४४	शीर खिश्त	४२
२५६	शीशम	२२३

अंक	द्रव्यनाम	पृष्ठ
	स	
३३०	संखाहुली	२८९
..	सत गिलोय	३
२४६	सतवन	२१८
४००	सतावर	३४४
२४६	सतोना	२१८
३८३	सत्यानासी	३२६
..	सन	३२१
३७५	सनाय	३२१
५६	संतरा	६३
३४८	सफेद आक	२६६
२४३	सफेद कचनार	२१२
२६१	सफेद चन्दन	२२७
३६६	सफेद छोटी कचनार	२११
४२९	सफेद ज़ीरा	३७६
२२१	सफेद दागर	१६२
४५५	सफेद दूब	३६०
६६	समाक दाना	७४
२५६	समी	२२५
४६६	समुद्र शोष	३६६
४५६	सरकंडा	३९२
२८४	सरद चीनी	२५२
३७५	सरना मक्की	३२१
४५९	सरपट	३९२
१३५	सरसों	१२५
१६७	सरहची (टी)	१४८
८	सरिवन	११
२२६	सलई	१९५
४०	सहत	३७
३६६	सहदेई	३४१
२०७	सांखु	१८१
२०६	सागवान	१८०
२०६	सागोन	१८०
१८७	सांठ	१६६
४७७	सांप की छत्री	४०३
२०७	साल	१८१
८	सालवन	११
३७४	सालसा	३२६
४१६	सावर लोध	३५६
४८१	सिंघारा	४०५
३४३	सिन्दूरिया	२९६
२३८	सिंबल	२०६
२५४	सिरस	२२२
२५४	सिरीं	२२२
२५६	ससु	२२३
२५६	सीसम	२२३
४६८	सुअर कन्द	३६८
१३२	सुअरसेम	१२७
२५१	सुखचैन	२१६
२६३	सुगन्ध वाला	२६१
४२६	सुंढ	३६७
१९८	सुदर्शन	१७३
१२१	सुन्दरस	१९२
१०६	सुपारी	१११
५२	सुलेमानी खजूर	५९
३३२	सुलतान चंपा	२९०

अंक	द्रव्यनाम	पृष्ठ
१८०	सूरजमुखी फूल	१५८
४७०	सूरन	३९६
१३२	सेम	१२७
२३८	सेमर	२०६
२४०	सेहुण्ड	२०९
४४२	सोए	३७९
४२६	सोंठ	३६७
७	सोन पाठा	१०
४४२	सोया	३७६
१८५	सोहांजना	१६२
५४	सौगी	६१
१८५	सौंजिना	१६२
४१	सौंफ	३७८
	ह	
१६१	हंसराज	१९६
४७२	हड जोड़	४०१
४७२	हड संहारी	४०१
२४५	हथिया	२२३
२४५	हदगा	२१३
१९६	हरकाई चन्दा	१७२
४४	हरड़	४५
२६	हरनोली	२५
१०७	हरफरी	१०६
१०७	हरफारेवड़ी	१०६
४६१	हरिचाय	३६४
४५४	हरि दूब	३८६
२५८	हरीठा	२२४
४१२	हलदी	३५३
४९०	हस्तिकर्ण	४०७
३२७	हाथी मोतिया	२८७
२६	हार सिंगार	२८
२२७	हिंसोटा	१९६
..	हिमसागर	३६५
४४८	हींग	३८२
..	हीरा हींग	३८३
१६८	हुरहुर	१४८
१८०	हुलहुल	१५८
२१७	हूं	१८८

इति !

संकेत (Symbols)

द०—दयानन्द कालेज लाहौर से प्राप्त हस्तलिखित पुस्तक।

ब०—बम्बे से प्राप्त हस्तकिखित पुस्तक।

यू०—पंजाब यूनिवर्सिटी से प्राप्त हस्तलिखित पुस्तक।

हिं०—हिन्दी नाम। (बं०)—बंगाली नाम।

(म०)—मरहट्टी वा महाराष्ट्र नाम। (पं०)—पंजाबी नाम।

(पा० वा फा०)-पारसीक वा फारसी नाम।(गु०)-गुजराती नाम

(सिं०) —सिन्धी नाम। (मु०) मुलतानी नाम।

(भाव०) भावप्रकाश निघण्टु, (शार्ङ्ग०)—शार्ङ्गधर।

श्रीकैयदेवविरचितः

* पथ्यापथ्यविबोधको ग्रन्थः *

वा

कैयदेवनिघण्टुः ।

देवार्चनम् ।

नत्वैकं विश्वरूपं त्रिभुवनशरणं स्वर्गमोक्षैकहेतुं
शम्भुं वाग्देवतां च व्यवहरति यया विश्वमेतन्नितान्तम् ।
यस्य ध्यानप्रसादात्प्रभवति पुरुषः सर्वकार्यस्य सिद्धिं
कर्तुं तं देववन्द्यं स्फुरदुरवगमस्फारभासं (?) महेशम् ॥ १ ॥

उस एक, विश्वरूप, तीन लोकों के रक्षक, स्वर्ग और मुक्ति के केवल हेतु, शंभु (कल्याणकारक परमात्मा) और विद्या की देवी सरस्वती को, जिससे यह सब जगत् सदा अपना व्यवहार करता है और जिस (परमात्मा) की ध्यानरूपी कृपा से पुरुष सब कामों की सिद्धि कर सकता है, उस देवताओं के पूज्य, स्फुर (?), दुरवगम (दुर्ज्ञेय), स्फारभास (बहुप्रकाशमान), महेश (परमेश्वर) को नमस्कार करके (पुस्तक आरंभ करता हूं) ॥ १ ॥

ग्रन्थकर्तुर्वंशावली ।

भारद्वाजपवित्रगोत्रतिलकः श्रीपद्मनाभोऽभव-
द्वेदव्याकृतिनाटकागमकथालंकारपारंगतः ।
तत्पुत्रो गुणभूषितः समभवत् श्रीशार्ङ्गनामा भिषक्
येन प्राणिगदोऽस्वदैरपहृतोऽसौ सर्वविद्यालयः ॥ २ ॥

भारद्वाज नामक पवित्र गोत्र का भूषण, वेद, व्याकरण, नाटक, आगम (वेद), कथा, अलङ्कार (आदि विद्याओं) में पारंगत एक श्री पद्मनाभ नामक (विद्वान्) था, जिसका

सर्वगुणसम्पन्न पुत्र श्री शार्ङ्ग नाम वैद्य था, जिसने प्राणियों के रोगों को अगदों (औषधों) से दूर किया था, वह सब विद्याओं का आलय (भण्डार) था ॥ २ ॥

तत्पुत्रः कैयदेवोऽस्ति वैद्यविद्याविशारदः ।
नामरत्नाकरो येन कृतोऽन्यो नामसागरः ॥ ३ ॥
नामरत्नाकरोक्तानां द्रव्याणां च रसादिषु ।
ग्रन्थोऽयं क्रियते तेन पथ्यापथ्यविबोधकः ॥ ४ ॥

उस का पुत्र वैद्यविद्या में विशारद (निपुण) कैयदेव है (था), जिस ने नामरत्नाकर वा नामसागर (ग्रन्थ) रचा था। (उस) नामरत्नाकर ग्रन्थ में वर्णित द्रव्यों के रसादि के विवरणार्थ यह पथ्यापथ्य विबोधक नामक ग्रन्थ रचा जाता है ॥ ३–४ ॥

वर्गसंख्यानम् ।

स्यादौषधीधातुधान्यद्रवपक्वान्नमांसगः[१] ।
सविहारो मिश्रकश्च नानार्थो नवमः स्मृतः[१] ॥ ५ ॥

इस ग्रन्थ में ९ वर्ग हैं, (१) ओषधिवर्ग, (२) धातुवर्ग, (३) धान्यवर्ग, (४) द्रववर्ग, (५) पक्वान्नवर्ग, (६) मांसवर्ग, (७) विहारवर्ग, (८) मिश्रकवर्ग और (९) नानार्थवर्ग ॥ ५ ॥

❋ १. ओषधिवर्गः ❋

१. गुडूची ।

Tinospora cordifolia[२].	(हिं.) गिलोय, (बं.) गुलंच,
A well-known climber.	(म.) गुलवेल । सुप्रसिद्ध लता ।
Stomachic, febrifuge, tonic.	दीपन, ज्वरघ्न, रसायन ।

गुडूची[३] कुण्डली सोमा छिन्ना छिन्नोद्भवामृता ।
मधुपर्णी छिन्नरुहा वयःस्था चक्रलक्षणा ॥ ६ ॥

---

१ द, ब—नास्ति । २. यह गुडूचीका 'लेटिन' नाम है, जो आधुनिक वनस्पतिविज्ञानविशारदों ने निर्धारित किया है ।(Cordifolia) शब्द से हृदयाकार पत्र अभिप्रेत है । इस के नीचे दूसरी पंक्ति में इस के स्वरूप (लताकार) का निर्देश है और तीसरी में सुनिर्धारित गुण । इसी तरह आगे भी समझें ।

३. गुडूची दो प्रकार की है, (१) सुप्रसिद्ध लता जो भारतवर्ष में सर्वत्र सुलभ है, इस के अधिक परिचय देने की आवश्यकता नहीं । (२) पिण्ड गुडूची वा पद्मगुडूची (Tinospora tomentosa); यह बंगदेश के जंगलों में कहीं २ मिलती है । इस के काण्ड पर छोटे २ तीक्ष्णाग्र कन्द होते हैं, यह प्रायः दुर्लभ है । गुण में दोनों समान हैं । प्रयोग में गुडूची का काण्ड आता है । आर्द्र काण्ड शुष्क की अपेक्षा अधिक लाभकारी है । इस का स्वरस (Succus) जो काण्ड को कूट कर

चन्द्रहासाऽमृतलता धारा वत्सादिनी वरा।
पिण्डामृता सटीरूपा विच्छिन्ना कंदरोहिणी ॥७॥

पर्याय—(१) गुडूची, कुण्डली (चक्राकार), सोमा (शीतस्वभाव), छिन्ना (कटी हुई), छिन्नोद्भवा (कट कर लगने वाली), अमृता (कभी नष्ट न होने वाली वा अमृतरूप) मधुपर्णी (वीर्य में मधुर शीत पत्रों वाली), छिन्नरुहा (कट कर उगने वाली), वयःस्था (पुरातन वा बहुत काल तक रहने वाली) चक्रलक्षणा (चक्राकार), चन्द्रहासा (चन्द्र पर हंसने वाली ?), अमृतलता (न मरने वाली लता), धारा, वत्सादिनी (अपने बच्चों को खाने वाली), वरा (श्रेष्ठ)। (२) पिण्डामृता (पिण्डगिलोय), सटीरूपा (जटाकार), विच्छिन्ना (कटी हुई), कन्दरोहिणी (कन्द से उगने वाली) ॥ ६–७ ॥

गुडूची मधुरा पाके कषाया कटुका लघुः।
तिक्ता संग्राहिणी हृद्या बल्योष्णा वह्निकृज्जयेत् ॥८॥
दोषकुष्ठकृमिच्छर्दिदाहवातास्रपाण्डुताः।
ज्वरासृक्कामलामेहतृष्णाकासान् रसायनी ॥९॥

गुण—गुडूची (गिलोय) पाक में मधुर, कसैली, कटु, हलकी (शीघ्र पचनेवाली) तिक्त (प्रधान रस), संग्राहिणी (कब्ज़), हृद्य (रुचिकर), बलवर्धक, गरम, और अग्नि दीपक है। यह दोष (त्रिदोष), कुष्ठ (कोढ़), कृमि (पेट के कीड़े), छर्दि (वमन-कै), दाह, वातरक्त, पाण्डुरोग, बुखार, असृक् (रक्तपित्त), कामला (यरकान) प्रमेह, तृष्णा और खांसी को दूर करती है और रसायन है ॥ ८–९ ॥

त्रिदोषघ्नं स्वादु पथ्यं चक्षुष्यं दीपनं लघु।
वयसःस्थापनं मेध्यममृताशाकमुच्यते ॥१०॥

अमृताशाक—(गुडूचीपत्रशाक) त्रिदोषनाशक, मधुर, स्वास्थ्यहित, नेत्र-हित, अग्निसंदीपन, हलका, वयःस्थापक और बुद्धिवर्धक है ॥ १० ॥

वस्त्र में पीड़ने से निकलता है, पूयमेह (Gonorrhoea) में विशेषतः लाभकारी है। स्वरस की मात्रा ६ माषा से १ तोला तक दी जा सकती है। गुडूची ज्वर, आमवात, वातरक्त, प्लीहादि अनेक रोगों में दी जाती है। अनेक क्वाथों, तैलों घृतों और रसों में इसको डाला जाता है। गुडूच्यादि क्वाथ, गुडूच्यादि तैल, गुडूच्यादि लौह इस के सुप्रसिद्ध योग हैं। **गुडूची सत्त्व** (Starch of Gulwel) भी बहुत प्रसिद्ध और लाभकारी द्रव्य है। यह ज्वर, अम्लपित्त, कास, हस्तपाददाह, अतिसार, मूत्रकृच्छ्रादि में दिया जाता है। मात्रा ४ रत्ती से १ माषा तक। यह बाजार से शुद्ध मिलना कठिन है। इस में मक्की का आटा वा अन्य द्रव्य मिला देते हैं। गुडूचीसत्त्व स्वयं ही निकालना चाहिए। विधि यह है, सुपक्व काण्ड को खण्डित करके प्रचुर जल में डाल कर कुछ काल बाद मसल कर जल दूसरे पात्र में गिरा दें। काष्ठ फेंक दें। जल के शान्त होने पर आप एक श्वेत द्रव्य पात्र के तल पर देखेंगे। जल को शनैः निथार कर फेंक दें और श्वेत चूर्ण को धूप में शुष्क करें। यह गुडूचीसत्त्व है।

२. वासकः[1] ।

Adhatoda vasika.
An evergreen shrub.
Expectorant, antispasmodic and alterative.

(हिं.) वांसा, अडूसा, विसूटी, (बं.) बाकस, (म.) अडूलसा । सर्वत्र प्रसिद्ध क्षुप । कफनिष्कासक, कासश्वासहर, रसायन ।

वासाटरूषः सिंहास्यो भिषङ्माताटरूषकः ।
शीतवल्ली सिंहपर्णी मातृका सिंहवल्लिका ।
वृषः सिंही सिंहमुखी वासको वाजिदन्तकः ॥ ११ ॥

पर्याय[2]—वासा (सुगन्धित), आटरूष (अक्रद्ध ?), सिंहास्य (पुष्प सिंह-मुख के सदृश), सिंहपर्णी (पत्र सिंहजिह्वा के समान खर), मातृका (मातृवत् उपकारक), सिंहवल्लिका (शेर की वल्ली), वृष (बलवान्), सिंही (शेरनी), सिंहमुखी, वासक, वाजिदन्तक (घोड़े के दान्त के समान श्वेत पुष्प वाला) ॥११॥

सिंहास्या तुवरा तिक्ता हृद्या स्वर्या हिमा लघुः ।
वातला कफपित्तास्रश्वासकासहरा हरेत् ॥ १२ ॥
ज्वरमेहारुचिच्छर्दिकुष्ठतृष्णाक्षतक्षयान् ।
क्षयघ्नं वातलं पुष्पं वृषजं कफपित्तजित् ॥ १३ ॥

गुण[3]—वासा (पंचांग) कसैला, तिक्त, रुचिकर, स्वरहित, शीत, लघु, वातप्रकोपक है । यह कफ, पित्तास्र (रक्तपित्त), श्वास (दमा), कास, ज्वर, मेह अरुचि, छर्दि (वान्ति), कुष्ट (कोढ़), तृष्णा, क्षत (ज़खम), और क्षय (क्षीणबलता वा राजयक्ष्मा) को दूर करता है ॥१२-१३॥

---

१ वासा भारत में सब जगह परन्तु पर्वतीय देशों में विशेषतः बाहुल्य से पाया जाता है। इस का क्षुप ४-५ फुट ऊंचा होता है, बहुत शीघ्र फैल जाता है, इस का सुन्दर बाड़ बन सकता है । इस के पत्ते अच्छे लम्बे चौड़े होते हैं । उन से रस पर्याप्त निकल सकता है । वासक पुष्प श्वेत और सिंह के खुले हुए मुख के समान होता है। वासक के पत्र और मूल दोनों काम आते हैं । पत्र का स्वरस मधुसहित कास, श्वास, रक्तपित्त, क्षय और कृमिरोग में लाभकारी है । शुष्क पत्र की धूम्रवर्त्ति (Cigarette) श्वास के लिए उपयोगी है । मूल क्वाथों और चूर्णों में काम आता है। वासावलेह रक्तपित्त का प्रसिद्ध योग है। अभिष्यन्द में पुष्प नेत्रों पर बांधे जाते हैं। वासक (पञ्चांग) जलाकर वासाक्षार बनाया जाता है।

२. एक वस्तु के अनेक नाम, गुण, आकृति, देशादि के अनुसार शास्त्र में व्यवहारार्थ दिए जाते हैं, परन्तु नवीन सभ्यता इस पर्यायबाहुल्य के विरुद्ध है । आज कल एक वस्तु को एक भाषा में एक नाम देना उत्तम समझा जाता है । ३. गुण से यहां द्रव्य के सामान्य लाभ अभिप्रेत हैं । विशिष्ट भागों के लाभ पृथक् निर्देश किए गए हैं ।

३. बिल्वः।

Ægle Marmelos.	बेल, बिल
A large spiny tree.	वृक्ष, फल बृहत गोलाकार।
Stomachic, & astringent.	दीपन, पाचन, ग्राही।

लक्ष्मीफलो हृद्यगन्धो गन्धगर्भो महाफलः।
शैलूषः श्रीगन्धफलो मालूरो गोहरीतकी॥ १४॥
वातसारो नीलमल्ली सत्यधर्मा धरारुहः।
महाकपित्थो धात्रीको रिचीकः सर्वरूपवान्॥ १५॥

१ बिल्व एक बृहत् वृक्ष है, जो सर्वत्र सुलभ है। इस की शाखा पर लम्बे २ कांटे होते हैं, त्वक् स्थूल पीतवर्ण, तीन २ पत्र एक वृन्त पर लगे रहते हैं। बिल्व फल प्रायः बारह मास ही ताजा मिल सकता है। बिल्व दो प्रकार का है, (१) क्षुद्र जो लगाए बिना ही जंगलों में मिल जाता है। इसका फल छोटा और कांटे बड़े तीक्ष्ण होते हैं। (२) महान्। यह लगाया जाता है। इस के फल बड़े और कांटे छोटे और थोड़े होते हैं। औषध में बिल्व के पत्ते, फल, मूल और छाल काम आते हैं। **बिल्वपत्र** का स्वरस कास, श्वास, प्रतिश्याय, वातकफ ज्वर और शोथ में उपयोगी है। नेत्र में डालने से अभिष्यन्द को दूर करता है। पत्रों का स्वेद छाती के शूल में वा श्वासादि में गुणप्रद है। पत्र क्वाथ भी उपरोक्त गुण करता है। **बिल्वफल** आम और पक्व दोनों अवस्थाओं में प्रयुक्त होता है। **आमफल** ग्राही है, अतः अतिसार और पेचिश में बहुत लाभकारी है। ताज़े फल को पुटपक्व करके इस का स्वरस देना चाहिए। उस को खण्डित करके शुष्क होने पर बाजार में 'बेलगिरी' के नाम से बेचा जाता है। इस अभिप्राय के लिए सदैव कच्चा फल ही लेना चाहिए। ऊपर का छिलका उतार देना चाहिए। बेलगिरी का चूर्ण (३ माषे) अतिसार, प्रवाहिका और ग्रहणी में दिया जाता है। समभाग शर्करा मिला लें, तो अच्छा है। बेलगिरी को अष्टगुण जल में उबाल कर, क्वाथ छान कर, उस में बिल्व से चतुर्गुण खांड मिला कर शर्बत बनाएं, यह **बिल्वपानक** (Bael Syrup) आध छटांक की मात्रा में दिन में कई वार पीने से अतिसार, अग्निमान्द्यादि रोगों को दूर करता है। जिन्हें सदैव पतली टट्टी आती हो, उन के लिए बिल्वपानक वा चूर्ण लाभकारी है। कच्चे फल को उबाल कर उस का मुरब्बा भी तय्यार किया जाता है, जो अत्यन्त ग्राही और अग्निदीपन है। बिल्व का पक्व फल कषाय, मधुर और मृदुरेचक है। उस का रस निकाल कर दही और खांड से मिलाकर बड़ा स्वादु पानक बनता है, जो मन्दाग्नि पुरुषों के लिए अत्युत्तम है। इसे प्रातः काल पीना चाहिए। शुष्क पक्व फल का कोई लाभ नहीं। दशमूल में बिल्वमूलत्वक् एक प्रधान अङ्ग है, परन्तु उस के दुर्लभ होने से काण्ड-त्वक् ही डाली जाती है। मलयदेश (मालाबार) में दशमूल में त्वक्रहित बिल्वमूल डालते हैं। बिल्वमूलत्वक् का काढ़ा ज्वर, अतिसार और हृदयकम्प में उपयोगी है।

बिल्वः शलाटुः शांडिल्यः कर्करो ग्रन्थिलो मतः ।
सदाफलः कृष्णमुखः कंटको नीलमल्लिका ।
बाले चास्य फले बिल्वकर्कटी बिल्वपेषिका ॥ १६ ॥

बिल्व के पर्याय—लक्ष्मीफल (लक्ष्मी शोभार्थे-सुन्दरफल) हृद्यगन्ध (अच्छी गन्धवाला), गन्धगर्भ (गन्धमय), महाफल (बड़ाफल), शैलूष, श्रीगन्धफल (श्री सुन्दर), मालूर, गोहरीतकी, वातसार, नीलमल्ली, सत्यधर्मा, धरारुह (भूमि पर होने वाला), महाकपित्थ (बड़े कैथ के समान), धात्रीक, रिचीक, सर्वरूपवान्, बिल्व, शलाटु, शाण्डिल्य, कर्कर, ग्रन्थिल (गांठदार) सदाफल, कृष्णमुख, कंटक (कांटेदार), नीलमल्लिका। कच्चे बेलफल को बिल्वकर्कटी वा बिल्वपेशिका (बिल्वखण्ड) कहते हैं १४-१६

श्रीफलस्तुवरस्तिक्तो ग्राही रूक्षोऽग्निपित्तकृत् ।

बिल्व के सामान्य गुण—श्रीफल (बिल्व) तुवर (कषाय), तिक्त, ग्राही (काबिज़) रूक्ष और अग्निपित्तकारक है ॥

वातश्लेष्महरं तस्य पत्रं **संग्राहि वातजित् ।**
जटा दोषवमीकृच्छ्रशूलघ्नी मधुरा लघुः ॥ १७ ॥
कफवातामशूलघ्नी ग्राहिणी बिल्वपेशिका ।
काण्डं **कासामवातघ्नं हृद्यं रुच्याग्निवर्धनम् ॥ १८ ॥**

बिल्व के पत्रादि भागों के गुण—**बिल्वपत्र** वातकफहर, संग्राही और वातजित् है । **बिल्वजटा** दोष, वमि (कै), मूत्रकृच्छ्र, और शूल का नाशक और मधुर तथा लघु है । **बिल्वपेशिका** (बेलगिरि) कफ, वात, आम और शूल को हरती है और ग्राही है । **बिल्वकाण्ड** (लकड़ी) कास, आम और वात को नाश करता है, हृद्य, रुचिवर्धक और अग्निदीपक है ॥ १७–१८ ॥

बालं[1] कटु कषायोष्णं तिक्तं दीपनपाचनम् ।
स्निग्धं तीक्ष्णं लघु ग्राहि हृद्यं वातकफापहम् ॥ १९ ॥

बाल (आम) बिल्व के गुण—कटु, कषाय, उष्ण, तिक्त, दीपनपाचन, स्निग्ध, तीक्ष्ण, लघु, ग्राही, हृद्य, और वातकफनाशक ॥ १९ ॥

पक्वं **विदाहि विष्टंभि मधुरानुरसं गुरु ।**
दोषलं दुर्जरं पूतिवातं ग्राह्यग्निसादनम् ॥ २० ॥

पक्व बिल्व—विदाही (दाह करने वाला), विष्टम्भी (काबिज), मधुर अनुरस (उपरस) वाला, गुरु (भारी), दोषकारक, दुर्जर (दुष्पाच्य), पूतिवात (खराब वायु उत्पन्न करने वाला), ग्राही और अग्निसादक (मन्दाग्नि करने वाला) है ॥ २० ॥

निहन्यात् बिल्वजं पुष्प**मतिसारं तृषां वमिम् ॥ २१ ॥**

बिल्व पुष्प—अतिसार, तृष्णा और वमि को नाश करता है ॥ २१ ॥

बिल्वमज्जाभवं तैलमुष्णं वातहरं परम् ॥२२॥

---

[1] व-बिल्वं ॥

बिल्वमज्जा का तैल[1] (जो उसे पीड़ने से निकलता है)—बहुत गरम और वातनाशक है ॥२२॥

कांजिके साधितं बिल्वमग्निसंदीपनं परम्।
हृद्यं रुचिकरं प्रोक्तमामवातविनाशनम् ॥ २३ ॥

कांजी में सिद्ध विल्व उत्तम अग्निदीपक, हृद्य, रुचिकर और आमवात नाशक कहा गया है ॥ २३ ॥

४. अग्निमंथः[2]।

Premna Spinosa.	(हिं०) अरणी, अगेथु, (बं०) गणियारि, अग्गान्त, (गु०) एरण।
An evergreen tree.	वृक्ष, पत्र छोटे गोल दन्दानेदार।
Bitter, Stomachic, and febrifuge.	तिक्त, दीपनपाचन, ज्वरघ्न, रसायन।

अग्निमंथोऽरणिः केतुस्तर्क्कारी वैजयन्तिका।
मथनो वह्निमथनो गणिका गणिकारिका।
गणिका पावकोऽह्वन्या (?) जयन्ती विजया जया ॥ २४ ॥

पर्याय—अग्निमंथ (जिस के मथने से अग्नि पैदा होती है), अरणि, केतु, (झंडा), तर्कारी, वैजयन्तिका (विजय का झंडा), मथन, वह्निमथन, गणिकादि ॥२४॥

तर्क्कारी कटुका तिक्ता तुवरा मधुराग्निदा।
वीर्योष्णा हरते वातकफश्वयथुपांडुताः।
अग्निमंथो गुणैस्तद्वद्विशेषाद्वातशोफहा[3] ॥ २५ ॥

गुण—तर्कारी (अग्निमंथ की जाति का वृक्षविशेष) कटु, तिक्त, तुवर (कषाय), मधुर और अग्निदीपक है। इस का वीर्य (तासीर) गरम है। यह वात, कफ, शोथ और पांडुरोग को नाश करती है। अग्निमन्थ (अरणि) के गुण तर्कारी के समान हैं, विशेषतः वातशोथनाशक है ॥ ॥ २५ ॥

---

१. कहीं २ यह भी प्रथा है कि कच्चे बेल का गूदा तिल तैल में डालकर रख दिया जाता है। कुछ दिन बाद तैल को छानकर स्नान से पूर्व शरीर पर मलते हैं, यह विशेष करके पाददाह में बहुत लाभकारी है। डाक्टर लोग बेल का टिंकचर (Tincture of Bael) प्रयोग करते हैं। बेल का मुरब्बा अतिसार और प्रवाहिका में दिया जाता है। २. अग्निमन्थ पर्वतों वा समुद्रतट पर एक छोटा सा क्षुप वा वृक्ष होता है। पत्रों से एक विशेष तीव्र गन्ध आती है। पत्र अति मृदु। व्यवहार में इसका मूल और पत्र वा पंचांग आता है। पत्रक्काथ आमवात, कफज्वर और प्रतिश्याय में देते हैं। यह दशमूल का एक अंग है। ३. ब—वातपित्तहा।

९. काश्मरी[1]।

Gmelina arborea. | (हिं०) खंभारी, कुमेर, (बं०)गाम्भार,
A big deciduous tree. | (म०) शिवणगंभारी, शवन्य ।
Demulcent, stomachic, | वृक्ष, पत्र मृदु विशाल ।
and tonic. | स्निग्ध, पाचक, रसायन ।

श्रीपर्णी सर्वतोभद्रा काश्मीरी काश्मरी मुदी ।
गंभारी कट्फला हीरा काश्मर्या मधुपर्णिका ।
कृष्णवृन्ता भद्रपर्णी कुंभारी सफला मही ॥ २६ ॥

गंभारी के पर्याय—श्रीपर्णी (सुन्दर पत्रों वाली), सर्वतोभद्रा (सब प्रकार से श्रेष्ठ), काश्मीरी (काश्मीरदेशज), काश्मरी, मुदी, गंभारी, कट्फला (वा कट्फला), हीरा, काश्मर्या, मधुपर्णी (मीठे पत्रों वाली), कृष्णवृन्ता, भद्रपर्णी, कुंभारी, सफला और मही ॥ २६ ॥

श्रीपर्णी मधुरा तिक्ता वीर्योष्णा तुवरा गुरुः ।
दीपनी पाचनी मेध्या भेदनी भ्रमशोषजित् ।
दोषतृष्णामशूलार्शोविषदाहज्वरापहा ॥ २७ ॥

गुण—गंभारी मधुर, तिक्त, वीर्योष्ण, तुवर, गुरु, दीपनपाचन, मेध्य (बुद्धिवर्धक), भेदनी (रेचक), भ्रम और शोष को जीतने वाली, दोष, तृष्णा, आम, शूल, अर्श (बवासीर), विष, दाह और ज्वर को नाश करने वाली है ॥२७॥

तत्पुष्पं मधुरं शीतं तिक्तं संग्राहि वातलम् ।
कषायं मधुरं पाके पित्तास्रासृग्दरापहम् ॥ २८ ॥

गंभारीपुष्प—मधुर, शीत, तिक्त, संग्राही, वातल, कषाय, तथा विपाक में मीठा हैं मधुरपाक और रक्तपित्त और रक्तप्रदर को नाश करता है ॥ २८ ॥

कफपित्तहरं तस्याः फलं स्निग्धं हिमं गुरु ।
स्वादु पाकरसं हृद्यं कषायाम्लं रसायनम् ॥ २९॥
बृंहणं शुक्रलं केश्यं मेध्यं मूत्रविबन्धनुत्
हन्याद्वाततृष्णादाहपित्तरक्तक्षतक्षयान् ॥३०॥

गंभारी फल—कफपित्तहर, स्निग्ध, शीत, गुरु, पाक और रस में मधुर, हृद्य, कषाय, अम्ल (खट्टा), रसायन (बलप्रद), बृंहण (शरीर को बृहत् करने वाला), शुक्रल

---

१ गंभारी का वृक्ष पर्वतों पर सर्वत्र विशेषतः कश्मीर में बहुत होता है। अतः इस का नाम काश्मरी है। शीत काल में इस के पत्ते झड़ जाते हैं। इसका पुष्प पीतवर्ण वासक पुष्प के सदृश होता है। फल पीत और मौलसरी के फलके समान, और स्वाद में मधुराम्ल। पत्र पीपल वा वड़ के समान। व्यवहार में पत्र, त्वक् मूल और फल आता है। पत्रस्वरस मूत्रकृच्छ्र और सूजाक में दिया जाता है। मूल दशमूल का अंग है, परन्तु उसके न मिलने से गंभारीत्वक् 'गंभारी छाल' ही डालते हैं।

(वृष्य), केश्य (केशों के लिए हितकर), मेध्य (मेधाजनक), मूत्रविबन्धनुत् (मूत्रकृच्छ्र नाशक वा मूत्ररोग तथा विबन्ध नाशक) और वायु, तृष्णा, दाह, रक्तपित्त, व्रत और क्षय को हरता है ॥ ३० ॥

६. पाटला काष्ठपाटला च[1] ।

Stereospermum suaveolens.	(हिं०) पाढल, (बं०) पारुल,
A large high tree.	(म०) पाडल । उच्च वृक्ष,
Flowers cooling & diuretic.	पत्र बिल्ववत् । पुष्प शीत, मूत्रल ।

पाटला पाटलिः कामदूतिका कालवृन्तिका ।
वसन्तदूती कुम्भीका स्थाल्यमोघांबुवासिनी ।
कुंभीपुष्पी कृष्णवृंतकुसुमा ताम्रपुष्पिका ॥ ३१ ॥

पाटला के पर्याय—पाटला (रक्तपीतवर्ण), पाटलि, कामदूतिका (कामदेव का हरकारा), कालवृन्तिका (कृष्ण वृन्त वाली), वसन्तदूती, कुंभीका (छोटा घड़ा), स्थाली, अमोघा, अम्बुवासिनी (जलदेशज), कुम्भीपुष्पी (कुम्भाकृति पुष्प वाला—trumpet flowered) कृष्णवृन्तकुसुमा, ताम्रपुष्पी ॥ ३१ ॥

अन्या श्वेता श्वेतकुम्भीका[2] काचस्थाली फलेरुहा ।
श्वेतकाष्ठा कुबेराक्षी पाटला काष्ठपाटला ॥ ३२ ॥

श्वेत पाटला के नाम—श्वेतकुम्भी, काचस्थाली (काचवत् श्वेत स्वच्छ पुष्प वाली), कुबेराची, पाटला, काष्ठपाटला ॥ ३२ ॥

पाटला तुवरानुष्णा तिक्ता दोषत्रयापहा ।
अरुचिश्वासशोफार्शः छर्दिहिध्मतृषापहा ॥ ३३ ॥

गुण—पाटला तुवर (कषाय), अनुष्ण (शीत वा अल्प गरम), तिक्त, त्रिदोषनाशक, अरुचि, श्वास, शोथ (सोजिश), अर्शः, छर्दि, हिध्म (हिक्का) और तृष्णा को हरती है ॥ ३३ ॥

पुष्पं कषायमधुरं हिमं हृद्यं कफास्रनुत् ॥ ३४ ॥

पाटलापुष्प—कषाय, मधुर, शीत, हृद्य (रुचिकर), कफ तथा रक्तपित्त का नाशक है ॥

हिध्मपित्तातिसारघ्नं फलं तिक्तं हिमं गुरु ।
कषायमधुरं कृच्छ्ररक्तपित्तानिलापहम् ॥ ३५ ॥

पाटलाफल—(जो अमलतास के फल की तरह लम्बा और जिस के अन्दर पर्वमाला होती है), हिध्म (हिक्का) और पित्तातिसार (गरमी के दस्तों) का नाशक, तिक्त शीत, गुरु, कषाय, मधुर, कृच्छ्र (मूत्र का कष्ट से आना-Dysuria) रक्तपित्त (नासादि से रक्त का आना) और वायु का नाशक है ॥ ३५ ॥

---

१. पाटला दो प्रकार का होता है, रक्तपुष्प वाला और श्वेतपुष्प वाला । जलाढ्य स्थानों में बहुत होता है। इसका फल अमलतास के फल जैसा गोल लम्बा होता है । भीतर से स्थूल पर्वों की माला निकलती है। पाटला की छाल दशमूल में पड़ती है । पाटलापुष्प का स्वरस मधुमिश्रित हिक्का में लाभकारी है । २. द—०कुन्तीका ।

७. श्योनाकः[1] ।

Oroxylum indicum.
A high tree.
Bark anodyne, diaphoretic and anti-rheumatic.

[हिं०] सोनापाठा, अरलु, टेंटु, (बं०) सोना, (म०) टेंटु, (गु०) अरडूशो (पं०) तलवार फली ।
वृक्ष, पत्र बड़ा बहुत कटा हुआ ।
शूलहर, स्वेदल, आमवातहर ।

टिंटुर्भूतो बर्हिजंघः कट्वंगः प्रियजीवकः ।
फल्गुवृंतो दीर्घवृंतः श्योनाकः शुकनासिकः ॥ ३६ ॥
कटंभरो भूतवृक्षो भल्लूकष्टिंटुकोऽरलुः ।
शालूको विजनो[2] भल्लः पृथुशिंबः कुटंनटः ॥ ३७ ॥

श्योनाक के नाम—टेंटु, भूत, बर्हिजंघ (मोर की टांगों के सदृश), कट्वंग (कटु अंग वाला), प्रियजीवक, फल्गुवृन्त (फगवाड़े के वृन्त वाला), दीर्घवृन्त, श्योनाक, शुकनासिका (तोते की नासा), कटंभर, भूतवृक्ष, भल्लूक (भालु), टिंटुक, अरलु, शालूक, विजन (अकेला), भल्ल (भाला), पृथुशिम्ब (बड़ी फली वाली), कुटंनट ॥३६–३७॥

श्योनाकः कटुकः पाके कषायतिक्तको हिमः ।
संग्राही दीपनः कासश्लेष्मपित्तामवातजित् ॥३८॥

सामन्य गुण—श्योनाक कटुपाकि, कषाय, तिक्त, शीत, संग्राही और दीपन है, तथा कासश्वास, पित्त, आमदोष और वायु को हरता है ॥३८॥

टिंटुकस्य फलं बालं रूक्षं वातकफापहम् ।
हृद्यं कषायमधुरं लघु रोचनदीपनम् ॥३९॥

श्योनाक का कचा फल रूक्ष (खुशक), वातकफनाशक, हृद्य, कषाय, मधुर, लघु, रुचिकर और दीपक है ॥३९॥

गुल्मार्शःकृमिकृत्प्रौढं गुरु वातप्रकोपनम् ॥४०॥

पक्कफल गुल्म, अर्श, और कृमि को उत्पन्न करता है, तथा गुरु और वातप्रकोपक है ॥४०॥

वक्तव्य—श्योनाक का फल २-३ फुट लम्बा तलवार की तरह चपटा और मुड़ा हुआ होता है । उस में से श्वेत सूक्ष्म तन्तु वा रुई से आवृत्तबीज निकलते हैं ।

---

१. रूक्ष प्रदेश को छोड़कर भारत में सर्वत्र विशेषकर पर्वतों पर बहुत होता है । वृक्ष प्रायः ३०–४० फुट ऊंचा । शाखा पत्रादि का झुंड केवल शिखर पर । फल तलवार जैसा, भीतर से रुई और क्षुद्र बीज निकलते हैं । श्योनाक की छाल दशमूल का अंग है । छाल का काढ़ा गंठिया और कासश्वास में लाभकारी है, तथा पसीना लाता है । २. यू–शल्लूको वेजनः ।

८. शालपर्णी[1] ।

Desmodium gangeticum. A slender shrub. Leaves like those of Sal tree. Febrifuge & anticatarrhal.	(हिं०) सरिवन, (बं०) शालपान, (म०) सालवन् । क्षुप, पत्र शालवृक्षवत् चौड़े गोल । ज्वरप्रतिश्यायहर, त्रिदोषघ्न ।

विदारिगन्धांशुमती महाक्लीतनिका स्थिरा ।
शालिपर्णी चातिरुहा ध्रुवा सौम्याखुपर्णिका[2] ।
त्रिपर्णी पर्णिनी पर्णी पीतनी दीर्घमूलिका ॥४१॥

पर्याय—विदारीगन्धा, अंशुमती, महाक्लीतनिका, स्थिरा, शालिपर्णी (शाल वृक्ष के समान गोल चौड़े पत्तों वाली), अतिरुहा (बहुत होने वाली), ध्रुवा (स्थिर, दृढ़), सौम्या (शीतगुणप्रधान), त्रिपर्णी (ढाकवत् ३ तीन पत्रों वाली), पर्णिनी (पत्रमय), पर्णी, पीतनी (पीतवर्ण), दीर्घमूलिका (लंबी जड़ों वाली) ॥४१॥

शालिपर्णी स्वादु तिक्ता वृष्योष्णा बृंहणी गुरुः ।
रसायनी ज्वरश्वासविषदोषत्रयापहा ॥४२॥

गुण—शालपर्णी (सालवन), स्वादु (मधुर), तिक्त, वृष्य (वीर्यवर्धक), उष्ण, बृंहणी (पुष्टिकर), गुरु (भारी) और रसायन है, तथा ज्वर, श्वास, विष और त्रिदोष को नाश करती है ॥ ४२ ॥

६. पृश्निपर्णी[3] ।

Uraria lagopoides. A tender shrub. Leaves similar to D. gangeticum. Alterative and tonic.	(हिं०) पिठवन, (बं०) चाकुले, (म०) पीठवन, (गु०) पृष्ठिपर्णी । मृदु क्षुप, पत्र शालपर्णीवत् परन्तु छोटे । त्रिदोषशामक, रसायन ।

पृष्णिपर्णी पृथक्पर्णी क्लीतनी धावनी गुहा[4] ।
सिंहपुच्छी क्रोष्टुपुच्छी कलशी स्निग्धपर्णिका ।
शृगालविन्ना धृतिला लांगलीपर्णिका मता ॥ ४३ ॥

पर्याय—पृष्णिपर्णी (छोटे पत्तों वाली शालपर्णी की अपेक्षा), पृथक्पर्णी (पृथक् २ पत्तों वाली), क्लीतनी, धावनी, गुहा, सिंहपुच्छी (सिंहपुच्छ के सदृश शिखर वाली), क्रोष्टुपुच्छी (गीदर की पूंछ वाली), कलशी, स्निग्धपर्णिका (चिकने पत्तों वाली), शृगालविन्ना, धृतिला, लांगलीपर्णिका (लांगली जैसे पत्तों वाली) ॥४३॥

---

१. शालपर्णी का क्षुप २-३ फुट ऊंचा, शाखों पर रोम और पत्र घन हरित वर्ण के होते हैं । जलाढ्य स्थान में बहुत उगती है । व्यवहार में पंचांग आती है । दशमूल का अंग है । इस का क्वाथ सन्निपातिक ज्वरों, शोथादि में लाभकारी है । २. द—०खुपर्णी । ३. पृष्णिपर्णी शालपर्णी से छोटी परन्तु बहुत कुछ उस के सदृश है । यह भी दशमूल का अंग है । ४. व—नास्ति ।

पृष्णिपर्णी त्रिदोषघ्नी वृष्योष्णा मधुरा सरा ।
हंति दाहज्वरश्वासरक्तातिसारतृड्वमीः ॥४४॥

गुण—पिठवन त्रिदोशघ्न, वृष्य, उष्ण, मधुर, और सरा (रेचक) है । दाह (जलन), ज्वर, श्वास, रक्तातिसार, तृष्णा, और वमि को दूर करती है ॥४४॥

१०. बृहती[1] ।

Solanum indicum.	(हिं०) कटाई, बड़ी कटेरी, वरहंटा,
The Wild Brinjal.	(बं०) व्याकुड़, तित् बेगुन,
A prickly shrub.	(म०) डिंगनी, डोरली ।
Diaphoretic, stimulent	जंगली बैंगन, कांटेदार झाड़ी ।
and diuretic.	स्वेदल, उष्ण, मूत्रल, कासश्वासहर ।

वार्त्ताकी बृहती सिंही स्थूलकंटा महोटिका ।
कंटकी विशदाक्रान्ता महती राष्ट्रिका कुली ।
भंटाकी स्थूलभंटाकी वहुपत्री विधायका ॥ ४५ ॥

पर्याय—वार्त्ताकी (बैंगन की जाती वाली), बृहती (बड़ी), स्थूलकंटा (मोटे कांटों वाली), राष्ट्री (राजवंशीय, बड़ी), कुली (बड़े कुल वाली), बहुपत्री (वहुत पत्रों वाली), इत्यादि ॥ ४५ ॥

बृहती कटुका तिक्ता सोष्णा वातकफापहा ।
दीपनी पाचनी हृद्या ग्राहिणी ज्वरकुष्ठनुत् ।
श्वासास्यमलवैरस्यकासारोचकशूलजित् ॥ ४६ ॥

गुण—कटु, तिक्त, उष्ण, वातकफनाशक, अग्निवर्धक, पाचक, रुचिकर, ग्राही (काविज), ज्वर (विशेषतः कफवातज्वर), कुष्ठ (कोढ़), श्वास, आस्यमल (मुख का मल), आस्यवैरस्य(मुंख का वेस्वादापन), कास, अरुचि और शूल को हरती है ॥४६॥

११. कंटकारी[2] ।

Solanum xanthocarpum.	(हिं०) कटेरी, कटाई, भटकटैया,
A very prickly herb.	(बं०) कंटकारी, (म०) भूरिंगणी,
Expectorant, stimulent	(पं०) कंडियारी ।
and anticatarrhal.	सर्वत्र प्रसिद्ध कांटेदार हरितक ।
	कफनिष्कासक, कासप्रतिश्यायहर ।

१. यह एक प्रकार का जंगली बैंगन है । इसके पत्र और शाखाएं बैंगन के सदृश सकंटक होती हैं । फल आमला के समान गोल पीले और सूक्ष्म बीजों से पूर्ण । व्यवहार में पांचों अंग आते हैं । दशमूल में भी पड़ती है । बृहतीक्वाथ कासश्वास, और प्रतिश्याय में लाभकारी है । बीज बहुत गरम हैं, उनका लेप इन्द्रिय पर बृद्धयार्थ कराया जाता है । २. कंटकारी का वर्णन तथा नोट अगले पृष्ठ पर देखो ।

कंटकारी[1] कंटकिनी कंटाली क्षुद्रकंटकी ।
प्रचोदनी बहुगुहा कुली क्षुद्रा निदिग्धिका ।
वार्त्ताकी धावनी व्याघ्री दुःस्पर्शा दुःप्रधर्षिणी ॥ ४७ ॥

पर्याय—कंटकारी (कांटों वाली), कंटकिनी (कांटेदार), कंटाली (कंडियारी), क्षुद्र कंटकी (छोटी कटेरी), प्रचोदनी (प्रेरक, चुभने वाली) बहुगुहा (बहुत गढ़ों वाली), क्षुद्रा (छोटी), दुःस्पर्शा (पकड़ने में कठिन), दुःप्रधर्षिणी (बुरी तरह लड़ने वाली) ॥ ४७ ॥

सितसिंही चन्द्रपुष्पा क्षुद्रमाता प्रियंकरी ।
दुर्लभा वनजा क्षुद्रा दूतिका श्वेतलक्ष्मणा ॥ ४८ ॥

श्वेत कंटकारी के पर्याय—सितसिंही (सफेद शेरनी), चन्द्रपुष्पी (श्वेत पुष्प वाली), दुर्लभा (पकड़ने वा मिलने में कठिन), वनजा (जंगली), श्वेतलक्ष्मणा (श्वेत लक्ष्म चिन्हों वाली) ॥ ४८ ॥

कंटकारी कटुस्तिक्ता रूक्षोष्णा भेदिनी लघुः ।
दीपनी पाचनी हन्यात्कफवातज्वरारुचीः ।
हृद्रोगश्वासकासाश्मपार्श्वरुक्कृच्छ्रपीनसान् ॥ ४९ ॥

गुण—यह कटु, तिक्त, रूक्ष, गरम, भेदनी (रेचनी), हलकी, दीपन और पाचन है, तथा कफवात, ज्वर, अरुचि, हृदय के रोग, श्वास, कास, अश्म (पत्थरी), पार्श्वरुक् (पसली का दर्द), कृच्छ्र (मूत्रकृच्छ्र) और पीनस (जुकाम) को हरती है ॥४९॥

तयोः फलं विपाके च कटुकं कटुकं रसे ।
भेदनं रोचनं हृद्यं तिक्तं पित्ताग्निकृल्लघु ।
हन्यात् श्लेष्ममरुत्कण्डूकासमेदःक्रमिज्वरान् ॥ ५० ॥

दोनों कटेरियों के फल—रस और विपाक में कटु, रेचक, रुचिकर, हृद्य, तिक्त, पित्त और अग्नि को बढ़ाने वाले और हलके होते हैं । कफवात, कण्डू (खुजली), कास, मेद (चरबी), पेट के कीड़े और ज्वर को हरते हैं ॥ ५० ॥

तथा च तन्त्रान्तरे (किसी अन्य ग्रन्थ में) ।

सिंही च बृहती चैव कंटकारी निदिग्धिका ।
वल्लीवृन्तबृहत्यौ च श्वेताऽलाबुफला तथा ॥ ५१ ॥

---

१. यह शाकवत् भूमि पर फैलती है, इसके पत्ते काफी लम्बे चौड़े होते हैं, परन्तु अत्यन्त कांटेदार । इसके फल गोल, पीले, नीले वा श्वेत होते हैं । इसकी मूल वा पंचांग का क्वाथ जुकाम, खांसी और दमा को दूर करता है । इसमें पिपली और मधु मिला लेना चाहिये । कंटकारी दशमूल का अंग है । निदिग्धिकादिक्वाथ और कंटकारीघृत प्रसिद्ध योग हैं । बीज बहुत गरम हैं और रजःशोधन वा गर्भपात कराने में काम आते हैं ।

तथैवाम्लबृहत्यश्च बृहती जलजा तथा।

अन्याः स्थूलबृहत्यश्चै (?) कादशोदीरिताः ॥ ५२ ॥

बृहतीभेद—सिंही, बृहती, कंटकारी, निदिग्धिका, वल्लीबृहती, वृत्रबृहती, श्वेत-बृहती, कद्दू के तुल्य फलवाली, अम्लबृहती, जल बृहती, और स्थूल बृहती—यह बृहती (वा कंटकारी) के ११ भेद हैं ॥ ५१-५२ ॥

सिंहीबृहत्यौ विज्ञेये रसतः कटुतिक्तके।

कफवातहरे तत्र सिंही सोष्णा तु पित्तनुत् ॥ ५३ ॥

सिंही और **बृहती** दोनों रस में कटु, तिक्त तथा वातकफनाशक हैं, उन में से सिंही गरम और पित्त को निकालने वाली है ॥ ५३ ॥

निदिग्धिकाकंटकार्योः फलं सोष्णं तयोरपि ॥ ५४ ॥

निदिग्धिका और **कंटकारी** दोनों के फल गरम हैं ॥ ५४ ।

कासश्वासापहा तत्र श्वेता चैव[1] तयोर्वरा।

शेषा बल्याश्च चक्षुष्या वातपित्तनिबर्हणाः।

श्लेष्मलाः कामजनना[2] मधुरा गुरु बृंहणाः ॥५५॥

श्वेत कंटकरी—खांसी और दमा को हरती है, और उन दोनों में श्रेष्ठ है। बाकी सब बलवर्धक, नेत्रहित, वातपित्तनाशक, कफकर, कामोत्पादक, मधुर, भारी और पुष्टिकारक हैं ॥५५॥

श्वेताफलं भेदि निहन्ति कासश्वासक्षयार्शःकृमिवातरोगान्।

पित्तप्रदं वह्निकरं कटूष्णं[3] क्षारं कषायं कटुकं कफघ्नम् ॥५६॥

श्वेत कंटकरी का फल—रेचक है, और खांसी, दमा, चय, अर्श (बवासीर) पेट के कीड़े तथा वायुरोगों को हरती है। यह पित्तकर, अग्निवर्धक, कटु, उष्ण, खारा, कसैला, (विपाक में) कटु, और कफनाशक है ॥५६॥

सिंहीफलं कोमलमग्निसादश्वासत्रिदोषान् हरते लघूष्णम्।

रुचिकृद्गुरु[4] विष्टंभि दग्धभूबृहतीफलम् ॥५७॥

फलमम्लबृहत्यास्तु पित्तश्लेष्मकरं लघु।

अम्लं रुचिकरं हृद्यं वातघ्नं कृमिनाशनम्।

वातपित्तप्रशमनमभिष्यन्दकरं गुरु ॥५८॥

सिंही (बृहती) का कोमल फल—अग्निमान्द्य, दमा, और तीनों दोषों को ठीक करता है, तथा हलका और गरम है। **दग्धभूमि** में उत्पन्न हुई बृहती का फल रोचक, भारी और आध्मानकारक है। **अम्लबृहती** का फल पित्तकफकारक, हलका, खट्टा, रोचक, हृद्य, वातप्रशमक, और कृमिनाशक है। वह वातपित्त को शान्त करता है, क्लेदकारक और भारी है ॥५७-५८॥

---

१. ब—तत्र। २. द—किट्टजनना। ३. यू—कटूम्लं। ४. ब—रुचिकृल्लघु॥

बल्यं कफहरं हृद्यं नादेयबृहतीफलम् ॥५९॥
श्लेष्मलं सृष्टविण्मूत्रं शीतलं गुरु बृंहणम् ।
वातपित्तहरं वृष्यमनल्पबृहतीफलम् ॥६०॥
वल्लीसिंहीफलं श्लेष्मकरं गुर्वग्निमान्द्यकृत् ।
आमकृद्वाबलं कण्डूजननं च प्रसेककृत् ॥६१॥

नादेयबृहती—(जलबृहती) का फल बलवर्धक, कफनाशक, और रोचक है। अनल्पबृहती (स्थूल बृहती) का फल श्लेष्म, विष्ठा और मूत्र को उत्पन्न करने वाला, शीतल, भारी, पुष्टिकर, वातपित्तनाशक और वीर्यवर्धक है। **वल्ली बृहती और सिंही बृहती** के फल कफकर तथा भारी हैं, अग्नि को मन्द करते हैं, आमदोष को बढ़ाते हैं, वायु का प्रकोप, कण्डू और हृल्लास को उत्पन्न करते हैं ॥५९–६१॥

शीतं विपाके मधुरं त्ववृष्यं श्लेष्मापहं पित्तलमामनन्ति ।
वाते च पित्ते च हितं बृहत्याः फलं सुपक्वं रुचिकृच्च हृद्यम् ॥६२॥

बृहती के सुपक्व फल—को विपाक में शीत, मधुर, अवृष्य, कफहर, पित्तकारक, तथा वात और पित्त में लाभकारी, रोचक, और हृद्य मानते हैं ॥६२॥

१३. गोक्षुरः[1] ।

Tribulus terristris. A herb with prickly fruit. Cooling, diuretic and aphrodisiac.	(हिं०) गोखरु, (पं०) भखरा, (बं०) गोखरि, (म०) सराटे। सर्वत्र प्रसिद्ध क्षुप, फल कांटेदार। शीत, मूत्रल, वाजिकर।

गोकंटकः कंटफलो भक्षटः स्वादुकंटकः ।
श्वदंष्ट्रको व्यालदंष्ट्रो गोक्षुरुर्गोक्षुरः क्षुरः ।
षडंगः स्थलशृंगाटस्त्रिकंटस्त्रिकटस्त्रिकः ॥ ६३ ॥

पर्याय—गोक्षुर (गौ के खुर के समान कांटों वाला), भक्षट (भखरा), स्वादुकंटक (मीठे कांटों वाला), श्वदंष्ट्रक (कुत्ते के दाढ़ के सदृश), व्यालदंष्ट्र (व्याल सिंहादि), षडंग (छ अंगों वा नोकों वाला), स्थलशृंगाटक (भूमि का सिंघारा), त्रिकंट (तीन कांटों वाला) ॥६३॥

---

१. गोक्षुर भी कंटकारी की तरह भारत में सर्वत्र विशेषतः वर्षाकाल के पश्चात् खेतों में बहुत होता है। इस के पत्ते चने के समान होते हैं। क्षुप सीधा खड़ा नहीं होता, परन्तु भूपृष्ठ पर फैलता है। फल बड़े चने के बराबर परन्तु ६ वा ३ तीक्ष्ण नोकों के कारण कंटकाकार। पर्वतों पर और विशेषतः दक्षिण में बड़ा गोक्षुर होता है। उस के पत्ते चौड़े और फल बड़ा होता है। व्यवहार में गोक्षुर के बीज प्रायः आते हैं। इनका चूर्ण वा काढ़ा सुजाक में लाभकारी है, गोक्षुरादिगुग्गुलु और गोक्षुरघृत भी इस रोग में देते हैं। क्वाथों में गोक्षुर पंचांग डालते हैं और चूर्णों में बीज। गोक्षुर बीज का चूर्ण शर्करामिश्रित वीर्यवर्धक है। गोक्षुरपक्व क्षीर भी वृष्य है।

गोक्षुरो मधुरो वृष्यो दीपनो बलपुष्टिकृत् ।
शीतलो वृस्तिवातघ्नो दोषत्रयनिबर्हणः ।
हृद्रोगमेहकृच्छ्रार्शःश्वासकासरुजाहरः ॥६४॥

गुण—गोखुर मधुर, वृष्य, अग्निवर्धक, बल और पुष्टि करने वाला, ठंडा, वस्ति और वायु के रोगों को नष्ट करने वाला और त्रिदोषनाशक है, तथा हृदयरोग, मेह, मूत्रकृच्छ्र, अर्श (बवासीर), दमा, खांसी, और वेदना को दूर करता है ॥६४॥

बृहत्पञ्चमूलम्[1] (बड़ी पंचमूल)।

बिल्वकाश्मर्यतर्कारीपाटलाटिंटुकैर्महत् ।
पंचमूलं कषायोष्णं सतिक्तं कफवातजित् ।
मधुरानुरसं तिक्तं पाके लघ्वग्निदीपनम् ॥६५॥

बृहत् पंचमूल—(बड़ी पंचमूल) बिल्व, काश्मरी (गंभारी), तर्कारी (अग्निमंथ), पाटला और टिंटु (श्योनाक) इन पांचों को मिलाने से बनती है। यह कसैली, गरम, तिक्त, कफवात, नाशक, मधुर (उपरस), विपाक में तिक्त, हलकी, और अग्निदीपक है ॥६५॥

लघु पञ्चमूलम्[2] (छोटी पंचमूल)।

ह्रस्वं बृहत्यंशुमतीद्वयगोक्षुरकैः स्मृतम् ।
स्वादुपाकरसं नातिशीतोष्णं सर्वदोषजित् ॥६६॥

ह्रस्व पंचमूल—(छोटी पंचमूल), बृहतीद्वय (दोनों कटेरी), अंशुमतीद्वय (शालपर्णी, पृष्णिपर्णी), और गोखुर से बनती है। यह रस तथा विपाक में मधुर, न बहुत ठंडी, और न बहुत गरम है, तथा सर्वदोषनाशक है ॥६६॥

दशमूलम्[3]।

उभाभ्यां पंचमूलाभ्यां दशमूलं त्रिदोषनुत् ।
तन्द्राकासज्वरश्वासपार्श्वशूलशिरोरुजि ।
हिध्मानाहाग्निसादेषु प्रतिश्याये प्रशस्यते ॥६७॥

---

१. बृहत्पंचमूल में बिल्व, गंभारी, पाटला, और श्योनाक की त्वक् (छाल) प्रयुक्त होती है। वास्तव में मूलत्वक् का व्यवहार उचित है। मलयदेश (मालाबार) में त्वक्रहित मूल व्यवहार में आती है। अग्निमंथ की तनु शाखाएं काम आती हैं। इस की त्वक् मिलना कठिन है। २. लघुपंचमूल में कंटकार्यादि पंचांग काम आते हैं। दोनों पंचमूलों का प्रयोग पृथक् भी कहीं २ है, परन्तु दोनों मिल कर दशमूल के रूप में बहुत उपयोगी हैं। ३. दशमूल आयुर्वेद में प्रसिद्धतम गण है। च्यवनप्राशादि अनेक योगों में यह डाला जाता है। दशमूलारिष्ट, दश० घृत और दश० तैल में तो यह प्रधान अंग है। इसका काढ़ा आमवात, कास, श्वास, प्रतिश्याय, सूतिकारोग, और नाना प्रकार के ज्वरों में बहुत लाभदायक है ॥

दोनों (छोटी बड़ी) पंचमूलों से दशमूल बनता है, जो त्रिदोषघ्न है, और तन्द्रा, कास, ज्वर, पार्श्वशूल, शिरःशूल, हिध्म (हिक्का), आनाह, अग्निमान्द्य, और प्रतिश्याय (जुकाम) में प्रशस्त है ॥६७॥

मध्यमपञ्चमूलम्[1] ।

माषपर्णी मुद्गपर्णी बलैरण्डपुनर्नवैः ।
मध्यमाख्यं पञ्चमूलं कफवातहरं परम् ॥ ६८ ॥

मध्यमपञ्चमूल—माषपर्णी, मुद्गपर्णी, बला (खरैटी), एरण्ड और पुनर्नवा (इटसिट) से मिल कर बनती है। यह वातकफ को दूर करती है ॥६८॥

जीवनपञ्चमूलम्[2] ।

शाकश्रेष्ठाभीरुपत्रीवीराजीवकर्षभकैः ।
जीवनाख्यं पञ्चमूलं वृष्यं पित्तानिलापहम् ।
चक्षुष्यं बृंहणं बल्यं दाहतृष्णाज्वरप्रणुत् ॥ ६९ ॥

शाकश्रेष्ठा (जीवन्ती), भीरुपत्री (शतावरी), वीरा (चीरकाकोली), जीवक और ऋषभक से जीवन पञ्चमूल बनती है, जो वृष्य (वीर्यवर्धक), वातपित्त-नाशक, नेत्रहित, बृंहण (पुष्टिकर) और बलवर्धक है, तथा दाह, तृष्णा और ज्वर को नाश करती है ॥६९॥

तृणपञ्चमूलम्[3] ।

शालीक्षुकुशकाशाह्वसायकैस्तृणसंज्ञकम् ।
पञ्चमूलं तृषादाहरक्तपित्तप्रमेहनुत् ॥ ७० ॥

शाली (चावल), इक्षु (ईख, गन्ना), कुश (दर्भ), काश (काही), और सायक (सरकण्डा) से तृणपंचमूल बनती है, जो पिपासा, दाह, रक्तपित्त, और प्रमेह को हरती है ॥७०॥

वल्लीपञ्चमूलम्[4] ।

निशामृतामेषशृंगीगोपवल्लीविदारिका ।
वल्ल्याख्यं पञ्चमूलं तु सर्वदोषविनाशनम् ॥ ७१ ॥

निशा (हलदी), अमृता (गिलोय), मेषशृङ्गी (मेढ़ासिंगी), गोपवल्ली

१–२ यह दोनों प्रकार की पंचमूलें अप्रसिद्ध होने के कारण व्यवहार में नहीं आतीं। ३. तृणपंचमूल का काढ़ा सुजाक, मूत्रकृच्छ्रादि में बहुत उपयोगी है। यह पंचमूल बहुत प्रसिद्ध है। तृणपंचमूल में शाल्यादि की जड़ें ही प्रयोग करनी चाहियें। भूमि से खोदकर जल से धोकर शुष्क करके पांचों समान मात्रा में मिलानी चाहियें। अन्य ग्रन्थों में "कुशः काशः शरो दर्भ इक्षुश्चैव तृणोद्भवं। पित्तकृच्छ्रहरं पंचमूलं वस्तिविशोधनम्।" यह पाठ आता है। ४. वल्ली तथा कंटक पंचमूल का वर्णन चिकित्साग्रन्थों में बहुत कम है।

(सारिवा), और विदारी (विदारीकन्द) से वल्लीपंचमूल बनती है, जो सब दोषों को दूर करती है ॥७१॥

कण्टकपञ्चमूलम् ।

सैर्यं गोक्षुरको हिंस्रा सुषेणा भीरुपत्रिका ।
कण्टकाख्यं पञ्चमूलं दोषत्रयनिबर्हणं ॥ ७२ ॥

सैर्य (श्वेत झांटी), गोक्षुर (भखड़ा), हिंस्रा (कण्टकारी), सुषेणा (करमर्द) और भीरुपत्री (शतावरी) से कंटकपंचमूल बनती है । यह भी तीनों दोषों को नाश करती है ॥७२॥

अष्टवर्गः१ ?

अष्टवर्गो द्विकाकोलीद्विमेदाजीवकर्षभैः ।
ऋद्धिवृद्धियुतैः क्वापि जीवन्तीमधुकान्वितैः ॥ ७३ ॥

अष्टवर्ग के अंग—द्विकाकोली (काकोली, चीर काकोली), द्विमेदा (मेदा, महामेदा), जीवक, ऋषभक, ऋद्धि और वृद्धि हैं । कहीं २ (ऋद्धि वृद्धि के स्थान में) जीवन्ती और मधुक (मुलहटी) का विधान है ॥७३॥

अष्टवर्गो हिमः स्वादुर्बृंहणः शुक्रलो गुरुः ।
गर्भसन्धानकृद्बल्यो २बलासबलवर्धनः ।
वातपित्तास्रतृड्दाहज्वरशोषक्षतप्रणुत् ॥७४॥

गुण—अष्टवर्ग शीत, मधुर, बृंहण, वीर्यवर्धक, गुरु, गर्भस्थापक, बलकर, कफ और शक्ति को बढ़ाने वाला है, तथा वात, रक्तपित्त, पिपासा, दाह, ज्वर, शोष (शरीर का सूखना वा क्षय रोग), क्षत (उरःक्षतादि) को दूर करता है ॥७४॥

१.**अष्टवर्ग** में आठ प्रकार के मधुर कन्द सम्मिलित हैं, जिनका प्रभवस्थान हिमालयादि पर्वत हैं, परन्तु अब निश्चयरूप से इन कन्दों की प्राप्ति तथा ज्ञान कठिन प्रत्युत असंभव है । **भावमिश्र** ने इन कन्दों की आकृति का विस्तृत वर्णन अपने **भावप्रकाश** नामक ग्रन्थ में किया है, परन्तु वह भी इन को दुर्लभ मान कर प्रतिनिधि के प्रयोग का आदेश करता है । इस से प्रतीत होता है, कि यह कन्द भावमिश्र के काल (१६—१७वीं शताब्दी) में भी न थे, उस ने अन्य ग्रन्थों से वा गुरुपरम्परा से यह रूपविज्ञान लिख दिया । चरकसुश्रुतादि प्राचीन ग्रन्थों में अष्टवर्ग का प्रयोग च्यवनप्राशादि रसायनों वा अनेक योगों में लिखा है, अतः उस काल में यह सुलभ थे । तब ऋषि मुनि हिमाद्रि में भ्रमण करते हुए प्राणियों के लाभार्थ अनेक वनस्पतियों की खोज और प्राप्ति करते थे । अब भी कई वैद्य परिश्रम कर रहे हैं, परन्तु उन का अन्वेषण सर्वसम्मत होना कठिन है, क्योंकि यह अन्वेषण कुछ तो स्वार्थवश किया जाता है । प्राप्त द्रव्य के लक्षण और गुण सर्वांश ठीक नहीं मिलते । हरिद्वार वा देहरादून के इतस्ततः भी यह द्रव्य मिलना कठिन है । हिमालय के उच्च शिखरों पर जाना चाहिए । २. ब—स्तन्यः ॥

अष्टवर्गप्रतिनिधिः[1] ।

काकोलीयुगलाभावे शतावर्य्यायुगं क्षिपेत् ।
मेदोऽभावेऽश्वगन्धा स्यान्महामेदा प्रसारणी ॥७५॥
जीवकर्षभकाभावे गुडूचीवंशरोचने ।
ऋद्धिस्थाने बला योज्या वृद्धिस्थाने महाबला ॥७६॥

दोनों काकोलियों के अभाव में शतावरी के दो प्रकार (शतावरी, महाशतावरी), मेदा के स्थान में अश्वगन्धा (असगन्ध), महामेदा के स्थान में प्रसारणी, जीवक के अभाव में गुडूची, और ऋषभक के अभाव में वंशलोचन (तवाशीर), ऋद्धि और वृद्धि के स्थान में बला और महाबला डालनी चाहियें ॥७५-६॥

१३-१४. काकोलीक्षीरकाकोल्यौ ?

काकोली कवड़ी काणी स्वादुमांसी च मेदुरा ।
शुक्लक्षीरा वायसोली ध्वांक्षोली क्षीरशुक्लिका ॥७७॥
कायस्था मध्यमा शुक्ला धीरा वीरा पयस्विनी ।
क्षीरिणी क्षीरकाकोली सुकोली जीववत्सापि ।
वयःस्था क्षीरमधुरा वीरा शूरा विषाणिका ॥७८॥

पर्याय—काकोली (काली), स्वादुमांसी (मधुर गूदे वाली), मेदुरा (स्थूल), शुक्लक्षीरा (जिससे क्षीरवत् श्वेत स्राव निकलता हो), वायसोली (वायस—काक), ध्वांक्षोली (ध्वांक्ष—काक) । कायस्था (शरीर को पुष्टि देने वाली), पयस्विनी (दुग्ध वाली), सुकोली (अच्छी काकोली), जीववत्सा (जीवित बच्चों वाली वा बच्चों को जीवित रखने वाली), विषाणिका (सींग वाली वा सींग के सदृश), वीरा (बहादुर), शूरा (बहादुर) ॥७७-७८॥

काकोलीयुगलं वृष्यं मधुरं शीतलं गुरु ।
बृंहणं वातपित्तास्रदाहशोषज्वरापहम् ॥७९॥

दोनों प्रकार की काकोली वृष्य, मधुर, शीत, भारी और पुष्टिकर है, तथा वातपित्त, दाह, शोष और ज्वर को हटाती है ॥७९॥

---

१. ब० और यू० ग्रन्थों में यह पाठ नहीं मिलता, इन की अपेक्षा भावमिश्रोक्त प्रतिनिधि अधिक अच्छे हैं। वे यह हैं:—मेदा महामेदा के स्थान में शतावरी, जीवक ऋषभक के स्थान में विदारी, काकोली क्षीरकाकोली—(लंबा) अश्वगन्धा, ऋद्धि वृद्धि(लंबा)—वाराहीकन्द ।कुछ वैद्यों के मतानुसार यह प्रतिनिधि हैं:—मेदा—सालब मिश्री, महामेदा—शाकाकल, जीवक—श्वेत बाह्मन, ऋषभक—रक्त बाह्मन, काकोली—कृष्ण मूसली, क्षीरकाकोली—श्वेत मूसली, ऋद्धि—उटंगण बीज, वृद्धि—बीजबन्द । सालबादि यवनवैद्यक के प्रसिद्ध द्रव्य हैं, परन्तु यह माननीय प्रतिनिधि नहीं हो सकते । भावमिश्र का मत " मेदाजीवककाकोलीवृद्धिद्वंद्वेऽपि चासति । वरीविदार्य्यश्वगन्धावाराहीश्च क्रमात्क्षिपेत् ॥ " माननीय है ।

१५-१६. मेदामहामेदे ?

मेदा मेदोभवा विद्यात् सुरमेदःसमुद्भवा ।
शाल्यपर्णी धरा श्यामा मेदा पुरुषदन्तिका ॥८०॥
मणिछिद्रा देवमणिर्मधुरा च सुछिद्रिका ।
महामेदा वृक्षरुहा महापुरुषदन्तिका ॥८१॥

पर्याय—मेदा (चरबी के तुल्य), मेदोद्भवा (चरबी से होने वाली वा मेद को बढ़ाने वाली), सुर० (देवताओं की चरबी से उत्पन्न होने वाली), शाल्यपर्णी (चावलों के तुल्य पत्रों वाली), धरा (भूमि वा चरबी), श्यामा (कृष्णवर्णा), मेदा, पुरुषदन्तिका (पुरुषदन्त के तुल्य श्वेत)। मणिछिद्रा (मणितुल्य छिद्रों वाली), देवमणि (देवताओं की मणि), मधुरा (मीठी), सुछिद्रिका (अच्छे छिद्रों वाली), महामेदा (बड़ी मेदा), वृक्षरुहा (वृक्ष पर चढ़ने वाली) और महापुरुषदन्तिका ॥८०-१॥

मेदाद्वयं हिमं स्वादु स्तन्यशुक्रबलासकृत् ।
बृंहणं वातपित्तास्रक्षतक्षयहरं गुरु ॥ ८२ ॥

गुण—दोनों मेदाएं शीत, मधुर, दुग्ध और वीर्य को बढ़ाने वाली, पुष्टिकर और भारी हैं, तथा वातपित्त, रक्तपित्त, क्षत और क्षय को दूर करती हैं ॥८२॥

१७-१८. जीवकर्षभकौ ?

ह्रस्वाङ्गकः शमीकूर्चशीर्षकः कूर्चको मतः ।
जीवको जीवदः क्षोदी मंगल्यो मधुरप्रियः ।
जीवनः शृङ्गकः श्रेयो दीर्घायुश्चिरजीव्यपि ॥८३॥

जीवक के पर्याय—ह्रस्वाङ्गक (क्षुद्र अंग वाला), शमीकूर्चशीर्षक (जंड के कूर्च जैसे सिर वाला), कूर्चक (कूर्ची के सदृश), जीवक (जिलाने वाला), जीवद (जीवन देने वाला), क्षोदी, मङ्गल्य (श्रेष्ठ), मधुरप्रिय (प्रिय मधुर रस वाला), जीवन (जिलाने वाला), शृंगक (सींग के तुल्य आकार वाला), श्रेयस (श्रेष्ठ), दीर्घायु: (दीर्घायु करने वाला), चिरजीवी (चिरकाल तक जीने वा जिलाने वाला) ॥८३॥

ऋषभो दुर्धरो धीरो विषाणी गोपतिर्वृषः ।
दुर्धरो मातृकेन्द्राक्षो बन्धुरः पृथिवीपतिः ।
ऋषभः ककुदी श्रीमान् भूपतिर्वृषलीपतिः ॥८४॥

ऋषभक के पर्याय—ऋषभ (बैल), दुर्धर (धारने में कठिन), धीर (धैर्यवान), विषाणी (सींगों वाला), गोपति, मातृका (माता), इन्द्राक्ष (इन्द्र का अक्ष), बंधुर (वक्र, सुन्दर), पृथिवीपति (पृथिवी-गौ), ककुदी (बैल), श्रीमान् (शोभा वाला), भूपति (भू—गौ), वृषलीपति (वृषली—गौ) ॥८४॥

जीवकर्षभकौ शीतौ बृंहणौ शुक्रलौ ।
मधुरौ वातपित्तास्रदाहक्षयनिबर्हणौ ॥ ८५ ॥

गुण—जीवक और ऋषभक दोनों शीत, पुष्टिकर, वीर्यवर्धक और मधुर हैं, तथा वात, रक्तपित्त, दाह और क्षय को दूर करते हैं ॥ ८५ ॥

१९-२०. ऋद्धिवृद्ध्यौ ?

ऋद्धिर्वृद्धिर्युगं[1] तुष्टिराशिः सर्वजनप्रिया ।
आश्वासिनी चेतना स्यान्महामूर्द्धा यशस्विनी ॥ ८६ ॥
ऋषिसृष्टा सुखं चाथ शोधनी श्रावणी वसुः ।
योग्यं युग्या मुदा लक्ष्मी भूपतिर्मधुरा प्रिया ।
रथाङ्गं मङ्गलं ज्ञेयं ऋद्धिवृद्धीरथाह्वया[2] ॥ ८७ ॥

ऋद्धि और वृद्धि के प्रर्याय—तुष्टिराशि (हर्ष का समूह) सर्वजनप्रिया (सब की प्यारी), आश्वासिनी (आश्वासन कराने वाले), चेतना (चैतन्यप्रद), महामूर्द्धा (बड़े मस्तक वाली), यशस्विनी (यश वाली), ऋषिसृष्टा (ऋषिजनित), सुख (सुखप्रद), शोधनी (रेचक), वा सुखशोधनी (सुखरेचक), श्रावणी (श्रावण में होने वाली वा स्राव करने वाली), वसु (भूमि), योग्य (व्यवहारयोग्य), युग्या (जोतने के योग्य ?), मुदा (हर्ष), लक्ष्मी (धन), भूपति, मधुरा (मीठा), प्रिया (प्यारी) रथांग (रथा का अंग), मंगल (श्रेष्ठ), ऋद्धि और वृद्धि रथ के नामों से प्रसिद्ध हैं ॥ ८६—८७ ॥

ऋद्धिस्त्रिदोषशमनी प्राणैश्वर्यकरा गुरुः ।
शुक्ला मधुरा बल्या मूर्च्छा पित्तास्रनाशनी ॥ ८८ ॥

ऋद्धि के गुण—यह त्रिदोषशमक, प्राण और ऐश्वर्य को देने वाली, गुरु, वीर्यवर्धक, बलकर, मूर्च्छा और रक्तपित्त को नाश करती है ॥८८॥

वृद्धिस्तु मधुरा वृष्या शीता गर्भबलप्रदा ।
बृंहणी कफपित्तास्रक्षयकासमलापहा ॥ ८९ ॥

वृद्धि के गुण—यह मधुर, वृष्य, शीत, गर्भस्थापक, बलकारक, और पुष्टिकर है । कफ, रक्तपित्त, तपेदिक, कास और मल (दोषों) को दूर करती है ॥ ८९ ॥

२१. जीवन्ती ?

Dendrobium Macraei.	जीवन्ती, जीवई, डोडी ।
A creeper with yellow stem.	लता, काण्ड स्वर्णवर्ण ।
Tonic, cool & refreshing.	रसायन, शीत, हृद्य ।

जीवन्ती जीवनी जीवा कुल्या भद्रा मधुश्रवा ।
मधुस्रवा[3] जीवपृष्ठा शाकश्रेष्ठा यशस्करी ॥ ९० ॥
नामधेया जीवभद्रा पुत्रदा च[4] सुखकरी ।
जीवनीयां देवपृष्ठा मङ्गल्या शृंगरीठिका ॥ ९१ ॥

जीवन्ती के नाम—जीवन्ती, जीवनी (जिलाने वाली), कुल्या (उत्तम कुल

१. यू—सिद्धि । २. ब—वृद्धेरश्रावया श्रमी । ३. ब— मधुप्रदा । ४. द—पुत्रभद्रा ।

वाली), भद्रा (श्रेष्ठ), मधुस्रवा (मीठा रस स्रवण करने वाली), जीवपुष्टा (जीवन की सहायक), शाकश्रेष्ठा (उत्तम शाक), यशस्करी (यश देने वाली)जीवभद्रा (जीवन के लिए भद्र), पुत्रदा (पुत्र देने वाली),सुखकरी (सुखकारक), जीवनीया (जीवन के लिए हितकर), देवपुष्टा(देवताओं की पुष्ट सहाय),मंगल्या (श्रेष्ठ) ॥ ९०-१ ॥

जीवन्ती[1] मधुरा शीता सुस्निग्धा ग्राहिणी लघु ।
चक्षुष्या सर्वदोषघ्नी बल्या पुष्या रसायनी ॥ ९२ ॥

गुण—जीवन्ती मधुर, शीत, सुस्निग्ध, (अच्छी चिकनी), ग्राही (काबिज़), लघु, नेत्रों के लिए हितकारी, सर्वदोषनाशक, बलकारक, पुष्टिकर और रसायन है ॥९२॥

जीवन्तीफलमत्यर्थमधुरं बृंहणं गुरु ॥ ९३ ॥

जीवन्ती का फल बहुत मधुर, बृंहण और गुरु होता है ॥ ९३ ॥

२२. यष्टिमधु[2] ।

Glycyrrhizx Radix. The well-known Liquorice Root. Sweet, cool, demulcent and expectorant.	(हिं०) मुलहटी,मुलैठी, मीठी काठी (बं०) यष्टिमधु, (गु०) जेठीमधुनो मूल । सुप्रसिद्ध मधुर काष्ठ, मूल । स्निग्ध, मधुर, कफनिष्कासक।

१. अष्टवर्ग की तरह यह भी अनिश्चित द्रव्य है । प्राचीन टीकाकारों का भी मतभेद है । वर्तमान काल में भारत के भिन्न २ भागों में जीवन्ती के नाम से अन्यान्य पदार्थ प्रयुक्त होते हैं । वङ्गदेश में एक पीतवर्ण के पर्वों वाली जीवन्ती । गुर्जर देश में डोडी शाक, जिस से मधुर दुग्ध निकलता है औरफल शाक में काम आता है । यह बङ्गीय जीवन्ती से भिन्न है । मलयदेश तथा लंका में एक श्वेत मधुर कन्द जीवन्तीमूल के नाम से प्रसिद्ध है, पंजाब और यू० पी० में वङ्गदेश का ही अनुकरण होता है। ऊपर जो लेटिन नाम दिया गया है, वह बङ्गीय जीवन्ती का है, और यह भी संदिग्ध है । शालिग्रामनिघंटु में जीवन्ती के अनेक भेद दिये गए हैं, और वनौषधिदर्पण में भी यह विवादास्पद मानी गई है, कहीं इस को पाठापत्र वा पटोलपत्र के सदृश और कहीं जम्बुवृक्ष पर होने वाली कहा गया है ।

२. मुलैठी भारत के बाजारों में सर्वत्र मिल जाती है, परन्तु यह विदेशी द्रव्य है, जो मिश्र, अरब, वा पारस देश से आता है । भारत के पर्वतों पर कहीं २ इस का क्षुप मिलता है, परन्तु इस की जड़ संग्रह नहीं की जाती, क्योंकि विदेशी मुलैठी सस्ती आती है । क्लीतक आनूपदेशोत्पन्न यष्टिमधु है, परन्तु अब वह कम मिलता है, मुलैठी शुष्क कास के लिए बहुत लाभकारी है । इस का सत्त्व, चूर्ण वा क्वाथ काम में आता है,कास में लकड़ी का चूसना भी उपयोगी है । यह रक्तपित्त को शान्त करती है । एलादिवटी में यह प्रधान द्रव्य है । मधुयष्टि, त्रायमाण (वनफशा), बिहदाना और गोन्द कतीरा का शीतकषाय पैत्तिक प्रतिश्याय में बहुत लाभ करता है ॥

यष्टिमधुकं मधुकं मधुयष्टि मधुस्रवः ।
यष्टिमधु क्लीतनकं यष्ट्याह्वं क्लीतनं मधु ।
यष्टिकमपराम्भोजा मधुपर्णी मधूलिका ॥ ९४ ॥

मधुयष्टि के नाम--यष्टिमधु वा मधुयष्टि (मीठी लकड़ी), मधुस्रवा (मधुर रस वाली), यष्ट्याह्व (यष्टि के नाम वाली)। क्लीतनक एक दूसरे प्रकार की अम्भोजा (जलजा) मुलठी है, उस को मधुपर्णी और मधूलिका कहते हैं ॥९४॥

यष्टी हिमा गुरुः स्वाद्वी चक्षुष्या बलवर्णकृत् ।
सुस्निग्धा शुक्रला केश्या स्वर्या पित्तानिलास्रजित् ।
व्रणशोफविषच्छर्दितृष्णाग्लानिक्षतापहा ॥ ९५ ॥

गुण—यष्टिमधु शीत, गुरु, मधुर नेत्रों के लिए हितकर, बल और वर्ण करने वाली, चिकनी, वीर्यवर्धक, केशों को लाभ देने वाली, गले वा आवाज को ठीक करने वाली, वातपित्त और रक्त को जीतने वाली, व्रण (फोड़े) को भरने वाली, शोथ, विष, छर्दि, प्यास और ग्लानि (जी मतलाने) को हटाने वाली और क्षत (ज़ख़म) को ठीक करने वाली है ॥ ९५ ॥

२३. माषपर्णी[1] ।

Teramnus labialis.	(हिं०) मषवन, बन उरद, जंगली मांह,
A twining herb.	(बं०) माषाणी, (गु०) अड़वाड़ ।
Bitter, tonic, & astringent.	लता, फली और बीज माषके तुल्य ।
	तिक्त, रसायन, ग्राही ।

माषपर्णी सूर्पपर्णी पाण्डुरा हयपुच्छिका ।
हंसमाषा स्वादुमाषा मांसमाषा महासहा ।
काम्बोजिका कृष्णवृन्ता सिंहविन्ना पिशाचिका ॥ ९६ ॥

पर्याय—माषपर्णी (माष के समान पत्रों वाली), सूर्पपर्णी (दाल के पत्तों वाली), पाण्डुरा (धूसर), हयपुच्छा (घोड़े के पुच्छ जैसी), हंसमाषा, स्वादुमाषा (मधुर माष), मांसमाषा, महासहा (बड़ी सहनशील लता), कांबोजिका (कांबोजदेश में होने वाली), कृष्णवृन्ता (काले वृन्त वाली), इत्यादि ॥ ९६ ॥

माषपर्णी हिमा रूक्षा मधुरा कफशुक्रला ।
तिक्ता संग्राहिणी वातपित्तदाहज्वरास्रजित् ॥ ९७ ॥

गुण—माषपर्णी शीत, रूक्ष, मधुर, कफ और शुक्र को बढ़ाने वाली है, तथा तिक्त (कड़वी),काबिज, वातपित्त, दाह, ज्वर और रक्तपित्त को दूर करती है ॥९७॥

---

१. माषपर्णी जलाढ्य पर्वतीय देशों में बहुत पाई जाती है। इसकी शाखाओं पर सूक्ष्म रोम होते हैं । इसकी फली माष की फली के समान होती है, जिससे माष जैसे दाने निकलते हैं, यह पंचांग काम आती है । अनेक क्राथों, घृतों, तैलों और लेहों में पड़ती है, परन्तु पृथक् व्यवहार में नहीं आती ।

२४. मुद्गपर्णी[1] ।

Phasealus Trilobus. A twining herb. Bitter, tonic, astringent.	(हिं०) मुंगवन, जंगली मूंग, (बं०) मुगानि । मुद्गवत् लता, त्रिपत्री । तिक्त, रसायन, ग्राही ।

मुद्गपर्णी सूर्पपर्णी[2] शिंबी सिंही कुरङ्गिका ।
मृगगन्धा शिंबीपर्णी बनजा सिम्बीरिंगिणी ।
काकमुद्गा क्षुद्रसहा महामार्जारगन्धिका ॥ ९८ ॥

पर्याय—मुद्गपर्णी (मूंग के पत्तों वाली), शिंबी (शिम्बी धान्य वा दालों की जाति वाली), सिंही (शेरनी), कुरंगिका (हिरण), मृगगन्धा (हिरण के गन्ध वाली), शिंबीपर्णी (दाल के पत्रों वाली), बनजा (जंगली), काकमुद्गा (जंगली मूंग), क्षुद्रसहा (छोटी सहने वाली), महा० (बड़े बिल्ले की तरह गन्ध देने वाली) ॥ ९८ ॥

चक्षुष्या क्षतशोषघ्नी मुद्गपर्णी तु तद्विधा ।
दोषक्षयहरा लघ्वी ग्रहण्यर्शोऽतिसारजित् ॥ ९९॥

गुण—मुद्गपर्णी तद्विधा (माषपर्णी की तरह) नेत्रहित, क्षत और क्षयनाशक है, तथा त्रिदोषघ्न, हलकी, ग्रहणी, बवासीर और अतिसार को दूर करने वाली है ॥९९॥

२५. जीवनीयगण[3] ।

जीवन्ती मधुकं मेदे काकोल्यौ सूर्पपर्णिके ।
जीवकर्षभकौ चेति जीवनो **मधुरो गणः ॥ १०० ॥**
जीवनीयो गुरुः स्वादुः शुक्रलो बृंहणो हिमः ।
करोति गर्भसन्धानमायुःस्तन्यकफान्, हरेत् ।
ज्वरदोषतृषादाहरक्तपित्तविषानिलान् ॥ १०१ ॥

जीवनीयगण में जीवन्ती, मधुयष्टि, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीर-काकोली, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, जीवक और ऋषभक (यह दश द्रव्य) हैं, इसको जीवन वा मधुर गण कहते हैं। यह गुरु, मधुर, शुक्रवर्धक, बृंहण और शीत है, तथा गर्भ-स्थापक और आयुवर्धक है, और स्तन्य (दुग्ध) तथा कफ को उत्पन्न करता है। ज्वर, दोष, प्यास, दाह, रक्तपित्त, विष और वायु को दूर करता है ॥ १००–१ ॥

---

१. इस का देश, व्यवहारादि वैसा है जैसा कि माषपर्णी का। यह मानो जंगली मूंग है, फली पत्रादि मूंग के सदृश होते हैं । २. यू, य, व–सूर्यपर्णी । ३. चरकादि संहिताग्रन्थों में इस जीवनप्रद (Lifegiving) गण का व्यवहार प्रायः प्रत्येक व्याधि में विशेषतः क्षत, क्षीण, क्षय, वातव्याधि, नपुंसकतादि में बहुत वर्णित हैं, परन्तु अष्टवर्ग के न मिलने से यह प्रसिद्धतम और अत्युत्तम गण इस समय निष्प्रयोजन सा हो चुका है ।

२५. (क) पुत्रञ्जीवः[1]।

Putranjiva Roxburghii. An evergreen shady tree. Febrifuge, diaphoretic and anticatarrhal.	(हिं०) जियापोता, पुत्रजीव (बं०) पुत्रञ्जीव, (म०) जीवन्न पुत्र। विशाल छायावान् वृक्ष। ज्वरघ्न, स्वेदल, प्रतिश्यायनाशक।

पुत्रञ्जीवो यष्टिपुष्पः कूटो मंत्रार्थसिद्धिकृत् ॥१०२॥

पर्याय—पुत्रञ्जीव (पुत्र, पौत्रादि सन्तान को चिरकाल तक जीवित रखने वाला), यष्टिपुष्प (कठोर पुष्पों वाला), कूट, मंत्र० (मन्त्रों का अर्थसाधक) ॥१०२॥

पुत्रञ्जीवो हिमो रूक्षो वृष्यः स्वादुः पटुर्गुरुः।
विष्टंभी सृष्टविण्मूत्रो गर्भवातकफप्रदः ॥१०३॥

गुण—पुत्रंजीव शीत, रूक्ष, वीर्यवर्धक, मधुर, पटु (नमकीन), गुरु, विष्टंभी, विष्ठा और मूत्र को उत्पन्न करने वाला, गर्भस्थापक और वातकफकारक है ॥१०३॥

२६. एरण्डः[2] ।

Ricinus communis. The wellknown Caster Oil plant. Purgative & astringent.	(हिं०) अरण्ड सफेद, अंण्ड, हरनोली रेंड़ि, (बं०) भेरेण्डा गाछ, (म०) एरण्ड। प्रसिद्ध क्षुद्र वृक्ष। रेचक, वातहर, ग्राही।

१. यह उत्तर भारत में बङ्गदेश को छोड़कर प्रायः सब जगह होता है। इस के पत्र घन और सदैव हरित रहते हैं। श्वेत क्षुद्र पुष्प बसन्त में आता है, और फल तत्पश्चात्। फल बकुल के फल से मिलता है, वा दीर्घलम्बाकार बदरीवत् होता है। शुष्क फलों की माला साधु लोग रुद्राक्ष की तरह पहनते हैं। स्त्रियां भी बच्चों को रक्षार्थ इस की माला पहनाती हैं। हिंगुमिश्रित पत्रस्वरस उरःशूल में देते हैं। इस की फलमज्जा को पानी में घिस कर व्रण और विसर्प पर लेप करना उपयोगी है। गर्भरक्षार्थ इस का कहीं प्रयोग नहीं होता। २. यह सर्वत्र भारत में पाया जाता है। श्वेत, रक्तादि कई भेद हैं। यह भारत ही से अन्य देशों में गया है। अब भी इस का तैल वा बीज करोड़ों मन प्रतिवर्ष बाहर जाता है। एरण्डतैल (Caster Oil) सुप्रसिद्ध मृदुविरेचन है। मात्रा २½ तोले। दुग्ध वा गरम जल से प्रायः दिया जाता है। यदि आध पाव गरम जल में एक नींबू का रस छोड़कर एरण्डतैल डाला जावे, तो उसका दुःस्वाद छिप जाता है। निम्बुरस के स्थान पर आर्द्रकरस भी डाला जा सकता है। ४-५ घण्टों में इस का प्रभाव होता है, दस्त पतले आते हैं, शूल नहीं होता। पेचिश, उदरशूल, वृक्कशूल, ज्वर, आमवात, सूतिकाज्वर, उदररोग, विबन्ध, उदावर्त और कृमिरोग में एरण्डतैल बहुत लाभकारी है। विरेचन के पश्चात् प्रायः विबन्ध हो जाता है। इस की अल्प मात्रा भी ग्राही है। डाक्टर लोग सुकुमार पुरुषों को एरण्डतैल का इमलशन (Caster

एरण्डको यक्षहस्तो गुरुरुत्तानपत्रकः ।
पञ्चाङ्गुलो व्याघ्रपुच्छो वर्द्धमानस्तु चित्रकः ।
गन्धर्वस्तरुणः शुक्लो रुचको दीर्घदण्डकः ॥१०४॥

पर्याय—एरण्डक, यक्षहस्त (यक्ष के हाथों जैसे पत्रों वाला), उत्तानपत्रक (ऊपर को उठे हुए वा फैले हुए पत्रों वाला), पंचांगुल (हथेली के तुल्य), व्याघ्रपुच्छ (जिस शाखा पर पुष्प वा फल होते हैं, उस की आकृति व्याघ्रपुच्छवत् होती है), वर्द्धमान (बढ़ने वाला), चित्रक (चित्रित पुष्प पत्रादि वाला)—यह सामान्य नाम हैं । **शुक्लैरण्ड** के नाम गन्धर्व, वरुण, रुचक और दीर्घदण्ड (लम्बे दण्ड वाला) हैं ॥१०४॥

एरण्डो मधुरो वृष्यो गुरूष्णो मार्गशोधनः ।
कफपित्तानिलश्वासकासब्रध्नाश्मनाशनः ॥१०५॥
गुल्मप्लीहोदरानाहकटिबस्तिशिरोरुजि ।
मेहज्वरामवातास्रशूलशोफेषु शस्यते ॥१०६॥

गुण—एरण्ड (सामान्यतः) मधुर, वृष्य, गुरु, गरम, मार्गशोधक (स्रोतों का शोधक), कफ, पित्त, वात, दमा, खांसी, ब्रध्न (वंक्षण सन्धि में शोफादि) और अश्म (पथरी) का नाशक है । विशेष करके यह गुल्म (बाय गोला), तिल्ली, जलोदर, अफारा, कमर, मूत्राशय और शिर के शूल में और प्रमेह, ज्वर, आमवात (गंठिया), अस्र (रक्तपित्त), शूल (पेट के दर्द) और शोथ (सूजन में) लाभकारी है ॥१०५-६॥

एरण्डपत्रं **वातघ्नं कफकृमिविनाशनम् ।**
रक्तपित्तप्रकोपि स्यान्मूत्रदोषं जयेदपि ।
गुल्मं च बस्तिशूलं च वृद्धिं सप्तविधां तथा ॥१०७॥

Oil Emulsion) देते हैं, जो पीने में सुखकर है। एरण्डतैल का प्रभाव स्तन्य पर भी पड़ता है। अतः माता को एरण्डतैल पिलाने पर बच्चे को भी दस्त लग जाते हैं। इस को वस्ति द्वारा भी देकर दस्त करा सकते हैं । **एरण्डबीज** को पीड़ने से स्थूल तैल प्राप्त होता है, जिस को वाष्प (Steam) द्वारा पुनः शुद्ध करते हैं । यह शुद्ध तैल ही (जो अंग्रेजी औषधविक्रेताओं से मिलता है) विरेचनार्थ व्यवहार करना चाहिए । ४-५ बीज खा लेने से मृत्यु होने की संभावना है, बीजों में रिसिन (Ricin) नामक एक घोर विष होता है, जो शुद्ध तैल में नहीं होता। एरण्डतैल पेट पर मल देने से भी रेचन करता है । गंठिया रोग में एरण्डतैल रास्नादि वा दशमूल क्वाथ के साथ देना चाहिए । आमवात के शोथ और शूल में इस की मालिश लाभकारी है। नेत्राभिष्यन्द में तैल का एक बिन्दु नेत्र में डालना बहुत गुणकारक है । एरण्ड-मूलत्वक् शोथ और आमवात का नाश करती है। **पत्रकल्क** स्तन्यप्रवर्तक है (स्तनों पर बांधने से) । एरण्डबीज का उपनाह व्रण को पकाता है और शोथनाशक है । एरण्ड-पत्र व्रण और शोथ के आच्छादनार्थ प्रयोग किया जाता है । यह प्रसिद्ध वातारि (वायुनाशक) है ॥

एरण्ड के पत्ते वायुनाशक हैं, कफ और पेट के कीड़ों को दूर करते हैं। रक्तपित्तप्रकोपक हैं, तथा मूत्र के दोष, गुल्म, मूत्राशय का दर्द और सात प्रकार की वृद्धि (अन्त्रवृद्धि आदि) को नाश करते हैं ॥१०७॥

कफवातकृमींश्चापि हन्यादेरण्डपल्लवम् ।
एरण्डपुष्पं वातघ्नं कफपित्तविनाशनम् ।
मूत्रदोषहरं ज्ञेयं रक्तपित्तप्रकोपनम् ॥१०८॥

एरण्ड के कोमल पत्र—वातकफ और कृमि को नाश करते हैं। **एरण्ड के फूल** वायुनाशक, कफपित्तहर, मूत्रदोषघ्न और रक्तपित्तप्रकोपक हैं ॥१०८॥

एरण्डफलमत्युष्णं गुल्मशूलानिलापहम् ।
यकृत्प्लीहोदरार्शोघ्नं कटुकं दीपनं परम् ॥१०९॥

एरण्डफल—अति गरम, गुल्म, शूल (पेट का दर्द) और वायु को दूर करता है, तथा जिगर, तिल्ली, उदर (जलोदरादि) और बवासीर को हरता है, अत्यन्त कटु और दीपन है ॥ १०६ ॥

तद्वन्मज्जा तु विड्भेदी वातश्लेष्मोदरापहः ॥११०॥

एरण्डमज्जा—(एरण्ड फल की गिरी) एरण्डफल के सदृश रेचक और वातकफ तथा उदर रोग को दूर करती है ॥११०॥

रक्तैरण्डः ।

Red Caster Oil plant. । **लाल एरण्ड, नामादि पूर्ववत् ।**

अन्यो रक्तो हस्तिकर्णो व्याघ्रो व्याघ्रतरो रुबुः ।
उरुबूको हस्तिपर्णश्चंचुर्लोहितशीर्षकः ।
व्यालम्बो[1] डिण्डिको डिण्डो[2] बुको मंडो नुको[3] रिपुः ॥१११॥

एरण्ड का दूसरा भेद **रक्त (लाल) एरण्ड** है, उस के हस्तिकर्ण (हाथी के कान के समान बड़े पत्रों वाला), व्याघ्र (चीता), व्याघ्रतर (व्याघ्रतरु), रुबु, लोहितशीर्षक (लाल सिर वाला), व्यालम्ब (लंबा) इत्यादि पर्याय हैं ॥१११॥

रक्तपंचाङ्गुलस्तिक्तः कषायः कटुको रसे।
वातश्लेष्मश्वासकृम्यर्शोविध्म[4]नाशनः ॥११२॥

गुण—रक्तपञ्चांगुल (रक्तैरण्ड) रस (स्वाद) में तिक्त, कषाय और कटु है, तथा वातकफात्मक कास, श्वास, कृमि, अर्श (बवासीर), विध्म (सिध्म वा हिध्महिक्का) को दूर करता है ॥११२॥

---

१ यु—व्याडंबः । २ द—डंडः । ३ यू—त्रुकः । ४. द—वाध्मं । सिध्मेति प्रशस्तपाठः ।

२७. निर्गुण्डी[1] (नीलपुष्पा)

Vitex negundo.
A five-leaved tree or shrub with blue flowers.

(हिं०)संभालू, (बं०)नील निशिन्दा, (म०) लिङ्गुर, (गु०) नागड्य। पंचपत्री नीलपुष्प वृक्ष वा गुल्म।

२८. सिन्दुवारः[2] (श्वेतपुष्पः)

Vitex trifolia.
A three-leaved shrub or tree with white flowers.

भाषानाम निर्गुण्डी वत्
त्रिपत्री श्वेत पुष्प वृक्ष वा गुल्म

२९. शेफाली[3] (सुरभितपुष्पा)

Nyctanthes arbortristis.
A small thick-leaved tree. Febrifuge, antirheumatic and alterative.

(हिं०) हारसिङ्गार, (बं०) श्योली, (गु०) परबूटी (पं०) पहर बूटी। वृक्ष, पत्र खर तथा स्थूल। ज्वरामवातशोथघ्न, रसायन।

निर्गुण्डी वनकेन्द्राणी सिन्दुकः सिन्दुवारकः[4] ।
सिन्दुवारो भूतकेशी भूतावेशा च सुस्थितिः ॥११३॥

---

१. **संभालू** भारत में सर्वत्र पाया जाता है। बहुधा गुल्म (झाड़ी) के रूप में मिलता है, परन्तु कहीं २ पञ्जाब में इस का वृक्ष वनों वा उद्यानों में वा पर्वतीय सड़कों पर मिलता है। निर्गुण्डी के पांच पत्ते एक वृन्त पर होते हैं, परन्तु प्रमाण में एक से नहीं होते। पत्र को अंगुलियों में मल कर सूंघने से विशेष गन्ध आता है। पत्र का ऊर्ध्वपृष्ठ हरित और अधःपृष्ठ किंचित श्वेत होता है। पत्र लम्बा और नोकीला। पुष्प क्षुद्र तथा नील। २. **सिन्दुवार** का पुष्प श्वेत और पत्ते प्रायः ३ और कभी १ भी होता है। यह बहुत कुछ निर्गुण्डी के ही सदृश है और प्रायः जलाढ्य स्थानों में मिलता है, अतः इस को कहीं २ पानी का संभालू भी कह देते हैं। औषध में निर्गुण्डी ही अधिक मिलने के कारण बरती जाती है। संभालू का मूल और पत्र दोनों काम आते हैं, परन्तु पत्र अधिक उपयोगी हैं। पत्रों का क्वाथ ज्वर, आमवात, शोथ, प्रतिश्याय, शिरोवेदना, शिरोगौरव, उदरकृमि आदि रोगों में देते हैं। इस का स्वरस मधुमिश्रित ज्वरों में उत्तम अनुपान है। इसके क्वाथ से शोथ, मण्डवृद्धि, कर्णशूल और प्रतिश्याय में भाप देना बहुत गुणकारी है। शुष्क पत्रों का धूम्र (Smoking) वा सिरहाना शिरोवेदना और प्रतिश्याय को दूर करता है। ३. **शेफाली** का वृक्ष ३० फुट ऊंचा होता है। पत्र खर, स्थूल, रोमाकीर्ण, और नोकीले पुष्प श्वेत, अत्यन्त सुगन्धित और सदावर्ती। पुष्पार्थ ही इसको उद्यान में लगाते हैं। पुष्प रात्रि को विकसित होते हैं और प्रातः गिर पड़ते हैं। यह पंजाब में कम मिलता है। पत्तों का काढ़ा आमवात, ज्वर और गृध्रसी में विशेषकर लाभकारी है। पत्रस्वरस मधुमिश्रित जीर्ण और विषम ज्वरों में उपयोगी है। ४. द—सिन्दुवारितः।

श्वेतपुष्पोऽपरो नीलसिन्दुको गिरिसिन्दुकः ।
नीलपुष्पः सिन्दुसहः कृष्णः शीतसहस्तथा ॥ ११४ ॥
निर्गुण्डिकाऽन्या शेफाली वनजा नीलमञ्जरी ।
महत्पत्री[1] शीतभीरुः सिन्दुवारच्छदाऽपरा ।
भूपदी श्वेतसुरसा सुगन्धा सुरसाऽपरा ॥ ११५ ॥

पर्याय—श्लोक ११३, ११४, ११५ में निर्गुण्डी, सिन्दुवार तथा शेफाली के पर्याय यथाक्रम दिए गए हैं ॥ ११३—११५ ॥

निर्गुण्डी तुवरा तिक्ता मेध्या शीतोष्णा लघुः ।
चक्षुष्या दीपनी केश्या कफानिलविषापहा ॥ ११६ ॥
हन्त्यरोचकशूलामगुल्ममेदोव्रणकृमीन् ।
शोफकुष्ठप्रतिश्यायश्वासकासांश्च सा द्विधा ॥११७॥

गुण—निर्गुण्डी तुवर (कषाय), तिक्त, मेध्य (बुद्धिवर्धक), शीतोष्ण (मिश्रितगुणयुक्त), लघु, नेत्रहित, अग्निदीपक, केश्य (केशों के लिये हितकर), वातकफ और विष की नाशक है, और अरुचि, शूल, आम दोष, गुल्म, मोटापन, व्रण और कृमियों को तथा शोथ, कोढ़, जुकाम, दमा और खांसी को हरती है ॥११६–७॥

शेफालिका तयोः पथ्या विषपित्तप्रणाशनी[2] ।
श्लेष्मानिलघ्नं लघु दीपनीयं निर्गुण्डिकायाः कृमिघाति पत्रम् ॥११८॥
निर्गुण्डीपुष्पं तिक्तोष्णं कृमिवातकफापहम् ।
गुल्मप्लीहारुचिं कुष्ठं कण्डूशोफं जयेत् कटु ॥ ११९ ॥

उन दोनों से शेफाली पथ्य (अच्छी) है, तथा विष और पित्त को नाश करती है । संभालू के पत्ते वातकफघ्न, लघु दीपन होते हैं। उस का फूल तिक्त, और उष्ण है, तथा कृमि, वातकफ, गुल्म, प्लीहा, अरुचि, कोढ़, कण्डू (खुजली), और शोथ को दूर करता है ॥ ११८—९ ॥

३०. नलः[3] ।

Arundo Donax.	(हिं०) नल, नरसल (बं०) नल
The Reed or Tobacco pipe.	(गु०) नाली । प्रसिद्ध क्षुप ।
Cool and diuretic.	शीत, मूत्रल, विसर्पघ्न ।

पोटा पिटो नटो रन्ध्री मृत्युपुष्पो[2] विभीषणः ।
शून्यमध्यः पोटगलो धमनो नर्तको नलः ॥ १२० ॥

---

१. द,ब—महत्पत्री । २. यू—विनाशनी । ३. नल भारत में सर्वत्र विशेषतः जलाशयों वा निम्नभूमि में स्वतः पाया जाता है । इस की आकृति इक्षु के सदृश है, परन्तु ऊंचा अधिक होता है । काण्ड नल्याकार होने से इस का साधारण उपयोग हुक्का बनाने में है । रागयन्त्र भी इस से बनते हैं । इस का मूल का प्रलेप विसर्पघ्न है, और शीत क्वाथ मूत्रल और वस्तिदाहशमक है ।

पर्याय—पोटा, रन्ध्री (छिद्र वाला), मृत्युपुष्प (मरे हुए पुष्पों वाला), शून्यमध्य (भीतर से ख़ाली), धमन (फूंकने योग्य नली), नर्तक (नाचने वाला), नल (नाली–Tube) ॥ १२० ॥

नलस्तु मधुरस्तिक्तः कषायोष्णः कफास्रजित् ।
हृद्बस्तियोनिमूत्रार्तिपित्तदाहविसर्पनुत् ॥१२१॥

गुण—नरसल मधुर, तिक्त, कषाय और गरम है, और कफ तथा रक्तपित्त को नाश करता है, और हृदय, मूलाशय, योनि और मूत्र के रोगों तथा पित्त, दाह और विसर्प को हरता है ॥ १२१ ॥

३१. वंशः[1] ।

Bambusa arundinacea.	बांस ।
The Bamboo.	सुप्रसिद्ध क्षुप ।
Cool and diuretic.	शीत, रूक्ष, व्रणघ्न, मूत्रल ।

कीचको मस्करो वंशी सुपर्वा षट्पदालयः ।
वंशो वेणुर्यवफलस्तृणकेतुस्तृणध्वजः ।
शतपर्वा शतमालः कर्मारिस्त्वचिसारकः ॥ १२२ ॥

पर्याय—कीचकादि । सुपर्वा (सुन्दर पर्वों वाला), यवफल (जौ के सदृश फलों वाला), तृणकेतु, तृणध्वज (तृणों में अग्रिम), शतपर्वा (अनेक पर्वों वाला), त्वचिसारक (त्वचामात्र) ॥ १२२ ॥

वंशस्तु शीतलः स्वादुः कषायो बस्तिशोधनः ।
छेदनः कफपित्तास्रकुष्ठशोफव्रणापहा ॥१२३॥

गुण—वंश (बांस) शीतल मधुर, कषाय, मूत्रल और कफहर है, तथा रक्तपित्त, कोढ़, शोथ और व्रण को दूर करता है ॥१२३॥

तत्करीरः कटु पाके रसे रूक्षो गुरुः सरः ।
कषायः श्लेष्मलः स्वादुर्विदाही वातपित्तलः ॥१२४॥

वंशकरीर (बांस के कोमल अंकुर) विपाक और रस दोनों में कटु, खुश्क, भारी, रेचक, कषाय, कफकर, मधुर, विदाही और वातपित्तवर्धक हैं ॥१२४॥

---

१. बांस भी नलवत् सर्वत्र प्रसिद्ध है, परन्तु मरु वा रूक्ष स्थलों में नहीं उपजता । ३० वर्ष की आयु में वंश को पुष्प आता है । तत्पश्चात् यवसदृश फल । बांस के जौ का भात मधुमेह में लाभकारी है । वंशमूल का लेप विसर्प और कुत्ते के विष को दूर करता है । वंश का शुष्क **काण्ड** शिला पर जल से घिस कर सद्यःक्षत (जूते आदि के ताज़ा घाव) पर लेप करने से दाह और शूलकी शान्ति करके व्रण को भर देता है । वंशांकुर का उपनाह (Poultice) दुष्ट व्रणों को शुद्ध करता है । वंश की ग्रन्थियों से वंशलोचन (तबाशीर) निकलता है ।

तयवास्तु सरा रूक्षाः कषायाः कटुपाकिनः।
उष्णाः पित्तानिलकरा बद्धमूत्राः कफापहाः॥१२५॥

वंशयव—(बांस के जौ) रेचक, रूक्ष, कषाय, विपाक में कटु, गरम, वातपित्तवर्धक, मूत्र को रोकने वाले और कफनाशक हैं॥१२५॥

३२. इक्षुः[1]।

Saccharum officinarum.	(हिं०) गन्ना, ईख, ऊख, पोंडा (बं०)
The Sugar Cane.	आक्, कुशेर, (म०) ऊस, (गु०)
Cooling, diuretic & laxative.	शेरड़ी। शीत, मूत्रल, रेचक।

इक्षुर्मधुतृणो भूरिरसः स्थलोऽसिपत्रकः।
गण्डीरी गण्डकी वेणुर्निसृतो गुड़दारु च।
गुड़मूलो मृत्युपुष्प[2]स्तृणराजो महारसः॥१२६॥

पर्याय—इक्षु (ईख), मधुतृण (मीठा घास), भूरिरस (बहुत रस वाला), असिपत्रक (तलवार जैसे तीक्ष्ण पत्तों वाला), गण्डीरी (गंडेरी), गंडकी (गंड़ेरी), गुडदारु (मधुर काष्ठ वाला), तृणराज (घास जाति का राजा), महारस (बहुत रस वाली)॥१२६॥

इक्षुः शीतो गुरुः स्निग्धो मधुरो रसपाकयोः।
जीवनो बृंहणो वृष्यः कृमिमूत्रकफप्रदः॥१२७॥
सरः सन्तर्पणो बल्यो ह्लादी पित्तास्रनाशनः।
ऊर्जस्यो वातजित् भुक्तमात्रे वातप्रकोपनः॥१२८॥

सामान्य गुण—इक्षु शीत, गुरु, स्निग्ध, रस और विपाक में मधुर, जीवन (जिलाने वाला), बृंहण (पुष्टिकर) और वृष्य (वीर्यवर्धक) है, कृमि, मूत्र और कफ करता है, रेचक, तृप्तिकारक, बलकर, ह्लादी (हर्षजनक), रक्तपित्तनाशक, ऊर्जस्य (बलवर्धक) और वातनाशक है, परन्तु खाने पर वायु का प्रकोप करता है॥१२७–८॥

तस्याग्रं स्वादु पट्वम्लं त्वक् स्वादुलवणा मता।
दन्तोत्कृष्टो रसः श्वेतातुल्यो रुच्यः कफप्रदः॥१२९॥
यान्त्रिकोऽम्लो गुरुः स्वादुः क्षारो विष्टंभदाहकृत्।
पक्वो गुरुः सरः स्निग्धस्तीक्ष्णोष्णः कफवातहा॥१३०॥

गन्ने का **अगला भाग** मधुर, अम्ल और लवण रसयुक्त है। उस की **त्वचा** (छिलका) मधुर और लवण, **दांतों से चूसा हुआ रस** मिश्री के तुल्य मधुर, रुचिकर और कफप्रद होता है, **यन्त्र से निकाला हुआ रस** खट्टा, भारी, मधुर,

---

१. इक्षु सुप्रसिद्ध तृण है। इस की अनेक जातियां हैं, परन्तु गुणों में सब समान हैं। जो इक्षु जितना अधिक मधुर होगा, उतना ही अधिक गुणप्रद समझना चाहिए। इक्षु का मध्य और अधोभाग ही सर्वोत्तम है। इस का मूल पंचतृणमूल (कुशकाशशरदर्भेक्षु) में पड़ता है। जिस का क्वाथ मूत्रकृच्छ्राश्मर्यादि में बहुत लाभकारी है। इक्षुरस मूत्रवर्धक, शीत और पुष्टिकर है। २. द—मृत्पुष्पः।

खारा, विबन्ध और दाह को पैदा करने वाला है, पक्करस भारी, रेचक, स्निग्ध, तीक्ष्ण, गरम और कफनाशक है ॥१२९-३०॥

लोहितेक्षुः ।

Red Sugar Cane. | लाल गन्ना ।

ह्रस्वमूलो लोहितेक्षुरित्कटः सूक्ष्मपत्रकः ।
तीक्ष्णपत्रः कर्कटको दीर्घलोहितयष्टिका ॥१३१॥

पर्याय—ह्रस्वमूल (छोटी जड़ वाला), सूक्ष्मपत्र (छोटे पत्तों वाला), तीक्ष्णपत्र (तेज़ पत्तोंवाला), दीर्घलोहितयष्टिका (दीर्घ और लाल काण्ड वाला) ॥१३१॥

लोहितेक्षुर्गुरुर्वृष्यः कषायो मधुरो हिमः ।
विस्फोटवातपित्तास्रमूत्राघातांश्च नाशयेत् ॥१३२॥

गुण—लाल गन्ना भारी, वीर्यवर्धक, कषाय, मधुर और शीत है, तथा विस्फोट (ओबले), वातपित्त, रक्तपित्त और मूत्राघात को नाश करता है ॥१३२॥

अपरः पौंड्रकः पौंड्रो रसालः कुसुमाकरः ।
अन्यः करङ्कशालिः स्यादिक्षुयोनीक्षुबालिका ॥ १३३ ॥
इक्षुगन्धो क्षुरो ज्ञेयो नैपालः कोकिलाक्षकः ।
शतपर्वा ह्रस्वपर्वा वंशिको नीलयष्टिका ॥ १३४ ॥
कान्तारो दीर्घपर्वा स्यात्तेषां मूलं च मोरटम् ।
पौंड्रको भीरुकश्चाग्रयो वंशकान्तारवायसाः ॥१३५ ॥

इक्षु के अन्य प्रकार—(१) पोंडा गन्ना। (२) करङ्कशालि। (३) इक्षुगन्ध नेपाल देश में होने वाला। (४) शतपर्वा (बहुत पर्वों वाला), छोटे पर्वों वाला, वंशिक (बांस जैसा), नीलयष्टिका (नील लकड़ी वाला)। (५) कान्तार लम्बे पर्वों वाला, उन की मूल मोरट कहलाती है ॥१३३-३५॥

नैपालद्याः कषायोष्णाः स्वादुक्षारा विदाहिनः ।
वातलाः कफपित्तघ्नाः काष्ठेक्षुः स्वादुवातलः ।
कोशकारो गुरुर्ग्राही रक्तपित्तक्षयापहः ॥ १३६ ॥

गुण—नैपालादि इक्षुभेद कषाय, उष्ण, मधुर, क्षार, विदाही, वातप्रकोपक और कफपित्तघ्न हैं। काष्ठेक्षु (काठा गन्ना) मधुर और वातल है, और कोशकार भारी और काबिज है, तथा रक्तपित्त और क्षय को नाश करता है ॥१३६॥

हन्याद्वातं नूतनः स्वादुपाकस्त्वीषत्तीक्ष्णः पित्तनुत्पौंड्रकश्च ।
बल्यो वृष्यो रक्तपित्तक्षतघ्नस्त्वामं मेहश्लेष्ममेदस्तनोति ॥१३७॥
कान्ताराख्यः श्लेष्मलो (बृंहणः स्याद्वृष्यः स्वादुर्भेदिगुर्वम्लपाकः ॥१३८॥
तौ गुरुश्लेष्मलौ)[1] प्रायः शतपर्वकवंशकौ ।
नैपालः सर्वदोषघ्नो लघुः स्वादुश्च शीतलः ॥ १३९ ॥

1 यू—नास्ति ।

नूतन पौंडा गन्ना वातहर, विपाक में मधुर, किञ्चित् तीक्ष्ण, पित्तहर, बलप्रद, वृष्य, रक्तपित्त और क्षतनाशक है, और आमदोष, प्रमेह, कफ और मेद को बढ़ाता है। **कान्तार इक्षु** कफकारक, बृंहण, वृष्य, मधुर, रेचक, भारी और अम्लपाकी है। **शतपर्व** और **वांशिक** प्रायः गुरु और श्लेष्मवर्धक होते हैं। नेपाली इक्षु त्रिदोषघ्न, लघु, मधुर और शीतल है॥१३७–९॥

इक्षुविकाराः।

Preparations of Sugar Cane | इक्षुकृतद्रव्याणि

मत्स्यण्डिका तु मीनाण्डी घल्लूकः[1] पलिका सिता।
अन्या खण्डसिता खण्डशर्करा पिण्डशर्करा[2]।
अन्या श्वेता त्वहिच्छत्रा सिकता च सितोपला॥१४०॥

इक्षु से बने हुए पदार्थ—(१) मत्स्यण्डी (घन राव), (२) खण्डसिता (शक्कर), (३) श्वेता (सफेद खांड), (४) सिकता (चीनी, स्फटिकाकार), (५) सितोपल (सित–श्वेत, उपल–पत्थर, कूज़ा मिश्री)। (मीनाण्डी आदि शब्द पर्याय हैं) ॥ १४० ॥

इक्षो रसस्य सकल[3]त्र्यंशार्द्धाङ्घ्रिमलामलाः।
विकाराः फाणितगुडमत्स्यण्डीखण्डशर्कराः॥ १४१॥
स्वादुपाकरसाः स्निग्धा बल्या वृष्या हिमाः सराः।
क्षयकासविषश्वासमदमोहज्वरापहाः।
तृड्दाहवमिमूर्च्छासृक्पित्तघ्नाः सर्वशर्कराः॥ १४२॥

अर्थ—फाणित (राब), गुड़, मत्स्यण्डी (घन राब), खण्ड (शक्कर), शर्करा (खाण्ड)–यह (क्रमशः) सर्वमल सहित, तीन दो और एक भाग मल से युक्त, और सम्पूर्ण मलरहित इक्षुरस के विकार हैं, (अर्थात् जितना २ मलांश कम होता जाता है, उतना २ इक्षुविकारों का वर्ण स्वच्छ होता है)। यह सब विकार रस और विपाक दोनों में मधुर, स्निग्ध, बलकर, वृष्य, शीत और रेचक होते हैं, और क्षय, कास, विष, श्वास, मद, मोह और ज्वर को नाश करते हैं। सब प्रकार की शर्कराएं पिपासा, दाह, वान्ति, मूर्च्छा और रक्तपित्त को दूर करती हैं॥ १४१–४२॥

मत्स्यण्डिकाखण्डसिता गुणश्रेष्ठा[4] यथोत्तरम।
विमलाः शीतलाः स्निग्धा गुर्व्यः स्वादुतराः सराः।
वृष्यास्तृष्णाक्षतक्षीणरक्तपित्तानिलापहाः॥ १४३॥

मत्स्यण्डिका, खण्ड (शक्कर) और सिता (चीनी, मिश्री,) यह उत्तर २ एक दूसरे से गुणों में श्रेष्ठ हैं, विमल, शीतल, स्निग्ध, गुरु, मधुर, रेचक और वृष्य हैं, तथा तृष्णा, क्षत, क्षीण, रक्तपित्त और वायु को दूर करते हैं॥ १४३॥

---

१. द—ख्वल्लूकः। २. यू—नास्ति। ३. व—समल०। ४. यू—गुणैः सोष्णा।

मत्स्यण्डी[1] ग्राहिणी बल्या कषाया वातजिद्गुरुः ।
खण्डं[2] गुरु सरं रुच्यं वातघ्नं बलपुष्टिदम् ॥ १४४ ॥
सितोपला[3] सरा गुर्वी वातघ्नी न कफप्रदा ।
तुवराजं (?) सरं रुच्यं कषायं विशदं लघु ।
अश्लेष्मलं तृष्णादाहपवनश्रमनाशनम् ॥ १४५ ॥

मत्स्यण्डी (घन राब) कांबिज़, बलकर, कषाय, वातहर और भारी होती है । **खण्ड** (शक्कर) गुरु, रेचक, रुचिकर, वातघ्न, और बलपुष्टिदायक है। **सितोपला** (कूज़ा मिश्री) रेचक, भारी तथा वातहर है, परन्तु कफकारक भी नहीं। **तुवराज** (?) शर्करा रेचक, रुचिकर, कषाय, विशद (अपिच्छल), हलकी और कफ न करने वाली है, तथा प्यास, दाह, वात और थकावट को दूर करती है ॥ १४४-५ ॥

३३. मधुशर्करा[4] ।

शर्कराऽन्या मधुभवा माधवी मधुशर्करा ।
रक्तपित्तकफच्छर्दितृष्णातिसारदाहजित् ।
कषाया मधुरा रूक्षा छेदनी मधुशर्करा ॥ १४६ ॥

एक और खाण्ड मधुसे बनाई जाती है, उस को माधवी वा मधुशर्करा कहते हैं। वह रक्तपित्त, कफ, छर्दि, तृष्णा, अतिसार और दाह को नाश करती है, तथा कषाय, मधुर, रूक्ष (खुश्क) और छेदनी (कफनाशक) होती है ॥ १४६ ॥

३४. गुडशर्करा[5] ।

Saccharum Purificatum.	खाँड (प्रायः सब भाषाओं में)
Cane Sugar, Sucrose, $C_{12}H_{20}O_{11}$	श्वेत स्फटिकाकार, चीनी ।
Cooling, diuretic & laxative.	शीत, मूत्रल, रेचक ।

क्षतक्षयतृषादाहरक्तपित्तज्वरापहा ।

१. पञ्जाब के ग्रामों में मत्स्यण्डी (Condensed guice of Sugar Cane) बहुत मिलती है । यह एक वर्ष तक नहीं बिगड़ती २. शक्कर (Red sugar) ३. कूज़ा मिश्री (Sugar Candy) यह खाँड की अपेक्षा अधिक लाभकारी है, सितोपलादि चूर्ण में इसको डाला जाता है । ४. शहद की खांड (Glucose) यह मूत्र को शुद्ध तथा कम करती है, परन्तु साधारण खाँड मूत्रवर्धक है ॥ ५. कई वैद्य गुड़शर्करा को शक्कर वा लाल खाँड समझते हैं और 'खण्ड' शब्द से शर्करा वा खांड का अभिप्राय लेते हैं । परन्तु यहां खाँड को गुड़शर्करा मधुशर्करा से पृथक्करणार्थ कहा गया है, अवलेह पाकादि औषधों में खांड वा मिश्री का ही प्रयोग होता है । इस से पानक (शर्बत-Syrups), मुरब्बे, आदि बनते हैं । योरुप में अब एक नई शर्करा बनी है, जिस को 'सैकिरीन' (Saccharin or Glusidum) कहते हैं । यह साधारण खाँड से ३०० गुना अधिक मधुर है । यह जल में सुविलेय नहीं । इस का १ तोला ४०० तोले जल में घुल सकता है ।

स्निग्धा वृष्या हिमा स्वाद्वी सक्षारा गुड़शर्करा ॥ १४७ ॥

गुड़शर्करा क्षत, क्षय, तृष्णा, दाह, रक्तपित्त, और ज्वर को दूर करती है, तथा स्निग्ध (तर), वृष्य, शीत, मधुर और खारी है ॥ १४७ ॥

३५. पौण्ड्रजा शर्करा ।

पौण्ड्रजा शर्करा स्निग्धा वृष्या क्षीणक्षते हिता[२] ॥ १४८ ॥

पौंड्र गन्ने से बनाई हुई शर्करा चिकनी, वीर्योत्पादक, और क्षीण (दुर्बल) तथा क्षत (ज़ख़मी) पुरुषों को लाभकारी है ॥ १४८ ॥

३६. यवासशर्करा[१] ।

दुरालभाक्वाथकृता यासजा यासशर्करा ।

यासजा तुवरा तिक्ता मधुरा कफनाशनी ॥ १४९ ॥

दुरालभा (जवांह) के काढ़े से प्रस्तुत शर्करा कषाय, तिक्त, मधुर, और कफ-नाशक होती है ॥ १४९ ॥

३७. फाणितम्[२] ।

फाणितं क्षुद्रगुडकस्ततो घनतरो गुडः ।

फाणितं गुर्वभिष्यन्दि मधुरं मूत्रशोधनम् ।

अवृष्यं बृंहणं क्षारं वीर्योष्णं सर्वदोषकृत् ॥ १५० ॥

फाणित (राब) एक प्रकार से क्षुद्र गुड़ है, और गुड़ उस से अधिक घन होता है। फाणित भारी अभिष्यन्दी (क्लेदकफकारक), मधुर, मूत्रशोधक, अवृष्य, बृंहण, क्षारीय, तासीर में गरम और सर्वदोषप्रकोपक है ॥ १५० ॥

३८. मधूकफाणितम्[३] ।

मधूकफाणितं स्वादु कषायं बस्तिदूषणम् ।

रूक्षं विपाके मधुरं कफघ्नं वातपित्तकृत् ॥ १५१ ॥

मधूक (महुवा) से बना हुआ फाणित मधुर, कषाय, बस्तिदूषक, खुश्क, पाक में मधुर, कफघ्न और वातपित्तकारक है ॥ १५१ ॥

३९. गुडः ।

इक्षोस्तु सारं विपचेद्यथावद्यावद्घनीभूतमथाप्सु मज्जेत् ।

एषो गुडाख्यः कटुस्तीक्ष्ण उष्णः सुस्वादुरुच्यो गुरुबृंहणीयः ॥ १५२ ॥

इक्षुसार (गन्ने के रस) को ठीक तरह से पकावें, जब तक कि वह घनीभूत (कठोर) होकर जल में डूब जावे, यह **गुड़** के नाम से प्रसिद्ध है । यह कटु, तीक्ष्ण, गरम, बहुत मधुर, रुचिकर, भारी और बृंहण है ॥ १५२ ॥

---

१. इस को यूनानी हकीम 'तुरञ्जबीन' कहते हैं । यह जवांह वा धमांह के पक्व पुष्पों से प्राप्त की जाती है । दुर्बल रोगियों को मृदु रेचन देने के लिए रात्रि को १ तोला तुरञ्जबीन १ पाव दुग्ध में उबालकर पिला दें । यह स्वादु विरेचन है । २. राब । ३. महुवे के पुष्प वा फल से बनता है ।

नवोऽधौतो गुडः स्वादुः सक्षारः सारको गुरुः ।
वातपित्ताग्निहृत्स्निग्धो मूत्ररक्तविशोधनः ।
मेदोमांसकृमिश्लेष्ममज्जास्रबलशुक्रकृत् ॥ १५३ ॥

नव (ताज़ा) और **अधौत** (अस्वच्छ लाल) **गुड़** मधुर, खारा, रेचक और भारी है, वातपित्त और अग्नि को हरता है, मूत्र और रक्त का शोधक है, तथा मेद, मांस, कीड़े, कफ, मज्जा, रक्त, बल और वीर्य को बढ़ाता है ॥ १५३ ॥

नातिश्लेष्मकरो धौतो वातघ्नोऽसृक्प्रसादनः ।
स्वादुपाकरसः स्निग्धः शकृन्मूत्रानुलोमनः ॥ १५४ ॥

धौत (स्वच्छ) **गुड़** अल्पकफकारक, वातघ्न और रक्त को ठीक करने वाला है । यह रस तथा विपाक में मधुर, स्निग्ध, शकृत् (विष्ठा) और मूत्र का प्रवर्तक है ॥ १५४ ॥

जीर्णः स्वादुः पथ्यहृद्यो नाभिष्यन्द्यग्निकृल्लघुः ॥ १५५ ॥

जीर्ण (पुराना) **गुड़** मधुर, पथ्य, रुचिकर, अग्निवर्धक और हलका होता है, परन्तु कफवर्धक नहीं ॥ १५५ ॥

प्रपुराणो वरस्तस्मात् सर्वरोगहरो[२] लघुः ॥ १५६ ॥

प्रपुराण (बहुत पुराना) **गुड़** जीर्ण गुड़ से भी उत्तम है, वह सर्व रोगों को नाश करने वाला और हलका है ॥ १५६ ॥

गुडकालपरिभाषा ।

संवत्सरोषितो गुडः पुराण इति कथ्यते ।
वर्षत्रयोषितः सोऽपि प्रपुराणः प्रकीर्तितः ।
अरिष्टाद्येषु सर्वेषु प्रपुराणं प्रयोजयेत् ॥ १५७ ॥

एक वर्ष गुज़र जाने पर गुड़ पुराना (जीर्ण) कहलाता है, और तीन वर्ष के पश्चात् वह **प्रपुराण** संज्ञा को प्राप्त करता है, अरिष्टादि के निर्माण में प्रपुराण गुड़ ही प्रयोग करना चाहिये ॥१५७॥

निषिद्धगुडलक्षणम् ।

चतुर्वर्षात्परस्तस्मान्निर्वीर्यो निष्फलो गुडः ।
अनिष्टगन्धादम्लत्वाद्च्छत्वात् कृमिसम्भवात् ॥ १५८ ॥
कासश्वासादिकान् सर्वान् जनयेत् स विशेषतः ।
तस्मात् सर्वप्रयोगेषु मतिमान्न प्रयोजयेत् ॥ १५९ ॥

चार वर्ष के पश्चात् गुड़ वीर्यरहित और निष्फल होजाता है । दुर्गन्धि, खट्टा, **अच्छ (श्वेताच्छादनयुक्त)** और कृमियों के उत्पन्न हो जाने से वह कासश्वासादि सब रोगों को उत्पन्न करता है, **अतः बुद्धिमान्** वैद्य उस को किसी भी औषध में न डाले ॥ १५८—१५९ ॥

४०. मधु[1] ।

Glucose, Honey.	सहत, शहद, मधु, माखी ।
Sweet, drying & expectorant	मधुर, रूक्ष, लेखन।

पुष्पासवः पुष्परसो मक्षिकाविट् च सारघम् ।
माक्षिकं पौत्तिकं[2] क्षौद्रं भ्रामरं मधुजातयः ॥ १६०॥

पर्याय–पुष्पासव (फूलों की शराव), पुष्परस, मक्षिकाविट् (मक्खियों की विष्ठा), सारघ, माक्षिक, पौत्तिक, क्षौद्र और भ्रामर यह नाम भी हैं और जातियां भी॥१६०॥

विशेषपरिचयः ।

माक्षिकं तैलसंकाशं घृतवर्णं तु पौत्तिकम् ।
क्षौद्रं तु कापिलं विद्याद्भ्रामरं शशिवर्णकम् ॥ १६१ ॥

माक्षिक (मधु) तैल के सदृश, **पौत्तिक** घृत के समान, **क्षौद्र** कपिल (भूरे) वर्ण वाला, और भ्रामर शशिवर्ण (चन्द्रवत् श्वेत) होता है ॥ १६१ ॥

---

१. मक्षिका, कीटादि क्षुद्र जन्तु नाना प्रकार के पुष्पों से मधुर रस, जो प्रायः पुष्पमूल में होता है, लेकर अपने कोष में पहुंचा कर वमन कर देते हैं, एवं संगृहीत पुष्परस **मधु** कहलाता है । स्वार्थवश प्रेरित हुए मनुष्य मधुकोष से मक्खियों को धूम्र द्वारा उड़ा कर मधु निकाल लेते हैं, और मधुकोष से मोम बना लेते हैं । मक्खियों के भेद से मधु भी नाना वर्ण और नाना प्रकार का है । नाम भी उन के भिन्न २ हैं, जो पाठ में देखें । वैद्यक चिकित्सा में यह पदार्थ अनिवार्य है । च्यवनप्राश, एलादि वटी, प्रायः सब आसवारिष्टों में वा अन्य अनेक औषधों में मधु डालने का विधान है। इस के अतिरिक्त मधु एक बड़ा प्रसिद्ध अनुपान है । योगवाही होने से इसे सब रोगों में देते हैं । तालीसादि, सितोपलादि चूर्ण, मकरध्वज वा अनेक रस मधु में मिला कर चटाए जाते हैं । इस की सहायता से औषध आमाशय में शीघ्र लीन हो जाते हैं। क्वाथों में वा बस्ति में भी इसे दिया जाता है । शरीर के धातुओं में शीघ्र लीन होने के कारण इसको व्यवायी कहा गया है । जो काम डाक्टर लोग ग्लैसरीन (Glycerine) से लेते हैं, वह सब हम मधु से ले सकते हैं । मधु व्रण को शुद्ध करके भर देने की शक्ति भी रखता है । मधु नेत्ररोगों में आंख में डाला जाता है, अतः मधु को पुष्पाञ्जन कहा गया है ।

मधु की महोपयोगिता और महार्घता के कारण धूर्त लोग खांड से मधु बना लेते हैं । खांड का घन शर्बत जिस में तनिक निम्बुसत्त्व हो मधु के सदृश प्रतीत होता है। वे उसमें कुछ मोम और मक्खियां भी डाल देते हैं, ताकि सन्देह न हो और ॥) सेर के हिसाब से बेचते हैं । कुछ मधु इस में अवश्यमेव होता है। परन्तु सर्वांश मधु नहीं । मधु की परीक्षा भी कुछ सुगम नहीं । यह तैलवत् जलता है, कपड़े पर नहीं लगता, कुत्ते और साधारण मक्खियां इस को नहीं खातीं इत्यादि अनेक परीक्षाएं प्रचलित हैं, परन्तु उत्तम परीक्षा अपना अनुभव है, जो अनुभवी चिकित्सक मधु के वर्ण, गन्ध और रस से शीघ्र सत्यासत्य का पता लगा लेते हैं ।

सामान्यमधुगुणाः ।

मधु स्वादु हिमं रूक्षं कषायानुरसं लघु ।
दीपनं ग्राहि चक्षुष्यं स्वर्यं व्रणविलेपनम् ॥ १६२ ।
सौकुमार्यकरं वृष्यं हृद्यं स्रोतोविशोधनम् ।
सूक्ष्मं मेधाकरं छेदि व्रणशोधनरोपणम् ॥ १६३ ॥
विशदं रोचनं ह्लादि प्रसादजननं जयेत् ।
मेदःपित्तकफश्वासहिध्ममेहवमिक्षयान् ॥ १६४ ॥
दोषत्रयातिसारास्रतृष्णादाहविषक्रमीन् ।
कुष्ठार्शोरक्तपित्तघ्नं योगवाहि च वातलम् ।
वातलं वातकोपेऽपि वर्षासु मधु शस्यते ॥ १६५ ॥

मधु के साधारण गुण—मधु मीठा, शीत, रूक्ष, कषाय (उपरस), हलका, दीपन, ग्राही, नेत्रों और स्वर के लिये हितकर, फोड़ों पर लेप करने के योग्य, मृदुभाव करने वाला, वीर्यवर्धक, रुचिकर, स्रोत (मार्गों) को शुद्ध करने वाला, सूक्ष्म (शरीर के सूक्ष्मतम भागों में पहुंचने वाला), बुद्धिवर्धक, छेदी (कफमेदोहर), फोड़ों को शुद्ध करके भर देने वाला, विशद (अपिच्छल, खरखरा), रुचिकारक, हर्षजनक, और प्रसादजनन (प्रसन्नतोत्पादक वा साफ़ करने वाला) होता है, तथा मेद (चरबी), पित्त, कफ, दमा, हिध्म (हिक्का), मूत्ररोग, वान्ति (कै), क्षय, त्रिदोष, अतिसार, रक्तपित्त, प्यास, दाह, विष और पेट के कीड़े, कुष्ठ, बवासीर और रक्तपित्त को नाश करता है। वह योगवाही (जैसी वस्तु के साथ दिया जाय, वैसा गुण करता है) और वातल है। मधु वातप्रकोपक होते हुए भी वातकोप में और वर्षा ऋतु में प्रयोग करना उचित है॥ १६२—५ ॥

मधुजातयः ।

मधुनि माक्षिकं क्षौद्रं पौत्तिकं भ्रामरार्घ्यकम् ।
छात्रौद्दालकदालं[1] च यथापूर्वं गुणोत्तरम्[2] ॥ १६६ ॥

मधु के प्रकार—(मक्खियों के भेद के कारण) मधु में माक्षिक, क्षौद्र, पौत्तिक, भ्रामर, आर्घ्य, छात्र, औद्दालक और दाल (यह आठ जातियां सम्मिलित हैं जो) यथापूर्व गुणोत्तर हैं (अर्थात् दाल से औद्दालक अच्छा है, और औद्दालक से छात्र, इत्यादि, और माक्षिक सर्वोत्तम है) ॥ १६६ ॥

नातिस्वल्पा मक्षिकाख्याः पिङ्गला मधुमक्षिकाः ।
मधु सञ्चिन्वते यत्र तैलाभं माक्षिकाभिधम् ॥ १६७ ॥
माक्षिकं मधुषु श्रेष्ठं लघीयो नातिशीतलम् ।
रूक्षं कासव्रणश्वासकामलार्शःक्षतक्षये ।
विशेषेण हितं वाते न हन्ति न करोति च ॥ १६८ ॥

१. ब—अत्रोदानं लकदालं । २. द—गुणोत्तमम् ।

माक्षिकपरिचय—मधुमक्षिका (शहद की मक्खियां) न बहुत छोटी और न बहुत बड़ी होती हैं। उन का रङ्ग पिङ्गल (किञ्चिद्रक्त) और नाम मक्षिका है। उन से एकत्रित किया हुआ मधु **माक्षिक** कहलाता है, जो सब मधुओं में श्रेष्ठ, लघु, न बहुत शीतल और रूक्ष है, विशेष करके कास, श्वास, कामला (यरकान), बवासीर, क्षत और क्षय में हितकारी है। वायु को न हरता है और न करता है ॥ १६७–८॥

क्षौद्रं क्षुद्राः स्वल्पपिङ्गास्तत्कृतं कपिलं मधु।
क्षौद्रं विशेषतः शीतं वातलं लघु लेखनम् ॥ १६९ ॥
सतिक्तं मधुरं रूक्षमभिष्यन्दि कफास्रजित्।
क्षतकासक्षयश्वासनेत्ररोगातिसारनुत् ॥ १७० ॥

क्षौद्रपरिचय—क्षौद्र मधु वह है, जो **क्षुद्रा** नाम वाली मक्खियों से बनाया जाता है, यह छोटी और पिङ्गल वर्ण वाली होती हैं, क्षौद्र मधु विशेषतः शीत, वातल, लघु, लेखन (छेदी), तिक्त, मधुर, रूक्ष, अभिष्यन्दी, कफनाशक और रक्तशोधक है, क्षतकास (निमोनियादि), क्षय, दमा, नेत्ररोग और अतिसार को दूर करता है ॥ १६९—७० ॥

याः कृष्णाः मशकाकाराः सुसूक्ष्माः स्थूलपिण्डकाः।
मक्षिकाः पुत्तिका वृक्षकोटरे चिन्वते मधु।
घृतवर्णं पौत्तिकं तल्लोके त्वकुन्तिमाभिधम् ॥ १७१ ॥

पौत्तिकपरिचय—जो कृष्ण वर्णवाली मच्छरों के सदृश छोटी परन्तु स्थूल गुद वाली मक्खियां होती हैं, उन को **पुत्तिका** कहते हैं, वह घृत के समान **पौत्तिक** मधु वृक्षों के कोटरों में एकत्रित करती हैं, उसका लोक में (श्वेतता के कारण) कुन्तिमा भी नाम है ॥ १७१ ॥

विषवत्पुष्पसेविन्यः स्वयं च सविषा भृशम्।
महत्यो मक्षिकाः पिङ्गाः पुत्तिकाः केचिदूचिरे ॥ १७२ ॥

मतान्तर—कई लोग यह कहते हैं, कि पुत्तिका मक्खियां बड़ी और पिङ्गल होती हैं, वह विषैले फूलों को सेवन करती हैं और स्वयं बड़ी विषैली होती हैं ॥ १७२ ॥

पौत्तिकं लघु रूक्षोष्णं वातासृक्पित्तदाहकृत्।
विदाहि मेहकृच्छ्रस्तं ग्रन्थ्यादिक्षतशोषिषु ॥ १७३ ॥

पौत्तिक मधु हलका, रूक्ष और उष्ण है, तथा वात, रक्तपित्त और दाह को करता है, विदाहि और मेहकारक है, परन्तु ग्रन्थ्यादि क्षत और शोष में लाभकारी है ॥१७३॥

किञ्चित्सूक्ष्मैः प्रसिद्धेभ्यो... ऽलिभिश्चितम्।
श्वेतं तद्भ्रामरं यद्वा भ्रमरैरेव निर्मितम् ॥ १७४ ॥
भ्रामरं रक्तपित्तघ्नं स्वादुपाकरसं हिमम्।
विशेषाद्गुर्वभिष्यन्दि पिच्छिलं मूत्रदाहकृत्।

तर्पणं भ्रमतृण्मोहविषमेहांश्च नाशयेत् ॥ १७५ ॥

भ्रामरपरिचय—प्रसिद्ध षट्पदों (भ्रमरों) में से सूक्ष्म मक्खियों द्वारा सञ्चित श्वेत मधु **भ्रामर** कहलाता है, अथवा जो भ्रमरों से बनाया गया हो। भ्रामर मधु रक्तपित्तनाशक, रस और विपाक में मधुर और शीत है, वह विशेष करके गुरु, कफ-वर्धक और पिच्छिल (लेसदार), मूत्र में दाह उत्पन्न करने वाला और तृप्तिकारक है। भ्रम, तृष्णा, मूर्च्छा, विष और मेहों को दूर करता है ॥ १७४–५ ॥

मधूकवृक्षनिर्यासं जरत्कार्वाश्रमोद्भवाः।
स्रवन्त्यार्घ्यं मधु प्राहुः क्षेवकं मालवाजनाः[1] ॥१७६॥

आर्घ्य मधु—जरत्कारु ऋषि के आश्रम की मक्खियां मधूक वृक्ष (महुए) के गोंद के समान मधु बनाती हैं, उस को **आर्घ्य** मधु कहते हैं, मालवा के लोग उस को **क्षेवक** मधु कहते हैं ॥१७६॥

तीक्ष्णास्या मक्षिकाः पीतवर्णाः षट्पदसन्निभाः।
अर्घा नाम तदुत्पन्नमार्घ्यमित्यपरे जगुः ॥१७७॥

मतान्तर—दूसरे लोग तीक्ष्ण मुख वाली पीतवर्ण भ्रमरों के सदृश मक्खियों को **अर्घ** कहते हैं, उन के द्वारा सञ्चित मधु **आर्घ्य** है ॥१७७॥

आर्घ्यं कषायं चक्षुष्यं तिक्तं कटु विपाकतः।
मधुरं कफपित्तघ्नं वातघ्नं[2] बलपुष्टिकृत् ॥१७८॥

आर्घ्य मधु कषाय, नेत्रहित, तिक्त, विपाक में कटु, मधुर, त्रिदोषघ्न और बलपुष्टिकारक होता है ॥१७८॥

सरघाः पीतकपिलाः प्रायो हैमवते वने।
कुर्वन्ति[3] छत्रकाकारं तच्छात्रं कथ्यते मधु ॥१७९॥
छात्रं तु मधुरं पाके शीतलं पिच्छिलं गुरु।
रक्तपित्तकृमिश्वित्रप्रमेहघ्नं गुणोत्तमम् ॥१८०॥

छात्र मधु—**सरघ** नामक पीली भूरी मक्खियां हिमालय पर्वत के जंगलों में छत्राकार (कोष) बनाती हैं, उन के मधु को **छात्र** मधु कहते हैं। छात्र मधु पाक में मधुर, शीतल, लेसदार और भारी है तथा रक्तपित्त, कृमि, श्वित्र, और प्रमेह को दूर करता है। वह गुणों में उत्तम है ॥१७९-८०॥

उद्दालकाः पिङ्गसूक्ष्माः प्रायो वल्मीकमध्यगाः।
चिन्वन्त्यौद्दालकं तत्तु लोके भूकुन्तिकं[4] मधु ॥१८१॥
औद्दालकं कषायाम्लं तिक्तमुष्णं रुचिप्रदम्।
पित्तलं कटुकं पाके स्वर्यं कुष्ठविषापहम् ॥१८२॥

औद्दालक मधु—उद्दालक भूरे रङ्ग के छोटे २ कीट होते हैं, जो प्रायः वल्मीक के मध्य भाग में रहते हैं। उन के द्वारा सञ्चित मधु **औद्दालक** कहलाता है, उस को

१. ब—मलेवाजनाः। २. ब—धावनं। ३. ब—कुर्वति। ४. द—भूकृत्रिमं।

लोक में भृकुन्ति भी कहते हैं। यह कषाय, अम्ल, तिक्त, गरम, रुचिकर, पित्त-प्रकोपक, विपाक में कटु, स्वर्य, कुष्ठ और विषनाशक है ॥१८१-२॥

पत्रोपरिभवं दालं यद्वा पिङ्गलमक्षिकाः।
दालाख्याश्चिन्वते प्रायस्तरुकोटरगाश्च तत् ॥१८३॥
दालोद्भवं मधु स्वादु रूक्षमम्लं कषायकम्।
वातलं लेखनं छर्दिःप्रमेहशमनं परम् ॥१८४॥

दाल मधु—पत्र (दल) पर होने वाला **दाल** मधु कहलाता है, अथवा जो मधु **दाल** नामक पिङ्गल मक्खियों द्वारा सञ्चित हो, उस को **दाल** मधु कहते हैं। यह मक्खियां प्रायः वृक्षों के कोटर में रहती हैं। दाल मधु स्वादु, रूक्ष, अम्ल, कषाय, वातकर और छेदी है, तथा वान्ति और प्रमेह को दूर करता है ॥१८३-४॥

नवीनपुराणमधुगुणाः।

नवीनं मध्वभिष्यन्दि नातिश्लेष्महरं सरम्।
स्निग्धं मधुरभूयिष्ठं बृंहणं गुरु भारिकम्[1] ॥१८५॥
पुराणं स्थौल्यमेदोघ्नं रूक्षं ग्राह्यतिलेखनम्।
त्रिदोषघ्नमभिष्यन्दि पुराणत्वं यथा यथा।
तथा तथा क्रमेण तद्गौरवेण वियुज्यते ॥१८६॥

नवीन (ताज़ा) मधु अभिष्यन्दी, किञ्चित् कफहर, रेचक, स्निग्ध, अत्यन्त मधुर, पुष्टिकर, गुरु और भारी (दुर्जर) होता है। **पुराना मधु** मोटापे और मेद (चरबी) को दूर करता है, रूक्ष, काबिज, अत्यन्त लेखन (छेदी), त्रिदोषघ्न और अभिष्यन्दी है। जितना अधिक पुराना मधु हो, उतना ही वह क्रमशः गुरुता (भारीपन) से वियुक्त होता है, अर्थात् वह हलका हो जाता है ॥१८५-६॥

मधुनः शर्करायाश्च गुडस्यापि विशेषतः।
अतीते त्वेकसवने[2] (?) पुराणत्वं च प्रचक्ष्यते ॥१८७॥

विशेष करके मधु, शर्करा और गुड़ एक वर्ष के गुजरने पर पुराने हो जाते हैं ॥१८७॥

विषयुक्तादिपुष्पेभ्यः स्वयं च सविषा मधु।
भ्रमराद्या विचिन्वन्ति विषान्वयतया ततः ॥१८८॥
विषे य उक्तास्तीक्ष्णाद्याः[3] क्षौद्रेऽपि च त एव तु।
विशेषाच्छीतता क्षौद्रे शैत्ये नष्टे विषं हि तत् ॥१८९॥
तस्मग्न्यातपाद्यार्त्तमुष्णयोर्[4]देशकालयोः।
द्रव्यैरुष्णैर्युतं चोष्णं तं निहन्त्युपयोजितम् ॥१९०॥
प्रच्छर्दने निरूहे च मधूष्णं न निवार्यते[5]।

१. द—सारकं। २. यू—त्वेकसमये। ३. यु—यदुक्ताः। ४. द—उभयोः।
५. यू—नाति चार्यते।

अलब्धपाकमाश्वेव तयोर्यस्मान्निवर्तते ॥१९१॥
आर्घ्यं विषान्वयाभावादुष्णेन न विरुध्यते ।
शीतेनाप्यान्तरिक्षेण विरुध्येताम्भसा मधु ॥१९२॥

भ्रमरादि जन्तु जो स्वयं विषैले हों और विषैले पुष्पों से मधु का संग्रह करते हों, उस मधु में विष का अन्वय होने से विष के तीक्ष्णादि गुण पाए जाते हैं। मधु में विशेषत: शीतभाव होता है, उस के नष्ट होने पर वह विषवत् हो जाता है। जो पुरुष अग्नि और आतप (धूप) से पीड़ित हो, और देश तथा काल भी उष्ण हों, यदि वह उष्ण द्रव्यों से युक्त तथा उष्ण मधु को खावे, तो वह मर जाता है। वमन और वस्ति में गरम किया हुआ मधु निषिद्ध नहीं, क्योंकि उन में वह शीघ्र ही पचने के बिना बाहर निकल जाता है। आर्घ्य मधु में विष का अन्वय न होने से तपाने पर विरुद्ध नहीं होता। शीत आन्तरिक्ष (वर्षा के) जल से भी मधु विरोधी (विषवत्) हो जाता है ॥१८८-९२॥

दोषत्रयहरं पक्कमामं साम्लं त्रिदोषकृत् ।
लघुतिक्तकषायत्वात् श्लेष्मघ्नं पित्तनाशनम् ॥ १९३॥
कषायस्वादुपैच्छिल्यात् स्निग्धोष्णाभ्यां समीरहृत् ।
गुरुरूक्षकषायत्वात् शैत्याच्च मधु दुर्जरम् ॥ १९४ ॥
आमेषूक्ता क्रिया सा तु मध्वामे च विरुध्यते ।
मध्वामं विषवद्धन्ति सेव्यं तेनाल्पशो मधु ॥ १९५ ॥
क्षौद्रस्य पाके चाष्टांशे नवमांशं जलं क्षिपेत् ।
दुर्मांसे मूत्रसंयुक्तं स्थौल्ये तु त्रिफलासमम् ॥ १९६ ॥
रोपणे क्षीरसंयुक्तं शोधने रजनीसमम् ।
सर्वरोगेषु पानीयं दत्त्वा मध्वग्निना पचेत् ॥ १९७ ॥
क्षिप्तं जले निमग्नं स्याद्थवा पिच्छलं भवेत् ।
वस्त्रे दर्व्यां विलेपी स्यान्मधुपाकस्य लक्षणम् ॥ १९८[1]॥

पक्क (मधुकोष में मक्खियों द्वारा सुकृत) **मधु** त्रिदोषघ्न होता है, **आम** (कच्चा, अपक्क) **मधु** त्रिदोषप्रकोपक है। लघु तिक्त, और कषाय होने से मधु **कफहर** है, कषाय, मधुर और पिच्छल होने के कारण **पित्तनाशक** और स्निग्धता तथा उष्णता से वायुनाशक है, और गुरु, रूक्ष, कषाय और शीत होने से मधु **दुर्जर** (चिरपाकी) है। यह क्रिया **आम** (कच्चे) मधुओं में कही गई है, क्योंकि मधु आमावस्था में विरोध करता है। आम (कच्चा) मधु विषवत् मार डालता है, अतः मधु थोड़ा सेवन करना चाहिये। क्षौद्र के पाक में आठ भाग मधु और एक भाग जल डालना चाहिए। दुर्मांस में मूत्र के साथ, मोटापे में त्रिफला के साथ, रोपण (व्रणों को भरने) में दुग्ध के साथ और शोधन (व्रणों को साफ करने) में हल्दी के साथ और सब रोगों में

१. यू-मलक्त०, व—अनच्छ० ।

पानी देकर मधु को अग्नि से पकाना चाहिये। **मधुपाक** का यह लक्षण है, कि वह पक्व मधु जल में डालने पर डूब जावे वा पिच्छल हो जावे, वस्त्र में वा कड़छी में लेवी के समान लग जावे ॥ १९३—१९८ ॥

नानाद्रव्यात्मकत्वाच्च योगवाहि परं मधु।
वृष्ययोगैरतो युक्तं वृष्यतामनुवर्तते ॥ १९९ ॥
योजयेन्माक्षिकक्षौद्रे तयोरन्यदलाभतः।
मण्डः पुराणो मधुनस्तीक्ष्णो रूक्षो लघुस्तनुः।
विवर्जितो निरूहेषु विषमेदःकफापहः ॥ २०० ॥

मधु नाना प्रकार के द्रव्यों से निर्मित होने के कारण अच्छा योगवाही है, अतः वह वृष्य योगों से युक्त होकर वृष्य हो जाता है। सदैव **माक्षिक और क्षौद्र** ही प्रयोग करने चाहियें, उन के न मिलने पर कोई और मधु (प्रयोग करें)। मधु का पुराना मण्ड (उपरिभाग) तीक्ष्ण, रूक्ष, लघु और पतला होता है, वह निरूह (वस्ति) में नहीं देना चाहिये। वह विष, मेद (चरबी) और कफ को दूर करता है ॥ १९९—२०० ॥

मधुनः शर्करा गुर्वी सुस्वादुर्मधुवच्च सा[1] ॥२०१॥

मधु की शर्करा—भारी, मधुर और मधु के तुल्य होती है ॥२०१॥

मधुजं विषसंसिक्तं मधूच्छिष्टं मधूषितम्।
मधुशेषं मधुनकं[2] मधूकं[3] माक्षिकाश्रयम्।
वातरक्तहरं सिक्थं व्रणशोधनरोपणम् ॥ २०२ ॥

मधूच्छिष्ट (मोम) के **पर्याय**—मधुज, विषसंसिक्त, मधूच्छिष्ट (मधु का उच्छिष्ट भाग), मधूषित (मधूच्छिष्ट), मधुशेष, मधुनक, मधूक, माक्षिकाश्रय (मधु का सहारा)। सिक्थ (मोम) वातरक्तनाशक है और व्रण का शोधक तथा रोपक है ॥ २०१ ॥

४१. वंशरोचना[4]।

A Silicious Concretion of	**वंशलोचन, तबाशीर।**
Bambusa arundinacea.	**श्वेतनील स्फटिकाकार प्रसिद्ध**
Bluish white crystals.	**कृत्रिम वा प्राकृतिक द्रव्य।**
Tonic, Cooling & Pectoral.	**रसायन, शीत, कासश्वासहर।**

---

१ यू—मधुवर्चसः। २. यू—मदनकं। ३. द—सधूकं। ४. वंशलोचन बांस के पर्वों का निर्यास वा आटा है। यह सब बांसों में नहीं होता। ब्रह्मा, आसाम और बम्बे के जंगलों में जहां वंश बाहुल्य से होता है, वंशलोचन बांस के पर्वों में छिद्र करके निकालते हैं, परन्तु अब यह व्यवसाय भारत में बन्द हो चुका है। बाज़ार में जो वंशलोचन मिलता है, वह सब कृत्रिम (Artificial) है, जो योरुप में एक विशेष (Calcination) विधि द्वारा प्रस्तुत होकर आता

तुगाक्षीरी तवक्षीरी त्वक्क्षीरी क्षीरिका शुभ्रा ।
तुगाक्षीर्यपरा वांशी वंशजा वंशरोचना ।
वंशक्षीरी तुगा शुभ्रा वंश्या वंशविवर्द्धनी ॥ २०३ ॥

पर्याय—तुगाक्षीरी, तबाशीर, त्वक्क्षीरी, क्षीरी (क्षीरवत् श्वेत), शुभ्रा (श्वेत)। एक और तुगाक्षीरी बांस से उत्पन्न होती है, उस को वांशी (वंशोत्पन्न), वंशज, वंशरोचना, (बांस लोचन), वंशक्षीरी (बांस का दुग्ध), तुगा, शुभा, वंश्या, वंशविवर्द्धनी (सन्तान को बढ़ाने वाली) ॥ २०३ ॥

तुगाक्षीरी हिमा स्वाद्वी बल्या वृष्या च बृंहणी ।
रक्तपित्तारुचिश्वासकासकुष्ठज्वरापहा ।
निहन्ति कामलापाण्डुतृष्णादाहक्षयव्रणान् ॥ २०४ ॥

तुगाक्षीरी के गुण—यह शीत, मधुर, बलवर्धक, वृष्य और पुष्टिकर है, तथा रक्तपित्त, अरुचि, दमा, खांसी, कोढ़, कामला, पाण्डु, तृष्णा, दाह, क्षय और व्रण को दूर करती है ॥ २०४ ॥

वांशी कषाया मधुरा रूक्षा कसनकृच्छ्रजित् ॥ २०५ ॥

वंशलोचन (तबाशीर) कषाय, मधुर और रूक्ष है, तथा कास और मूत्रकृच्छ्र को नाश करता है ॥ २०५ ॥

है । वंशलोचन, तालीसादि चूर्ण, सितोपलादि चूर्ण, च्यवनप्राशादि औषधों में डाला जाता है । यह छाती के रोगों में लाभकारी और रक्तस्तम्भक है । मात्रा ४ रत्ति से १ माषा तक । उपरोक्त पाठ में वंशलोचन के अतिरिक्त **तुगाक्षीरी** का वर्णन है । यह द्रव्य सन्देहास्पद है । च्यवनप्राशादि में जहां 'तुगाक्षीरी' का विधान है, वहां टीकाकार वंशलोचन अर्थ करते हैं और वैद्य भी वंशलोचन डाल देते हैं, परन्तु तुगाक्षीरी कोई पृथक् द्रव्य है । किसी ने इसको अरारूट (Arrowroot–Curcuma augustifolia) माना है, जो एक श्वेतसार (Starch) है, जिस के प्रसिद्ध अरारूट बिसकुट (Arrowroot Biscuits) बनते हैं । यह द्रव्य शीत और बृंहण है, परन्तु इसे तुगाक्षीरी मान कर औषधों में नहीं डाल सकते । यह कासश्वासहर नहीं । मालाबारी वैद्य च्यवनप्राश में वंशलोचन नहीं डालते, बल्कि एक अन्य अति मधुर स्निग्ध द्रव्य डालते हैं, जो वहां अरारूट के सदृश पादप के कन्द से प्राप्त करते हैं । यूनानी हकीम **'शीरख़िश्त'** (क्षीराकृष्ट) प्रयोग करते हैं, जो मालाबारी तुगाक्षीरी के सदृश है । यह बड़ी स्निग्ध, मधुर, कास, मुखशोष और तृष्णाशमक है, क्या यह तुगाक्षीरी नहीं हो सकती ?

४२. हरीतकी[1]।

Terminalia Chebula.	(हिं०) हर्र, हरड़, (बं०) हरीतकी,
Chebulic myrobalans.	(म०) हर्त्तकी, (गु०) हरड़े।
A large tree.	महान् वृक्ष, फल गोल लम्बा।
Laxative, stomachic, tonic.	रेचन, दीपन, पाचन, रसायन।

हरीतक्यभया पथ्या प्रपथ्या हैमवत्यपि।
कायस्था श्रेयसी ज्ञेया प्राणदा विजया शिवा ॥२०६॥
अव्यथा पूतनामोघा प्रमथा पूतना जया[२]।
जीवनीया वयस्स्था स्यादमृता चेतकी मता[२] ॥२०७॥

पर्याय—हरीतकी (हरी), अभया (भयरहित), पथ्या (हितकारिणी), प्रपथ्या (प्र–प्रकर्षतः, बहुत), हैमवती (हिमालय पर्वत पर होने वाली), कायस्था (शरीर-स्थापक), श्रेयसी (श्रेष्ठ), प्राणदा (जीवन देने वाली), विजया (रोग को जीतने वाली), शिवा (कल्याणकारिणी), अव्यथा (रोगनाशक), पूतना (पवित्र करने वाली), अमोघा, प्रमथा (रोग को प्रमथित नष्ट करने वाली), जीवनीया (जिलाने वाली), वयःस्था (अस्थापक), अमृता (न मरने वाली, अमृततुल्य), चेतकी (चेतन करने वाली) ॥२०६-७॥

---

१. हरीतकी का वृक्ष पर्वतीय वा आनूप देशों (बंगादि) में प्रचुर मिलता है। इस की अनेक जातियां हैं, परन्तु गुण में प्रायः सब समान हैं। व्यवहार में फल ही आता है, जिस से भारत का बच्चा २ परिचित है। ६० प्रतिशत आयुर्वेदीय औषधों में हरीतकी डाली जाती है। हरीतकीचूर्ण [२-३ माषे] पृथक् भी रेचनार्थ खाया जाता है। बादाम रोगन में मिला कर खाना हरीतकी की रूक्षता को दूर करता है। ऋतु के अनुसार सैन्धवादि द्रव्यों से मिला कर खाना **ऋतुहरीतकी** के नाम से प्रसिद्ध है। गुड़मिश्रित अभयाचूर्ण अर्शः को दूर करता है। अभयापिप्पली प्रवाहिका में गरम जल से दें। हरीतकीचूर्ण रक्तस्थापक है, अतः सद्यःक्षत में वा दान्तों वा मसूड़ों से रक्त आने में बहुत लाभकारी है। हरीतकी को जल से घोट और छान कर मधुमिश्रित पिलाना पेचिश (Dysentry) में लाभकारी है। हरीतकी जल में घिस कर लेप करने से व्रण को फोड़ देती है। हरीतकीभस्म व्रणरोपक है। **जंगी हर्र** (कृष्ण हरीतकी) अभया की अपेक्षा तीव्र रेचक है। विबन्ध, शूल, प्रवाहिकादि में बहुत लाभकारी है। हकीम **हरीतकी का मुरब्बा** (खाण्डव) बनाते हैं, जो अतिमृदु रेचन है। **हरीतकीक्वाथ** व्रणप्रक्षालनार्थ प्रयोग करना चाहिए। हरीतकी का **शीत कषाय** नेत्रों को धोने में काम आता है। हरीतकी **त्रिफला** का प्रधान अङ्ग है। आर्द्र वा शुष्क हरीतकी का शाक भी बनता है। हरीतकी का **धूम्रपान** श्वास में गुणकारी है। २ द, ब—नास्ति।

जया[1] विलवणा पंचरसा तु तुवरोत्कटा।
स्वादुपाकरसायुष्या रूक्षोष्णा बृंहणी लघुः ॥२०८॥
दीपनी पाचनी मेध्या वयसः स्थापनी परम्[2]।
रसायनी च चक्षुष्या बलबुद्धिस्मृतिप्रदा ॥२०९॥

गुण—जया (हरीतकी) विलवण (लवणरहित) और शेष पांच रसों (मधुराम्लकटुतिक्तकषाय) से युक्त है, परन्तु तुवर (कषाय) रस उत्कट (प्रधान) है। विपाक और रस दोनों में मधुर, आयुवर्धक, रूक्ष, गरम, पुष्टिकारक, लघु (शीघ्रपाकी), दीपक, पाचक,बुद्धिवर्धक, आयुस्थापक, रसायन और नेत्रहित है। बल, बुद्धि और स्मृति को देने वाली है ॥२०८–९॥

कुष्ठवैवर्ण्यवैस्वर्यपुराणविषमज्वरान्।
शिरोऽक्षिपाण्डुहृद्रोगकामलाग्रहणीगदान् ॥२१०॥
सशोषशोफातिसारमेहमोहवमिक्रमीन्।
श्वासकासप्रसेकार्शःप्लीहानाहगरोदरान् ॥२११॥
विबन्धं स्रोतसां गुल्ममूरुस्तम्भमरोचकम्।
हिध्माध्मानव्रणान् शूलं त्रीन् दोषांश्च व्यपोहति ॥२१२॥

विशेष गुण—कुष्ठ (कोढ़) विवर्णता, स्वरभेद (गला बैठना),पुराना विषमज्वर, शिरोरोग, नेत्ररोग, पाण्डुरोग, हृदयरोग, कामला (यरकान), ग्रहणीरोग, शोष (क्षय), अतिसार, प्रसेक (थूक बार २ आना), अर्श, प्लीहा (तिल्ली रोग), आनाह (अफारा), गर (विष), उदर (जलोदरादि), मार्गरोध, गुल्म (वाय गोला), ऊरुस्तम्भ (जंघा का जकड़ना), अरुचि (जी मतलाना), हिध्म (हिक्का), आध्मान (अफारा), व्रण, शूल और तीनों दोषों को हरीतकी दूर करती है ॥२१०–१२॥

स्वाद्वम्लभावात्पवनं कटुतिक्ततया कफम्।
कषायमधुरत्वाच्च पित्तं हन्ति हरीतकी ॥२१३॥
मज्जत्वक्स्नायुमांसास्थिस्थिताः पंचाभयोद्भवाः।
स्वादुकषायकट्वम्लतिक्ताख्याः क्रमशो रसाः।
पथ्यामज्जा च चक्षुष्यो वातपित्तहरो गुरुः ॥२१४॥

रसविचार—हरीतकी मधुर और अम्ल भाव से वायु को, कटु और तिक्त रस के कारण कफ को, कषायत्व और मधुरत्व से पित्त को हरती है। अभया (हरीतकी) में होने वाले मधुर, कषाय, कटु, अम्ल और तिक्त रस (उस की) मज्जा (गिरी), त्वक् (बाहर का छिलका), स्नायु (सूत्र), मांस (गूदा) और अस्थि (हड्डी) में क्रमशः (अर्थात् मज्जा में मधुर, त्वक् में कषाय रस इत्यादि क्रम से) स्थित हैं। हरड़ की गिरी नेत्रहित, वातपित्तनाशक और गुरु है ॥२१३–४॥

नीरजा वनजा चैव पार्वतीया इति त्रिधा।

---

[1] यू—शिवा। [2] द—परा।

यथोत्तरं पथ्यतमा विज्ञेया त्रिविधाभया ॥ २१५ ॥

हरीतकी के भेद—हरीतकी नीरजा (जलाढ्य देश में होने वाली), वनजा (शुष्क देश में होने वाली) और पार्वतीय (पहाड़ी) तीन प्रकार की है। यह भेद उत्तर २ अधिक उपयोगी जानने चाहिएं, अर्थात् पार्वतीय हरीतकी सर्वोत्तम है ॥ २१५ ॥

श्रेष्ठहरीतकीलक्षणम् ।

कालयोगात्स्वयं पक्वा पतिता तु महीतले ।
नवा स्निग्धा तथा वृत्ता गुर्वी क्षिप्ता तथाऽम्भसि ॥ २१६ ॥
निमज्जेद्या तथैकस्मिन् फले चैव द्विकर्षता ।
सर्वदा गुणकृत्सा तु ततोऽन्या तु विवर्जिता ॥ २१७ ॥
नवादिगुणयुक्तत्वं तथैकत्वं द्विकर्षता ।
हरीतक्याः फले यत्र तत्सर्वगुणकृद्भवेत् ॥ २१८ ॥

जो हरीतकी कालयोग से (अपने समय पर) स्वयं (स्वाभाविक रूप से) पकी हुई और भूमि पर स्वयं गिरी हुई, नव (ताज़ी), स्निग्ध (चिकनी), गोल, भारी, जल में फैंकने पर डूब जाने वाली और एक फल में दो तोले भार रखने वाली हो, वह सदैव गुणकारी होती है। उस के विपरीत (गुणों वाली) हरीतकी छोड़ देनी चाहिए। नव स्निग्धादि गुण और एक फल में दो तोले भार—यह दोनों जिस हरीतकीफल में एकत्र हों, वह बहुत गुणकारक है ॥ २१६—८ ॥

जन्तुजग्धां दवादग्धां जले पङ्के स्थितां पुनः ।
ऊषरे वा स्थितां भिन्नां वर्जयेत्तु हरीतकीम् ॥ २१९ ॥

त्याज्य हरीतकी—जन्तुओं (कीटों) से खाई हुई, अग्नि से जली हुई, जल और कीचड़ में पड़ी हुई, ऊषर (खारी, कलरी) भूमि में उत्पन्न और टूटी फूटी हरड़ को प्रयोग नहीं करना चाहिए ॥ २१९ ॥

४३. आमलकी[1] ।

Phyllanthus emblica.	(हिं०) आंवला, आमला (बं०) आम्ला
Emblic myrobalans.	उच्चवृक्ष, पत्र पतनशील, आर्द्र फल
A large deciduous tree.	गोलपीतहरित, शुष्क कृष्ण खण्ड।
Cooling, diuretic & laxative.	शीत, मूत्रल, मृदु रेचक।

१. धात्रीवृक्ष भारत में सर्वत्र मिलता है, पत्र अति सूक्ष्म, इमली के पत्रों के समान। वृक्षत्वक् श्वेताभ, अन्तःकाष्ठ रक्ताभ। फल सुन्दर गोल। शुष्क फल खण्डित और कृष्ण वर्ण, हरीतकीवत् प्रसिद्ध। शुष्कफल का चूर्ण शर्करामिश्रित रक्तपित्त, दाह, मदात्यय मूत्रकृच्छ्रादि पैत्तिक रोगों में लाभकारी है। ३ छ० आमलकी रात्रि को अष्टगुण, जल में भिगो कर प्रातः जल नित्थार लें। उस में खांड डाल कर पीना सुज़ाक, मूत्रकृच्छ्र, दाह, और नकसीर को शीघ्र दूर करता है, यह अच्छा

श्रीफला पर्वकीटाख्या कोरङ्गाऽऽमलकी शिवा[1] ।
जातीरसफला सीधुरसा सीधुफला तथा ॥ २२० ॥
वयःस्था चामृतफला तिष्या[1] तिष्यफलाऽमृता ।
धात्री वृष्या वृष्यफला दिव्याधाराऽमृतोद्भवा ॥ २२१ ॥
धात्रीफलं शीतफलं तिष्यरसफलं मतम् ।
श्रीफलं चामृतफलं कोलं कामलकं शिवम् ।
शृङ्गी धात्री चामलकी शुक्तिः शुष्कामलक्यपि ॥ २२२॥

पर्याय—श्रीफल (सुन्दर फल), पर्वकीटा (जिस के पर्वों में कीट हों), कोरङ्ग, आमलकी (अम्ल रस युक्त), शिवा (कल्याणकारिणी), जायफल जैसे फल वाला, सीधुरसा (मद्य जैसे रस वाला), वयःस्था (आयुःस्थापक), अमृतफल (अमृत रूप फल वाला), दिव्याधारा, (दिव्य आधार वाला), अमृतोद्भवा, (अमृत से उत्पन्न होने वाला), धात्री (दाई), कोल (बेर के तुल्य गोल), कामलक (कुछ खट्टा), इत्यादि । शुष्क आमले के नाम यह हैं—शृङ्गी (सींग के वर्ण वाला), धात्री, आमलकी और शुक्ति(सीप के सदृश) ॥ २२०—२ ॥

तद्वद्धात्री स्वेदमेदोहराऽम्ला शुक्रला हिमा ।
भग्नसन्धानकृत्केश्या पिपासाकफपित्तहृत् ।
तन्मज्जा तु तुवरः स्वादुस्तृट्छर्द्यनिलपित्तहा ॥ २२३ ॥

गुण—तद्वत (हरीतकी के समान) आमला स्वेद (पसीना) और मेद को नाश करता है, तथा खट्टा, वीर्यवर्धक और शीत है । वह भग्न (टूटी हुई हड्डी) को जोड़ता है । केशों के लिए हितकर, तृष्णा और कफपित्त को शान्त करता है, उसकी मज्जा (गिरी) कषाय और मीठी है, तथा पिपासा, वमन और वातपित्त को हरती है ॥ २२३ ॥

धात्रीरसविमानम् ।

हन्ति वातं तदम्लत्वात्पित्तं माधुर्यशैत्यतः ।
कफं रूक्षकषायत्वात्फलेभ्योऽत्यधिकं च तत् ॥ २२४ ॥

मूत्रल है । आर्द्र धात्री फल का रस भी यही गुण रखता है, मधुमिश्रित धात्रीस्वरस मधुमेह में लाभकारी है । आर्द्र फल का चूसना तृष्णानाशक है । धात्रीजल से नेत्र और शिर धोना बड़ा गुणकारी है । धात्री का बाह्याभ्यान्तरिक प्रयोग मेध्य और केश्य है । धात्रीचूर्ण जल में मिलाकर लेप करना वस्तिशूल, योनिशूल, मूत्रनिग्रह और दाह को दूर करता है । आमलकी त्रिफला का अङ्ग है । आमले का चूर्ण यकृत, हृदय और आमाशय के लिए बहुत गुणकारी है, इसे अतिसार और ग्रहणी में भी देते हैं । धात्री की भाजी भी बनती है । धात्रीचूर्ण की मात्रा ३ माशे है । च्यवनप्राश, धात्रीरसायनादि में आंवला प्रधान द्रव्य है । १ द—नास्ति ।

आमला अम्लत्व (खटाई) के कारण वात को, मधुर और शीत होने से पित्त को रूक्ष और कषाय भाव से कफ को हरता है। यह फलों में सर्वोत्तम है ॥२२४॥

४४. विभीतकः[1]।

Terminalia belerica.	(हिं०, बं०) बहेड़ा, (गु०) बड़ा।
Beleric myrobalans.	महान् वृक्ष, स्थूल बृहत् पत्र।
A very large tree.	फल सुप्रसिद्ध गोलाकार।
Astringent, tonic & laxative.	कषाय, रसायन, रेचन।

विभीतको भूतवासो मधुबीजो बहेड़कः[2]।
धर्मद्वेषी वसन्तार्त्तो हर्यक्षो[3] (?) कुशिकस्तुषः ॥ २२५ ॥
वासन्तोऽक्षो विन्ध्याजातस्तिलपुष्पः कलिद्रुमः।
कल्पद्रुमः[4] कर्षफलस्तु मलो रोमहर्षणः ॥ २२६ ॥

पर्याय—विभीतक (डराने वाला बृहत् वृक्ष के कारण), भूतवास (भूतों का घर), मधुबीज (मीठे बीजों वाला), बहेड़ा, धर्मद्वेषी (धर्म का शत्रु), वसन्तार्त (बसन्त से दुःखित), हरि, अक्ष (तोला भर), कुशिक, तुष, वासन्त (बसन्त में होने वाला), विन्ध्याजात (विन्ध्या पर्वत में होने वाला), तिलपुष्प (तिलों के समान फूलों वाला), कलिद्रुम (कलियुग का वृक्ष), कल्पद्रुम, कर्षफल (तोला भर वज़न वाला), मल (वा तुमल), रोमहर्षण (रोंगटे खड़े करने वाला) ॥२२५-२६॥

अक्षं कषायं मधुरं पाके पित्तकफापहम्।
उष्णवीर्यं हिमस्पर्शं केश्यं वैस्वर्यजन्तुजित् ॥२२७॥
चक्षुष्यं भेदनं रूक्षं लघु कासविनाशनम्।
अक्षमज्जा मदकरः कफमारुतनाशनः ॥२२८॥

गुण—अक्ष (बहेड़ा) कसैला, परन्तु विपाक में मधुर, पित्तकफहर, उष्णवीर्य, (तासीर में गरम), परन्तु (बाहर प्रलेपादि) स्पर्श में शीत, केशों के लिए हितकर, स्वरभेद और जन्तु (कीटों) का नाशक, नेत्रहित, रेचक, रूक्ष, हलका और कासहर है। बहेड़े की मज्जा (गिरी) मदकारक और वातकफनाशक है॥ २२७-८ ॥

---

१. बहेड़े का महान् वृक्ष भारत के जङ्गलों में बहुत मिलता है, विशेषतः मध्यप्रान्त (सी. पी.) में। विभीतकफल हरीतकी की तरह सुप्रसिद्ध है, उस का छिलका (Pulp) कषाय और रेचक है। उस का लेप शीत है। शेष गुण सब हरीतकीवत् जान लें। **विभीतमज्जा** (गिरी) बड़ी स्निग्ध है। उसे मुनक्का और एला-चूर्ण से मिलाकर गोलियां बनालें, यह छर्दि में बहुत लाभकारी हैं। बहेड़े की गिरी के निष्पीड़न से तैल निकालते हैं, जो केश्य और नेत्रहित है। मध्यप्रान्त में निर्धन लोग इस तैल को खाते हैं, वहां यह ।।) सेर मिलता है। २. द—महेड़कः। ३. ब—धर्मद्वेषी च सन्तत्रो हर्यक्षः। ४. ब—कलिद्रुमः।

त्रिफला[1]।

फलोत्तमा फलश्रेष्ठा त्रिफला च फलत्रयम्।

फलत्रिकं वरा ज्ञेया पथ्याधात्रीविभीतकैः ॥२२९॥

हरीतकी, आमलकी और बहेड़े को मिलाने से त्रिफला बनती है। उस के नाम यह हैं–फलोत्तमा (उत्तम फलसमूह), फलश्रेष्ठा (फलों में श्रेष्ठ), त्रिफला (तीन फलों का समूह), फलत्रय (तीन फल) और वरा (श्रेष्ठ) ॥ २२९ ॥

त्रिफला पित्तकफहृद्रसायनवरा सरा।

रोपणी कुष्ठमेहास्रक्लेदमेदोविनाशनी।

चक्षुष्या दीपनी हृद्या विषमज्वरनाशनी ॥२३०॥

गुण–त्रिफला, पित्तकफहर, रसायनों में श्रेष्ठ, रेचक, रोपण (व्रण को भरने वाला) कोढ़, मेह, रक्त, क्लेद, और मेद को नाश करने वाला, दीपक, रुचिकर, और विषमज्वरान्तक है ॥ २३० ॥

एका हरीतकी योज्या द्वौ च योज्यौ विभीतकौ[2]।

चत्वार्यामलकानीति त्रिफला प्रोच्यते बुधैः[2] ॥२३१॥

एक हरड़, दो बहेड़े, और चार आमलों के मिलने से त्रिफला बनता है, ऐसा कई विद्वान् लोग कहते हैं ॥ २३१ ॥

४५. भूम्यामलकी[3]।

Phyllanthus Niruri.	(हिं०, म०, बं०) भुंई आमला।
An annual weedy herb.	(सिं०) नीरुरी।
Diuretic, antiperiodic,	क्षुद्र वार्षिक तृणक्षुप।
and bitter tonic.	मूत्रल, ज्वरवेगनिवारक, तिक्त।

१. त्रिफला हरीतकी, विभीतक और आमला के समान चूर्णों को मिलाने से बनता है। यह अनेक वैद्यक और यूनानी औषधों में काम आता है, और पृथक् विबन्ध, अजीर्ण आदि रोगों में दिया जाता है, रात्रि को २,३ माषे दूध के साथ खिला दें। यदि रूक्षता का भय हो, तो बादाम रोगन से मिला कर दें। त्रिफलाघृत एक प्रसिद्ध नेत्रहित योग है, त्रिफलाजल से नेत्रप्रक्षालन किया जाता है। २. द–नास्ति। ३. पञ्जाब के मैदानों को छोड़कर अन्यत्र सब जगह पर्वतों और विशेषतः मद्रास में यह बहुत होती है। इस के पत्र आमलकीपत्रवत् सूक्ष्म, और फल मूंग से किञ्चित् छोटा, परन्तु उस पर रेखाएं आमले के समान ही होती हैं। दोनों के फलों में प्रमाणभेद के अतिरिक्त अन्य कोई भेद नहीं। दोनों ही Phyllanthus जाति के पादप हैं, एक वृक्षामलकी, दूसरा भूम्यामलकी, जो प्रायः १ हाथ ऊंची होती है। यह बहुत तिक्त है। इस का (पञ्चांग) क्वाथ विषमज्वर के विश्रामकाल में देने से ज्वरवेग को Quinine (कुनीन) की तरह रोक देता है और यकृत्, प्लीहा, कामला, मूत्रकृच्छ्र, दाह, सुज़ाक और अग्निमान्द्य में भी बहुत लाभकारी है।

तामलक्यघटा ताली सतमाला[1] तमालिनी ।
ऊटोच्चटा बहुसुता दृढ़पादा हिमालया[2] ॥२३२॥
वितुन्नका जटामाला शिवा तामलकी दृढ़ा ।
बहुपुत्रा सूक्ष्मफला विश्वकर्णी शुभाङ्गिनी ।
बहुवीर्या बहुफला भूधात्री तुन्नकारिका[3] ॥२३३॥

पर्याय—तामलकी, अघटा, तालीसतमाला (तालीसपत्र के तुल्य पत्रों वाला), बहुसुता (बहुबीजा), बहुफला इत्यादि नाम अनेक सूक्ष्म फलों के कारण दिए गए हैं ॥ २३२–३३ ॥

तामलकी हिमा तिक्ता कषाया मधुरा लघुः ।
रोचनी[4] पाण्डुपित्तास्रकफकुष्ठविषापहा ।
जयेत् श्वासतृषादाहहिध्माकासक्षतक्षयान् ॥२३४॥

गुण—तामलकी शीत, तिक्त, कषाय, मधुर, लघु और रुचिकर है, तथा पाण्डु, रक्तपित्त, कोढ़, श्वास, पिपासा, दाह, हिक्का, कास और क्षय को दूर करती है ॥ २३४ ॥

४६. प्राचीनामलकम्[5] ।

Flacourtia cataphracta. A small deciduous tree. Fruit edible and sour. Leaves stomachic and astringent.	(हिं०, बं०) पानी आमला, (म०) पाण आमला । क्षुद्र वृक्ष, पत्र आम्रवत् । फल अम्ल, दीपन, पाचन । पत्र दीपन तथा ग्राही ।

प्राचीनामलकं प्राचीनागरं चाथ रक्तकम् ।
प्राचीनामलकं रुच्यमुष्णं गुरु गरापहम् ।
वातघ्नं पित्तकफहृत् पक्वं तु वरपीलुवत् ॥२३५॥

पर्याय—प्राचीनामलक, प्राचीनागर और रक्तक । **गुण**—यह रुचिकर, गरम, गुरु, विषनाशक, वातघ्न, और पित्तकफहर है, परन्तु पक्व फल उत्तम पीलु के समान होता है ॥ २३५ ॥

---

१. यू–तामलक्युन्नभा, ब–तमालपत्रं तालीसं । २. द–विधाविका । ३. यू–तुन्नमलिका । ४. द, ब—रोपणी । ५. यह आनूप पर्वतीय (आसाम, वङ्ग, नेपाल, ब्रह्मादि) देशों में पाया जाता है । इस के वृक्ष पर काँटे होते हैं । फल रक्तवर्ण, बदरी के सदृश, अरुचिशमक और अतिसारघ्न है । यह जलाढ्य देश में होने से ही पानी आमला कहलाता है ।

४७. बीजपूरः[1] ।

Citrus medica.	(हिं०) बिजौरा निम्बु, बड़ा निम्बु,
The Citron.	(बं०) टाबालेबु, (म०) महालुङ्ग।
A small tree.	क्षुद्र वृक्ष । फल गोल बृहत् ।
Acid, stimulant & digestive.	अम्ल, उष्ण, दीपन, पाचन ।

मातुलुङ्गो बीजपूरो लुङ्गो मध्याम्लकेसरः ।
पूरकाह्वो बीजपूर्णः सुपूरः फलपूरकः ।
केसराम्लो बीजपूरकाह्वः सीधुवृक्षः सुपूरकः ॥२३६॥

पर्याय—मातुलुङ्ग, बीजपूर (बीजों से भरा हुआ), लुङ्ग (केसर), मध्याम्लकेसर (मध्य केसर खट्टे हैं जिस के), पूरकाह्व (बीजपूरक नाम वाला), सीधुवृक्ष (मद्य वा अम्ल वृक्ष), सुपूर (अच्छी तरह से भरा हुआ), फलपूरक (पूर्ण फल) केसराम्ल (खट्टे केसरों वाला) ॥२३६॥

लुङ्गं पित्तकरं हृद्यं रुच्यम्लं दीपनं लघु ।
पित्तास्रदूषणं रुच्यं जिह्वास्यकण्ठशोधनम्[2] ।
उष्णं वातकफश्वासकासतृष्णा[3]वमिप्रणुत् ॥२३७॥

गुण—मातुलुङ्ग पित्तकारक, रुचिकर, खट्टा, दीपन, हलका, रक्तपित्तप्रकोपक, रोचक, जिह्वा, मुख और कण्ठ की शुद्धि करने वाला और उष्ण है, तथा वातकफ, दमा, कास, प्यास और वान्ति को हरता है ॥२३७॥

तस्य त्वक् कटुस्तिक्तोष्णा गुर्वी स्निग्धा च दुर्जरा ।
कृमिश्लेष्मानिलहरा, मांसं स्वादु हिमं गुरु ।
बृंहणं श्लेष्मलं स्निग्धं पित्तमारुतनाशनम् ॥ २३८ ॥

उस की **त्वक्** (छिलका) कटु, तिक्त, गरम, भारी, चिकनी, और दुष्पाच्य है, तथा कृमि, कफ और वात को नाश करती है । उस का **मांस** (गूदा) मधुर, शीत, भारी, पुष्टिकर, कफकारक, स्निग्ध और वातपित्तनाशक है ॥ २३८ ॥

---

१. यह उस महान् और सर्वजगद्विस्तृत Citrus (निम्बु) जाति का अङ्ग है, जिस के अनेक भेद निम्बु, जंम्बीर, चकोत्रा, नारङ्गी आदि हैं । यह भेद न्यूनाधिक प्रायः सब जगह ही मिल जाते हैं । इन के वृक्ष भी प्रायः समान हैं । किसी के पत्र छोटे और किसी के बड़े । इन में से किसी न किसी जाति का फल सदैव ही मिल जाता है । फल की त्वक् (Rind), मांस (Pulp), बीज (Seed), तैल (Oil), फलरस (Fruit juice) और पत्रमूलादि भाग व्यवहृत होते हैं । उन के गुण ऊपर श्लोकों में देखें । खट्टा फल गरम और मधुर फल शीत समझें । बिजौरा निम्बु संयुक्त प्रान्त (यू.पी.) और वङ्गदेश में बहुत मिलता है । इस का फल जम्बीर (खट्टे) से ३-४ गुना बड़ा होता है । यह उत्तम सर्वविषनाशक है । २. द—नास्ति । ३. द—हिक्का ।

केसरं दीपनं मेध्यं लघु संग्राहि रोचनम् ।
हिध्मागुल्मोदरश्वासकासशूलमदात्ययान् ॥ २३९ ॥
आस्यशोषानिलश्लेष्मविबन्धार्शोवमीन् जयेत् ।
तद्रसः पार्श्वहृद्बस्तिशूलश्लेष्मसमीरणम् ।
कासश्वासारुचिच्छर्दिवह्निमान्द्यं नियच्छति ॥ २४० ॥

उसका **केसर** (तन्तु) दीपन, मेधावर्धक, लघु, काबिज, रुचिकारक, हिक्का, गुल्म, उदररोग, मदात्यय, मुखशोष, वातकफ, विबन्ध, बवासीर और वान्ति को हरता है। उसका रस पसली, हृदय और मूत्राशय के शूल, कफवात, कास, श्वास, अरुचि और अग्निमान्द्य को दूर करता है ॥ २३६—४० ॥

बीजमुष्णं क्रृमिहरं दुर्जरं गर्भदं तथा ।
मदमूर्च्छाभ्रमकरं वातश्लेष्मविनाशनम् ॥ २४१ ॥
मज्जा स्वादुः स्निग्धो बल्यो दीपनोऽनिलपित्तजित् ।
लुङ्ग्या जटा विषूच्यर्शःक्रृमिशूलविबन्धजित् ।
कुसुमं रक्तपित्तघ्नं शीतलं ग्राहि वातजित् ॥ २४२ ॥

उसका **बीज** गरम, कृमिनाशक, दुष्पाच्य और गर्भस्थापक है, मद, मूर्च्छा और भ्रम को करता है, तथा वातकफनाशक है। उस की **मज्जा** (गिरी) मधुर, चिकनी, बलकारक, दीपन और वातपित्तशमक है। मातुलुङ्ग की **जटा** (मूल वा शाखा वा अङ्कुर) विषूचिका (हैज़ा), बवासीर, कृमि, शूल और विबन्ध को दूर करती है। उस का **पुष्प** रक्तपित्तघ्न, शीतल, ग्राही और वातशमक है ॥ २४१—२ ॥

४८. मधुकर्कटी[1] ।

Citrus limetta.	(हिं०) मिट्ठा, मीठा निम्बु, (बं०)
The Sweet Lime.	वाताबि लेबु, (म०) शाकर निम्बु ।
Sweet, cooling & diuretic.	मधुर, शीत, मूत्रल, ज्वरहर ।

अन्याऽत्यम्ला देवदूती[2]ऽन्या स्वादुर्मधुकर्कटी ।
घण्टालिका स्वादुलुङ्गी मधुरा मधुवल्लिका ॥२४३॥
मधुपर्णी स्वादुमज्जा वर्द्धमाना महाफला ।
मधुकर्कटिका स्वाद्वी रोचनी शीतला गुरुः ॥२४४॥
रक्तपित्तक्षयश्वासकासहिध्माभ्रमान् जयेत् ।
तस्मादल्पान्तरगुणे देवदूतावनोद्भवे ॥२४५॥

अर्थ—एक और प्रकार का मातुलुङ्ग देवदूता नामक बहुत खट्टा होता है, एक और मीठा होता है, जिसको **मधुकर्कटी** (मीठी ककड़ी), घण्टालिका (घण्टाकार), स्वादुलुङ्गी (मधुर केसर वाली), मधुरा, मधुवल्ली, मधुपर्णी (मीठे पत्रों वाली), स्वादुमज्जा,

१. मिष्ट निम्बु ज्वर, कामला, दाहादि में बहुत दिया जाता है। यह फल कच्ची अवस्था में भी खट्टा नहीं होता। २. यू—देवजूता ।

वर्द्धमाना (बढ़ने वाली) और महाफला (बड़े फल वाली) के नाम से पुकारते हैं। यह मधुर, रुचिकर, शीतल और गुरु है, तथा रक्तपित्त, क्षय, श्वास, कास, हिक्का और भ्रम (सिर के चकराने) को दूर करती है। देवदूता और जङ्गली मातुलुङ्ग उससे थोड़े ही भिन्न हैं॥ २४३—५॥

४९. नारिकेलः[1]।

Cocos nucifera. The Coco-nut Palm.	(हिं०) नारियल, नरेल, खोपरा, (बं०) डाब, नारिकेल, (म०) नरेला।

१. गरम समुद्रतट प्रायः और बङ्ग, मलय, लङ्कादि देश विशेषतः नारिकेल का स्वाभाविक घर है। मालाबार तट का सौन्दर्य वा सम्पत्ति नारिकेल ही है। इस का वृक्ष ७०–८० फुट ऊंचा और बहुत कुछ खर्जूर के सदृश है। नारिकेल का फल (Coco-nut) अति उपयोगी द्रव्य है। उस की ३ अवस्थाएं हैं, (क) बाल, (ख) मध्य, (ग) पक्व। **बालावस्था** में केवलमात्र जल ही फल के भीतर से निकलता है, यह मधुर, स्निग्ध, हृद्य, शीत और मूत्रल द्रव है, जो ज्वर, तृष्णा, प्लेग, मूत्रकृच्छ्रादि में बड़ा लाभकारी है। जहां नारिकेल इस अवस्था में मिलता है, वहां लोग इस के जल को बहुत पसन्द करते हैं, और प्रति दिन यथालाभ नारिकेलजल पीते हैं। **मध्यमावस्था** में जल न्यून, परन्तु श्वेत, मृदु गिरी अधिक होती है, यह भी बड़ी रुचिकर, शीत और बृंहण है। इस के निष्पीडन से श्वेत दुग्धवत् द्रव (Coco-milk) निकलता है, जो बड़ा बलदायक और स्वादु होता है। लङ्का में दुग्ध के स्थान पर चाय, शाल्यादि में **नारिकेलदुग्ध** ही डालते हैं। **पक्वावस्था** में मज्जा बड़ी कठोर हो जाती है, और जल अल्प तथा निस्वादु। इसे खुश्क करके इतस्ततः भेजा जाता है। यह खोपरा (Coco-shell) है। यह उष्ण और रजःप्रवर्तक है, एतदर्थ स्त्रियें इसे खाती हैं। **नारिकेल तैल** (Coco-nut oil) सुप्रसिद्ध स्नेह है, जो खाने के अतिरिक्त केशरक्षा और केशवृद्धि के लिए सिर पर मला जाता है, इस को साबून के निर्माण में काम लाते हैं। कई डाक्टरों का यह कथन है, कि नारिकेलतैल काड लिवर आयल (Cod Liver Oil) के स्थान पर दे सकते हैं परन्तु उसकी दुष्पाच्यता एक कठिन समस्या है। यह शीत काल में जमकर घृत के तुल्य प्रतीत होता है। उस का विशेष गन्ध और स्वाद उसे घृत से पृथक् कर देते हैं। मलयदेश में **नारिकेलशिल्प** (Coco-nut Industry) आज कल बड़ा उन्नत हो रहा है। आम नारिकेलफल के कोष को जलनिमग्न करके उसे गलाया है, जिस से बड़ा दृढ़तन्तु (Fibre) बनता है, जो नाना प्रकार के वस्त्र, बोरी, थैले, रज्जु आदि के निर्माण में काम आता है। जिस 'मोप्पले' वा मालाबारी के ४० नारिकेल वृक्ष हों, वह बड़ा धनाढ्य समझा जाता है। **नारिकेललवण** और **नारिकेलखण्ड** सुप्रसिद्ध आयुर्वेदिक औषध हैं। **नारिकेलमूल** का स्वरस बड़ा मूत्रल है। **नारिकेलपुष्प** ग्राही है, बंगाली लोग इस की भाजी को बहुत पसन्द करते हैं।

A tall Palm tree. | उच्च ताड़जातीय वृक्ष।
Oily, cooling & nourishing. | फल स्निग्ध, शीत, बृंहण।

नारिकेलो लतावृक्षो दृढबीजो महाफलः।
तुङ्गः स्कन्धफलश्चोच्चस्तृणराजः सुतुङ्गकः ॥२४६॥
दृढवृक्षो दृढफलो लाङ्गली कूर्चकेसरः।
दृढनीरस्त्र्यक्षफलो दाक्षिणात्यः सदाफलः ॥२४७॥
चोचमस्यफलं त्र्यक्षं तोयगर्भं पुटोदकम्।
जले जलकेरं कोस्यकरं कस्तुफला स्थितिः ॥२४८॥

पर्याय—नारिकेल, लतावृक्ष, दृढबीज (कठोर फल), महाफल (बड़ा फल), तुङ्ग (ऊंचा), स्कन्धफल (फल स्तम्भ पर लगने वाला), और उच्च (ऊंचा वृक्ष), तृणराज (तृणजाति का राजा), सुतुङ्गक (बहुत ऊंचा), दृढवृक्ष, दृढफल, लाङ्गली (हल के तुल्य), कूर्चकेसर (तन्तु आवृत फल), दृढनीर, अक्षफल, दाक्षिणात्य (विशेषतः दक्षिण देश में होने वाला), सदाफल (सदैव मिलने वाला फल)। उस का **फल** चोच, त्र्यक्ष (तीन आंखों वाला), तोयगर्भ (जिस के भीतर जल है), और पुटोदक (जलपूर्ण) कहलाता है, और जल को जलकेर आदि कहते हैं॥२४६-४८॥

नारिकेलं हिमं स्निग्धं स्वादुपाकरसं गुरु।
तर्पणं प्रीणनं[1] वृष्यं बृंहणं बलमांसकृत् ॥२४९॥
विष्टम्भि दुर्जरं हृद्यं श्लेष्मलं वस्तिशोधनम्।
दाहक्षतक्षयहरं वातपित्तासृङ्नाशनम्[2] ॥२५०॥

गुण—नारिकेल शीत, स्निग्ध, रस और विपाक में मधुर, गुरु, तृप्तिकारक, प्रसन्नताजनक, वृष्य, पुष्टिकर, बल और मांस का उत्पादक, काबिज, दुष्पाच्य, हृद्य, कफकर और मूत्राशयशोधक है, तथा दाह, क्षत, क्षय, वातपित्त और रक्तपित्त को नाश करता है ॥२४९-५०॥

तस्योदकं हिमं स्निग्धं मधुरं वस्तिशोधनम्।
दीपनं शुक्रलं हृद्यं लघु तृट्पित्तदाहनुत् ॥२५१॥

नारिकेल का जल—शीत स्निग्ध, रस और विपाक में मधुर, वस्तिशोधक, अग्निदीपक, वीर्यवर्धक, रुचिकर, लघु, तृष्णा, पित्त और दाह को दूर करने वाला है॥ २५१॥

वृष्यं स्निग्धं नारिकेलस्य दुग्धमीषत्कुर्यात् पित्तदाहौ गुरु स्यात्।
उष्णं हन्याद्वातगुल्मं बलासं बल्यं रुच्यं कासहृत् स्वादु पाके ॥२५२॥

नारिकेलदुग्ध—(पक्व नारिकेलोत्पन्न घन श्वेत द्रव) वृष्य और स्निग्ध होता है, तनिक पित्त और दाह को उत्पन्न करता है, तथा गुरु और उष्ण है। वातगुल्म और कफ को दूर करता है, बल और रुचि को बढ़ाता है, कासनाशक और विपाक में मधुर है॥ २५२॥

---

१. यु—यावनं, व—पाचनं। २. द—नास्ति।

नारिकेलोद्भवं सर्पिर्बृहणं बलवर्धनम्[1] ।
केश्यं पित्तानिलहरं मधुरं रसपाकयोः ॥२५३॥
हृद्यं रुच्यं नवं प्रोक्तं पुराणं गुड़वातनुत् ।
तिक्तमहृद्यं मधुरं कण्डूकोष्ठहरं परम् ॥२५४॥

नारियल का घृत बृंहण, बलवर्धक, केश्य, वातपित्तनाशक, और रस तथा पाक में मधुर है। **नव (ताज़ा) घृत** रुचिकर और वृष्य होता है, और **पुराना घृत** गुड़ (गुल्म) और वात को दूर करता है, तिक्त और अहृद्य है, परन्तु उत्तम कण्डूनाशक और कोष्ठशुद्धिकारक है ॥२५३-४॥

नारिकेरोद्भवं तैलं बृंहणं बलवर्धनम्[2] ।
केश्यं पित्तानिलहरं दन्त्यं मधुरमेव च ॥२५५॥

नारियल का तैल बृंहण बलवर्धक, केशों के लिए (दीर्घ और स्निग्ध करने में प्रसिद्ध) उपयोगी, वातपित्तहर, दांतों के लिये लाभकारी और मधुर है ॥२५५॥

स्वादुपाकरसो रक्तपित्तघ्नः कफनाशनः ।
ग्रहणीदीपनो नाहे हितस्तद्वल्कजो रसः ।
शर्करा नारिकेरस्य मधुरा वातपित्तजित् ॥२५६॥

नारियल के **वल्कल** (छाल) का रस विपाक और रस में मधुर, रक्तपित्तघ्न, कफनाशक, ग्रहणी (अग्न्याशय) को बल देने वाला और आनाह में लाभकारी है। नारिकेल की **शर्करा** मधुर और वातपित्तशमक है ॥२५६॥

नारिकेलप्रसूनं तु रक्तपित्तप्रमेहनुत् ।
रक्तातिसारं हरति महालोहितनाशनम् ।
शीतलं सोमरोगघ्नं विबन्धं कुरुते भृशम् ॥२५७॥

नारिकेलपुष्प रक्तपित्त, प्रमेह, और रक्तातिसार को दूर करता है। वह अत्यन्त रक्तपित्तनाशक और शीतल है, सोमरोग (श्वेत प्रदर वा मूत्राधिक्य) और विबन्ध को शान्त करता है ॥ २५७ ॥

तद्द्रुमस्य शिरोमज्जा मधुरो रसपाकयोः ।
वातपित्तास्रशमनः पित्तश्लेष्मविवर्द्धनः ॥ २५८ ॥

नारियल (वृक्ष) के शिर की मज्जा (मध्यम भाग) रस और विपाक में मधुर है, वात और रक्तपित्त को शान्त करती है, परन्तु पित्त और कफ को बढ़ाती है ॥ २५८ ॥

नारिकेरतरुतोयमतीव स्निग्धमाशु मदकृद्गुरु वृष्यम् ।
साम्लभावमुपयात्यपराह्णे श्लेष्मपित्तकरं वातकृमिघ्नम् ॥२५९॥

नारिकेल वृक्ष का जल (जो वृक्ष के उपरिभाग में छेद करके घड़ा बान्धने से उस में एकत्रित हो जाता है) बहुत स्निग्ध, शीघ्र मदकारक, भारी और वृष्य है।

१. यू—चापि । २. द, यू—नास्ति ।

वह दूसरे दिन खट्टा हो जाता है, तब कफपित्तकारक, तथा वायु और कृमि का नाशक है ॥ २५९ ॥

८०. कदली[1]।

Musa sapeintium.	(हिं०) केला, (बं०) कला (म० केल गु०) केल्य।
The plantain.	सुप्रसिद्ध बृहत्पत्र पादप।
Demulcent, nutritive and astringent.	स्निग्ध, पौष्टिक, ग्राही।

कालीरसा[2] हस्तिबुसा रम्भा वीरांशुमत्फला।
चर्मण्वती कामफला मोचा हस्तिविषाणिका ॥ २६० ॥
बृहत्पुष्पा मुक्तसारा ग्रन्थिनी सुकुमारिका।
काष्ठीलिका हस्तिबुसा[3] कदली दीर्घपत्रिका।
पलाशिका मृत्युपुष्पा तस्याः पुष्पं शिलीन्ध्रकम् ॥ २६१ ॥

पर्याय--कालीरसा, हस्तिबुसा (हाथी की जंघा), रम्भा, अंशुमत्फला (किरणाकार फल-एक ही वृन्त से कई फलियां किरणवत् निकलती हैं), चर्मण्वती (चर्मवत् छाल वाला), कामफला (कमनीय फल), मोचा, हस्तिविषाणिका (हाथी का सींग), बृहत्पुष्पा (बड़े फूल वाला), मुक्तसारा (साररहित), ग्रन्थिनी (गांठदार), सुकुमारिका (मृदु), काष्ठीलिका , हस्तिबुसा (हस्तिजङ्घा),

---

१. कदली भारत में सर्वत्र परन्तु समुद्रतट पर बहुत होता है, मलयदेश में इतना अधिक है, कि दो पैसे के कदली से पेट भर सकता है। कदली के सुन्दर पादप से सब सुपरिचित हैं, अतः परिचयोल्लेख अनावश्यक है । **कदलीपत्र** व्रणों पर आच्छादनार्थ बांधा जाता है। बङ्गाली, मद्रासी और मालाबारी लोग कदलीपत्र पर ही भोजन करते हैं। **अपक्व कदलीफल** व्यञ्जनार्थ प्रयुक्त होता है। यदि उसे छीलकर और खण्डित करके शुष्क कर दिया जावे, पुनः पीस लिया जावे, तो यह **कदलीचूर्ण** (Plantain Starch) अतिसार और पेचिश में दुग्ध में उबाल कर दिया जा सकता है। यह ग्राही है। उस की रोटी बनाकर तक्र से दे सकते हैं, वा पानी में उबालकर उस में तक्र मिला सकते हैं। श्वेतसार के शर्करा में परिवर्तित होने पर फल **पक्व** कहलाता है, तब वह मृदु और मधुर होकर कच्चा खाया जाता है। कदली एक उत्तम पौष्टिक आहार है। केले के पत्र शाखादि को जलाकर भस्म को १६ गुना जल में घोल, उबाल और छान कर, पुनः मृदु अग्नि से जल शुष्क करके **कदलीक्षार** बना सकते हैं, इसको (४-८ रक्ति) अम्लपित्त, अजीर्ण और कृमिरोग में दे सकते हैं। कदली के काण्ड का रस उन्माद और अपस्मार में दिया जाता है। **कदलीपुष्प** का व्यञ्जन (भाजी) ग्राही, तथा रक्तपित्त और प्रदर का नाशक है।

२. ब-नालीयरसा । ३. ब-हस्तिविषा ।

कदली, दीर्घपत्रिका (लम्बे पत्तों वाली), पलाशिका (पत्रमय), मृत्युपुष्पा । उसका पुष्प शिलीन्ध्रक कहलाता है ॥ २६०–६१ ॥

मोचा गुर्वी हिमा स्निग्धा स्वाद्वी पित्तास्रनाशनी ।
योनिदोषहरा भ्रमघ्नी तत्काण्डं गुरु शीतलम् ॥२६२॥
बल्यः कदल्याः कन्दः स्यात् कफपित्तहरो गुरुः ।
वातलो रक्तशमनः कषायो रूक्षः शीतलः ।
कर्णशूलं रजोदोषं सोमरोगं नियच्छति ॥ २६३ ॥

गुण—मोचा (केले का फल) शीत, स्निग्ध, मधुर, रक्तपित्तशमक, गर्भाशयरोगनाशक तथा भ्रम (सिर में चक्कर आने) को दूर करता है । उस का **काष्ठ** (स्तम्भ) भारी और शीतल है । केले का **कन्द** (मूल) कफपित्तघ्न, भारी, वातप्रकोपक, रक्तपित्तशमक, कषाय, रूक्ष और शीतल है, और कान के दर्द, स्त्रियों के मासिक धर्म (हैज़) के दोष और सोमरोग (मूत्र का आधिक्य वा श्वेत प्रदर) को दूर करता है ॥ २६२–६३ ॥

रम्भातोयं **शीतलं ग्राहि तृष्णा—**
कृच्छ्रान्मेहान् कर्णरोगातिसारान् ।
अस्थिस्रावं स्फोटकान् रक्तपित्तं
दाहं हन्यादस्रयोनिं विशेषात् ॥२६४॥

केले का जल शीतल और काबिज है, तृष्णा, मूत्रकृच्छ्र, (मूत्र का कष्ट से आना), प्रमेह, कान के रोग, अतिसार, हड्डी का स्राव, फोड़े (वा आबले), रक्तपित्त, दाह और अस्रयोनि (रक्तप्रदर) को विशेष करके नाश करता है ॥२६४॥

कदलीकुसुमं **तिक्तं कषायं ग्राहि दीपनम् ।**
उष्णवीर्यं बलासघ्नं तादृशास्तत्सटादयः ॥२६५॥

कदली का फूल तिक्त, कषाय, काबिज, अग्निदीपक, तासीर में गरम और कफनाशक **है** । उस के जटादि अङ्ग भी फूल के सदृश होते हैं ॥२६५॥

तृड्रक्तपित्ताक्षिगदप्रमेहान् फलं **कदल्यास्तरुणं निहन्ति ।**
संग्राहकं तिक्तकषायरूक्षं रक्तातिसारं शमयेत् ज्वरं च ॥२६६॥
ईषत्कषायमधुरं मध्यमं **कदलीफलम् ।**
गुर्वग्निसादकृत्त्वक्तु कटुतिक्तरसा लघुः ॥२६७॥
मोचं पक्वं **स्वादु पाके सकषायं हिमं गुरु ।**
मांसलं श्लेष्मलं रुच्यं वृष्यं विष्टम्भि बृंहणम् ।
स्निग्धं क्षतक्षयक्षुत्तृड्वातपित्तास्रदाहजित् ॥२६८॥

केले का तरुण (कच्चा) **फल** तृष्णा, रक्तपित्त, नेत्ररोग और प्रमेह को दूर करता है । वह काबिज, तिक्त, कषाय और रूक्ष है, तथा रक्तातिसार और ज्वर को नाश करता है । कदलीफल, जो **मध्यम पक्व** (अर्द्धपक्व) हो, तनिक कषाय,

मधुर और गुरु है, तथा अग्नि को मन्द करता है। **केले की त्वचा** कटु, तिक्त और हलकी होती है। केले का **पक्व फल** विपाक में मधुर, कषाय, शीत, गुरु, मांसवर्धक, कफकारक, रुचिप्रद, वीर्यवर्धक, काबिज, पुष्टिकारक और स्निग्ध है, तथा क्षत, क्षय, क्षुधा, तृष्णा, वातपित्त, रक्तपित्त और दाह को जीतता है ॥ २६६–६८ ॥

कदलीभेदाः[1] ।

कृष्णरम्भाफलं रुच्यं कषायं मधुरं तथा ।
मेहं पित्तं तृषां हन्ति बृंहणं वातलं लघु ॥२६९॥
सुगन्धा कृष्णरम्भा च शैलरम्भा यथोत्तरम् ।
निन्दिताः, फलमांसं तु कषायं मधुरं गुरु ॥२७०॥

काला केला रुचिप्रद, कषाय और मधुर है, मेह और तृष्णा को दूर करता है, तथा पौष्टिक, वातप्रकोपक और लघु है। सुगन्धि केला, काला केला और पहाड़ी केला उत्तर २ निन्दित (दुष्ट) हैं, उन के फल का गूदा कषाय, मधुर और गुरु होता है ॥ २६९–७० ॥

५१. खर्जूरः[2] ।

Phoenix sylvestris.	(हिं०) खजूर, (बं०) खेजूर,
The wild Date-palm.	(म०) खजूरी, शिन्धी, (गु०) खारक ।

५२. पिण्डखर्जूरः ।

Phoenix dactylifera.	(हिं०) सुलेमानी खजूर, छोहारा,
The big Date-palm.	खुर्मा, (बं०) पिण्डखेजूर, (गु०) खारक ।

५३. भूखर्जूरः[2] ।

Phoenix acaulis.	छोटी खजूर ।

---

१. आजकल कराची, बम्बे, कलकत्तादि नगरों के नाम से केले के भेद प्रसिद्ध हैं। पञ्जाब में एक 'हरीछाल' का केला प्रसिद्ध है। हरीछाल किसी नगर का नाम नहीं, प्रत्युत हरित वर्ण की छाल वाला केला। २. खजूर के ३ भेद हैं, नं० ५१ तो न्यूनाधिक सब जगह विशेषतः पञ्जाब के पश्चिम भाग में बहुत मिलता है। वृक्ष ४०-५० फुट ऊंचा, स्तम्भ अति खर, पत्र तीक्ष्णाग्र। नं० ५२ तुरकिस्तान, सिन्ध, अरब, फारसादि में होता है, वृक्ष १००-१२० फुट ऊंचा, स्तम्भ प्रायः श्लक्ष्ण, पत्र दीर्घ, परन्तु तीक्ष्णाग्ररहित, फल २-३ इञ्च लम्बा। नं० ५३ प्रायः दुर्लभ, स्तम्भ का अभाव, क्षुप भूमि पर फैला हुआ, फल क्षुद्र कृष्णवर्ण। खर्जूरीस्तम्भ का मध्यम कोमल भाग सुज़ाक में दिया जाता है। खजूर का मद्य (शराब) बड़ा स्वादु और पौष्टिक है। छोहारा गरम और रजःप्रवर्तक है।

Nutritive, tonic and aphrodisiac. | पुष्टिकर, रसायन, वृष्य, तर्पण, मांस कर ।

सिंही श्रेणी खरस्कन्धा निश्रेणी दृढ़कण्टका ।
कषाया मधुरा स्वाद्वी दुरारोहा ग्रहापरा[1] ॥२७१॥
भूमिखर्ज्जूरिका काककर्कटिका कपर्कटिः ।
खर्ज्जूरिका स्वादुफला सुफला स्वादुमस्तका ।
पिण्डखर्ज्जूरिका खर्ज्जूरा प्रधर्षा सुकण्टका ॥२७२॥

पर्याय–(१) सिंही (शेरनी), स्वाद्वी (मीठी), खरस्कन्धा (खर स्तम्भ वाली) दृढ़कण्ठका (मज़बूत कांटों वाली), दुरारोहा (आरोहण चढ़ने में क्लिष्ट), ग्रहापरा (पकड़ने वा चढ़ने में दुष्कर) । खर्जूरिका (छोटी खजूर), काककर्कटी (काली कचरी वा जङ्गली खजूर), कपर्कटि, स्वादुफला (मीठे फलों वाली), सुफला (सुन्दर फल वाली), स्वादुमस्तका (मीठे शिर वा उपरिभाग वाली), पिण्डखर्ज्जूरिका (मोटी खजूर), खर्जूरा (खुर्मा), प्रधर्षा (ऊंचाई के कारण धिक्कारने वाली), सुकण्टका (तीक्ष्ण कांटों वाली) ॥ २७१–७२ ॥

खर्जूरं तुवरं शीतं मधुरं रसपाकयोः ।
स्निग्धं रुचिकरं हृद्यं क्षतक्षयहरं गुरु ॥२७३॥
तर्पणं रक्तपित्तघ्नं पुष्टिविष्टम्भशुक्रदम् ।
कोष्ठमारुतकृत् बल्यं दाहवातकफापहम् ।
ज्वरातिसारक्षुत्तृष्णाकासश्वासान्नियच्छति ॥२७४॥

गुण–खर्जूर कषाय, शीत, रस और विपाक में मधुर, तर, रुचिकर, हृद्य क्षतक्षयनाशक, भारी, तृप्तिकारक, रक्तपित्तशमक, पुष्टिप्रद, विष्टम्भकारक और शुक्रवर्धक है । वह कोष्ठ (पेट) में वायु उत्पन्न करती है, बल देती है, और दाह, वात-कफ, ज्वर, अतिसार, क्षुधा (भूक), पिपासा, खांसी और दमा को नष्ट करती है ॥ २७३–७४ ॥

मज्जा तु मूर्द्धजः स्वादुर्वृष्यो वातकफापहः ॥२७५॥

खर्जूरीवृक्ष के मूर्द्धा (शिर) **की मज्जा** (आभ्यन्तरिक मृदु भाग) मीठी, वृष्य और वातकफनाशक है ॥ २७५ ॥

खर्जूरिकावृक्षतोयं[2] मदपित्तकरं परम् ।
वातश्लेष्महरं रुच्यं दीपनं बलशुक्रकृत् ॥२७६॥

---

१. यु–मजापरा ।२. खर्जूरी (वृक्ष के उपरिभाग में छिद्र करके उस पर घटादि पात्र बांधने से जो रस उस में एकत्रित होता है, वह खर्जूरतोय है । यह भूमि में कुछ दिन रखने पर मद्य बन जाता है । खर्जूर का गुड़ (Date-sugar) जो कलकत्ते में बहुत मिलता है, बड़ा स्वादिष्ट द्रव्य है ।

खर्जूर वृक्ष का जल बहुत मदकारक (नशा करने वाला) और पित्तवर्धक है, तथा वातकफनाशक, रुचिकर, अग्निदीपक, बलप्रद और वीर्यवर्धक है ॥ २७६ ॥

५४. द्राक्षा[1] ।

Vitis vinifera. The Vine creeper. Fresh fruits—Grapes. Dry fruits—Raisins. Demulcent, cooling, laxative and nutritive.	(हिं०) दाख (छोटे अंगूर), अंगूर (बड़े), मुनक्का (शुष्क बड़े अंगूर), सौगी, किशमिश (शुष्क दाख), (बं०) अंगूर, द्राक्षा, (गु०) धराख, किसमिस । स्निग्ध,शीत,हृद्य,मृदुरेचक,पौष्टिक।

द्राक्षा फलोत्तमा स्वाद्वी हारहूरा च बृंहणी ।
मधुयोनिश्चारुफला रसाला मधुसम्भवा ॥२७७॥
मधुफला स्वादुफला मृद्वीका गोस्तनी गुड़ा ।
कृष्णा मधुरसा वृष्याऽपरा काश्मरिका मता ॥२७८॥
मधुरा वातपित्तघ्नी साम्ला तु कफपित्तदा ।
द्राक्षाम्लोष्णा सरा गुर्वी वातघ्नी कफपित्तदा ॥२७९॥

द्राक्षा के पर्याय और भेद द्राक्षा (दाख), फलोत्तमा (उत्तम फल), स्वाद्वी (मधुरा), हारहूरा, बृंहणी (पुष्टिकारक), मधुयोनि (मधुर), चारुफला (सुन्दर फल), रसाला (रसमय), मधुसम्भवा (मधु से उत्पन्न वा मधूत्पादक), मधुफला (मीठे फल वाली), स्वादुफला (मधुरफला), मृद्वीका (कोमल), गोस्तनी (गौ के स्तन के अग्रभाग के सदृश), गुड़ा (गुड़वत् मधुर वा गुटिकाकार),

---

१. द्राक्षा एक प्रसिद्ध लता है, जो पञ्जाब के पश्चिम भाग काश्मीर, काबुल आदि में बहुत होती है । वहां से ही प्रायः सर्वत्र भारत में जाती है । इस का पत्र दन्दानेदार और बहुत कटा हुआ होता है । आज कल द्राक्षा के अनेक भेद मिलते हैं, परन्तु चरक और सुश्रुत में केवल द्राक्षा (बड़े अंगूर) का ही वर्णन है । छोटी निर्बीज द्राक्षा आर्द्रावस्था में दाख वा अंगूर कहलाती है, शुष्क—किशमिश सौगी । बृहत् सबीज फल द्राक्षा—अंगूर (बड़े) । शुष्क द्राक्षा—मुनक्का । इसे गोस्तनी और मृद्वीका भी कहते हैं । कृष्णा द्राक्षा, काली दाख (Black Raisins) । 'द्राक्षा फलानां' चरक के इस वचन से द्राक्षा फलों में सर्वश्रेष्ठ है । द्राक्षाफल बड़ा पुष्टिकर, स्वादिष्ट, ज्वरतृष्णाहर, रुचिकर, और शीतवीर्य है । अपक्व द्राक्षा कषाय और ग्राही है । शुष्क द्राक्षा (मुनक्का, सौगी) बड़ी दीपन, पाचन, मृदुरेचक और कासश्वासहर है । **द्राक्षासव** ताजे अंगूरों से बनता है, और **द्राक्षारिष्ट** मुनक्का (शुष्क द्राक्षा) से । यह दोनों राजयक्ष्मा, क्षयकास, अग्निमान्द्यादि में लाभकारी हैं । एलादि वटी वा अन्य अनेक योगों में इस का प्रयोग होता है । द्राक्षा में अम्लत्व का कारण Tartaric और Malic acid है । द्राक्षाम्ल (Tartaric acid) बाजार में टार्टरी के नाम से मिल जाता है ।

कृष्णा (काले अंगूर), मधुरसा, वृष्या, काश्मरिका । द्राक्षा दो प्रकार की है, **मधुर** और **मधुराम्ल** । मधुर द्राक्षा वातपित्तनाशक और मधुराम्ल द्राक्षा कफपित्तकारक है । अम्ल द्राक्षा उष्ण, रेचक, भारी, वातघ्न और कफपित्तप्रकोपक है ॥ २७७–७९ ॥

पक्का स्निग्धा सरा स्वर्या स्वादुपाकरसा हिमा ।
हृद्या सा तुवरा[1] वृष्या चक्षुष्या सृष्टमूत्रविट् ॥२८०॥
कोष्ठमारुतकृद्गुर्वी कफपुष्टिरुचिप्रदा ।
निहन्ति वातपित्तास्रतिक्तास्यत्वक्षतक्षयान् ॥२८१॥
रक्तपित्तज्वरश्वासतृष्णादाहमदात्ययान् ।
तद्वद्गोस्तनिका द्राक्षा स्वाद्वी वृष्यतमा मता ॥२८२॥

पक्क द्राक्षा स्निग्ध, रेचक, कण्ठरोगों में हितकर, और रस तथा विपाक में मधुर, शीत, हृद्य, कषाय, वीर्यवर्धक, नेत्रहित, मूत्र और विष्ठा की उत्पादक, पेट में वायु करने वाली (वा हरने वाली), भारी, तथा कफ, पुष्टि और रुचि को देने वाली है । वह वात, रक्तपित्त, मुख के कड़वेपन, क्षत, क्षय, रक्तपित्त, ज्वर, श्वास, तृष्णा, दाह और मदात्यय को दूर करती है । गोस्तनी द्राक्षा भी उस की तरह मधुर और अत्यन्त वृष्य है ॥ २८०–८२ ॥

५९. दाड़िमः[2] ।

Punica granatum.	(हिं०) अनार, (बं०) दाड़िम,
The pomegranate.	दालिम, (म०) दालिंब ।
Cooling, stomachic and	प्रसिद्ध क्षुप, रक्त पुष्प ।
astringent.	शीत, दीपन, पाचन, ग्राही ।

दाड़िमो दाड़िमीसारः कुट्टिमः[3] फलषाड़वः[4] ।
मधुराम्लो रक्तबीजो दन्तबीजः शुकप्रियः ।
करको रक्तकुसुमः सारः स्याच्छालमर्कटः ॥२८३॥

---

१. द—सतुवरा । २. दाड़िम भारत में सर्वत्र मिलता है, उस का क्षुप सुप्रसिद्ध है । काबुल और क्वोएटे का दाड़िम अत्युत्तम, वर्ण में रक्तवर्ण, सुन्दर और मधुर होता है । दाड़िमफल का **रस** अतिसार, प्रवाहिकादि में लाभकारी है । उस का **बीज** ग्राही है । शुष्क दाड़िमफल का छिलका अफीम और लवङ्ग से मिलकर अतिसारादि में अत्युत्तम ग्राही औषध बनाता है । शुष्क **दाड़िमबीज** (अनारदाना) लवणभास्करादि चूर्णों में पड़ता है, **दाड़िमपानक** (शर्बत अनार) बहुत शीत रुचिकर और ग्राही है । **दाड़िममूलत्वक्** (१ छटांक) १ सेर जल में उबाल कर १ पाव शेष क्वाथ रख कर २–३ वार कर के पिलाना **पृथुव्रध्नकृमि** (Tape-worm) को निकालने का उत्तम उपाय है । **दाडिमपुष्परस** ऊर्ध्वग और अधोग रक्तपित्त, रक्तप्रदरादि में दिया जाता है । उस की नस्य नकसीर में देते हैं ।

स्वाद्वम्लं मधुरं चाम्लं त्रिविधं दाडिमीफलम् ।
मधुरं तु त्रिदोषघ्नं स्वाद्वम्लं वातपित्तनुत् ॥२८४॥
असृक्पित्तकरं चाम्लं संग्राहि सर्वमुच्यते ।
दाडिमं रोचनं हृद्यं दीपनं नातिपित्तलम् ॥२८५॥
मेध्यं कण्ठास्यरोगघ्नं तर्पणं कफवातजित् ।
वर्चोविबन्धनं स्निग्धं कषायानुरसं लघु ॥२८६॥
द्विविधं तत्तु विज्ञेयं मधुराम्लविभेदतः ।
अम्लं तु द्विविधं ज्ञेयं रूक्षाम्लं स्निग्धचुक्रकम् ॥२८७॥
स्वादु त्रिदोषतृड्दाहज्वरहृद्रोगनाशनम् ।
रूक्षाम्लं दाड़िमं यत्तु तत्पित्तानिलकोपनम् ।
पित्ताविरोधि नात्युष्णं स्निग्धाम्लं कफवातनुत् ॥२८८॥

जाति और गुण—दाड़िमफल (अनार) तीन प्रकार का होता है, (१) मधुराम्ल, (२) मधुर, (३) अम्ल । **मधुर दाड़िम** तीनों दोषों और **मधुराम्ल** वातपित्त को हरता है, और **अम्ल दाड़िम** रक्तपित्तकारक है, परन्तु सब प्राकर के अनार काविज होते हैं । **सामान्य गुण**—दाड़िम रुचिकर, हृद्य, अग्निदीपक, तनिक पित्तकर और बुद्धिवर्धक है । कण्ठ और मुख के रोगों को दूर करता है, तृप्तिकारक और कफवातनाशक है, वह विष्ठा को बांधता (कठोर करता) है, तथा स्निग्ध (तर), किञ्चित् कषाय और हलका है । वह मीठे और खट्टे भेद से दो प्रकार का है । अम्ल दाड़िम पुनः दो प्रकार का है; [१] रूक्ष और अम्ल, [२] स्निग्ध और चुक्र (अम्ल) । मधुर दाड़िम त्रिदोष, तृष्णा, दाह, ज्वर और हृदयरोग को दूर करता है । जो दाड़िम रूक्षाम्ल है, वह वातपित्त का प्रकोपक है, और जो स्निग्धाम्ल है, वह पित्त का विरोधी भी नहीं, परन्तु अत्युष्ण भी नहीं । वह वातकफनाशक है ॥ २८३–८८ ॥

५६. नारङ्गम्[1] ।

Citrus aurantium.	(हिं०, गु०, म०,) नारङ्गी, संतरा,
The sweet Orange.	(बं०) कमला लेबु ।

१. यह प्रसिद्ध फल है । **खट्टी नारङ्गी** प्रतिश्याय और गलरोग में नहीं खानी चाहिए । मधुर वा मधुराम्ल नारङ्गी का चूसना वा उस का रस (Fruit Juice) शर्करामिश्रित पीना रक्तप्रवाहिका, रक्तातिसार, तृष्णा, दाह, ज्वर, मूत्रकृच्छ्रादि में बहुत लाभकारी है । छर्दि और अतिसार से पीड़ित दुर्बल शिशु के लिये **नारङ्गीरस** अमृतरूप है । नारङ्गी का **छिलका** एक तैल विशेष के कारण बड़ा सुगन्धित होता है । इस को मुखदूषक फुंसियों पर मला जाता है । नारङ्गी के छिलके और फलों का अर्क वा तैल बहुत पाचन, दीपन और सुगन्धित है । मिठाई और तैलों में सुगन्धि के लिए डाला जाता है ।

Stimulating, refreshing and diuretic. | फल पीत, सुगन्धित, गोल। दीपनपाचन, रुचिकर, हृद्य, मूत्रल।

नारङ्गको[१] योगसारो नारङ्गो यौगिको मतः।
गोक्षुरस्त्वक्सुगन्धः स्यान्मधुराम्लो मुखप्रियः[५] ॥२८९॥
ऐरावतो रुचिकरः सुधा तक्राधिवासनः।
नारङ्गमुष्णमम्लं[६] च गुरु वातहरं सरम् ॥२९०॥
कफपित्तास्रहृद्यत्तु स्वाद्वम्लं विशदं गुरु।
सुगन्धि दुर्जरं रुच्यं हृद्यं मारुतनाशनम् ॥२९१॥

पर्याय—नारङ्गक (रङ्गरहित वा नाना रङ्गात्मक), योगसार (अनेक फाड़ियों से मिलकर बना हुआ), नारङ्ग, यौगिक (फाड़ियों से संयुक्त), गोक्षुर (गौ के क्षुर के तुल्य), त्वक्सुगन्ध (सुगन्धित त्वक् वाला), मधुराम्ल, मुखप्रिय, (मुख को अच्छा लगने वाला), ऐरावत (इरावती–रावी नदी वाले पञ्जाब देश में होने वाली ?), सुधा (अमृतरूप), तक्राधिवासन (तक्र वा अम्लरस का वास है जिस में)। गुण—सरल ॥२८९-९१॥

५७. जम्बीरः[२]।

Citrus-Limonum.
The Lemon.
Acid, stomachic and carminative. | (हिं०) जम्बीरी, बड़ा निम्बु, (पं०) खट्टा, गलगल, (बं०) गोरा लेबु। अत्यम्ल, दीपन, पाचन, रुचिकर, आध्माननाशक।

जम्बीरो जम्भलो जम्भो जम्भीलो दन्तहर्षणः।
द्विजकेतुर्दन्तशठो गम्भीरो रोचनो मतः।
वक्त्रशोधी चारुफलो दन्तकेतुर्द्विजेन्द्रकः ॥२९२॥

पर्याय—जम्बीर, जम्भल, जम्भ (जबड़ा), दन्तहर्षण (दांतों को खट्टा करने वाला), द्विजकेतु (दांतों का केतु वा शत्रु), दन्तशठ (दांतों को खराव करने वाला), जम्भीर (जबड़ा, दांत), रोचन (रुचि करने वाला), वक्त्रशोधी (मुख को शुद्ध करने वाला), चारुफल (सुन्दर फल), द्विजेन्द्र (दांतों का इन्द्र) ॥२९२॥

जम्बीरमुष्णं गुर्वम्लं वातश्लेष्मविबन्धनुत्।

---

२. इस को गुणों में अम्ल नारङ्गी के समान समझें। जहां कागज़ी निम्बु न मिले, इस को व्यवहार कर सकते हैं। जम्बीर की त्वक् से स्रवित किया हुआ **तैल** (Lemon Oil or Oleum Limonis) ३-४ बूंद जल में घोल कर पिला देने से आध्मान, अजीर्णादि में लाभकारी है। मिठाई और तैलों में इसे डाला जाता है। इस का **बीज** कृमिनाशक और **मूलत्वक्क्वाथ** ज्वरघ्न है। ग़लगल जम्बीर से कुछ बड़ी होती है और पीतवर्ण।

शूलकासकफोत्क्लेशच्छर्दितृष्णात्रिदोषजित् ।
आस्यवैरस्यमलहं जन्तुघ्नं पित्तकोपनम् ॥२९३॥

गुण—सुगम । आस्यवैरस्य–मुख का वैस्वादापन ॥२९३॥

पत्रं जम्बीरजं तीक्ष्णं कृमिवातकफापहम् ।
सुरभि दीपनं रुच्यं मुखवैशद्यकारकम् ॥२९४॥

जम्बीरजं पत्रं–जम्बीर का पत्र। **सुरभि**–सुगन्धित,। **वैशद्य**–अपिच्छिलता॥२९४॥

९८. अम्लवेतसः[1] ?

वेतसाम्लोऽलाबुसहः शतवेधी सहस्रजित् ।
अम्लोऽम्लवेतसो भीमः[2] शाखाम्लो वरवेतसः ॥२९५॥
रक्तस्रावश्च मांसारिश्चुक्रकोऽग्निमावेतसः[3] (?)
वेधको बोधको द्रावी रसाम्लो वातिकप्रियः ॥२९६॥

पर्याय—वेतसाम्ल (खट्टा बेत), शतवेधी (सैंकड़ों वस्तुओं को वेधन करने वाला वा गलाने वाला), सहस्रजित (हजारों वस्तुओं को जीतने वाला वा गलाने वाला), शाखाम्ल (अम्ल शाखाओं वाला), वरवेतस (उत्तम बेत), रक्तस्रावि (रक्तपित्तकारक), मांसारि (मांसद्रावक), चुक्रक (खट्टा, सिरके के तुल्य),

---

१. अम्लवेतस (हिं० अमलवेद) जैसे द्रव्य का अब तक अनिश्चित रहना वैद्यसमाज की शोचनीय अवस्था को प्रकट करता है । बंगीय वैद्य अम्लवेतस को **थैकल** नाम देते हैं । थैकल कलकत्ता के बाजारों में एक अत्यम्ल, शुष्क, परन्तु कृष्णवर्ण द्रव्य मिलता है, जो आकार में आम वा गलगल के शुष्क टुकड़ों के सदृश है, थैकल के वृक्ष हुगली की ओर बहुत हैं, उन का फल नाशपाती के सदृश परन्तु उस से ३, ४ गुना बड़ा होता है । इस फल के शुष्क खण्डों को ही थैकल वा अम्लवेतस कहा जाता है । वनौषधिदर्पण में इस को Rumex Vasicarius का नाम दिया गया है । यह तो चुक (चूका) का नाम है, जो पालक के सदृश अम्ल शाक है और पंजाब में बहुत मिलता है। वैद्यकशब्दसिन्धु में भी यही नाम है । श्रीशालिग्राम ने कुछ और नाम दिया है, भावप्रकाशनिघंटु के टीकाकार ने इसे गलगल (Common Sorrel) कहा है, परन्तु इन में से किसी ने अम्लवेतस को सन्दिग्ध द्रव्य नहीं कहा । पंजाब में अमलवेद के नाम से तन्तुओं के गुच्छे जैसे मिलते हैं, यह स्वाद में खट्टे और आकार में तनु वेतस, जो लपेट कर गुच्छे बनाए गए हों, के तुल्य हैं । अम्लवेतस शब्द किसी खट्टे तन्तुमय द्रव्य का वाचक है । इस की उत्पत्ति वा लेटिन नाम के सम्बन्ध में मैं कुछ नहीं कह सकता । अम्लवेतस वास्तव में यही द्रव्य प्रतीत होता है, न कि थैकल । लङ्का में वैद्यों ने मुझे एक निम्ब के तुल्य बड़ा वृक्ष दिखाया, जिस के पत्र खट्टे थे, परन्तु उस में से कोई भाग वेतस की आकृति का न था । एवं अन्य स्थानों पर अन्य द्रव्य मिले, जो अम्लवेतस नहीं कहे जा सकते । २. द—भीतः । ३. व—अग्निमचेतसः ।

वेधक (बेधने वा गलाने वाला), बोधक (क्षुधाबोधक), द्रावी (गलाने वाला), रसाम्ल (रस में अम्ल), वातिकप्रिय (वातप्रकृति वाले को प्रिय) ॥ २९५–६ ॥

अम्लवेतफलं[1] चोष्णं तीक्ष्णं स्निग्धं च दीपनम् ।
बहुमूलानपि व्याधीन् भिन्द्याद्वज्रं गिरिमिव[2] ॥२९७॥
सशूलानाहविष्टम्भान् जयेत् वातकफामयान् ।
अम्लवेतसमम्लं[2] च तीक्ष्णोष्णं भेदनं लघु ॥२९८॥
दीपनं पाचनं हृद्यं कफपित्तास्रदूषणम् ।
रूक्षं विण्मद्यदोषघ्नं हृद्रोगाध्मानगुल्मजित् ॥२९९॥
हिध्मानाहानिलश्वासकासशूलवमिप्रणुत् ।
द्रवीभवत्यजामांसं मलवस्त्रं सितं भवेत् ।
चणकाम्लोपमं स्वादु साम्लं स्यादम्लवेतसम् ॥३००॥

बहुमू०—गम्भीर मूल वाले (वा दीर्घकालीन) रोगों को जम्वीर इस प्रकार नष्ट करता है, जिस तरह (इन्द्र का) वज्र (विद्युत) गिरि (पर्वत) को। **हिध्मा**—हिक्का। **द्रवी०**—बकरी का मांस पिघल (शीघ्र पक) जाता है, और मलिन वस्त्र श्वेत वा शुद्ध हो जाता है। **चणकाम्लोपमं**—चने की खट्टाई के तुल्य। शेष सुगम ॥२९७—३००॥

५९. साराम्लम्[3] !

सारम्लकः सारफलो रसालश्च पारावतः ।
कपोताण्डोपमफलो महापारावतोऽपरः ।
साराम्लमम्लं वातघ्नं कफपित्तकरं गुरु ॥३०१॥

कपोत०—कबूतर के अण्डे के समान। **महा०**—बड़े कबूतर (के अण्डे) के तुल्य ॥३०१॥

---

१. अम्लवेतसफल का वर्णन अन्य निघण्टुओं में नहीं मिलता, वहां वेतसाम्ल, चुक्रादि पर्याय हैं। २. अम्लवेतस् के गुण यहां से ही समझने चाहिएं, परन्तु इस अम्लवेतस और उपरोक्त फल में क्या सम्बन्ध है, यह बताना कठिन है। प्रतीत होता है, कि कैयदेव के समय में भी मतभेद था। कहीं फल मिलता था, और कहीं तन्तुमय गुच्छे, अतः यहां दोनों का वर्णन कर दिया गया है। कैयदेवोक्त पर्यायों में कहीं फल की सिद्धि नहीं होती, न हि भावप्रकाशोक्त पर्यायों में। ३. अपरिचित। सम्भव है, कि यह निम्बुजाति (Citrus family) का ही फलविशेष हो।

६०. निम्बुकम्[1] ।

Citrus acida.
The sour Lime of India.

Acidic, refringerant and antiscorbutic.

(हिं०) निम्बु, कागज़ी निम्बु (बं) कागजी लेबु, पातीं लेबु, (म०) कागदी लिंबू ।
अम्ल, रोचक, दीपक, पाचक, 'स्कर्वी' रोगप्रतिषेधक ।

निम्बूकं निम्बुकं चान्यद्राजशब्दादिपूर्वकम् ।
निम्बूकमम्लं वातघ्नं दीपनं रुचिवर्द्धनम् ॥ ३०२॥
गरोरगविषध्वंसि कफोत्क्लेशि च पित्तलम् ।
शर्कराचौरराजाख्यं निम्बुकं मधुरं गुरु ॥३०३॥
वातपित्तारुचिच्छर्द्दितृष्णाशोषहरं मतम् ।
चौरं स्वादु कषायाम्लं रूक्षं गुर्वास्यशोधनम् ॥३०४ ॥
विशदं रोचनं हृद्यं शीतलं ग्राहि वातलम् ।
छर्द्यस्रकफपित्तघ्नं विष्टम्भाध्मा(?)विबन्धनुत् ॥३०५॥

जाति—निम्बुक, राजनिम्बु आदि । **गुण**—निम्बु खट्टा, वातघ्न, दीपन और रुचिवर्धक है, तथा गर (संयोगज विष) और उरगविष (सर्पविष) को नाश करता है । वह कफप्रकोपक और पित्तकारक है । शर्करानिम्बु, चौर निम्बु और राजनिम्बु—यह तीन प्रकार निम्बु के हैं । **शर्करानिम्बु** मधुर और भारी है, तथा वातपित्त, अरुचि, छर्दि, तृष्णा और शोष को दूर करता है । **चौरं**—चौर निम्बु । शेष सुगम ॥३०२–५॥

---

१. यह सुप्रसिद्ध अण्डाकार फल शरद् काल में बहुत मिलता है । गुणों में जम्बीर के समान है । **निम्बुसत्त्व** वा **जम्बीरसत्त्व** (Citric acid) निंबुजाति (Citrus family) के सब भेदों में पाया जाता है, जिसे रासायनिक क्रियाओं द्वारा पृथक् करके स्फटिकाकार बनाया जाता है । यह बाजार में बहुत मिलता है, और यवक्षार (Potassiun bicarbonate) वा स्वर्जिकाक्षार (Sodium bicarbonate) के सङ्ग में आने से फेन उत्पन्न करता है । दोनों को पृथक् २ पात्र में जलविलीन करके एक पात्र में डाल तत्काल पी लेना चाहिए । निम्बुरस को बोतल में भर कर ऊपर थोड़ा सा तैल डाल कर बहुत काल तक बिगड़ने के बग़ैर रख सकते हैं । पैत्तिक ज्वर, दाह, तृष्णादि में निम्बु का चूसना बड़ा लाभकारी है । मशकदंश पर निम्बुरस मलना मशकविषोत्पन्न कण्डू, शोथादि को दूर कर देता है । निम्बु की शिकञ्जबीन, जो शर्कराजल में निम्बुरस डालने से बनती है, ज्वर, तृष्णा, दाहादि में बड़ा रुचिकर पेय द्रव है । यह स्वेद और मूत्र लाकर ज्वर को उतार देता है ।

६१. कर्मरङ्गम्[1] ।

Averrhoa carambola.	(हिं०) कमरख, कमरक, (बं०)
The Carambola tree.	कामराङ्गा, (म०) कर्मरें ।
A small shady tree.	सुन्दर, छायावान् लघु वृक्ष ।
Sour, refreshing and antiscorbutic.	फल पीत अर्जुनफलवत् धारीदार । अम्ल, रोचक, 'स्कर्वी' नाशक ।

भवं भव्यं भविष्यं च भावनं मुखशोधनम् ।
रोमान्तिकं कर्णफलं पिच्छलं कर्मरङ्गकम् ।
मधुराम्लं रोगफलं तथा पिच्छलबीजकम् ॥३०६॥

पर्याय—भव (होने वाला), भव्य (भावी), भविष्य, भावन, मुखशोधन, रोमान्तिक (रोमाकीर्ण ?), कर्णफल (कान के तुल्य फल ?), पिच्छल (लेसदार), कर्मरङ्गक, मधुराम्ल (मीठा और खट्टा), रोगफल (रोगकारक), पिच्छलबीजक (लेसदार बीज वाला) ॥३०६॥

भव्यं स्वादु कषायाम्लं रूक्षं गुर्वास्यशोधनम्[1] ।
विशदं रोचनं हृद्यं शीतलं ग्राहि वातलम् ।
भव्यमम्लं च वातघ्नं पिच्छलं वक्त्रशोधनम् ॥३०७॥

गुण—सुगम । वक्त्र शोधनं-मुखशोधक ॥३०७॥

६२. आम्रः[2] ।

Mangifera indica.	(हिं०, बं०) आम, (म०) आंबा,
The Mangoe tree.	(गु०) आंबो ।
Nourishing, laxative and	सुप्रसिद्ध वृक्ष, सर्वप्रिय फल ।
antiscorbutic.	पक्क फल पुष्टिकर, मृदुरेचक ।

---

१. यह हमारा देशीय फल नहीं, प्रत्युत फिरङ्ग (Portuguese) लोग इस को अमरीका से लाए थे । भावमिश्र के काल (१७वीं शताब्दी) में यह मिलता था । अब यह सब गरम प्रान्तों में और लङ्का में मिलता है । इस को घन छत्राकार छाया से पहचाना जाता है । **अपक्क फल** हरित वर्ण, और **पक्क** पीत वर्ण का होता है । फल ३-४ इंच लम्बा । उस पर लम्बे ४-५ उभार और गर्त होते हैं । आकृति अर्जुनफलवत् । गुण जम्बीर के सदृश । स्वाद में अत्यम्ल । इस का फल रक्तार्श में लाभकारी है, रक्त को शनैः २ रोक देता है । 'स्कर्वी' (Scurvy) रोग को, जो लवण के न खाने से होता है, यह शीघ्र दूर कर देता है । इस के अम्लत्व का कारण निम्बुकाम्ल (Citric acid) है । २. यह भारतवर्ष का प्राचीनतम फल है, जो यहां से अन्य देशों में गया है । **आम्रत्वक्** ग्राही और रसायन है । उस का क्वाथ रक्तातिसार, प्रवाहिका और रक्तपित्त में दे सकते हैं । **मृदु पत्रों** का स्वरस वा क्वाथ इन रोगों में तथा मधुमेह वा मूत्रातिसार में लाभकारी है,—

आम्रश्चूतश्चैत्रवृक्षो वनपुष्पो वनोत्सवः ।
सहकारो मन्मथः स्यात्कामाङ्गः श्यामतैलकः ॥३०८॥
शिलीष्टः सुपथा मोदः शिष्टः पिकमहोत्सवः[1] ।
मनोरथो मद्यसहो माकन्दः[2] शौण्डिकप्रियः[3] ॥३०९॥
पिण्डीफलो रसालः स्यात् परपुष्पोऽतिसौरभः[4] ।
कान्तः कोकिलबन्धुश्च[5] स्यात्समन्वितकार्यपि ॥३१०॥

पर्याय—आम्र, चूत (चूसा हुआ वा गिरा हुआ ?), चैत्रवृक्ष (चैत्र में पल्लव पुष्पादि आने के कारण), वनपुष्प (जंगली फूल), वनोत्सव (जंगल में मङ्गल), सहकार (काम का सहायक), मन्मथ (काम, मन को मथन करने वाला), कामाङ्ग (काम का अङ्ग), श्यामतैलक (आम की लकड़ी में कृष्णवर्ण तैल के कारण), शिलीष्ट शिली देहलीज में लगने योग्य काष्ठ है जिसका), सुपथा (मार्ग की शोभा), मोद (हर्ष), शिष्ट (पला हुआ), पिकमहोत्सव (पिक पक्षिविशेष का उत्सव), मनोरथ (मन का रथ), मद्यसह (मद्य का साथी), माकन्द (पीतवर्ण), शौण्डिकप्रिय (मद्य पीने वा बनाने वालों को प्रिय), पिण्डीफल (पिण्डित फल), रसाल (रस से पूर्ण), परपुष्प (उत्तम सुगन्धित पुष्पों वाला), अतिसौरभ (अत्यन्त सुगन्धित), (कान्त प्रिय, इष्ट), कोकिलबन्धु (कोइल पक्षी का मित्र), समन्वितकारी (सहकारी) ॥ ३०८–१० ॥

रसालस्तुवरो रूक्षो रक्तपित्तकफव्रणान् ।
योनिदोषमतिसारं प्रमेहं सन्नियच्छति ॥ ३११ ॥
कफपित्तप्रशमनं रुच्यमाम्रस्य पल्लवम् ।
आम्रपुष्प**मीतसारं प्रमेहं दुष्टशोणितम् ।**

एवं **आम्रमज्जा** (गिरी) नकसीर, रक्तार्श, रक्तप्रदरादि रक्तपैत्तिक विकारों तथा सुजाक, श्वेतप्रदर, अतिसारादि में उपयोगी है। उस का चूर्ण (३ माषे) वा स्वरस (१ तोला) देना चाहिए। **पत्रभस्म** व्रणरोपक है। **आम्रचूर्ण** जो कच्चे फलों के मांसल भाग को खण्ड २ करके शुष्क करने और पीसने से बनता है, और **आम्रावर्त** जो पके हुए आम के रस को टाट वा बोरी पर पुनः २ डाल कर शुष्क करने से कई आवर्त (तहें) वन जाते हैं, जिसे **आमपापड़ी** कहते हैं, यह दोनों द्रव्य बड़े प्रसिद्ध हैं, मन्दाग्नि, स्कर्वी (Scurvy) आदि में लाभकारी हैं। आम्र सदैव वृक्षपक्व, मधुर वा मधुराम्ल खाना उचित है, न कि कृत्रिमपक्व (अग्नि वा दाब द्वारा), जो विष के समान समझना चाहिए। **आम्रपुष्प** का गुण पत्र वा मज्जा के सदृश समझें। आम्रफल में खट्टाई का कारण निम्बुकाम्ल (Citric acid) और द्राक्षाम्ल (Tartaric acid) की विद्यमानता है। १. यू–शिलीषु सुपथामेदौ शिष्टा पिकमहोत्सवः। २. द–मार्दकः। ३. यू–शौण्डिकः प्रियः। ४. द–परपुष्टः। ५. कान्तलः कोकिलश्च।

कफपित्तहरं शीतं रुचिकृद्ग्राहि वातलम् ॥ ३१२ ॥
बालं तस्य फलं रूक्षं कषायं कटुकाम्लकम् ।
वातपित्तास्रकृत्तन्तुवद्धास्थि (?) कफपित्तकृत् ॥ ३१३ ॥
पक्वं तन्मधुरं साम्लं गुरु स्निग्धमपित्तलम् ।
वातघ्नं बृंहणं रुच्यं हृद्यं मांसबलप्रदम् ॥ ३१४ ॥
कषायानुरसं वर्ण्यं कफशुक्रविवर्द्धनम् ।
शुष्कं कषायमुष्णं च भेदनं कफवातजित् ॥ ३१५ ॥
सहकाररसो हृद्यः सुरभिः स्निग्धरोचनः ।
त्वच्यः प्रलेपनेऽभ्यङ्गे केश्यो रौक्ष्यमलापहः ॥ ३१६ ॥

बालं फलं—कच्चा फल । **अस्थि**–कठोर बीजकोष । **अपित्तलं**–ईषत्पित्तलं । **सहकाररसः**–आम का रस । **त्वच्यः प्रले०**–लेप करने से त्वचा के लिए हितकर और अभ्यङ्ग (मालिश) करने से केशों के लिए उपयोगी और रूक्षता तथा मल का नाशक है ॥ शेष सरल ॥ ३११–१६ ॥

रूक्षश्चूतस्य संग्राही कफवातप्रकोपनः ।
कषायमधुरो मज्जा, ग्राहिणी त्वक् च दाहकृत् ॥ ३१७ ॥
सहकारभवं तैलं कषायं स्वादु तिक्तकम् ।
मुखरोगहरं रूक्षं सुगन्धि श्लेष्मवातजित् ॥ ३१८ ॥

६३. जम्बुः ।

Eugenia Jambolana. Sourish sweet, digestive and astringent.	(हिं०) जामुन बड़ी वा छोटी, (बं०) जाम, बड़ वा छोट, (म०) जामूल । अम्ल, दीपन, पाचन, ग्राही ।

महाजम्बुः श्यामपत्रो महास्कन्धा महारसा

---

१. जंबु सर्वत्र भारतवर्ष में प्रसिद्ध है । आम की तरह यह भी यहां से ही अन्य देशों में गया है । इस के पत्र त्वक् और बीज के गुण और व्यवहारविधि आम के तुल्य जानें । जंबु का **शुष्कबीजचूर्ण** वसन्तकुसुमाकर रस के साथ मिलाकर खिलाना मधुमेह में अत्युपयोगी है । **जम्बुपत्रक्वाथ** वा **फलरस** में लोह शीघ्र लीन होजाता है, जिस से लोहभस्म थोड़ी पुटों के देने पर बन जाती है । जामुन का **कच्चा फल** हरित और **पक्व** नीलकृष्ण होता है, जामुन के फल से बना हुआ शुक्त (सिरका–Vinegar) दीपन पाचन है । जंबु की कई जातियां हैं–(१) **राजजम्बु**–बड़ा जामुन (पंजाब का प्रसिद्ध रा), जिस के पत्रादि प्रायः आम्र के तुल्य होते हैं, (२) **क्षुद्र जम्बु**–छोटी जामुन, (३) **काकजम्बु**–जो एक जंगली जामुन है और नदियों के तटों वा पर्वतों पर मिलताहै, (४) **गुलाब जामुन** (वैदेशी)–E. Jamboo यह ब्रह्मा और बंगदेश में मिलता है । ग्रीष्म काल में कलकत्ता में बहुत बिकता है, यह अनस्थि गोलाकार, गुलाबी रंग का फल है, भीतर से रिक्त, सूंघने पर गुलाब जैसी गन्ध देता है, स्वाद में–मधुरकषाय ।

कुमारिकागन्धपत्रा जम्बू नीलाञ्जनच्छदा ॥ ३१९ ॥
बृहत्फला राजजम्बू सुफला सुप्रतिष्ठिता।
क्षुद्रजम्बू नीलपत्रा मेघाभा[1] शीतपल्लवा ॥ ३२० ॥
अलिप्रिया मेघवर्णा वैदेशी वैदिकोऽल्पकः।
काकजम्बू क्षुद्रफला नादेयी गन्धपल्लवा ॥
काकप्रिया शीतपत्री तत्फलं जाम्बु जाम्बवम्[2] ॥ ३२१ ॥

पर्याय और जाति—(१) महाजम्बु (बड़ा जामुन), महास्कन्धा (बड़े तने वाला), महारसा (बहुत रस वाला), कुमारिकागन्धपत्रा (घीकुंवार के सदृश गन्धयुक्त पत्रों वाला), नीलाञ्जनच्छदा (नीले पत्रों वाला), राजजंबु के फल बड़े,सुन्दर और सुप्रतिष्ठित (सर्वप्रिय) होते हैं। (२) क्षुद्र जम्बू (छोटा जामुन), नीलपत्रा, मेघाभा (काले बादल के सदृश), शीतपल्लवा (ठण्डे पत्रों वाला), अलिप्रिया (मक्खियों को प्रिय), वैदेशी (परदेशी), वैदिक, अल्पक (छोटा), (३) काकजंबु (जंगली जामन), क्षुद्रफला (छोटे फल वाला), नादेयी (नदी के तट पर होने वाला),गन्धपल्लवा (सुगन्धित पत्रों वाला), काकप्रिया (कव्वों को प्यारा), शीतपत्री। जामुन का फल जांबु वा जाम्बव कहलाता है ॥३१९-२१॥

जंबू रूक्षा कषायाम्ला कफपित्तातिसारजित्।
जाम्बवं मधुरं साम्लं कषायं गुरु शीतलम् ॥३२२॥
संग्राहि रोचनं रूक्षमकन्ध्यं कफपित्तजित्।
विष्टम्भि लेखनं वातविबन्धाध्मानकृच्छ्रशम् ॥३२३॥
महत्तन्मधुरं स्निग्धं गुरु विष्टम्भि रोचनम्।
शीता तिक्तरसा दाहशमनी जलजंबुका[3] ॥३२४॥

जाम्बवं—जम्बूफल, जलजम्बुका-नादेय जंबू ॥३२२-२४॥

६४. बदरी[4]।

Ziziphus jujuba.	(हिं०) बेर, (बं०) कूल, बेर,
The Jujuba tree.	(म०) बोर।
A thorny shrub or tree.	कांटेदार झाड़ी वा वृक्ष।
Sweetish sour, nourishing and astringent.	फल मधुराम्ल, बृंहण, ग्राही।

१. ब–मोघाभा। २. ब–जांबुजं ३. ब–नास्ति। ४.बेर की झाड़ी वा वृक्ष प्रायः जांगल (रूक्ष) देश में होता है। बेर और गूलर के पत्रों का कल्क बिच्छू के दंश पर लगाने से वेदना की शान्ति होती है। बदरीपत्र का स्वेद फोड़े को शीघ्र पका देता है। बदरीमूल का क्वाथ ज्वरघ्न है। बदरीत्वक् का क्वाथ अतिसार, श्वेत वा रक्त प्रदर, और रक्तपित्त में काम आता है। औषधों में शुष्क बदर काम आता है। उन्नाव (Z. vulgaris) भी बदर का भेद है। बाज़ार में शुष्क उन्नाव पन्सारियों से मिल जाता है। यह–

घुण्टा घोण्टा गोपघुण्टा बदरी मर्कटी कुहा ।
राष्ट्रवृद्धिकरी कोली गोकण्टी युग्मकण्टिका ॥३२५॥
स्निग्धच्छदा कोशफलाऽपरा सौवीरकाऽपरा ।
हस्तिकोली सिञ्चितिकाऽपरा कर्कन्धू कीधुका ।
बदर्यस्तुवराः स्निग्धाः कफप्रशमनाः स्मृताः ॥३२६॥

पर्याय—घुंटा, घोंटा, बदरी, मर्कटी (बन्दर), कुहा (कुबेर), राष्ट्रवृद्धिकरी (राज्य को बढ़ाने वाला), कोली (गोल), गोकण्टी (गौ का कांटा), युग्मकण्टिका (दो कांटे जुड़े हुए), स्निग्धच्छदा (चिकने पत्रों वाला), कोशफला (कोश जैसे फल वाला), सौवीरका (सुवीरा देश में होने वाला स्यू बेर), हस्तिकोली (हाथी बेर, बड़ा बेर), सिंचितिका (मोटा), कर्कन्धु (कोकण बेर)। **सामान्य गुण**—सब प्रकार के बेर कषाय, स्निग्ध और कफशामक होते हैं ॥३२५–२६॥

बदरं चापरं कोलं कुवन्तं फेनिलं कुहम् ।
कर्कन्धु ह्रस्वबदरं बेरटं कन्धु कन्धुकम् ॥३२७॥
स्यादामपक्वावस्थासु स्वादु सौवीरकं महत् ।
मुष्टिप्रमाणं बदरं स्वादु सिंचितिकाफलम् ।
कफपित्तहरं पुष्पं कुष्ठघ्नं बदरस्य च ॥३२८॥

बेर की जातियां—(१ बेर, कोल (गोल), कुवन्त, फेनिल (झाग वाला), कुह—यह साधारण गोल बेर है। (२) कर्कन्धु छोटा बेर होता है, जिस को बेरट (छोटा बेर), कन्धु, वा कन्धुक (और पंजाबी में कोकन बेर) कहते हैं। (३) सौवीर बेर बड़ा और आम तथा पक्व दोनों अवस्थाओं में मधुर होता है। जो बेर मधुर और मुट्ठीभर होता है, वह सिंचितिकाफल कहलाता है। **बेर का पुष्प** कफपित्तहर और कुष्ठनाशक है ॥३२७–२८॥

हस्तिकोलं हिमं स्वादु पित्तघ्नं दुर्जरं गुरु[1] ।
संग्राहि रोचनं[2] स्निग्धं विबन्धाध्मानपुष्टिदम् ॥३२९॥
सौवीरं मधुरं स्निग्धं स्वादुपाकरसं हिमम् ।
भेदनं गुरु विष्टम्भि बृंहणं कफशुक्रदम् ।
पित्तमारुततृड्दाहक्षतरक्तक्षयापहम् ॥३३०॥

कासरोग में बड़ा लाभकारी है। मुलहटी, लसूड़े आदि से मिलाकर इस का काढ़ा शुष्क कास में देते हैं। यूनानी चिकित्सा में इस का उपयोग बहुत होता है। उन्नाव का वृक्ष २५-३० फुट ऊंचा होता है, पंजाब के सरहदी प्रान्त में प्रायः मिल जाता है। **कर्कन्धु** की बहुत छोटी सी कांटेदार झाड़ी होती है, इस का फल बहुत छोटे बेर के सदृश होता है, इसे पंजाबी में कोकन बेर कहते हैं। **सौवीर**—बड़ा बेर वा स्यू बेर। **बदर**—साधारण बेर गोल। **कोल**—बेर वा उन्नाव? १. व—वरं गुरु। २. द—लेखनं।

बदरं तुवरं चोष्णं लघु संग्राहि रोचनम् ।
वातघ्नं कफकृत्तद्वत्कोलमुष्णं सरं गुरु ॥३३१॥
तद्वत्कर्कन्धु (?) पक्वानि स्वादुस्निग्धरसानि च ।
घ्नन्ति पित्तानलं, सर्वं शुष्कं भेद्यग्निकृल्लघु ॥३३२॥
तृष्णाक्लमश्रमश्लेष्ममारुतघ्नमपित्तलम् ।
तस्य मज्जा तु तुवरो मधुरो वीर्यवर्धनः ।
श्वासकासतृष्णादाहच्छर्दिमारुतपित्तजित् ॥३३३॥

हस्तिकोलं—हथिया बेर, बड़ा बेर । **दुर्जर**–दुष्पाच्य । **सौवीर**–स्यू बेर, पगडी बेर । **कोल**–गोल साधारण बेर । **कर्कन्धु**–कोकण बेर, जो बहुत छोटा होता है ॥३२९–३३॥

६५. अम्लिका[1] ।

Tamarindus indica.	(हिं०) इम्बली, इमली, (बं०) तेंतुल,
The Tamarind.	(फ़ा०) तमरेहिन्द, (म०) चिंचा ।
A large evergreen tree.	बृहत् वृक्ष, पत्र बब्बूल जैसे सूक्ष्म ।
Sour refringerant, digestive and laxative.	फल अत्यम्ल, हृद्य, दीपनपाचन, मृदुरेचन ।

चिञ्चाम्लिकाम्लिकी वीरुः[2] शुक्ता चण्डा च चुक्रिका ।
अम्ला स्तम्भनिका चुक्रा तिन्तिड़ी तिन्तिणी तथा ॥३३४॥

पर्याय—चिंचा, अम्लिका (खट्टी), वीरु, शुक्ता (खट्टी), चण्डा (तेज़), चुक्रिका (खट्टी), अम्ला, स्तंभनिका (काबिज), तिन्तिड़ी ॥३३४॥

चिञ्चाम्लोष्णा गुरुर्वातहरी पित्तकफप्रदा ।
तिन्तिणीकुसुमं स्वादु कषायाम्लं रुचिप्रदम् ॥३३५॥
कफमारुतमेहघ्नं विशदं दीपनं लघु
चिञ्चिणीकाफलं बालमसृक्पित्तकफास्रकृत् ॥३३६॥

---

१. यह हमारा देशीय वृक्ष है, यहां से ही अन्य देशों में गया है । यवनों ने भी इसे यहां से लिया और इस का नाम तमरेहिन्द रखा, जो अंग्रेजी में Tamarind बन गया । इस का वृक्ष पंजाब में विरल, परन्तु अन्य प्रान्तों में अधिक मिलता है । इस की कच्ची फली कीकड़ की फली के समान, परन्तु अधिक मोटी होती है । पकने पर उस में अम्ल गूदा बन जाता है, जो खाने में वा औषध में काम आता है । बीज फेंक दिए जाते हैं । मद्रास और कलकत्ता में ताज़ी इमली मिल जाती है । इमली को जल में भिगो कर और उस का रस निकाल कर पैत्तिक ज्वर और वान्ति में दिया जाता है । अनेक दीपनपाचन चूर्णों वा क्काथों में इमली का प्रयोग होता है । **इमली के पत्र** तनिक अम्ल होते हैं । उन की पुलटिस (Poultice) व्रणपाचक है । २. ब—वीरुः ।

ग्राह्युष्णं दीपनं रुच्यं तन्मध्यं कफवातनुत् ।
तद्वत्पक्वा सरा रूक्षा रुच्यग्निवस्तिशुद्धिकृत् ॥३३७॥
हृद्या कफघ्नी शुष्कैवं तृट्क्लमश्रमजिल्लघु ।
वातश्लेष्मकरं ज्ञेयं नवं तिन्तिणीकाफलम् ।
संवत्सरस्थितं तत्तु पित्तघ्नमनिलापहम् ॥३३८॥

तिन्तिणीकुसुमं—इमली का फूल । **विशद**—अपिच्छल । **असृक्पित्त**—रक्तपित्त । **संवत्सरस्थितं**—एक साल पुराना । शेष सुगम ॥३३५-३८॥

६६. वृक्षाम्लम्[1] ।

वृक्षाम्लमम्लोष्णं वातघ्नं कफपित्तलम् ।
गुरु पक्वं संग्राहि कटुकं तुवरं लघु ॥३३९॥

वृक्षाम्ल—समाक दाना ? शेष सुगम ॥३३९॥

वृक्षाम्लं तिन्तिणीकं तु साम्लकं रक्तपूरकम्[2] ।
अम्लवृक्षोऽम्लशाकं स्यादम्लपूरो महीरुहा ॥३४०॥

पर्याय—वृक्षाम्ल (खट्टा वृक्ष), तिन्तिणीक, साम्लक (अम्लरसयुक्त), रक्तपूरक (लाल रस से पूर्ण), महीरुहा (भूमि पर होने वाला वृक्ष) ॥३४०॥

अम्लोष्णं रोचनं रूक्षं दीपनं कफवातकृत् ।
तृषार्शोग्रहणीगुल्मशूलहृद्रोगजन्तुजित् ॥३४१॥

---

१. वृक्षाम्ल एक अति सन्दिग्ध द्रव्य है । चिकित्सा ग्रन्थों में जहां २ 'वृक्षाम्ल' का पाठ है, टीकाकार प्रायः तिन्तिड़ीकाम्ल अर्थ कर देते हैं, व्यवहार में आजकल इमली ही ग्रहण होती है, परन्तु वृक्षाम्ल और इमली का पृथक् २ पाठ लिखने से दोनों भिन्न द्रव्य हैं । शालिग्रामनिघंटु और वनौषधिदर्पण में Garcinia purpurea को वृक्षाम्ल माना है । यह एक लघु वृक्ष है, जिस का फल छोटी जम्बीर के तुल्य है और जिस को विषाम्बिल वा कोकम कहते हैं । यह वृक्ष दक्षिण में कहीं २ मिलता है और प्रायः दुर्लभ है । इस का तैल (Kokam oil) यक्ष्मा में व्यवहार करते हैं, परन्तु इस फल को वृक्षाम्ल कहना उचित नहीं, और न ही इमली को । राजपूताना में एक क्षुप को तिन्तिडीकाम्ल कहते हैं, इस के छोटे २ बीज (रक्तवर्ण, गोल) **समाक दाना** के नाम से प्रसिद्ध हैं, जो सब जगह मिल जाते हैं । राजपूताना के वैद्य इस को ही वृक्षाम्ल कहते हैं । संभव है यह वृक्षाम्ल हो । यह खट्टे और रोचक हैं । २. यू—नास्ति ।

६७. करमर्दिका[1]।

Carissa carandas.
The Gooseberry.
An evergreen shrub.
Acid, digestive and stimulating.

(हिं०) करौंदा, करौंदी, (बं०) करमचा, बैंची, (म०) करवंद, (गु०) करमदी।
सदाहरित गुल्म वा वृक्ष।
अम्ल, दीपन, पाचन।

कृष्णपाकफला प्रोक्ता सुषेणा करमर्द्दिका।
वनेक्षुद्रा क्षीरफेना साम्लपुष्पा च तत्फलम् ॥३४२॥
पाणिमर्दकमविघ्नं कराम्लं स्थूलकर्कटम्।
करमर्द्दं गुरूष्णाम्लं रुच्यं पित्तकफास्रकृत् ॥३४३॥
तृड्वातजित् सरं पक्वं लघु स्वादु कफास्रजित्।
शुष्कं पक्ववदप्यामं पक्वमप्यार्द्रमामवत् ॥३४४॥

पर्याय—कृष्णपाकफला (जिस के पक्व फल कृष्ण होते हैं), सुषेणा, करमर्द्दक (जो हाथ से मसला जावे), वनेक्षुद्रा, क्षीरफेना (जिस से दुग्धवत् फेन निकले), साम्लपुष्पा (खट्टे फूलों वाला)। उस का फल पाणिमर्दक (करमर्द), अविघ्न, कराम्ल (अम्ल हाथ) और स्थूलकर्कट कहलाता है। **शुष्कं पक्व०**—कच्चा करौन्दा परन्तु शुष्क किया हुआ पक्व करमर्द के तुल्य है, और पक्व करमर्द, जो आर्द्र हो, कच्चे के तुल्य (हानिकर) है ॥३४२–४४॥

६८. अक्षोटकः[2]।

Aleurites Molucana.
The Wall-nut tree.
A large evergreen tree.
Kernel oily, nourishing and laxative.

(हिं०) अखरोट, (बं०) आक्रोट, अकोला, (म०) अक्रोड़।
बृहद् वृक्ष, कठोरकोष फल, गोल।
मज्जा स्निग्ध, बृंहण, मृदुरेचन।

---

१. करमर्दक भारत के रूक्षोष्ण भागों में बाहुल्य से उत्पन्न होता है। इस के क्षुप पर तीक्ष्ण कांटे होते हैं, पत्र गुलाब वा चंबेली के सदृश। इस का मूल तिक्त और अग्निदीपक है। इस का फल रक्तकृष्ण होता है और बहुत कुछ फालसे से मिलता है। स्वाद अत्यन्त खट्टा होता है। इस के प्रायः दो भेद मिलते हैं, (१) छोटी–करौंदी, (२) बड़ा–करौंदा। २. अखरोट का वृक्ष ५०-६० फुट ऊंचा, पत्र बहुत चौड़े और घन होते हैं। भारत के मध्य प्रान्त (c. p.) में अक्षोटवृक्ष मिल जाता है, परन्तु मलयद्वीप में यह बहुत होता है, और अखरोट प्रायः उधर से आता है। इस की मज्जा में ६२ % स्नेह है, जो ३-४ तोले की मात्रा में पिलाने से एरण्डतैलवत् सुखपूर्वकविरेचन करता है। इस के पीने में कुछ कष्ट नहीं होता। अक्षोट-मज्जा को दुग्ध में उबाल कर पायसवत् प्रसूता स्त्री को पिलाने से विबन्ध दूर होता है, और स्तन्य बढ़ता है।

अक्षोटकः कर्पराल:[1] फलस्नेहो गुड़ाशयः।
पार्वतीयो वृन्तफलः स्वादुमज्जा पृथुच्छदः ॥३४५॥

अक्षोटक (तोला भर), फलस्नेह (स्निग्ध फल), गुड़ाशय (मधुर), पार्वतीय (पर्वतों पर होने वाला), वृन्तफल, स्वादुमज्जा (मीठी गिरी वाला), पृथुच्छद (स्थूल पत्रों वाला) ॥३४५॥

अक्षोटकं सरं स्निग्धं मधुरं रसपाकयोः।
गुरूष्णं बृंहणं वृष्यं बल्यं विष्टम्भि रोचनम्।
हृद्यं क्षयास्रपवनदाहघ्नं कफपित्तलम् ॥३४६॥

६६. करीरः[2]।

Capparis spinosa.	(हिं०) करील, कर्वीलु, डेह्रा, करींह, (म०) केरा, (गु०) केर।
A dense thorny shrub.	कांटेदार गुल्म पत्ररहित।
Fruit bitter, pungent and astringent.	फल तिक्त, तीक्ष्ण, कटु, ग्राही।

करीरको मृदुफलस्तीक्ष्णसारो द्रुताशनः।
शाकपुष्पो गुड़पत्रः करटो[3] ग्रन्थिलो मतः।
सुफलः क्रकरस्तीक्ष्णकण्टकी कटुतिक्तकः ॥३४७॥

पर्याय—करीर (शाखा वा शाखामय पत्राभाव से), मृदुफल (स्पर्श में मृदु), तीक्ष्णसार (रस में तीक्ष्ण), द्रुताशन (गुठली न होने से शीघ्र खाय जाने वाला), शाकपुष्प (इस के पुष्प का शाक बनता है), गुड़पत्र (मधुर पत्रों वा पुष्प वाला), ग्रन्थिल (गांठदार), सुफल (सुन्दर फलों वाला), क्रकर (आरा वा तीक्ष्ण), तीक्ष्णकण्टकी (तेज़ कांटों वाला), कटुतिक्तक (रस में कटु और तिक्त) ॥३४७॥

करीरः कटुकस्तिक्तो लघूष्णो भेदनो जयेत्।
दुर्नामकफवातामगरशोफकृमिव्रणान् ॥३४८॥
तस्य पुष्पं तु तुवरं वातकृत् कफपित्तजित्।
फलं तिक्तं कषायोष्णं कटुकं रसपाकयोः।
विकासि मधुरं रूक्षं संग्राहि कफपित्तजित् ॥ ३४९ ॥

---

१. यू-अचोंदकः कन्दरालः। २. करीर पंजाब के रूक्ष स्थलों मुलतान, झंग, करनालादि, तथा मरुभूमि और भारत के अन्य जांगल प्रान्तों में पाया जाता है। इस की झाड़ी भूमि पर ५-६ फुट स्थान घेर लेती है। इस के पत्र नहीं होते, वा अतिसूक्ष्म होते हैं। शाखाएं कांटेदार और हरी। **फूल गुलाबी**, जिस में मधु प्रचुर होता है। इस का **फल** करील वा डेह्रा के नाम से प्रसिद्ध है। कच्चे फल का प्रायः अचार डाला जाता है। पके फल लाल और मधुर होकर कच्चे ही खाये जाते हैं, भीतर से छोटे २ बीज निकलते हैं। करीराङ्कुर चबाने से दन्तशूल को दूर करता है। ३. यु—करीरः।

विकासि–सन्धियों को शिथिल करने वाला। शेष सुगम ॥३४८–४९॥

७०. आरुकम्[1] ?

आरुकं वीरसेनं च वीरा चीनारुकं तथा।
विद्याज्जातिविशेषेण तच्चतुर्विधमारुकम् ॥ ३५० ॥

१. भावमिश्र ने आरुक को एक विष्टंभी कन्दशाक माना है, जो स्पष्टतः आलू (Potato) ही है। संभव है कि आलू, कचालु (अरबी), एवं आलू के अन्य प्रकार मिलकर आरुक के चार भेद भावमिश्र ने माने हों। उस ने उसे फलवर्ग में नहीं लिया और न ही पक्व वा अम्ल फल कहा है, अतः भावमिश्र का अभिप्राय आलू (प्रसिद्ध कन्दशाक) से है। यहां उसे फलों में ही वर्णन किया है, और 'पक्वं, रोचनं, मुखवैशद्य-कारकं' इत्यादि शब्दों से वह एक अम्ल फल प्रतीत होता है। श्लोक का पूर्वार्ध दोनों निघण्टुकारों का एक है, आगे पाठ सर्वथा भिन्न है। अन्य निघंटुकारों ने उसे प्रायः अम्ल फल ही माना है, और नवीन टीकाकारों ने उसे प्रायः आलू बुखारा का नाम दिया है। आलू बुखारा (The Bokhara Plum) का कोई भेद नहीं, वह एक ही प्रकार का है, यहां चार प्रकार माने हैं। संभव है कि आलूबुखारा उनमें से एक हो। आरुक वनस्पतिविज्ञान (Botany) के अनुसार Prunus Family में आता है, जिस में कई फल सम्मिलित हैं, जैसे (१) आड़ू या ज़रदालू–the Apricot (Prunus Armeniaca ; यह पंजाब देश में बहुत मिलता है, ग्रीष्म में फल पक्व होकर बाजारों में विकता है, वह भी दो प्रकार का है, एक गोल, दूसरा चपटा गोल, ऊपर का मांस (गूदा) स्वाद में मधुराम्ल और उष्णवीर्य होता है। उसके भीतर एक कठोर अस्थि होती है, जिस में, बालक छिद्र करके मुख से बजाने वाली सीटी बनाते हैं, उसकी मज्जा से तैल निकलता है, जो बादामरोगन (वाताद तैल) से मिलता है, परन्तु अल्पकाल में उसका रंग और स्वाद बदल जाता है। उसे बादामरोगन में मिलाकर बेचा जाता है। आड़ू का वृक्ष बहुत छोटा होता है, (२) अलूचा (Prunus aloocha)–यह भी पंजाब में बहुत होता है, पादप बहुत कुछ आड़ू के सदृश, फल गोल पांडु वा रक्तकृष्ण वर्ण वाला, मांस मधुराम्ल, अस्थि कठोर, मज्जा स्निग्ध। (३) आलू बुखारा (Prunus bokhariensis) काश्मीर से गढ़वाल तक हिमालय में सर्वत्र इसका क्षुद्र वृक्ष मिलता है। पत्र अण्डाकार, परन्तु कटे हुए, फल गोल और श्वेत। ताजा फल पंजाब में मिल जाता है, लोग अचार बनाने के काम में लाते हैं वा कच्चा भी खाते हैं। शुष्क पक्व फल पनसारियों से भारत में सब जगह मिलता है। इसे वैद्य बहुत कम व्यवहार करते हैं, परन्तु हकीम उसे ज्वर, मुखशोष, शुष्क कासादि में चूसने के लिये देते हैं। उस को जल में मसल और छानकर शर्करा मिला कर पिलाना इन रोगों में बड़ा लाभकारी है, यह मृदुरेचन भी है। आलु बुखारा के भीतर अस्थि बादाम के तुल्य होती है, जिस से स्निग्ध मज्जा निकलती है। उसका तैल जलाने–

आरुकं तुवरं भेदि गुरूष्णं कफपित्तकृत् ।
पक्वं तु मधुरं नातिगुरूष्णं कफपित्तलम् ॥ ३५१ ॥
बृंहणं रोचनं शीघ्रजरं मारुतनाशनम् ।
मेहार्शोनाशनं हृद्यं मुखवैशद्यकारकम् ॥ ३५२ ॥

जाति—आडू जातिविशेष से चार प्रकार का है, आरु, वीरसेन, वीरा, चीनारुक। **बृंहणं**—पुष्टिकर, मोटा करने वाला। **शीघ्रजरं**—जल्दी पचने वाला। शेष सुगम ॥ ३५०–३५२ ॥

७१. कोशाम्रः[1] ।

Mangifera indica (wild). The wild mango. Sour, digestive and astringent.	(हिं०) कोशंब, जंगली आम, (बं०) जल पाई, केऊड़ा, (गु०) कोशम्ब। वृक्ष आम्रवत् परन्तु क्षुद्र। अम्ल, पाचक, ग्राही।

कोशाम्रको जन्तुवृक्षो लाखावृक्षः सुकोशकः ।
सरक्तको घनस्कन्धः क्षुद्राम्रः क्षुद्रामौकुलिः(?) ॥३५३॥

पर्याय—कोशाम्र (कोष मात्र कठीला आम), जन्तुवृक्ष (कीटयुक्त वृक्ष वा फल), लाक्षावृक्ष (लाख जिस पर होती है ऐसा वृक्ष), सुकोशक (सुन्दर कोश), सरक्तक (लाल), घनस्कन्ध (मोटे तने वाला), क्षुद्राम्र (छोटा, जंगली आम) ॥३५३॥

कोशाम्रस्तुवरो हन्ति रक्तपित्तकफव्रणान् ।
शोषकुष्ठहरं कोष्ठशोधनं तत्फलं गुरु ॥३५४॥
अम्लोष्णं ग्राहि वातघ्नं रक्तपित्तबलासकृत् ।
पक्वं तु दीपनं रुच्यं लघूष्णं कफवातनुत् ।
मज्जा तु कफवातघ्नः स्वादुः स्निग्धो बलाग्निकृत् ॥३५५॥

७२. राजादनः[2] ।

Mimusops Elengi. An evergreen tree. Fruit sweet, nutritive and astringent.	(हिं०) खिरणी, खिन्नी, (बं०) राजणी, (म०) खिरणी, (गु०) रायण। छायावान् सदाहरित वृक्ष। फल मधुर, पुष्टिकर, ग्राही।

और खाने के काम आता है। (४) बादाम Almonds–(Prunus Amygdalus), यह भी इसी जाति का वृक्ष है। इन के अतिरिक्त कई प्रकार के पार्वतीय आडू नैपालादि में मिलते हैं, वह भी आरुक में गिने जा सकते हैं। एवं आरुक को केवल आलूबुखारा कहना पर्याप्त नहीं। १. यह जंगली आम है, पत्र, फलादि साधारण आम की अपेक्षा छोटे होते हैं। यह बिना लगाए ही वनों में मिलता है। इस की त्वक्, पत्रादि का व्यवहार आम्र के तुल्य जानें।

२. राजादन पंजाब में कम होता है परन्तु अन्य प्रान्तों में विशेषतः संयुक्त प्रान्त

राजादनो दृढ़स्कन्धो मालाशी वानरप्रियः।
फलाध्यक्षो गुरुस्कन्धः क्षत्रियः प्रियदर्शनः।
राजाह्वः क्षीरनी[1] क्षीरीफलोऽक्षीवश्च रूषकः ॥३५६॥

पर्याय—राजादन (राजाओं के खाने योग्य उत्तम फल), दृढ़स्कन्ध (कठोर तने वाला), मालाशी, वानरप्रिय (बन्दरों को प्रिय), फलाध्यक्ष (फलों का राजा), गुरुस्कन्ध (भारी तने वाला), क्षत्रिय (छत्रवान्, छायावान्), प्रियदर्शन (सुन्दर), राजाह्व (राजा के नामों वाला), क्षीरनी (दुग्धवान्, खिरनी), क्षीरफल (दुग्धवत् श्वेत रस वाला), अक्षीव (अक्षि इव, नेत्राकार फल), रूषक (सजावट करने वाला, सुन्दर) ॥३५६॥

राजादनं हिमं[2] स्निग्धं कषायं मधुरं गुरु।
स्वाद्वम्लपाकं संग्राहि वृष्यं विष्टम्भि बृंहणम् ॥३५७॥
रोचनं मांसलं हन्ति दोषत्रयमदभ्रमान्।
मूर्च्छामोहतृषादाहरक्तपित्तक्षतक्षयान् ॥३५८॥

राजादनभेदाः।

मुचिलिन्दो[3] मदनको राजन्यः क्षत्रपादपः[4]।
इक्ष्वाकुः श्रीक्षीरफलश्चिबुकः प्रतिविष्णुकः ॥३५९॥

७३. परूषकः[5]।

Grewia asiatica. A tree with grey bark. Fruit sweetish sour, cooling, refringarant, stomachic and astrin gent.	(हिं०) फालसा, परूषा, (बं०, पं०, सिं०, म०,) फालसा, (गु०) धामन। वृक्ष, पत्र बृहत्, त्वक् धूसर। फल मधुराम्ल, शीत, हृद्य, पाचक, ग्राही।

(यू० पी०) और दक्षिण में बहुत मिलता है। वृक्ष बड़ा सुन्दर, छायावान्, पत्र काफी लंबे चौड़े, चिकण और हरित, डण्ठल दीर्घ, पुष्प क्षुद्र श्वेत, फल निम्बबीज के तुल्य, परन्तु गुच्छों में लगे रहते हैं। फल प्रायः बसन्त में आता है। पत्रादि की आकृति बकुल (मौलसरी) के तुल्य होती है। फल में से दुग्ध निकलता है, जो व्रणरोपक समझा जाता है। फल स्वाद में मधुर और रुचिपूर्वक खाया जाता है। बीज से तैल निकलता है, जो औषधरूप में व्यवहार होता है। त्वक्क्वाथ ग्राही और रक्तप्रदरनाशक है। बीजकल्क गर्भपातन के लिए प्रयोग करते हैं।

१. द—क्षीरभृत्। २. यू—हितं। ३. द—सुविलिंघदो। ४. ब—क्षत्रयोदकः।

५. फालसा अन्य प्रान्तों की अपेक्षा पञ्जाब में बहुत होता है। सुन्दर और स्वादु फल के लिए ही प्रायः लगाया जाता है। वृक्ष बहुत ऊंचा नहीं होता, फल तो छोटे २ पौदों को ही दो वर्ष के भीतर आ जाता है। फलसमय—वसन्त वा ग्रीष्मा—

परूषको नीलवर्णो रोषणो धन्वनच्छदः ।
पारावतो मृदुफलः पुरुषः परुषः परुः ॥३६०॥

पर्याय—परूषक (कठोर), नीलवर्ण (नीले रङ्ग वाला फल), रोषण (क्रुद्ध, नाराज), धन्वनच्छद (धन्वन के तुल्य पत्रों वाला), पारावत (पार्वतीय), मृदुफल (कोमल फलों वाला), पुरुष, परुष (कठोर), परु (पर्वत) ॥३६०॥

परूषकं कषायाम्लं लघूष्णं स्वादु पित्तलम् ।
रूक्षं मारुतजित् पक्वं स्वाद्वम्लं शुक्रलं हिमम् ॥३६१॥
रोचनं मधुरं पाके हृद्यं विष्टम्भि बृंहणम् ।
हन्ति मारुतपित्तास्रदाहतृष्णाक्षतक्षयान् ॥३६२॥

शुक्रल—वीर्यवर्धक । **विष्टम्भि**—काबिज ॥३६१-६२॥

७४. प्रियालः[1] ।

Buchanania latifolia.	(हिं०, बं०) चिरोंजी, पियाल, (म०, गु०) चारोली ।
A tree with thick bark.	बहुवल्कल वृक्ष ।
Demulcent, nutritive and expectorant.	स्निग्ध, वृष्य, कफनिष्कासक ।

धनुष्पटः खरस्कन्धश्चारो द्राक्षाफलः पटः ।
प्रियालोऽम्लफलस्त्वक्च सन्नकद्रुर्मुनिप्रियः ।
शालः शाखामृगश्चाधःपुटोऽथ ललनो वरः ॥३६३॥
प्रियालः कफपित्तघ्नः कषायोऽस्थिफलं गुरु ।
स्वाद्वम्लं मधुरं पाके सुस्निग्धं शीतलं सरम् ॥३६४॥
विष्टम्भि बृंहणं वृष्यं बल्यं श्लेष्मविवर्द्धनम् ।
जयेन्मारुतपित्तास्रतृष्णादाहक्षतक्षयान् ॥३६५॥

रंभ । **फल** गोल छोटे वेर के तुल्य, आमावस्था में श्वेत, पुनः रक्त, और सुपक्व होने पर नीलवर्ण, मृदु और मधुराम्ल । इसे शर्करा वा लवण से मिला कर खाया जाता है, और **परूषकपानक** (शर्बत फालसा) बड़ा उत्तम, स्वादु शीत और ग्राही पेय द्रव है । फालसे के पत्र २-३ इंच चौड़े और ४-५ इंच लंबे होते हैं । वे प्रायः पत्तलादि बनाने के काम आते हैं । **पत्र कल्क** व्रणों पर लगाया जाता है । **त्वक् क्वाथ** पिच्छल है, ज्वर और पेचिश में दिया जाता है । फालसा (फल) पिपासा, ज्वर, अजीर्ण, मुखशोष, वातकासादि में लाभकारी है ।१. प्रियाल एक पार्वतीय वृक्ष है, जो हिमालय, मध्य और दक्षिण भारत के पर्वतों पर वहुत मिलता है । **वृक्ष** ४०-५० फुट ऊंचा, **पत्र** ५-६ इंच चौड़े और १० इंच लंबे, डंठल स्थूल, पत्र के अन्त पर नोक और अधोभाग पर रोम होते हैं **वल्कल** (छाल) १ इंच मोटी, अतः वृक्ष का नाम वहुवल्कल, धनुष्पटादि है । **पुष्प** क्षुद्र नील श्वेत, **फल** गोल, कृष्ण, मृदु, भक्ष्य।

पर्याय–धनुष्पट (धनुष का पट वा आच्छादन), खरस्कन्ध (खर तने वाला), चार (बन्धन), द्राक्षाफल (द्राक्षातुल्य फल वाला), पट (वस्त्राकार त्वचा वाला), प्रियाल (प्रिय), अम्लफल (खट्टे फलों वाला), त्वक् (छालमय), सन्नकद्रु (छोटा वा झुका हुआ वृक्ष), मुनिप्रिय (मुनियों का प्यारा), शाल (शाल के तुल्य), शाखामृग, अधःपुट, ललन (सुन्दर), वर (श्रेष्ठ) ॥ शेष सरल ॥३६३–५॥

तन्मज्जा **मधुरः स्निग्धो वृष्यः पित्तानिलापहः ।**

प्रियालतैलं **मधुरं गुरु श्लेष्मविवर्द्धनम्** ॥३६६॥

७५. तिन्दुकः[1] ।

Diospyros embryopteris. An evergreen shady tree. Fruit & bark astringent.	**(हिं०, बं०) गाब, तेंदु, (अर०) आबनूस हिन्दी, (म०) तेंबुणी । घन सदाहरितवृक्ष, फल और त्वक् ग्राही**

७६. विषतिन्दुकः[2] ।

Strychnos Nux-vomica. A deciduous tree. Nervine tonic, stomachic and aphrodisiac.	**(सं०) कारस्करः, विषमुष्टिः, (हिं०) कुचला, (बं०) कुंचले, (म०) काजरा । वृक्ष, पत्र पतनशील । वातोत्तेजक, अग्निवर्धक, वाजिकर**

१. तिन्दुक का वृक्ष ४०–५० फुट ऊंचा होता है, शाखाओं और घनहरित पत्रों की बाहुल्यता के कारण वह बड़ी छाया करता है। **पत्र** १–२ इंच चौड़े, ४–६ इंच लम्बे, और जामुनवत् नोकदार। **फल** नारङ्गी की तरह गोल, वर्ण में पाण्डु, और स्पर्श में कठोर होता है। सेब की तरह चाकू से काटा जा सकता है। **कच्चा फल** कषाय और ग्राही है, उस को खा लिया जावे, तो गला घुटने लग जाता है, **पक्क फल** मधुर, कषाय, परन्तु ग्राही होता है, कहीं २ उसके खाने और अचार डालने की प्रथा है। कच्चे फल में Tannic acid की अधिकता से वह सद्योव्रण पर लेप करने से बड़ा लाभ करता है। उसके रस वा क्वाथ का गण्डूष भी किया जाता है। **तिन्दुकवल्कल-क्वाथ** मधुमिश्रित विषमज्वर और अतिसार में उपयोगी है। **बीज** फल-मांस में दबे रहते हैं, उन्हें पृथक् करके तैल निकाला जा सकता है, जो प्रवाहिका और अतिसार में लाभकारी है। **काण्डसार** (तने का मध्य काष्ठ) बड़ा कठोर और कृष्णवर्ण का होता है। उसे **आवनूस** (Ebony wood) कहते हैं। यह काष्ठसामग्री (Furniture) बनाने में काम आता है। असली आबनूस अरब वा पारसदेश से आता है।

२. श्लोक सं० ३६८ में काकतिन्दुक के पर्याय दिए हैं। काकतिन्दुक वा कुपीलु से वैद्य प्रायः कुचला (Nux-vomica) ही ग्रहण करते हैं, यह कुछ सन्दिग्ध बात है। तिन्दुक के २, ३ भेद हैं, उन में से एक काकतिन्दुक (काला तेन्दा) हो सकता है, जो साधारण तिन्दुक की अपेक्षा बड़ा और अधिक कृष्ण होता है, परन्तु विरल (कहीं २

(१) कालस्कन्धा कालसारा तनुका दीर्घनख्यपि।
स्कन्दिता स्फूर्जनः स्फूर्जः स्पन्दनो रावणो वरः ॥३६७॥

(२) विस्फूर्जनी विकरणी तिन्दुकी विरलाऽपरा।
काकेन्दुकी काकपीलुः कुपीलुः स्थूलबिन्दुकः ॥३६८॥

वा कम) मिलता है, जैसा कि ऊपर 'विरलाऽपरा' कहा गया है। सब प्रकार के तिन्दुक आबनूस जाति (Ebenacea Natural Order) में आजाते हैं। परन्तु **कुचला** (कारस्करः, विषमुष्टिः) N. O. Loganiacea में सम्मिलित है। अतः यह काकतिन्दुक नहीं हो सकता। काकतिन्दुक के गुणों से विष का ज्ञान नहीं होता, हां 'तिक्त' रस और 'वातल' गुण से कुचला अल्पांश में अभिप्रेत हो सकता है।

काकतिन्दुक कुचला हो वा न हो, इस स्थान पर उसका सम्पूर्ण वर्णन करना आवश्यक है। कुचले का **वृक्ष** १०–४० फुट ऊंचा होता है। मद्रास के तीरुपति पर्वत पर और कटक के निकट भुवनेश्वर के जङ्गलों में मैं ने उसे बहुत देखा है। अन्यत्र भी कहीं २ मिलता है, परन्तु विरल। **पत्र** बहुत कुछ जामुन वा आम से मिलते हैं। **पुष्प** क्षुद्र, नील श्वेत और हरिद्रातुल्य गन्धयुक्त होते हैं। **फल** अमरूद जितना बड़ा गोल और पक्वावस्था में पीतवर्ण होता है। वह श्वेत मांस से भरा रहता है, जिस में से कुचले की ४, ५ टिकड़ियां (बीज) दबी रहती हैं, फल सूखने पर स्वयं फूट जाता है और यह टिकड़ियां शुष्क होकर पृथक् होजाती हैं, जिन्हें लोग वा सरकारी ठेकेदार इतस्ततः बेचते हैं। कुचले की टिकड़ी प्रायः $\frac{1}{2}$ इंच चौड़ी और गोलाकार [Disc-shaped] और मोटाई में $\frac{1}{4}$ इंच होती है। यह तीव्र विष है। कुचले का चूर्ण २ माशा भर खा लेने से मृत्यु होजाती है। **प्रसिद्ध विषचिह्न** (Symptoms of Poisoning by Nux Vomica) यह हैं (क) मुखतिक्तता, जिह्वा तथा गल का शोष, तृष्णा, (ख) अरति, पृष्ठ, बाहु और जंघा में तीव्र वेदना, मुख पर चिन्ता और पाण्डुता वा रक्तता, (ग) सर्व शरीराक्षेप (Convulsions), पुनः २ लिङ्गोत्थान, मलमूत्रत्याग, (घ) दृष्टि और श्रवण तीव्र। चेतनता अन्त तक, निद्रानाश, उठकर बैठना वा चलना असम्भव। (ङ) मृत्यु फुप्फुस, हृदयादि की गति के बन्द होजाने के कारण। **प्रतिकार**–आरम्भ में वमन दे सकते हैं। कालान्तर में वमन निषिद्ध है। अहिफेन वा क्लोराफार्म (Chloroform) देकर विषक्त रोगी के उत्तेजित मूर्द्धा को शान्त करना चाहिये। सिर पर नारायण तैल मलना और घृतदुग्ध पिलाना बड़ा लाभकारी है। रोगी को बुलाना वा उत्तेजित करना उचित नहीं।

इस तीव्र विष का कारण कुचले में दो प्रसिद्ध सत्त्वों Strychnine and Brucine (स्ट्रिकनीन और ब्रूसीन) की विद्यमानता है। स्ट्रिकनीन की घातक मात्रा $\frac{1}{2}$ रत्ती (1 grain) है, और विहित मात्रा $\frac{1}{32}$ रत्ती ($\frac{1}{16}$ grain) है। अहिफेन को खाने के कारण वा अन्य रोगों से आतुर मनुष्य का हृदयकम्पन बन्द हो रहा हो, तब डाक्टर लोग इस को शरीर में सूची द्वारा प्रवेश (Injection) करते हैं,

पर्याय और जाति-(१) कालस्कन्धा (कृष्ण तने वाला), कालसारा (काली लकड़ी वाला, सार-मध्यभाग), तनुका (पतला), दीर्घनखी (लम्बे नखों वाला), स्कन्दिता (गिरा हुआ, फल पक कर स्वयं गिर जाता है), स्फूर्जन (चमकने वाला व फटने वाला फल), स्पन्दन (कांपने वाला), रावण (दैत्य, चिलाने वाला), वर (श्रेष्ठ)। (२) विस्फूर्जनी (चमकने वाली), विकरणी, तिन्दुकी (तेन्दी), विरला, काकेन्दुकी (काला तेन्दा), काकपीलु (काला पीलु), कुपीलु (कुत्सित खराब पीलु), स्थूलबिन्दुक (मोटे बिन्दुओं वाला) ॥३६७-८॥

१ तिन्दुकस्तुवरस्तिक्तः स्निग्धोष्णो व्रणवातहा ।
आमं चास्य फलं स्वादु कषायं लेखनं लघु ॥३६९॥
संग्राहि शीतलं रूक्षं विबन्धारुचिवातकृत् ।
पक्वं बलासपित्तघ्नं स्वादुपाकरसं गुरु ॥३७०॥
स्यात् काकतिन्दुकं तिक्तं शीतलं वातलं लघु ।
विपाके कटुकं ग्राहि... पित्तास्रनाशनम् ॥३७१॥

बलास-कफ । **काकतिन्दुक**-कुचला ॥३६९-७१॥

७७. विकङ्कत[१]: ।

Flacourtia Ramontchi.
A small spiny tree.
Fruit sweet & digestive.

(हिं०) कटी, कंटाई, वंज, किंकणी, (बं०) वैंइच गाछ, कटाई, (गु०) विकलो, (म०) तांबत । कांटेदार वृक्ष, फल मधुर, दीपनपाचन ।

यह बड़ा हृदयोत्तेजक (Heart-stimulant) द्रव्य है, वैद्यक में अग्नितुण्डी, कृमिमुद्गर रसादि में शुद्ध **कुचला** डाला जाता है। कुचले को ३, ४ दिन गोमूत्र में रखने से वह मृदु हो जाता है, और कुछ विष भी निकल जाता है, उस के कोष और मध्यवर्ती मींगी निकालकर शेष को शुष्क वा आर्द्र अवस्था में घृतभृष्ट किया जाता है, यह विषमुष्टि की **शोधनविधि** है। वा उसे दुग्ध में कई वार उबाल कर शुद्ध किया जाता है। शुद्ध कुचले की मात्रा प्रायः ½ रत्ती है, परन्तु १ रत्ती तक देने में कोई भय नहीं। कुचला खाली पेट में (प्रातः वा सायं) मत दो। उसे भोजन के १ घंटा बाद देना उचित है। कारस्करसेवी को घृत और दुग्ध प्रचुर लेना चाहिये, कुचला वातसंस्थान (Nervous system) को बहुत उत्तेजित करता है। अतः हीनवात, अर्धाङ्गवात, अर्दित, अजीर्ण, शिरःशूल, योषापस्मार (Hysteria), नपुंसकतादि में बहुत उपयोगी है। कई लोग उत्तेजनार्थ प्रतिदिन खाते हैं और अभ्यस्त होकर १ टिकड़ी तक खाजाते हैं। आमवात के दरदों और लिङ्गशिथिलता में उसे दिया जाता है। कुचला स्वाद में अतितिक्त है। कुचले का **तैल** भी निकाला जाता है।

१ विकङ्कत के वृक्ष ३०-३५ फुट ऊंचे होते हैं। वे भारत के पर्वतों पर प्रायः और दक्षिण तथा लङ्का में बहुत मिलते हैं। उन पर लम्बे २ कांटे होते हैं, जो स्वाद में तनिक मधुर होते हैं। **पत्र** जपा के तुल्य नोकदार और कटे हुए। **फल** व्यास में ½ इंच

व्याघ्रपादः श्रुवतरुः स्वादुकण्टो विकङ्कतः।
देववृक्षो गोपकण्टो ग्रन्थिलः पिण्डरोहणः।
पृथुबीजो मृदुफलः किङ्किनी यज्ञपादपः ॥३७२॥

पर्याय—व्याघ्रपाद (व्याघ्रपादवत् तीच्ण कांटो वाला), स्वादुकण्ट (मधुर कांटों वाला), गोपकण्ट (ग्वालों का कांटा), ग्रन्थिल (गांठों वाला), पिण्डरोहण (गांठदार), पृथुबीज (मोटे बीजों वाला), मृदुफल (कोमल फल वाला), यज्ञपादप (यज्ञवृक्ष) ॥ ३७२॥

श्रुवद्रुर्मधुरस्तिक्तः कषायः शीतलो जयेत्।
बलासपित्तशोफास्त्रं, फलं पाकरसोषणम्।
तीक्ष्णं पित्तास्रकृत्पक्वं स्वादु तिक्तं त्रिदोषजित् ॥३७३॥

७८. राजाम्रः[1]।

राजाम्रातकं[2] आम्रातो मन्मथो द्रावणस्तथा[3]।
अन्यो नीलकपित्थः स्याद्राजपुत्रो नृपात्मजः ॥३७४॥

पर्याय—राजाम्रातक (राजा आम्र वा आमों में राजा), आम्रात (आम्र), मन्मथ (मन को मथने वाला), द्रावण (गलाने वाला), नीलकपित्थ (नीले कैथ के तुल्य), राजपुत्र (उत्तम कुल वाला आम), नृपात्मज (राजपुत्र) ॥ ३७४ ॥

टंकं कषायमधुरं विशदं शीतलं गुरु।
ग्राहि रूक्षं विबन्धाध्मावातकृत् कफपित्तजित् ॥३७५॥

७९. आम्रातकः[4]।

Spondias mangifera.	(हिं०, म०) अम्बाड़ा, (बं०) आमड़ा।
A large deciduous tree.	महान् वृक्ष, पत्र पतनशील।
Sour, digestive & astringent.	फल अम्ल, पाचक, ग्राही।

आम्रातकस्तरुक्षीरो वर्षपाकी कपित्थकः।
कपिचूतश्चाम्रवरो दुःफलोऽथ कपीतनः ॥३७६॥

पर्याय—आम्रातक (जङ्गली आम), तरुक्षीर (क्षीरतरु), वर्षपाकी (एक वर्ष में पकने वाला), कपित्थक (कैथ के तुल्य), कपि (कपिल वर्ण वाला), दुःफल (कठिनता से फलने वाला), कपीतन (कुछ पीले रंग वाला) ॥३७६॥

गोल, मृदु और मधुर होते हैं। फलमांस में ४, ५ बीज दबे रहते हैं। फल प्लीहा, यकृत् और पाण्डुरोग में दिया जाता है।

१. सहारनी, बनारसी, लंगड़ादि आम की अनेक जातियां आजकल प्रसिद्ध हैं। प्राचीन काल में भी राजाम्र, कोशाम्र, राजपुत्राम्रादि भेद मिलते थे। विशेष वर्णन नं ६२ में देखो। २. यू—राजाम्राटकः। ३. यू—भावनः। ४. आम्रातक पंजाब में और मरुदेश में नहीं मिलता, परन्तु अन्यत्र भारत में सब जगह बङ्गदेश और पर्वतों पर बहुत होता है,

आम्रातमम्लं वातघ्नं रुच्यं पित्तकफास्रजित् ।
सरं गुरूष्णं पक्वं तु स्वादुपाकरसं हिमम् ॥ ३७७ ॥
तर्पणं श्लेष्मलं स्निग्धं वृष्यं विष्टम्भि बृंहणम् ।
गुरु बल्यं मरुत्पित्तदाहक्षतक्षयास्रजित् ।
आम्रातकप्रवालं तु ग्राहि दीपनरोचनम् ॥ ३७८ ॥

प्रवाल—अंकुर वा अति मृदु पत्र ॥३७७-८॥

८०. कपित्थः[1] ।

Feronia elephantum.
The Wood Apple.
A large thorny tree.
Fruit aromatic, acid, digestive and tonic.

(हिं०) कैथ, कतबेल, (बं०) कथ बेल, (सिं०) कटोरी, (गु०) कोंह, काठ, (म०) कविठ ।
कांटेदार महान् वृक्ष, पत्र पतनशील ।
फल सुरभित, अम्ल, पाचक, बलकर ।

कपित्थको दधित्थः स्यात्तक्रभित्[3] सुरभिच्छदः ।
अक्षिसस्यो दधिफलो ग्राही ग्राहीफलो दधिः ।
हृद्यः कषायाम्लफलश्चिरपाकी कपिप्रियः ॥३७९॥

पर्याय—कपित्थक (कपितुल्य वर्णयुक्त), दधित्थ (दधितुल्य मांसयुक्त), तक्रभित (तक्र को तोड़ने वाला वा तक्र से अधिक अम्ल), सुरभिच्छद (सुगन्धित पत्रों वाला),

---

वृक्ष बड़ा ऊंचा और फैला हुआ, **पत्र** आम्र से बड़े, और **पुष्प** आम्र के तुल्य होते हैं। **फल** छोटे आम के समान, पक्वावस्था में पीतवर्ण और मधुर होते हैं । आम्रातक की **अस्थि** आम्र जैसी कठोर नहीं होती, चाकू से शीघ्र काटी जा सकती है । **पक्वफल** कच्चा खाया जाता है, परन्तु कच्चे फल का बड़ा स्वादु अचार बनता है। कलकत्ता में आमड़ा फल और अचार बहुत मिलता है । **पत्रस्वरस** कर्णशूल में लाभकारी है । और त्वक् का काढ़ा पेचिश में दिया जाता है ।

१. कपित्थ पंजाब में कहीं २ अन्य प्रान्तों में विशेषतः मद्रास और लङ्का में बहुत मिलता है । मद्रास के बाज़ारों में कपित्थ के ढेर इस तरह लगे रहते हैं, जैसे यहां नारङ्गी और अमरूद के । कपित्थ के महान् वृक्ष पर बड़े मजबूत कांटे लगे रहते हैं । **पत्र** इमली वा बब्बूल के तुल्य, **पुष्प** रक्त वा पीतहरित । **फल** गोलाकार, पक्वावस्था में खरस्पर्श और श्वेताभ, व्यास में २-३ इंच, उस के भीतर श्वेत सा गूदा भरा रहता है, जो स्वाद में अम्ल और मसलने पर दधि के तुल्य होता है, अतः कपित्थ को दधित्थ भी कहते हैं । पक्व फल बड़ा रोचक और दीपनपाचन है । **कच्चा फल** कषाय और ग्राही है। उस का शुष्क चूर्ण बिल्वचूर्ण से मिलाकर अतिसार आदि में दिया जाता है। **कपित्थाष्टक चूर्ण** एक प्रसिद्ध योग है । **पत्र** सुरभित और आनाहनाशक हैं । कपित्थ वृक्ष पर बब्बूल के तुल्य निर्यास (गोन्द) आता है । यह स्निग्ध और पिच्छल है ।

अक्षिसस्य (नेत्र गोलक के समान), दधिफल (दही के तुल्य फल), चिरपाकी (बहुत काल में पकने वाला), कपिप्रिय (बन्दरों को प्रिय) ॥ ३७९ ॥

आमं कपित्थं संग्राहि कषायं लघु लेखनम् ।
रूक्षाम्लं विषकण्ठघ्नं कफजिद्वातपित्तकृत् ॥३८०॥
पक्वं गुरु कषायाम्लं स्वादु हिक्कात्रिदोषजित् ।
वमिकासतृषाश्वासशमनं कण्ठशोधनम् ॥३८१॥
संग्राहि रोचनं हृद्यं दुर्जरं मूत्रदोषजि (?) त् ।
कपित्थबीजं गरहृत्कपालविसर्पनुत् ॥३८२॥
कपित्थपत्रं हिक्काघ्नं छर्द्यतिसारनाशनम् ।
पुष्पमाखुविषं हन्यात्कपित्थस्य विशेषतः ॥३८३॥
कषायं स्वादु कापित्थं तैलमाखुविषापहम् ।
कफपित्तहरं ग्राहि वमिहिक्काविषापहम् ॥३८४॥

कपालविसर्प—सिर की खाज वा दाद (Ringworm of the Scalp) आखुविष—मूषकविष ॥३८०–८४॥

८१. कपित्थपत्रिका[1] ।

कपित्थपत्रा सरसी फणिजा रूपपत्रिका ।
कूलजा वनजा ज्ञेया निर्जरा[2] पुष्पपत्रिका ।
तुम्बपत्री चारुपत्री विरूपा चित्रपत्रिका[3] ॥३८५॥
कपित्थपत्रिका तिक्ता कषाया कटुपाकिनी ।
तीक्ष्णोष्णा नाशयेत् श्लेष्ममेदोमेहविषक्रमीन् ॥३८६॥

पर्याय—कपित्थपत्रा (कैथ के तुल्य पत्रों वाली), सरसी (तालावों में होने वाली), कूलजा (तालाव में होने वाली), वनजा (जंगली), निर्जरा (जरारहित), तुंबपत्री (कद्दू जैसे पत्रों वाली), चारुपत्री (सुन्दर पत्रों वाली), विरूपा (विशेष रूपयुक्त वा रूपरहित), चित्रपत्रिका (चित्रित पत्रों वाली) ॥३८५–६॥

८२. वटः[4] ।

Ficus Bengalensis.	(हिं०) बड़, बोर, बोहर,
The well-known Banyan tree.	(बं०) वट गाछ, (गु०) बड़ ।
Astringent, cooling and	सुप्रसिद्ध महान् वृक्ष ।
heamostatic.	ग्राही, शीत, रक्तस्थापक ।

वटः क्षीरी रक्तफलो न्यग्रोधो यक्षवासकः ।
बहुपादः पादरोही शृङ्गी दान्तो वनस्पतिः ।

---

१ यह कपित्थ का भेदविशेष महाराष्ट्र देश में 'कवटपत्री' के नाम से प्रसिद्ध है ।
२. यू—नास्ति । ३. यू—चारुपत्रिका ।
४. वट के परिचय देने की आवश्यकता नहीं, यह सर्वत्र मिलता है । इस

स्कन्धजोऽस्य फलं प्रोक्तं नैयग्रोधं च कांचनम् ॥३८७॥

पर्याय—वट, चीरी (दुग्धमय), रक्तफल (लाल फलों वाला), यक्षवासक (यक्ष का निवासस्थान), बहुपाद (बहुत जटाओं वाला), पादरोही (जटाओं से उगने और बढ़ने वाला), शृङ्गी (सींगों वा जटाओं वाला), वनस्पति (जंगल का पति) ॥३८७॥

वटो रूक्षो हिमो ग्राही कषायो योनिदोषजित् ।
वर्ण्यो व्रणविसर्पघ्नः कफपित्तहरो गुरुः ॥३८८॥

८३. उदुम्बरः[1] ।

Ficus glomerata. A large deciduous tree. Astringent, cooling, and styptic.	**(हिं०) गूलर, (बं०) यज्ञ डुमुर (यज्ञोदुम्बर), (म०) गुण उम्बर, प्रसिद्ध क्षीरी वृक्ष, पत्र पतनशील । ग्राही, शीत, रक्तस्तम्भक ।**

की जटाएं वा वायवीय मूल (Arial roots) स्तम्भ से निकल कर लटकती रहती हैं, शनैः २ बढ़कर भूमि में गड़ जाती हैं और कुछ काल बाद स्थूल होकर स्तम्भ बन जाती हैं । वट वृक्ष इस प्रकार कभी २ बहुत स्थान घेर लेता है । कलकत्ता के वनस्पत्युद्यान (Botanical Garden) में वट का एक पुराना वृक्ष कम से कम १५० गज के परिमाण में फैला हुआ है । **वटदुग्ध** दन्तशूल, पाददारिका तथा हस्तदारिका (हाथ पांव के फटने) में प्रयोग करते हैं । अहिफेन जातिफलादि से मिलाकर वीर्यस्तम्भनार्थ गोलियां बनाई जाती हैं । **जटाक्वाथ** प्रमेह तथा वातरक्त में दिया जाता है । **त्वक्क्वाथ** ग्राही और शीत है, अतः रक्तपित्त, रक्त प्रदरादि में दिया जाता है । वटांकुर (कोंपलों) का क्वाथ भी उक्त रोगों में दिया जाता है और अभ्रकभस्म को रंजित करने के लिये भावनार्थ प्रयुक्त होता है । वटांकुरक्वाथ दुग्ध-शर्करामिश्रित गर्भस्थापक और रक्तप्रदरनाशक है । गर्भपात की पहली अवस्था में देने से बड़ा लाभ करता है । छाल का काढ़ा मधुमेह में भी गुणकारी है । **वटपत्र** व्रणाच्छादनार्थ प्रयुक्त होता है । **फल** भी शीत, ग्राही और मूत्ररोधक है ॥

१. उदुम्बर का वृक्ष ५०–६० फुट तक ऊंचा चला जाता है । **पत्र** ५-६ इंच लम्बे, २-३ इंच चौड़े, किनारा सरल, और अग्रभाग नोकदार होता है । पत्र पर व्रणवत् स्थूल ग्रन्थियां होती हैं । वट की तरह गूलर को भी जटाएं और फल आते हैं । **उदुम्बरत्वक् और पत्र का क्वाथ** वट की तरह रक्तपैत्तिक विकारों में दिया जाता है, परन्तु वह व्रणों के प्रक्षालन के लिए अत्युत्तम द्रव है, एक वृद्ध वैद्य ने गूलर का अनुसन्धान करके एक पुस्तक **यज्ञाङ्ग प्रकाश** नामक लिखा है, जिस में गूलर का सविस्तर वर्णन है । उन्हों ने **उदुम्बरसार** (Solid Extract of F. Glomerata) तैयार किया है, यह बड़ा उपयोगी औषध है । उस की **निर्माण-विधि** यह है:—गूलर के मृदुपत्र १ मन लकरे अष्टगुण जल में उबालें, जब १ मन

उदुम्बरो हेमदुग्धो हरिताक्षो वसुद्रुमः।
सुचक्षुर्मशकी क्षीरी क्षीरद्रुः शीतवल्कलः ॥३८९॥
यज्ञाङ्गको जन्तुवृक्षः सुप्रतिष्ठः सदाफलः।
अपुष्पफलसम्बन्धः कांचनो जन्तुमत्फलः ॥३९०॥

पर्याय—हेमदुग्ध (पीतदुग्ध वाला), हरिताक्ष (हरा), वसुद्रुम (धन का वृक्ष), सुचक्षुः, मशकी (मच्छरों का घर), क्षीरी (दुग्धमय), क्षीरद्रु (दुग्ध वाला वृक्ष), शीतवल्कल (शीत त्वक् वाला), यज्ञाङ्ग (यज्ञों का अङ्ग), जन्तुवृक्ष (कीटमय वृक्ष, फल में सूक्ष्म कीटों के सदृश कण होते हैं), सुप्रतिष्ठ (अच्छी प्रतिष्ठा वाला), सदाफल (जिस का फल सदैव रहता है), अपुष्पफलसम्बन्ध (जिस का फल पुष्प से नहीं होता), काञ्चन (स्वर्णवत् पीत), जन्तुमत्फल (कीटतुल्य सूक्ष्म कणों से युक्त फल) ॥३८९-९०॥

उदुम्बरो हिमो रूक्षः कषायो मधुरो गुरुः।
भग्नसंधानकृद्वर्ण्यो व्रणशोधनरोपणः ॥३९१॥
स्तम्भनानि कषायाणि श्लेष्मघ्नानि हितानि च।
उदुम्बरशलाटूनि तृड्बलासहराणि च ॥३९२॥
उदुम्बरफलं बालं कषायं स्वादु शीतलम्।
तृण्मोहपित्तहृच्छर्दिप्रदरास्रस्रुतिं जयेत् ॥३९३॥
प्रौढं बहुमलं तस्य फलं गुरुतरं मतम्।
फलमौदुम्बरं पक्वं शीतलं मधुरं गुरु।
क्षुत्तृष्णामेहकृद्रुच्यं श्लेष्मकृद्रक्तनाशनम् ॥३९४॥

जल शेष रहे, तो क्वाथ छान लें और मृदु अग्नि पर उसे शनैः २ लेहवत् घन कर के शीत होने पर डवियों में भर दें। १ मन पत्रों से १ सेर सार प्राप्त हो सकता है। यह जल में शीघ्र घुल कर एक सुन्दर विलयन (घोल) बनाता है, जो व्रणों को धोने के लिए अत्युत्तम द्रव है। यह विलयन (Solution or lotion) मुखरोगों में गण्डूषार्थ (गरारों के लिए) रक्त वा श्वेतप्रदर में योनिप्रक्षालन के लिए और रक्तातिसार में वस्ति द्वारा प्रयुक्त होसकता है। अल्प जल में मिलाकर उदुम्बरसार का लेप व्रणशोथ, अर्श, भगन्दर, दन्तशूल, मसूड़ों की सूजन आदि में किया जाता है। तनु विलयन नेत्ररोग में आश्च्योतन (Eye-drop) के लिए काम आता है। उस की उत्तरवस्ति सुज़ाक में देने से पूयादि को वन्द कर देती है। कलकत्ता में कुछ वैद्य उदुम्बरसार का बड़ा उपयोग कर रहे हैं। **उदुम्बरफल** की सबज़ी बंगाली लोग बहुत खाते हैं। यह शीत, ग्राही और मूत्ररोधक है। मधुमेह में वसन्तकुसुमाकर रस उदुम्बर फल के **स्वरस** से देना बड़ा लाभकारी है। फलस्वरस अन्य प्रमेहों में चन्द्रप्रभादि के अनुपान के रूप में दिया जाता है। उदुम्बर पंजाब में कम मिलता है। **उदुम्बरदुग्ध** गण्डमालादि ग्रन्थियों और शोथ पर लगाया जाता है॥

भग्न०—टूटे हुए अंगों को जोड़ने वाला। वर्ण्य–रंग को सुधारने वाला। उदुम्बरशलाटु–गूलर का कोमल फल। प्रौढ़–अतिपक्व ॥३६१–३६४॥

८४. अश्वत्थः[1]।

Ficus religiosa.	[हिं०] पिप्पल, [बं०] अश्वत्थ,
The well known Pipal tree.	[म०] पिंपल, (गु०) पिपलो। प्रसिद्ध महान् वृक्ष।
Astringent, styptic & cool.	ग्राही, रक्तस्थापक, शीत।

अश्वत्थः पिप्पलो बोधो बोधिः सत्त्वराजाशनः।
शुचिश्चैत्यश्चलद्दलः श्यामलः स्वादुबीजकः।
मङ्गल्यः केशवावासो[2] लक्ष्मीवान् क्षीरपादपः ॥३९५॥

पर्याय—बोधि (बोधकारण, महात्मा बुद्ध को ज्ञान पिप्पल वृक्ष के नीचे हुआ था), सत्त्वराजाशन (पशुओं के राजा हस्ती का भक्ष्य), शुचि (पवित्र वृक्ष), चैत्य (पूजास्पद), चलदल (चंचल पत्रों वाला), श्यामल (श्याम पत्रों वाला), स्वादुबीजक (मधुर बीजों वाला), मंगल्य (श्रेष्ठ), केशव-आवास (विष्णु का निवासस्थान), लक्ष्मीवान् (सुन्दर), क्षीरपादप (क्षीरीवृक्ष) ॥३९५॥

अश्वत्थः शीतलो रूक्षः कषायो दुर्जरो गुरुः।
व्रणपित्तकफास्रघ्नो वर्ण्यो योनिविशोधनः ॥३९६॥

८५. पारिशपिप्पलः[3]।

Thespasia populnea.	(हिं०) पारस पिप्पल, गजदण्ड,
An evergreen tree.	(बं०) पारेश पिप्पल, (गु०) पारस
Useful in cutaneous disease.	पिपलो, भेंडी।
	सदाहरित वृक्ष। त्वग्रोगघ्न।

कपिच्चूतः कपेर्वासश्चलिम्बः सुप्रतिष्ठितः।
कपीतनश्च वानीरः फलीशः क्षीरपादपः ॥३९७॥

---

१. पिप्पल से कोई स्थान शून्य नहीं। पिप्पल की छाल को अर्द्धदग्ध करके जल में बुझा दें और जल निथार कर पिलाने से घोर से घोर हिक्का तुरन्त रुक जाती है। पिप्पल की छाल, गुग्गुल, रेवन्दचीनी और साबन जल से घिसकर फोड़ों पर लेप करने से उन्हें पका वा **लीन कर** सकते हैं। छाल का सूक्ष्म चूर्ण भगन्दर में दिया जाता है॥ २. ब—केशवावाशः। ३. पारिश पिप्पल दक्षिण भारत में बहुत मिलता है। मद्रास नगर की सड़कों पर प्रायः यही वृक्ष छायार्थ लगा हुआ है। अब कलकत्ता में भी अनेक स्थानों पर यह लग रहा है। **पत्र** गुडूचीवत् हृदयाकार। **पुष्प** पीताभ और वृहदाकार। **फल** भिण्डी तोरी के सदृश, अतः महाराष्ट्र भाषा में इसे 'भेंडी' ही कहा गया है। सड़कों पर लगने के कारण उसे 'सुपार्श्व' और 'सुप्रतिष्ठित' कहते हैं। इस की छाल एवं फल विसर्प तथा सांक्रामक त्वग्रोगों में प्रलेपार्थ प्रयुक्त।

पर्याय—कपिचूत (बन्दर का आम), कपिवास (बन्दर का वासस्थान), सुप्रतिष्ठित (प्रतिष्ठावान्), कपीतन (कपिल वर्ण वाला वा बन्दराकार), वानीर (कप्याकार), फलीश (फलवान्), चीरपादप (चीरीवृक्ष) ॥३६७॥

फलीशो दुर्जरः स्निग्ध. कृमिशुक्रकफप्रदः।
फले ऽम्लो मधुरो मूले कषायस्वादुमज्जकः ॥३९८॥

८६. प्लक्षः[1] ।

Ficus infectoria.
A large deciduous tree.
Astringent and cool.

(हिं०) पाकर, पिलखन, (बं०) पाकुड़, (म०) पेपर, (गु०) पेपरी । महान् वृक्ष, कषाय, ग्राही, शीत।

पिप्परिः शृङ्गिका वाटी गर्दभाण्डः कमण्डलुः ।
प्लक्षः प्लवो गन्धमुण्डो मौग्धिकोऽश्वत्थपत्रकः ।
पूगमुण्डश्चारुदारुः सुपार्श्वश्चारुदर्शनः ॥३९९॥

पर्याय—पिप्परि (छोटा पिप्पल), शृङ्गिका (अंकुर शृङ्ग के सदृश), वाटी (छोटा वट), गर्दभाण्ड (गधे के अण्डकोष के समान), कमण्डलु (कमण्डलाकार फल), प्लव (तैरने वाला), गन्धमुण्ड (गन्धमय गोलाकार फल) मौग्धिक (गन्ध से मुग्ध करने वाला), अश्वत्थपत्रक (पिप्पल के समान पत्रों वाला), पूगमुण्ड (सुपारीवत् गोल), चारुदारु सुन्दर लड़की वाला , सुपार्श्व (मार्ग के किनारों पर अच्छा लगने वाला), चारुदर्शन (सुन्दर दीखने वाला) ॥३९९॥

पिप्परिस्तुवरः शीतो व्रणयोनिविसर्पनुत् ।
दाहपित्तकफास्रघ्नो मेदःपित्तास्रशोफजित् ॥४००॥

क्षीरिवृक्षाः पञ्चवल्कलं च[2] ।

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थसुपार्श्वाः सकपीतनाः ।
पञ्चैते क्षीरिणो वृक्षास्तेषां त्वक् पंचवल्कलम् ।
क्वचित् कपीतनस्थाने शिरीषो वेतसः क्वचित् ॥४०१॥

होते हैं । कीटदंश पर उसे व्यवहार किया जाता है । छाल को जला कर उस की भस्म से उत्तम शोध-करोपण मर्हम बनता है । **पत्रकल्क** सन्धिशोथ पर लगाया जाता है । आधुनिक वनस्पतिविज्ञान के अनुसार यह **क्षीरीवर्ग** (Ficus Family में सम्मिलित नहीं हो सकता । काकोदुम्बरिका (अंजीर, फगवाड़ा) चीरीवर्ग में इस के स्थान पर डालना अधिक उचित है । इस के नाम से प्रतीत होता है, कि पारस देश से आया है, अतः विदेशी पादप है । चरकादि प्राचीन ग्रन्थों में इस का वर्णन नहीं मिलता । **१. प्लक्ष** गूलर वा साधारण वट जितना ऊंचा चला जाताहै, पत्रादि की आकृति बहुत कुछ गूलर से मिलती है । गुण भी उस के तुल्य ही जानें । यह पजाब में कम मिलता है,परन्तु बंगदेश, संयुक्त प्रान्तादि में बहुत होता है । **२. पञ्चवल्कल** वा **पंचक्षीरी** एक प्रसिद्ध गण है, जिस के गुण उस के वटादि अंगों के

न्यग्रोध (वट), उदुम्बर (गूलर), अश्वत्थ (पिप्पल), सुपार्श्व (पाकुड़) और कपीतन (पारस पिप्पल)—यह पांच **क्षीरी** (दुग्ध वाले) **वृक्ष** कहलाते हैं। उन की छाल को **पंचवल्कल** कहते हैं। कपीतन की जगह शिरीष और कहीं वेतस डालते हैं ॥४०१॥

क्षीरिवृक्षा हिमा रूक्षा वर्ण्याः स्तन्यविशोधनाः ।
व्रणवीसर्पशोथघ्ना दाहपित्तकफापहाः ॥४०२॥
तेषां पत्रं **हिमं स्वादु सतिक्तं तुवरं लघु ।**
लेखनं कफपित्तघ्नं विष्टंभाध्मानवातजित् ॥४०३॥
कषायाः स्तंभनाः शीता हिताः पित्तातिसारिणाम् ।
पल्लवाः **क्षीरवृक्षाणां,** फलं **तेषां तु वातकृत् ॥४०४॥**
कषायं मधुरं साम्लं गुरु विष्टम्भि पित्तजित् ।
स्थावरं तरुदुग्धं **च कफवातप्रणाशनम् ॥४०५॥**
वातगुल्महरं चोष्णं श्वासकासनिबर्हणम् ।
हृल्लासारुचिशोषघ्नं गुरु स्निग्धं विदाहकृत् ।
ईषत्पित्तकरं वृष्यमतिस्वादु च कथ्यते ॥ ४०६ ॥

स्तन्य—दुग्ध। **पल्लव**—अतिमृदु पत्र। **तरुदुग्ध**—क्षीरीवृक्षों का दुग्ध। **स्थावर**—स्तम्भक, काबिज़। **हृल्लास**-जी मतलाना। **ईषत्**—किंचित्, तनिक। **स्वादु**—मधुर ॥४०२-६॥

यत्तु पञ्चविधं प्रोक्तं योज्यमेव तु नेतरम् ।
कषायं शीतलं शोफव्रणघ्नं पंचवल्कलम् **॥ ४०७ ॥**

जो पांच क्षीरीवृक्ष (न्यग्रोधादि) कहे गए हैं, उन का ही प्रयोग करना चाहिए, न कि इतर (अन्य शिरीष वा वेतस) का। इन पांचों का **वल्कल** (छाल) कषाय, शीत और व्रणशोथनाशक है ॥ ४०७ ॥

तुल्य ही जानने चाहिएं। **पंचवल्कलक्वाथ** व्रणों के धोने, योनि वा शिश्न के रोगों में उत्तरवस्ति देने, रक्तातिसारादि में वस्ति करने के काम आता है। व्रणशोथ पर इस क्वाथ के सिंचन से वा पंचवल्कल को घिस कर प्रलेप करने से शोथ और दाह की शान्ति होती है। पञ्चवल्कल के क्वाथ और वल्क से सिद्ध **पञ्चवल्कलघृत** उपरोक्त रोगों में प्रलेप तथा भक्षण के लिए प्रयोग कराया जाता है। यह शीत, ग्राही और वृष्य है। पञ्चवल्कल में वटादि की छाल ही पड़ती है। यदि पांचों न मिलें, तो एक दो को छोड़ देने से वा किसी को द्विगुण त्रिगुण डाल देने में कोई हानि नहीं। वेतस शीतवीर्य होने से पंचवल्कल में पड़ सकता है, परन्तु शिरीष को इस गण में डालना उचित नहीं, यह उष्ण है। फल्गू (फगवाड़ा) भी क्षीरीतरु होने से इस गण में सम्मिलित हो सकता है ॥

८७. नन्दीवृक्षः[1] ।

अन्यः स्थाली हिमः पिष्टः क्षीरी कुञ्जरपादपः ।
प्ररोही स्फूर्जनतरुर्नन्दीवृक्षो वनस्पतिः ॥ ४०८ ॥

एक और क्षीरी वृक्ष है, जिसे स्थाली, हिम, पिष्ट, क्षीरी, कुञ्जरपादप (हाथी के पाद के तुल्य), प्ररोही (जटाधारी), स्फूर्जनतरु, नन्दीवृक्ष और वनस्पति कहते हैं ॥४०८॥

नन्दीवृक्षो लघुः स्वादुः कषायोष्णः सतिक्तकः ।
कटुपाकरसो ग्राही विषपित्तकफास्रनुत् ॥ ४०९ ॥

८८. काकोदुम्बरिका[2] ।

Ficus palmata.
The well-known Fig tree.
Cool, demulcent and laxative.

(हिं०) काला गूलर, फगवाड़ा, फाग, अंजीर, खबारा, (बं०) काक डुमूर, (म०) काला उम्बर ।
। शीत, स्निग्ध, मृदुरेचन ।

काकोदुम्बरिका फल्गुः कक्षाफल्गुः शिवारिका ।
मलयुः श्वित्रभैषज्यं फणिका फलमारिका ॥४१०॥
अराजी मञ्जरी भद्रा मायूरा जघनेफला ।
उदुम्बरी फल्गू वाटी फलिनी मूलकर्कटी ॥ ४११ ॥

पर्याय—काकोदुम्बरिका (काला वा जंगली गूलर), फल्गु (मृदु वा निकम्मा), श्वित्रभेषज्य (श्वित्र का औषध विशेषतः दुग्ध), फणिका (पत्र फणाकार), अराजी (राजीरहित), मंजरी (फूलों वा फलों का गुच्छा), भद्रा (श्रेष्ठ), मायूरा (मोर को

---

१. नन्दीवृक्ष उत्तरभारत में नहीं मिलता, मध्यप्रान्त (c. p.) तथा दक्षिण के कोकण देश में बाहुल्य से पाया जाता है । इस की आकृति पिप्पल से मिलती है, इसे सुगन्धित पुष्प आते हैं । इस की जटा तथा मूल हस्तिपाद के तुल्य स्थूल होती है, इस के पत्र और शाखा अधोमुखी होते हैं । इसे हिन्दी में बेलिया पिप्पल कहा जाता है । २. **फल्गु वृक्ष** भारत में सर्वत्र परन्तु पंजाब में बहुत मिलता है । यह भी क्षीरीवर्ग में सम्मिलित है, क्योंकि इस के पत्रादि से दुग्ध निकलता है । इस के पत्र अन्य सब क्षीरी वृक्षों से बड़े हैं, पत्र का उपरिभाग स्पर्श में खर है । **फल्गुपत्र** फालसे वा पलाश के पत्रों की तरह बृहदाकार होने से पत्तलादि बनाने में काम आते हैं । **फल** गोलाकार परन्तु एक तरफ से नोकीला, आमावस्था में हरित और पक्वावस्था में कृष्ण वा जामुनवर्ण, स्वाद में मधुर और भीतर से बीजपूर्ण होता है । **पक्वफल** बड़ा शीत, रुचिकर और विबन्धनाशक है । इसे ज्वर, तृष्णा, मुखशोषादि में दे सकते हैं । फल का रस शर्करामिश्रित रोगी वा नीरोगी बच्चों तथा मन्दाग्नि पुरुषों के लिए बड़ा हितकर पेय पदार्थ है । कच्चा फल काबिज है । इस के अन्य गुण उदुम्बरवत् समझें ।

प्रिय), जघनेफला (जिस का फल जघन देश वा स्थूल शाखाओं पर लगता है), उदुम्बरी (छोटा गूलर), इत्यादि ॥४१०–११॥

फल्गू तु तुवरा तिक्ता शीतला स्तम्भनी जयेत्।
कफपित्तव्रणश्वित्रकुष्ठपाण्ड्वस्रकामलाः ॥ ४१२ ॥
फलं तु शीतलं स्वादु कषायं गुरु तर्पणम् ।
शुक्लं मधुरं पाके स्निग्धं विष्टम्भि बृंहणम् ।
ग्राहि वातकफपित्तक्षतदाहविषास्रजित् ॥ ४१३ ॥

८९. पीलुः[1] ।

Salvadora persica. An evergreen shrub or tree. Fruit refreshing & laxative.	(हिं०,बं०,म०) पीलु,(पं०) पीलू,वण, जाल, (सिं०) झार, मिठी दयार, (फा०) दरख्ते मिसवाक । झाड़ी । फल हृद्य मृदुरेचक ।

पीलुस्तीक्ष्णतरुः स्रंसी शाखी करभवल्लभः ।
शीतसहो गुड़फलः सहस्राङ्गी विरेचनः ॥ ४१४ ॥

---

१. पीलु की छोटी २ झाड़ियां वा क्षुद्र वक्रस्तंभ वृक्ष पंजाब, सिन्ध, बलोचिस्तान, राजपूताना, गुजरात, बम्बे आदि के रूक्षोष्ण स्थलों में बहुत मिलता है। **पत्र** सूक्ष्म दीर्घाकार, स्थूल, हरित, स्वाद में तिक्त और कटु हैं। इस की शाखाएँ अनेक और भूमि पर झुकी हुई, और कहीं २ स्तंभ को छिपा देती हैं। वृद्ध वृक्ष का स्तम्भ टेढ़ा और ७–८ फुट ऊंचा होता है। इस का काष्ठ श्वेत, कठोर और जलने पर अल्पाग्नि और अल्प ताप देता है। जाल की लकड़ी इन्धनों में निकृष्ट समझी जाती है। स्तम्भ के निचले भाग पर भूमि के निकट ५–८ इंच लम्बी गोल पतली शिग्रफल के तुल्य फलियां सी आती हैं, जो अम्लरस होती हैं, मुल्तान की तरफ इन्हें 'सीढ़' के नाम से पुकारते हैं और व्यञ्जन (भाजी) में लोग अम्लत्व के लिए डालते हैं। बसन्त में क्षुद्र नील **पुष्प** आते हैं, पुनः ग्रीष्म में धान्य वा काली मरिच के तुल्य छोटे २ गोल **फलों** के गुच्छे से लगते हैं, जिन्हें **पील** वा पीलु फल कहते हैं। **आम फल** हरिताभ और कठोर, परन्तु **पक्वफल** पीत वा रक्तपीत और मधुर रस से पूर्ण होता है। यदि एक २ फल मुख में डाल कर खाया जावे, तो मुख में छाले कर देता है, अतः बहुत से फल इकट्ठे मुख में डाल कर उन का रस चूस कर बीज फेंक देने चाहिएं। पीलू का रस बड़ा शीत समझा जाता है, विबन्ध, अर्श, तृष्णादि को दूर करता है और मृदु रेचक है। सिन्ध में इसे सर्पविष में देते हैं। शुष्क फल की अपेक्षा आर्द्र अधिक लाभकारी है। **बीज** गोल, श्वेतपीत, मृदु, कटुतिक्त और रेचक है। बीजचूर्ण सुहागे से मिलाकर सर्पदंश पर लेपार्थ प्रयोग करते हैं। पीलु की **मूलत्वक्** का लेप करने से छाले पड़ जाते हैं। **मूलकाष्ठ** का दाँतन मुसलमान बहुत करते हैं, यह उन का बड़ा पवित्र दाँतन है, क्योंकि यह पादप अरब जैसे रूक्ष देश में अधिक होता

पर्याय—तीक्ष्णतरु (तेज कटु वृक्ष), स्रंसी (रेचक), शाखी (वृक्ष, शाखामय, प्रायः स्तम्भाभाव), करभवल्लभ (ऊंटों को प्रिय), शीतसह (ठण्डक को सहने वाला), गुडफल (मधुर फल वाला), सहस्राङ्गी (हजारों शाखाओं वाला), विरेचन (दस्त लाने वाला) ॥ ४१४ ॥

> **पीलूष्णमूषणं पाकरसयोर्भेदि दीपनम् ।**
> **तीक्ष्णं विदाहि पित्तास्रजननं सन्नियच्छति[१] ॥४१५॥**
> **गुल्मार्शःकफवातास्रप्लीहानाहगरोदरम् ।**
> **तत्स्वादु तिक्तं दोषघ्नं सोष्णं रूक्षं रसायनम् ॥४१६॥**

पित्तास्र—रक्तपित्त । **सन्नियच्छति**–दूर करता है । **गर**—संयोगज विष । **उदर**–जलोदरादि उदररोग ॥४१५–१६॥

६०. मधूकः[२] ।

Bassia latifolia. The Butter tree. A large evergreen tree. Flowers sweet, cooling, tonic, and nutritive.	(हिं०) महवा, महुवा, (बं०) मौल गाच्छ, मोयाफूलेर गाछ, (म०) मोहाचा झाड़, मोह वृक्ष, (गु०) मोवा नु झाड़ । महान् वृक्ष, पत्र बृहत् सदा हरित । शीत, रसायन, बृंहण ।

> **एलाफलस्तीक्ष्णसारो मधूको गुडपुष्पकः ।**
> **एलाफलो मधुष्ठीलो मधुको मधुरो मतः ।**
> **मधुकोष्ठो रोध्रवृक्षो वनवासो महाद्रुमः ॥४१७॥**

है और वहां इस का काष्ठ (शाखा वा मूल) दातन के लिए प्रयुक्त होता है । वहां से यह दातन बनकर हिन्दुस्तान में विकने आते हैं । यह दांतों और मसूड़ों को सुरक्षित रखते हैं । इसी कारण से ही पीलु का फारसी वा यवन नाम **दरख्ते मिसवाक** (मंजनवृक्ष) है । **पत्रकल्क** आमवात की शोथ पर लगाया जाता है । पीलु का एक भेद महापीलु (S. Oleoides) है, जो पंजाब, सिन्धुदेश और राजपूताना में अधिक मिलता है । इस के पत्रों का क्वाथ घोड़ों को विरेचनार्थ देते हैं । बीजों के निष्पीड़न से **पीलुतैल** निकलता है, यह आमवात के शोथ के लिए बड़ा लाभकारी है । १. यू–नास्ति । २. मधूक दो प्रकार का है, (१) मधूक और (२) जलमधूक । संयुक्त प्रान्त, वंगदेश, बम्बें, मध्य प्रान्तादि उष्ण जलाढ्य भागों में मधूक बहुत मिलता है, परन्तु पंजाब, सिन्ध वा राजपूतानादि रूक्ष स्थलों में इस का प्रायः अभाव ही है । मधूक जंगलों में बहुत होता है, और जलमधूक प्रायः नदियों और नालों के किनारों पर देखा जाता है । जलमधूक मधूक से बड़ा होता है । **पत्र** शाखाओं के अन्त पर गुच्छों में लगे रहते हैं और आकार में काफी लंबे चौड़े होते हैं । **मधूककाष्ठ** सागवान की तरह कठोर होता है । **पुष्प** शाखा पर गुच्छों में लगते हैं, उन का वर्ण

पर्याय—एलाफल (इलायची के तुल्य फल वाला), तीक्ष्णसार (मध्य काष्ठ तीक्ष्ण है जिसका), मधूक (मीठा), गुड़पुष्पक (गुड़वत् मधुर पुष्प हैं जिसके), मधुष्ठील (मधु ष्ठीले गर्भेऽस्य-मधु है गर्भ में जिसके), मधुक (मीठा), मधुर (मीठा), मधुकोष्ठ (मधुर कोष्ठ वाला), रोध्रवृक्ष (लोध्र के तुल्य वृक्ष), वनवास (जंगल में रहने वाला), महाद्रुम (महान् वृक्ष) । गुण श्लोक ४१६ से देखो ॥४१७॥

९१. जलमधूकः[3] ।

Bassia longifolia. | नामादि पूर्ववत् ।

मध्वङ्गोऽन्यो मधूलः स्याज्जलजो दीर्घपत्रकः ।
गौरशाखी नीरवृक्षो ह्रस्वपुष्पफलः स्मृतः ॥४१८॥

पर्याय—एक और मध्वङ्ग (मधूक) है, जो जलाढ्य देशों में होता है । वह दीर्घपत्रक (लंबे पत्रों वाला), गौरशाखी (जिस की शाखाएं गौरवर्णयुक्त होती हैं), वीरवृक्ष (वहादुर वृक्ष), ह्रस्वपुष्पफल (मधूक की अपेक्षा छोटे पत्रों और पुष्पों वाला) इन नामों से प्रसिद्ध है ॥४१८॥

मधूकस्तुवरस्तिक्तो व्रणानिलकफापहा ।
तत्पुष्पं **मधुरं शीतमहृद्यं बृंहणं गुरु ॥४१९॥**
स्निग्धं विकाशि तीक्ष्णोष्णं तत्फलं **गुरुशीतलम ।**
अहृद्यं शुक्रलं स्निग्धं मधुरं रसपाकयोः ॥४२०॥

मक्खन के तुल्य और परिमाण ½ इंच वा इस से भी कम होता है। **दलपत्र** (Petals) संख्या में ६, स्थूल और अति मधुर होते हैं । **फल** गोल लम्बे, वेर के तुल्य, मृदु और रोमाकीर्ण होते हैं और पक्वावस्था में पीतवर्ण । फल में २ वा ३ वीज होते हैं, जिन के निष्पीड़न से घन **तैल** निकलता है। यह नारियल के तैल से मिलता जुलता है, सर्दियों में जमकर घृतवत् हो जाता है । यह प्रायः २५) वा ३०) मन बिकता है, और निर्धन लोग इसे खाने में काम लाते हैं । इसे जलाया भी जाता है । इस की ज्योति मन्द होती है । मधूकतैल साबुन बनाने में आजकल वहुत लगता है । त्वग्रोगों की शान्त्यर्थ इसे शरीर पर मला जाता है। ताज़े **पुष्प** कच्चे खाए जाते हैं और निर्धन लोग इन्हें आटे में मिलाकर रोटी, पूरी आदि बनाते हैं । **शुष्क पुष्प** घृतादि में भून कर खाये जाते हैं । यह बाज़ार में बिकते हैं । **पुष्पों** को गुड़, सौंफ, जल आदि से मिलाकर पात्र में वन्द करके भूमि में गाड़ देते हैं । १५-२० दिन में निकाल कर मद्य खैंचते हैं, (जो राज्यनियमानुसार निषिद्ध है)। यह **मधूकासव** (Baia or Mahwa Spirit) है, जो बड़ा तीक्ष्ण मद्य है और पुरातन होकर ब्रांडी (Brandy), विस्की (Whisky), रम (Rum) आदि विदेशी मद्यों का स्थानास्पद हो सकता है । **मधूकत्वक्** ग्राही और कण्डूनाशक है । मधूकपुष्पस्वरस ग्रहणी, हिक्का और वातरोग में लाभकारी है ।

विष्टम्भि बृंहणं बल्यं कफकृन्मारुतापहम् ।
हन्ति पित्तास्रहृद्दाहश्वासकासक्षतक्षयान् ॥४२१॥
पक्वं तु तत्फलं बल्यं पित्तमारुतनाशनम् ।
कषायं स्वादु माधूकं तैलं पित्तकफप्रणुत् ॥४२२॥

६२. पनसः[1] ।

Artocarpus integrifolia The Jack-fruit tree.	(हिं०) कटहर, कटहल, चक्की, (बं०), कांटाल, (म०) फणस, (गु०) पणस।
A large evergreen tree.	महान् सदाहरित वृक्ष ।
Ripe fruit sweet, nutritious, and indigestible; unripe astringent.	पक्वफल मधुर, बृंहण, दुष्पाच्य । अपक्व फल ग्राही ।

श्लेष्मातकसदृक्पत्रः स्यात्कण्टकिफलस्तथा ।
पनसस्त्वाशयफल आशयो गर्भकण्टकः ॥४२३॥

पर्याय—श्लेष्मातकसदृक्पत्र (लसूड़े के समान पत्रों वाला), कण्टकिफल (कांटेदार फल वाला), आशयफल (आमाशय मेदे 'Stomach' के समान फल है जिसका), आशय (आमाशयरूप), गर्भकण्टक (कांटेदार) ॥४२३॥

---

१. पनस पंजाब, सिन्धादि रूक्षोष्ण देशों को छोड़कर सर्वत्र विशेषतः दक्षिण भारत में बहुत मिलता है। पनस के वृक्ष बड़े छायावान् होते हैं, ७०–८० फुट तक ऊंचे चले जाते हैं। पत्र लसूड़े जैसे, परन्तु उस की अपेक्षा स्थूल, किनारा सरल, नोक साधारण, ऊपर की पृष्ठ घनहरित और मृदु, पत्र ऊपर को उठा हुआ। पनस वृक्ष की पहचान उस के पत्रों से ही हो जाती है। पनस को कोई रंगदार फूल नहीं आता, परन्तु शाखों पर आच्छादनयुक्त पुष्प होते हैं, जिन से फल उत्पन्न होता है। **फल** घनहरित वर्ण के और परिमाण में बड़े होते हैं। वह प्रायः ५–१२ इंच चौड़े और १०–३० इंच लंबे और भार में ५ सेर से २० सेर तक होते हैं। **फलत्वक्** बड़ी स्थूल, उस पर उत्सन्न ग्रन्थियां होती हैं, जो कंटकतुल्य नज़र आती हैं; अतः पनस को कण्टकी फल भी कहा जाता है। **कच्चे फल** के भीतर से श्वेत सा गूदा निकलता है, जिसे खण्डित करके व्यञ्जन (भाजी) बनता है। यह ग्राही और दुष्पाच्य है। **पक्व फल** का गूदा कुछ लाल सा हो जाता है, और स्वाद में गुड़वत अति मधुर। तब लोग इसे कच्चा ही खाते हैं, परन्तु यह बड़ा गुरु और दुष्पाच्य है। गूदे के भीतर से अनेक **बीज** निकलते हैं। यह १ इंच लम्बे और कुछ तिकोने से होते हैं, लोग इन्हें भून कर वा उबाल कर खाते हैं। इन के निष्पीड़न से तैल निकलता है। **पत्रक्वाथ** सर्पविष में पिलाते हैं। फल से अति घन और पिच्छल स्राव सा निकलता है, जो हाथों और मुखपर बुरी तरह से चपट जाता है। **पनसमूलक्वाथ** अतिसार में देते हैं।

पनसं तुवरं स्वादु गुरु विष्टम्भि वातलम् ।
तिक्तं पनसपुष्पं तु गुरु वक्त्रविशोधनम् ॥ ४२४ ॥
पनसस्य फलं वातकफमेदोविवर्धनम् ।
वातपित्तहरं बल्यं दाहघ्नं मधुरं गुरु ॥ ४२५ ॥

पनसनिषेधः ।

तद्विशेषाद्विवर्ज्यं स्याद्गुल्मिभिर्दुर्बलाग्निभिः ॥ ४२६ ॥

यह विशेषतः गुल्म और मन्दाग्नि के रोगियों को नहीं खाना चाहिये ॥४२६॥

रक्तपित्तहरं पक्वं विपाके स्वादु शीतलम् ।
तर्पणं बृंहणं वृष्यं मांसलं श्लेष्मलं भृशम् ॥ ४२७ ॥
बल्यं स्निग्धं जयेद्वातं क्षतरक्तक्षयानपि ।
पनसोद्भूतबीजानि वृष्याणि मधुराणि च ॥ ४२८ ॥
गुरूणि बद्धवर्चांसि सृष्टमूत्राणि तानि च ।
मज्जा तस्यापि पित्तघ्नो वृष्यः श्लेष्मानिलापहा ॥ ४२९ ॥

९३. लकुचः[1] ।

Artocarpus Lakoocha.	(हिं) बडहर, डहु, ढेहु, (बं०)
A large deciduous tree.	भीदार, डेहु (म०) लाहु, वटार ।
Fruit sour and digestive,	महान् वृक्ष, पत्र पतनशील ।
used in pickles.	फल अम्ल, दीपक, प्रयोग आचार में ।

लकुचः क्षुद्रपनसो विज्ञेयो ग्रन्थिमत्फलः ।
पीतनाशो[2] ग्रन्थिफलो लकुचो लिकुचो डहुः[3] ॥ ४३० ॥
पणसः सबलीसाक्षः पनसः[4] क्षुद्रसारितः ।
लकुचं तुवरं चोष्णं फलेष्वप्यवरं गुरु ॥ ४३१ ॥

पर्याय—लकुच छोटा पनस ही जानना चाहिये, परन्तु इस का फल गांठदार होता है (और पनस का कांटेदार), पीतनाश (कपीतन बन्दर का भोजन वा

---

१. लकुच के उच्चवृक्ष पंजाब और सिन्ध में विरल परन्तु अन्यत्र सब जगह और पर्वतों पर बाहुल्य से मिलते हैं। उद्यानों में फलार्थ लकुच बहुत लगाया जाता है। वृक्ष ऊंचा, वृक्षत्वक् श्याम और खर, **पत्र** पतनशील २-३ इंच चौड़े और ४-७ इंच लम्बे किनारा सरल । **फल** बिल्व की तरह गोल, परन्तु गांठदार, आमावस्था में हरित, परन्तु पक्वावस्था में पीत । लकुच का फल प्रायः अचार के बनाने में और कहीं २ व्यञ्जनार्थ भी काम आता है । उसे कच्चा वा सुखा कर भी खा लेते हैं । यह स्वाद में खट्टा होता है । फल में से बहुत से श्वेत वर्ण के लम्बे बीज निकलते हैं । एक वा दो बीज खा लेने से रेचन हो जाता है । २. यू—पित्तनाशः । ३. द—शठः । ४. ब—पवोस स च लीसाचोऽस्यनसः ।

पीतवर्ण), ग्रन्थिफल (गांठदार फल), लकुच, लिकुच, डहु, पयास,सवलीसाच,पनस
क्षुद्रसारित (अल्प सार वाला) ॥ ४३०-१॥

रक्तपित्तं बलासं च कुरुते हरतेऽनिलम् ।
पक्कं तु स्वादु विष्टम्भि वृष्यं दोषाग्निवर्द्धनम् ॥ ४३२ ॥

फलेष्वप्यवरं—फलों में अवर(निकृष्ट) ॥४३२ ॥

६४. तालः[१] ।

Borassus flabellifer. The palm-tree. Demulcent, refrigerant and diuretic.	(हिं०, म०, गु०) ताड़, (बं) तालगाछ । उच्च वृक्ष, पत्र हस्ततलाकार । स्निग्ध, हृद्य, मूत्रल ।

१. तालजाति (Palmeae) इस समय बड़ी विस्तृत है । ताल के कई भेद छोटे क्षुप हैं, जो गमलों में रखे जा सकते हैं। वह ४-५ फुट ऊंचे जाते हैं और गुल्म की आकृति धारण कर लेते हैं । यहां **तालवृक्ष** अभिप्रेत है, जो प्रायः १०० फुट तक ऊंचा चला जाता है, स्तम्भ का अधोभाग २-१ फुट मोटा हो जाता है । नवीन स्तम्भ पर पत्रों के कठोर अवशिष्ट भाग रहते हैं, परन्तु पुरातन स्तम्भ इन से मुक्त होकर साफ हो जाता है, उस के व्यास पर केवल रेखाएं रह जाती हैं। पत्रों और शाखाओं का झुंड केवल शिखर पर ही होता है, जैसाकि खर्जूरीवृक्ष में । प्रत्येक पत्र का विस्तृत भाग व्यास में ३-४ फुट, और आकृति में हथेली के तुल्य, इसी कारण से इसे ताल कहा गया है । पत्र का डण्ठल ३-४ फुट लम्बा होता है, उस के किनारों पर कण्टक होते हैं । तालवृक्ष नारियल की तरह बंगाल, मद्रास आदि के समुद्रतट पर बहुत होता है । तालवृक्ष नरनारी भेद से दो प्रकार के हैं । फल केवल नारी ताल को ही आता है । **फल** पक्वावस्था में सुन्दर नील पिङ्गल वर्ण, गोलाकार और व्यास में ६-७ इंच होता है। स्थूल और मांसल फलत्वक् के हटाने पर १,२ वा ३ गोल चपटे कोष निकल आते हैं, जिन के अन्दर से श्वेत मधुर **मज्जा** निकलती है, यह खाने में बड़ी रोचक, तृष्णाशमक, शीत और तनिक मदकर है । मज्जा तरुण ही खानी चाहिए । पक्क फलकोष से **तालशर्करा** (Palm Sugar) बनती है । यह पित्तघ्न, मूत्रल और प्लीहयकृद्रोगनाशक है । ताल का **पुष्पक्षार, पत्रक्षार** वा **शीर्षक्षार** अम्लपित्त, प्लीहा और यकृद् के रोगों में लाभकारी है । शिखर के निकट तालवृक्ष में काट देकर घड़ा बांधने से जो रस एकत्रित हो, वह अतीव मधुर, बृंहण और मृदुरेचक होता है । इस घट को भूमि में गाड़ देने से कुछ दिनों बाद मद्य बन जाता है, जो ताड़ी (Toddy or Palm Spirit) के नाम से प्रसिद्ध है । इस से सुरा खेंची जाती है,और ताड़ी के अम्ल हो जाने पर **तालशुक्त** वा सिरका (Palm Vinegar) बन जाता है । यह उष्ण और अम्लपाकी है । मद्रास प्रान्त में सर्वत्र ताड़ी

तालो ध्वजो दुरारोहो ध्वजवृक्षः शटः[1] शलः ।
दीर्घस्कन्धो दीर्घतरुर्दीर्घदण्डो महाफलः ।
तृणराजो महावृक्षः श्रीबीजो मदकृद्द्रुमः ॥ ४३३ ॥

पर्याय—ताल (हस्ततल हथेली के सदृश पत्ते हैं जिस के), ध्वज (झण्डे के समान), दुरारोह (आरोहण चढने में कठिन), ध्वजवृक्ष (झंडेके समान वृक्ष), शट (अम्ल), शल (इषुवत् तीक्ष्णाग्र), दीर्घस्कन्ध (लम्बे स्कन्ध तने वाला), दीर्घतरु (लम्बा ऊंचा वृक्ष), महाफल (महान् फल वाला), तृणराज (तृणजाति का राजा), श्रीबीज (सुन्दर बीजों वाला), मदकृद्द्रुम (बड़ा वृक्ष) ॥ ४३३ ॥

तालस्तु मधुरः शीतो मेदःश्लेष्मबलप्रदः ।
शुक्रलो बृंहणो हन्ति वातपित्तव्रणकृमीन् ॥ ४३४ ॥
फलं तस्य गुरु स्निग्धं स्वादु वल्यं हिमं सरम् ।
विष्टम्भि बृंहणं वृष्यं तर्पणं कफमांसकृत् ॥ ४३५ ॥
रक्तपित्तानिलश्वासक्षतदाहक्षयव्रणान् ।
बीजं स्वादु रसे पाके मूत्रलं वातपित्तजित् ॥ ४३६ ॥
पक्वं तालफलं पित्तश्लेष्मरक्तविवर्द्धनम् ।
दुर्जरं बहुमूत्रं च तन्द्राभिष्यन्दशुक्रलम् ॥ ४३७ ॥
तालमज्जा तु तरुणः किञ्चिन्मदकरो लघुः ।
श्लेष्मलो वातपित्तघ्नः सस्नेहो मधुरः सरः ॥ ४३८ ॥

तर्पण—तृप्तिकारक । **बहुमूत्र**—मूत्रवर्धक । **तन्द्रा**—निद्राजागरणमध्यावस्था, ओंघना । **तरुणतालमज्जा**—ताड़फल की कोमल गिरि ॥ ४३४-८ ॥

की दुकानें (Toddy Shops) मिलती हैं । उधर ताड़ी एक सस्ता मद्य है, जिसे निर्धन से निर्धन पुरुष भी पी सकता है । ताड़ी का वर्ण लसीकावत् श्वेत होता है । **तालपत्र** भी बड़ा उपयोगी है । जिस तरह पंजाब में खजूर के पंखे वा अन्य पदार्थ मिलते हैं, मद्रास, मालाबार, वंगदेशादि में पंखे तथा अन्य घरेलु वस्तु तालपत्र से बनाए जाते हैं । प्राचीन काल में तालपत्र से कागज का काम लिया जाता था, अतः उसे लेखपत्र कहा गया है । संस्कृत, तामिल, तेलिगु आदि भाषाओं के प्राचीन पुस्तक इसी पत्र पर मिलते हैं । तंजोर के महान् पुस्तकालय में लाखों पुस्तक इसी पत्र पर लिखे हुए विद्यमान हैं, और वहां अब भी एक प्रकार की सूची से लिखे जा रहे हैं । तामिल भाषा में एक पुस्तक है, जिस में तालवृक्ष के ८०१ उपयोग बतलाए गए हैं । तालमुल का रस बहुत शीत और मूत्रल है । इस से अनेक भोज्य द्रव्य बनते हैं । हमारे ग्रन्थों में ताल, श्रीताल और हिन्ताल ताल के यह तीन भेद बताए गए हैं । **ताल** के पत्र अधिक चौड़े और लिखने के योग्य होते हैं। **श्रीताल** के मत्र मृदु और सुन्दर, परन्तु **हिन्ताल** के पत्र खर और स्थूल होते हैं । १. द—शठः ।

तालजं तरुणतोयमतीव स्निग्धमश्रुमदकृद्गुरु वृष्यम् ।
अम्लभावमुपयाति यदा तत्पित्तकृत्पवनदोषहरं च ॥४३९॥
श्लेष्मापहं स्याद्विष्टम्भि पित्तकृच्छुक्लं गुरु ।
तालस्य मस्तकं ज्ञेयं वस्तिशुद्धिकरं परम् ॥४४०॥

तालजं तरुणतोयं–ताड़वृक्ष का ताजा जल (जो तालवृक्ष के ऊर्ध्वभाग में छिद्र करके एक घट बांधने से उसमें एकत्रित होजाता है)। **अम्ल०**–जब वह खट्टा हो जाता है, तब वह पित्तकारक और वायुदोषनाशक है ॥४३९–४०॥

९५. पालेवतम्[1] ।

पालेवतं माणवकं महापालेवतं परम् ।
पालेवतमथ स्वादुखाण्डवं रक्तखाण्डवम् ॥४४१॥
वनवासं परिस्रावश्चोचं रैवतकं तथा ।
तद्वन्माणवकं हृद्यं तृष्णाघ्नं स्वादुमस्तकम् ॥४४२॥
स्यात्तिन्दुकाकृतिफलं लघु पाण्डुरपुष्पकम्[2] ।
स्वादुपालेवतं नीलच्छदं चैरावतं तथा[2] ॥४४३॥

पर्याय—पालेवत, माणवक अर्थात् महापालेवत । पालेवत दो प्रकार का है, स्वादुखाण्डव और रक्तखाण्डव । परिस्राव, चोच, रैवतक । **गुण**–माणवक पारेवत की तरह रुचिकर, तृष्णाशमक, और मधुर मस्तक (सिर) वाला है, स्वादु पालेवत का फल तिंदुक (गाभ) की तरह गोल, हलका, श्वेत फूलों और नीले पत्रों वाला है। उसे एरावत भी कहते हैं ॥ ४४१–३ ॥

---

१. पालेवत तिन्दुकाकृति फल होने से **अमरूद** प्रतीत होता है, जिसे बंगाली में पेयारा, वनस्पतिविज्ञान में Psidium Guyava और अंग्रेजी में The Guava tree कहते हैं। अमरूद फारसी नाम है, परन्तु अब हिन्दी में भी अमरूद और कहीं २ सरीफा प्रसिद्ध है। अमरूद अमरीका से भारत में आया है, अब यहां सब जगह मिलता है। पञ्जाब की अपेक्षा यू० पी० में बहुत होता है और उत्तम गोल बड़ा अमरूद (महापालेवत) उधर से आता है। अमरूद का क्षुद्र वृक्ष सुप्रसिद्ध है। **फल** कई छोटे, कठोर और कषाय होते हैं, और कई बड़े, सुन्दर, गोल, मृदु और मधुर वा मधुराम्ल होते हैं। अमरूद बड़ा काबिज और गुरु है, परन्तु लवण तथा मरिच से मिलाकर अति रुचिकर होजाता है। अजीर्ण के रोगियों को अमरूद कदापि नहीं खाना चाहिए। यदि खाना भी हो, तो बीजरहित गूदा खायें। **बीज** बहुत दुष्पाच्य है। अमरूद का गूदा प्रायः श्वेत होता है और कई फलों में रक्ताभ। अमरूद के **पत्तों** का चबाना दन्तशूल में लाभकारी है। मूलक्वाथ अति ग्राही और अतिसारनाशक है। **पत्र-क्वाथ** हैजे में भी दिया जाता है। पत्रों से एक तैल निकलता है, जो रोचक और पाचक है। पालेवत को किसी ने द्वीपान्तर से आगत खर्जूरवृक्ष माना है ॥ २. यू–नास्ति ।

आरेवतं रैवतकं महापालेवतं परम ।
महापालेवतं शीतं गुरु रुच्यग्निवातजित् ।
हृद्यं श्लेष्मकृदम्लं तु तद्वदुष्णं च पित्तलम् ॥४४४॥

आरेवत और रैवतक महापालेवत के नाम हैं । वह ठण्डा, भारी, रुचिकर, अग्नि और वायु को नाश करने वाला है, तथा हृद्य और कफवर्धक है । अम्ल (खट्टा) पारेवत उष्ण और पित्तवर्धक है ॥ ४४४ ॥

९६. कदम्बः[1] ।

Anthocephalus Cadamba. Wild Cinchona. A Large deciduous tree. Bitter, tonic & febrifuge.	(हिं०) कदम, कदम्ब,(बं०) कदम गाछ, (गु०) कलम,(म०) कलम्ब, नीव । महान् वृक्ष, पत्र पतनशील तिक्त, रसायन, ज्वरघ्न ।

सुगन्धिपुष्पः स्वाद्वम्लः पक्वसस्यो महोन्नतिः ।
मधूकपत्रसदृशपत्रो राजकदम्बकः ।
फलराजकदम्बः स्यान्नीपराजकदम्बकम् ॥ ४४५ ॥

पर्याय—सुगन्धिपुष्प (सुगन्धित पुष्पों वाला), स्वाद्वम्ल (मधुराम्ल फल वाला), पक्वसस्य (पके हुए गूदे वाला), महोन्नति (बहुत ऊंचा),राजकदम्ब के पत्र महुए के पत्रों के समान होते हैं । नीपराजकदम्ब फलराजकदम्ब (उत्तम फल वाला कदम्ब) है ॥४४५॥

नीपं स्वादु कषायाम्लं मदरोगहरं परम् ।
तत्फलं मधुरं शीतं गुरु पित्तास्रवातजित् ॥ ४४६ ॥

९७. आर्त्तगलः[2] ।

आर्त्तगलो भीषणाको बहुकण्टो रुजाकरः ।
जालीवृक्षो दुःप्रधर्षः स्वादुतिक्तफलोऽर्गटः ॥ ४४७ ॥

---

१. कदम्ब बंग और मलयदेश में स्वाभाविक रूप में बहुत मिलता है, और उत्तर भारत में विरल । वृक्ष छायावान् और ५०-६० फुट ऊंचा चला जाता है । **पत्र** शीतकाल में झड़ जाते हैं । वे अण्डाकार, वर्षा में घनहरित, और मधुक के तुल्य होते हैं । पत्र पर शिराएं बड़ी स्पष्ट नजर आती हैं और इस कारण से कदम्ब पत्र शीघ्र पहचाना जाता है । **फल** गोल और खर । **बीज** अति सूक्ष्म । कदम्ब की अनेक जातियां हैं, यथा धाराकदम्ब (Adina Cordifolia), राजकदम्ब (नीप), भुमिकदम्ब, धूलिकदम्ब, इत्यादि । **कदम्बत्वक्** (छाल) अत्यन्त तिक्त होती है, उस का क्वाथ ग्रामसम्बन्धी रोगों और ज्वरों में देते हैं । कहीं २ वह कुनीन का काम देता है, अतः इसे Wild Cinchona (जंगली कुनीन का वृक्ष)कहा गया है, **फल** मधुर और हृद्य है । पत्र का क्वाथ भी छाल का काम देता है । **पत्र** व्रणों के आच्छादनार्थ प्रयुक्त होते हैं ।२. आर्त्तगल को कुछ वैद्यों ने नीलझिंटी माना है,जिसके नाम यह हैं (हिं०) नीलझांटी, कटसरैया, (वन०) Barleria coerulea, (म०)कालकोरांटा । इस में

पर्याय—आर्त्तगल, भीषणक (भयानक), बहुकण्ट (बहुत कांटों वाला), रुजाकर (कांटों के चुभने पर पीड़ा करने वाला), जालीवृत्त (झाड़ीदार क्षुप), दुःप्रधर्ष: (पकड़ने में दुष्कर), स्वादुतिक्तफल (मधुरतिक्त फल वाला), अर्गट ॥ ४४७ ॥

अर्गटस्तुवरस्तिक्तो व्रणशोधनरोपणः।
फलं तु मधुरं तिक्तं ज्वरं पित्तकफास्रजित् ॥ ४४८ ॥

६८. तूतम्[1] ।

Morus alba. Ihe Mulberry tree. A deciduous tree. Fruit refigerant and mild laxative.	(हिं०) तूत, शहतूत, बेदाना, (बं०) तूत, (म०) तूत, ततरी, (गु०) शेतूर । प्रसिद्ध वृक्ष, पत्र पतनशील । फल मधुर, हृद्य, मृदुरेचक ।

तूतं तूदं ब्रह्मनिष्ठं क्रमुकं ब्रह्मकाष्ठकम् ।
यूपं पूयं[2] ब्रह्मभागं ब्रह्मण्यं ब्रह्मचारिणम् ॥ ४४९ ॥

सन्देह नहीं कि बहुकण्टकादि शब्द सैरेयवाचक हैं, परन्तु आर्त्तगल के पर्यायों में सैरेय, झिण्टी, दासी आदि का न मिलना आर्त्तगल को सैरेय सिद्ध नहीं कर सकता । पुनः झिण्टी पीत, नील, श्वेत और रक्त चार प्रकार की है, इन भेदों का भी यहां कोई वर्णन नहीं । झांटी अपने पत्रों और नील पुष्पों के लिये प्रसिद्ध है, न कि फल के लिये । फलवर्ग में वर्णित आर्त्तगल कोई अन्य फली वृक्ष है । झांटी पंजाबी में पियावासा के नाम से प्रसिद्ध है। १. तूत पंजाब में बहुत होता है। बगैर लगाए ही इतस्ततः उग पड़ता है। यह बंगदेश में विरल और दक्षिण में सर्वशः नहीं मिलता। वृक्ष ३०-४० फुट ऊंचा होता है । पत्र सरदियों में झड़ जाते हैं और वसन्त में नव पल्लव एव पुष्प आते हैं । पुष्प ही थोड़े से काल में **तूत** नामक फल में परिवर्तित हो जाते हैं । फलाकार से तूत दो प्रकार का है, (१) १-१½ इंच लम्बे श्वेत मधुर फलों वाला, (२)¾ इंच गोल लम्बे रक्त कृष्ण मधुराम्ल फलों वाला । फल मधुर वा मधुराम्ल और मृदुरेचक होता है । अजीर्ण में लाभपूर्वक प्रयुक्त हो सकता है । यह कृमिघ्न भी है । बच्चों वा दुर्बल रोगियों को तूत का स्वरस दे सकते हैं । यह तृष्णाशमक है । तूत के पत्र २-३ इंच गोल लम्बे वा अण्डाकार होते हैं, परन्तु उनका किनारा बहुत कटा हुआ होता है। इन की पुलटिस शोथ पर लाभकारी है। तूत की लकड़ी बड़ी दृढ़ होती है, अतः उस से यन्त्र, शस्त्र आदि के दस्ते बनाए जाते हैं । तूत की छाल कृमिघ्न और रेचक है । तूत का एक प्रकार Morus indica है, जिस के पत्र रेशम के कीड़ों को खिलाये जाते हैं । यह इसी अभिप्राय से लगाया जाता है । इस का फल भी साधारण तूतवत् खाया जाता है । एक अन्य भेद M. nigra है, जो बलोचिस्तान में अधिक मिलता है । इस के पत्र बहुत चौड़े और स्थूल होते हैं और फल मधुराम्ल।

२. द–यूपं ब्रह्मभागं ।

पर्याय—ब्रह्मनिष्ठ (ब्रह्मपरायण यज्ञों में उस के काष्ठोपयोग से), ब्रह्मकाष्ठक (ब्रह्म वा यज्ञ की लकड़ी), यूप (यज्ञ की लकड़ी), ब्रह्मभाग (यज्ञ का भाग), ब्रह्मण्य (ब्रह्म वा यज्ञ के योग्य), ब्रह्मचारिन् (ब्रह्म या यज्ञ में विचरने योग्य) ॥४४९॥

तूदं गुरु सरं साम्लमामं तद्रक्तपित्तलम् ।
उष्णं पक्वं तु मधुरं शीतं पित्तानिलापहम् ॥ ४५० ॥

९९. कर्कटम्[1] ?

गाङ्गेरुकं कर्कटकं कर्कटं मृगलेण्डिकम्[2] ।
मृगविट्सदृशं चाथ तोदनं क्रन्दनं तथा ॥ ४५१ ॥

पर्याय—गाङ्गेरुक, कर्कटक (ककड़ी), कर्कट, मृगलेण्डिक (मृग के लेण्डे वा विष्ठा के समान फल), मृगविट्सदृश (विट्-विष्ठा), तोदन (चुभने वाला), क्रन्दन (रुलाने वाला) ॥४५१॥

कर्कटं तुवरं साम्लं गुरूष्णं रक्तपित्तलम् ।
सरं वातहरं श्लेष्मकृत्पक्वं नातिपित्तलम्[3] ॥४५२॥
तोदनं लघु संग्राहि साम्लोष्णं वह्निपित्तकृत् ।
स्निग्धं पक्वं तु मधुरं कषायं कफवातजित् ॥४५३॥

१००. भल्लातकः[4] ।

Semecarpus anacardium.	(हिं०) भिलावा, (बं०) भेला,
The marking nut.	(म०) बिबवा, (गु०) भिलामां ।
A graceful tree.	सुन्दर छायावान् वृक्ष ।
Stimulant, digestive, nervine tonic, and antirheumatic.	अत्यन्त उष्ण, दीपनपाचन, मेध्य, रसायन, आमवातारि, त्वग्रोगनाशक ।

---

१. कर्कट कोई अप्रसिद्ध वा अज्ञात फल है । यह ककड़ी व तर नहीं, क्योंकि उसका वर्णन आगे आता है । २. द—मृगलिण्डिकं । ३. यू—नात्रपित्तलं । ४. भल्लातक का सुन्दर वृक्ष ३०—४० फुट ऊंचा होता है । हजारीबाग (बिहार प्रान्त), सिक्कम, आसामादि उष्ण पर्वतीय देशों में भल्लातक अधिकता से मिलता है । [illegible]हुत लम्बे चौड़े, पत्रधारा (किनारा) सरल, पत्र पर रेखाएं बड़ी स्थूल और स्पष्ट । **वृक्षत्वक्** १ इंच मोटी, **काण्ड** का अन्तर्भाग पिंगल वर्ण, जिस से अति कटु तीक्ष्ण रस निकलता है, जो स्पर्श से व्रण, शोथ, दाहादि कर देता है । **पुष्प** १½ इंच लम्बा, पुष्पदल (Petals) हरिताभ । **फल** अण्डाकार, २ इंच लम्बा, उज्ज्वल, कृष्णवर्ण, दो पार्श्व दबे हुए । **फलकोष** (फल का मांसल बहिर्भाग-Pericarb) अपक्वावस्था में क्षीरवत् श्वेत रस से पूर्ण होता है, जो वायु लगने पर काला हो जाता है, और पक्वावस्था में यह रस कृष्ण होता है, जिसे **भल्लातकतैल** कहते हैं । फल के नीचे **फलवृन्त** (Receptacle) होता है, जिस पर फल

अरुष्करो[1] वीरतरुर्भल्ली भल्लातकोऽनलः ।
व्रणकृत्स्फोटहेतुः स्यादरुष्कोऽग्निमुखी दनुः[2] ॥४५४॥
भल्लातकस्य त्वङ्मांसमारुष्करनिबन्धनम् ।
भल्लातवल्कलं ज्ञेयमारुष्ककुसुमं तथा ॥४५५॥

लगा रहता है। फलवृन्त भी आकार में फल के सदृश, प्रत्युत कुछ बड़ा होता है। यह मांसल, मृदु और पीताभ है। भिलावा जो बाजार में मिलता है, वह मांसरहित शुष्कफल है। इसकी त्वचा कठोर होती है और इसके भीतर से तैलवत् कृष्ण रस निकलता है। यह स्पर्श से उग्र व्रण, शोथ, दाहादि करता है। भल्लातकास्थि आभ्यन्तरिक कठोर भाग है, जिस के अन्दर से मधुर, स्निग्ध और अनपकारक मज्जा निकलती है। भल्लातक के पुष्प पर जो पीत **धूलि** होती है, वह भी बड़ी भयानक है। पुष्पित अवस्था में वृक्ष के नीचे बैठने वा लेटने से, एवं उस से दूर ठहरने पर भी, जब वायु चलता हो, इस वायुसंचारित धूलि के स्पर्श से शोथ हो जाता है। भल्लातकवृन्त एवं भल्लातकफल पक्वापक्वावस्था में वाजीकरण, बलवृद्धि और अग्निबल के लिए खाया जाता है। इस से बड़ी गरमी होती है। दुग्ध और घृत का प्रचुर प्रयोग होना चाहिए। भल्लातकफल की सम्पूर्ण प्रयोगविधि चरक के रसायनाधिकार में देखो। **भल्लातकशुद्धि** अवश्यमेव करनी चाहिए। भल्लातक को खण्डित करके खरल में पत्थर वा ईंट के कंकरों से रगड़कर धोलें, कंकर पृथक् करके पुनः उसे नारिकेलजल, दुग्ध, वा साधारण जल में तनिक उबाल लें, वा खण्डित भल्लातक को जल में उबाल कर शीत जल से धो लें। यह शोधन के साधारण उपाय हैं। भल्लातक अनेक रसों में पड़ता है। इस के प्रयोग से दुःसाध्य अर्श, अग्निमान्द्य, आमवात, कुष्ठ, श्वित्र, श्वास, नपुंसकता, वातरोगादि अनेक व्याधियां ठीक हो जाती हैं। डाक्टरों ने इस को आमवात, श्वास और उपदंश (आतशक की २य वा ३य अवस्था) में बड़ा फलप्रद माना है। भल्लातक का दोष शोथ, व्रणादि की उत्पत्ति है। जब यह दोष प्रकट हो, उस का प्रयोग बन्द करदें और घृत, दुग्धादि स्निग्ध पदार्थ प्रचुरता से दें। एक भल्लातक लेकर दीपक की ज्वाला में तपावें, जो तैल उस से टपके, उसे एक पाव दुग्ध में टपकावें और वह दुग्ध पिलादें। एवं शनैः २ भल्लातकों की संख्या ध्यान से बढ़ा सकते हैं। **अमृतभल्लातक** (भैष० कुष्ठे) एक सुन्दर मधुर, अनपकारक योग है, जो ऊपरोक्त रोगों में प्रयोग कर सकते हैं। **भल्लातकतैल** (जो बाजार में अंग्रेजी दुकानों से मिलता है) आमवात की शोथ पर लाभपूर्वक लगा सकते हैं। उसे तिर्यक् रेखाओं में लगाना चाहिए। स्त्रियें भल्लातक को गर्भपातनार्थ प्रयोग करती हैं। भल्लातक का धूम्र बवासीर के मस्सों को गिरा देता है। भल्लातक उपयोगी होते हुए भी एक भयानक द्रव्य है, उसे सावधानी से बरतें। भल्लातक का प्रयोग शीतकाल में ही करना उचित है। १. ब—अरुष्करः। २. यू—मनुः।

पर्याय—अरुष्कर (व्रणकारक), वीरतरु (क्षतादि करने के कारण वीर वा बहादुर वृक्ष), भल्ली (भाला, इषु क्षत करने के कारण), भल्लातक, अनल (अग्निवत् उष्ण), व्रणकृत् (व्रण करने वाला), स्फोटहेतु (स्फोट आबला करने वाला—Vesicant), अरुष्क (व्रणकारक), अग्निमुखी (अग्निवत् दाहक), दनु (राक्षस)। भल्लातक की त्वचा, मांस, निबन्धन (वृन्त—Receptacle), वल्कल (छाल) और फूल—यह सब जानने चाहिएं ॥४५४–५५॥

भल्लातको लघुस्तिक्तः कषायो मधुरो हिमः।
ग्राही पाके कटुः पित्तकफास्रघ्नोऽनिलप्रदः ॥४५६॥
भल्लातकफलं पक्वं स्वादुपाकरसं गुरु।
विष्टम्भि बृंहणं रूक्षं हिमं वातबलासकृत् ॥४५७॥
शुक्रलं दुर्जरं बल्यं रक्तपित्तविनाशनम्।
तस्यास्थि मधुरं स्निग्धं कटुपाकरसं लघु ॥४५८॥
कषायं पाचनं स्निग्धं तीक्ष्णोष्णं छेदि भेदनम्।
मेध्यं वह्निकरं हन्ति कफवातव्रणोदरम् ॥४५९॥
कुष्ठार्शोग्रहणीगुल्मशोफानाहज्वरकृमीन्।
तन्मज्जा मधुरो वृष्यो बृंहणो वातपित्तहा ॥४६०॥

१०१. जलभल्लातकः।

A variety of No. 100 growing in moist regions. | नं० १०० का भेदान्तर, जलाढ्य देश में होने वाला।

वृषाङ्कको भोजनको नदीभल्लातको[१] मतः।
नदीभल्लातकस्तिक्तः कषायो मधुरो हिमः।
संग्राही वातलो हन्ति रक्तपित्तकफव्रणान् ॥४६१॥

वृषाङ्कक (बैल का अङ्क ?), भोजनक (खाने योग्य), नदीभल्लातक (जलाढ्य देश में होने वाला भल्लातक) ॥४६१॥

१०२. तुवरकः[२]।

Anacardia odorata.
An evergreen tree.
Specific for leprosy, eczema or other skin-diseases.

(हिं०, बं०, म०) चालमुगरा।
वृक्ष, पत्र सदाहरित।
कुष्ठ, पामादि त्वग्रोगों में अत्यन्त लाभकारी।

---

१. ब—गोजनको दनीभल्लातकः। २. तुवरक के वृक्षों की स्थिति सुश्रुत के अनुसार मालाबार का तट (Western Coast) है, यथा "वृक्षास्तुवरका ये स्युः पश्चिमार्णवभूमिषु। वीचीतरङ्गविक्षेपमारुतोद्धूतपल्लवाः। तेषां फलानि गृह्णीयात्.......... (सु० चि० अ० १३)। ट्रावनकोर, कोचीन आदि के समुद्रतट पर मैं ने तुवरकवृक्षों के जंगल देखे हैं, वहां से ही इस

पत्रैस्तु केसराकारैः कलायसदृशैः फलैः ।
वृक्षस्तुवरको नाम पश्चिमार्णवतीरजः ॥४६२॥
कलायसम्मितफलः कलायसदृशच्छदः ।
गुणैररुष्करसमो वृक्षस्तुवरकः स्मृतः ॥४६३॥

तुवरक वृक्ष के पत्र केसराकार और फल कलाय (मटर ?) के तुल्य होते हैं। उन का उत्पत्तिस्थान पश्चिमी समुद्र का तट (Malabar Coast) है। कलाय के तुल्य फल और पत्रों वाला और गुणों में भल्लातक के समान **तुवरक वृक्ष** कहा गया है ॥ ४६२–३ ॥

तौवरं कटुकं पाके कषायोष्णं कफापहम् ।
कृमिकुष्ठज्वरानाहमेहार्शोव्रणशोफजित् ॥४६४॥

१०३. वातामम् ।

(क) मधुरवातामम् ।

Amygdalus Dulcis. Sweet Almond. Nutritive, demulcent and laxative.	(हिं०, बं०) मीठा बादाम, (म०) गोड़े बादाम, (गु०) मीठी बादाम। वृक्ष, फल नेत्राकार प्रसिद्ध । बृंहण, स्निग्ध, मृदुरेचन ।

के फल संग्रहीत होकर पश्चिम देशों में जाते हैं, और उधर से उन का तैल निकल कर हमारे पास आता है। यह वृक्ष नेपाल, भूटान, चिट्टा गांग आदि हिमालय के अधोभाग में भी मिल जाते हैं। वृक्ष बहुत ऊंचा नहीं जाता, परन्तु बड़ा सुन्दर, घन-हरित और छायावान् होता है। **पत्र** जामुन के सदृश, परन्तु उस से आकार में बहुत बड़े होते हैं। **पुष्प** सुगन्धित और पीतवर्ण। **फल** व्यास में ३–५ इञ्च, और शुष्कावस्था में मट्याले रंग का होता है। **फलकोष** (Rind) खर और स्थूल होता है। **फलमांस** (Pulp) में दबे हुए अनेक **बीज** अण्डाकार १ इंच लम्बे मिलते हैं। बीजों के निष्पीडन, पातालयन्त्रविधि वा स्रवण (Distillation) से तैल निकलता है, जिसे **तुवरक**(चाल्मुग्रा)**तैल** कहते हैं, इस का अंग्रेजी नाम भी Chaulmugra Oil है और इसी नाम से अंग्रेजी दवाईखानों से मिल जाता है। व्यवहार में प्रायः तल ही आता है, इस की एक मल्हम Chaulmugra Ointment भी मिलती है, जो कुष्ठ, पामादि पर लगाने से बड़ा लाभ देती है। मद्रासी वैद्य **तुवरकादिलेप** तुवरकबीजचूर्ण, कज्जली, मनःशिलादि द्रव्य मिलाकर बनाते हैं। तुवरकतैल ५ से लेकर ४० विन्दु तक (५ प्रतिदिन बढ़ाने से ५, १०, १५, इत्यादि) दुग्ध में मिलाकर पिलाने से कुष्ठादि घोर रोगों से मुक्ति दिलाता है। इस के प्रयोगकाल में लवण छोड़ देना चाहिये। सुश्रुत ने गलित कुष्ठ तक के लिये इसे विहित किया है, और प्रयोगविधान भी वहां विस्तृत रूप में दिया है। डाक्टरों ने भी कुष्ठ, आमवात,

(ख) तिक्तवातामम्।

Amygdalus Amara.
Bitter Almond.
Oil poisonous and a good flavouring agent.

(हिं०) कड़वा बादाम, (बं०) कटु बदाम, (गु०) कड़वी बदाम।
तैल विषवत् प्राणहर, परन्तु सुरभित, मोदकादि में प्रयोज्य।

ईषद्दीर्घं च वातामं[1] मधुरस्निग्धमज्जकम् ॥४६५॥

[1]**वाताम** (बादाम) किञ्चित् दीर्घ होता है। उस की मज्जा (गिरी) मधुर और स्निग्ध है॥ ४६५ ॥

आतशक, पामादि में इसकी बड़ी प्रशंसा की है। वैद्यों में तो इस का प्रयोग प्रायः लुप्त होचुका है। भावमिश्र ने निघण्टु में इस का नाम तक नहीं दिया। १. **बादाम** के वृक्ष बाहुल्य से पेशावरादि अफगान देश में मिलते हैं, और दक्षिण में पश्चिम तट पर भी होते हैं। वृक्ष विशाल, **पत्र** काफी लम्बे चौड़े, किनारा दन्दानेदार, **पुष्प** श्वेत। **आर्द्र फल** हरित आवरण से आच्छादित होता है, परन्तु शुष्क होने पर आवरण पृथक् होजाता है, और बादाम (जो बाज़ार में मिलता है) निकल आता है। बादाम की आकृति से सब लोग सुपरिचित हैं, इसे 'नेत्रोपमफलः' (नेत्र जैसा फल) कहा गया है, जो यथार्थ नाम है। बादाम का **कोष** कठोर होता है, परन्तु थोड़े प्रहार से टूट जाता है, और भीतर से **वातादमज्जा** (गिरी) निकलती है। बादाम की एक जाति का कोष बड़ा मृदु होता है, जो दांत वा अंगूठे से टूट जाता है, इन्हें **कागज़ी बादाम** कहते हैं। यह परिमाण में छोटे परन्तु गुण में सर्वोत्तम हैं। वाताद बड़ा स्निग्ध द्रव्य है, इस के निष्पीड़न से **वातादतैल** वा **बादाम रोगन** (Almond Oil or Oleum Amygdalae) निकलता है। मधुर वाताद खाना उचित है। तिक्त बादाम बड़ा विषैला है। उस के खाने से वान्ति, उदरशूलादि, तथा मृत्यु भी हो जाती है। **तिक्त बादामरोगन** मिठाईयों में सुगन्धार्थ प्रयोग करते हैं। इस को खा लेने से कई मृत्युघटनाएं हो चुकी हैं। **मधुर बादामरोगन** अतिस्निग्ध है, और ६ माषे से १ तोले तक दुग्ध में मिलाकर देने से रेचन करता है। दुर्बल और क्षीण रोगियों के लिए यह उत्तम मृदुरेचन है। सिर पर मलने से दिमाग की रूक्षता और वातपैत्तिक शिरःशूल को हरता है, और निद्राकारक है। इसे कर्ण, नासिका, नेत्रादि में भी रूक्षतानिवृत्त्यर्थ देते हैं। वस्तुतः बादाम बड़ा **वायुशमक** है, अतः उसे **वातवैरी** और **वाताद** (वातमत्ति—वायु को खाता है) यथार्थ कहा गया है। बादाम से एक अति वृष्य **बादामपाक** बनता है। बादाम को भिगो कर प्रातः उस का छिलका उतार और मधु तथा मक्खन से मिलाकर खाना मूर्धा के लिये हितकर और मेधा तथा स्मृति को बढ़ाता है। छोटे बच्चों को मेधावृद्ध्यर्थ बादाम को प्रयोग कराना चाहिए। बादाम, छुहारा, ब्राह्मी और काली मरिच को घोट छान कर और शर्करा मिलाकर पीना गरमियों में बड़ा लाभकारी है। बादाम का शर्बत भी उत्तम

पत्रैस्तु केसराकारैः कलायसदृशैः फलैः ।
वृक्षस्तुवरको नाम पश्चिमार्णवतीरजः ॥४६२॥
कलायसम्मितफलः कलायसदृशच्छदः ।
गुणैररुष्करसमो वृत्तस्तुवरकः स्मृतः ॥४६३॥

तुवरक वृक्ष के पत्र केसराकार और फल कलाय (मटर ?) के तुल्य होते हैं। उन का उत्पत्तिस्थान पश्चिमी समुद्र का तट (Malabar Coast) है। कलाय के तुल्य फल और पत्रों वाला और गुणों में भल्लातक के समान **तुवरक वृक्ष** कहा गया है ॥ ४६२–३ ॥

तौवरं कटुकं पाके कषायोष्णं कफापहम् ।
कृमिकुष्ठज्वरानाहमेहार्शोव्रणशोफजित् ॥४६४॥

१०३. वातामम् ।

(क) मधुरवातामम् ।

Amygdalus Dulcis.	(हिं०, बं०) मीठा बादाम, (म०)
Sweet Almond.	गोड़े बादाम, (गु०) मीठी बादाम।
Nutritive, demulcent and	वृक्ष, फल नेत्राकार प्रसिद्ध ।
laxative.	बृंहण, स्निग्ध, मृदुरेचन ।

के फल संग्रहीत होकर पश्चिम देशों में जाते हैं, और उधर से उन का तैल निकल कर हमारे पास आता है। यह वृक्ष नेपाल, भूटान, चिट्टा गांग आदि हिमालय के अधोभाग में भी मिल जाते हैं। वृक्ष बहुत ऊंचा नहीं जाता, परन्तु बड़ा सुन्दर, घनहरित और छायावान् होता है। **पत्र** जामुन के सदृश, परन्तु उस से आकार में बहुत बड़े होते हैं। **पुष्प** सुगन्धित और पीतवर्ण। **फल** व्यास में ३–५ इञ्च, और शुष्कावस्था में मटयाले रंग का होता है। **फलकोष** (Rind) खर और स्थूल होता है। **फलमांस** (Pulp) में दबे हुए अनेक **बीज** अण्डाकार १ इंच लम्बे मिलते हैं। बीजों के निष्पीडन, पातालयन्त्रविधि वा स्रवण (Distillation) से तैल निकलता है, जिसे **तुवरक(चालमुगरा)तैल** कहते हैं, इस का अंग्रेजी नाम भी Chaulmugra Oil है और इसी नाम से अंग्रेजी दवाईखानों से मिल जाता है। व्यवहार में प्रायः तैल ही आता है, इस की एक मल्हम Chaulmugra Ointment भी मिलती है, जो कुष्ठ, पामादि पर लगाने से बड़ा लाभ देती है। मद्रासी वैद्य **तुवरकादिलेप** तुवरकबीजचूर्ण, कज्जली, मनःशिलादि द्रव्य मिलाकर बनाते हैं। तुवरकतैल ५ से लेकर ४० विन्दु तक (५ प्रतिदिन बढ़ाने से ५, १०, १५, इत्यादि) दुग्ध में मिलाकर पिलाने से कुष्ठादि घोर रोगों से मुक्ति दिलाता है। इस के प्रयोगकाल में लवण छोड़ देना चाहिये। सुश्रुत ने गलित कुष्ठ तक के लिये इसे विहित किया है, और प्रयोगविधान भी वहां विस्तृत रूप में दिया है। डाक्टरों ने भी कुष्ठ, आमवात,

(ख) तिक्तवातामम्।

Amygdalus Amara. Bitter Almond. Oil poisonous and a good flavouring agent.	(हिं०) कड़वा बादाम, (बं०) कटु बदाम, (गु०) कड़वी बदाम। तैल विषवत् प्राणहर, परन्तु सुरभित, मोदकादि में प्रयोज्य।

ईषद्दीर्घं च वातामं[१] मधुरस्निग्धमज्जकम् ॥४६५॥

[१]वाताम (बादाम) किञ्चित् दीर्घ होता है। उस की मज्जा (गिरी) मधुर और स्निग्ध है॥ ४६५॥

आतशक, पामादि में इसकी बड़ी प्रशंसा की है। वैद्यों में तो इसका प्रयोग प्रायः लुप्त होचुका है। भावमिश्र ने निघण्टु में इस का नाम तक नहीं दिया। १. **बादाम** के वृक्ष बाहुल्य से पेशावरादि अफगान देश में मिलते हैं, और दक्षिण में पश्चिम तट पर भी होते हैं। वृक्ष विशाल, **पत्र** काफी लम्बे चौड़े, किनारा दन्दानेदार, **पुष्प** श्वेत। **आर्द्र फल** हरित आवरण से आच्छादित होता है, परन्तु शुष्क होने पर आवरण पृथक् होजाता है, और बादाम (जो बाज़ार में मिलता है) निकल आता है। बादाम की आकृति से सब लोग सुपरिचित हैं, इसे 'नेत्रोपमफलः' (नेत्र जैसा फल) कहा गया है, जो यथार्थ नाम है। बादाम का **कोष** कठोर होता है, परन्तु थोड़े प्रहार से टूट जाता है, और भीतर से **वातादमज्जा** (गिरी) निकलती है। बादाम की एक जाति का कोष बड़ा मृदु होता है, जो दांत वा अंगूठे से टूट जाता है, इन्हें **कागज़ी बादाम** कहते हैं। यह परिमाण में छोटे परन्तु गुण में सर्वोत्तम हैं। वाताद बड़ा स्निग्ध द्रव्य है, इस के निष्पीड़न से **वातादतैल** वा **बादाम रोगन** (Almond Oil or Oleum Amygdalae) निकलता है। मधुर वाताद खाना उचित है। तिक्त बादाम बड़ा विषैला है। उस के खाने से वान्ति, उदरशूलादि, तथा मृत्यु भी हो जाती है। **तिक्त बादामरोगन** मिठाईयों में सुगन्धार्थ प्रयोग करते हैं। इस को खा लेने से कई मृत्युघटनाएं हो चुकी हैं। **मधुर बादामरोगन** अतिस्निग्ध है, और ६ माषे से १ तोले तक दुग्ध में मिलाकर देने से रेचन करता है। दुर्बल और क्षीण रोगियों के लिए यह उत्तम मृदुरेचन है। सिर पर मलने से दिमाग की रूक्षता और वातपैत्तिक शिरःशूल को हरता है, और निद्राकारक है। इसे कर्ण, नासिका, नेत्रादि में भी रूक्षतानिवृत्त्यर्थ देते हैं। वस्तुतः बादाम बड़ा **वायुशमक** है, अतः उसे **वातवैरी** और **वाताद** (वातमत्ति–वायु को खाता है) यथार्थ कहा गया है। बादाम से एक अति वृष्य **बादामपाक** बनता है। बादाम को भिगो कर प्रातः उस का छिलका उतार और मधु तथा मक्खन से मिलाकर खाना मूर्धा के लिये हितकर और मेधा तथा स्मृति को बढ़ाता है। छोटे बच्चों को मेधावृद्ध्यर्थ बादाम को प्रयोग कराना चाहिए। बादाम, चुद्रैला, ब्राह्मी और काली मरिच को घोट छान कर और शर्करा मिलाकर पीना गरमियों में बड़ा लाभकारी है। बादाम का शर्बत भी उत्तम

१०४. निकोचकम्[1] ।

Pinus gerardiana. | (हिं०) निओज़ा, (फा०) चिलगोज़ा ।
A large evergreen tree. | विशाल सदाहरित वृक्ष ।
Seeds oily, nutritive and stimulant. | बीज स्निग्ध, वृष्य, उष्ण ।

अङ्कोलफलसङ्काशमङ्कोटं च निकोचकम् ॥४६६॥

अङ्कोटफल के सदृश निकोचक (निओजा) होता है ॥४६६॥

१०५. मुलूकम् ? ।

दन्तीफलसदृशं तु मुलूकं[2] परिकीर्त्तितम् ॥४६७॥

मुलूक (मलोख ?) जमालगोटे के सदृश होता है ॥४६७॥

वातामादिगुणाः ।

वाताभिषुकाक्षोडं[3]मुकूलकनिकोचकम् ।
सारुमाणं[4] गुरु स्निग्धं मधुरं रसपाकयोः ॥४६८॥
वृष्योष्णं बृंहणं बल्यं वातघ्नं कफपित्तलम् ।
दाहक्षतक्षयहरं विष्टम्भ्यस्रप्रसादनम् ॥४६९॥

वाताम (बादाम), अभिषुक (पिस्ता–प्रसिद्ध फलविशेष), अक्षोड (अखरोट), मुकूलक (मलोख ?), निकोचक (निओजे), सारुमाण (?)—यह सब भारी, चिकने, रस और विपाक में मधुर, वृष्य, गरम, पुष्टिकर, बलवर्धक, वातघ्न, कफपित्तप्रकोपक, दाह, क्षत और क्षय के नाशक, विष्टम्भि और रक्तशमक हैं ॥४६८–६९॥

पानक है । **बादामकोष** जलाकर कृष्ण दन्तमञ्जन बनता है । बाजारी बादामरोगन में मूंगफली का तैल (Ground Nut Oil) मिला रहता है, अतः इस को स्वयं ही निकालना चाहिए । मधुमेह में बादाम की रोटी देना लाभकारी है, क्योंकि यह पुष्टिकर, और श्वेतसार (Starch) से रहित है । बादाम के बिस्कुट (Almond Biscuits) भी बनते हैं, जिन्हें मधुमेह में दे सकते हैं । १. **निकोचक** (निओज़े) का वृक्ष सरल वा चील (Pinus) की जाति में सम्मिलत है । यह उत्तर पश्चिम हिमालय में बाहुल्य से मिलता है । वृक्ष ५०–६० फुट ऊंचा और घन छायावान् होता है । **पत्र** ४–५ इंच लम्बे, चौड़ाई में अत्यल्प, एक वृन्त पर गुच्छों में लगे हुए । इसे पुष्प नहीं आता, परन्तु शाखा के अन्त पर पत्रों से परावृत्त एक छोटा सा कोण (Cone) लगता है, जिस में अनेक गर्त रहते हैं, और इन गर्तों में निओजे दबे रहते हैं । यह कोण सरल (चील) को भी आते हैं, इसी कारण से इस जाति को Coniferae (Natural Order) में अन्तर्गत किया गयी है । निओजा के निष्पीड़न से **निकोचकतैल** निकलता है, जो बहुत गरम है । निओजे के गुण बहुत कुछ बाताद से मिलते हैं । निकोचकवृक्ष से सरलवत् निर्यास (गोन्द) भी निकलता है । २. ब–मुकूलं । ३. ब–वातामाभिधागाचोड० । ४. ब–सोरुमाणं ।

१०६. एलानम्[1] ।

एलानमम्लं वातघ्नमुष्णवीर्यं सरं गुरु ॥
कफपित्तास्रकृत्पक्वं, मधुरं नास्रपित्तलम् ॥४७०॥

एलान (अप्रसिद्ध फल),--(बं०) नारंग लेबू, (म०) हिरंवे फल ॥४७०॥

१०७. लवलीफलम्[1] ।

Ceceo disticha. An ordinary tree. Fruit fragrant, and astringent.	(हिं०) हरफरी, हरफारेवडी, (बं०) लोआयाड़ गाछ, (म०) रान आंवले । फल सुगन्धित, ग्राही ।

ज्योत्स्ना मुक्ताफलं प्रोक्तं श्यामलं लवलीफलम् ।
विशदं रोचनं रूक्षं हृद्यं तिक्तं कषायकम् ।
वातलं कफपित्तघ्नं सुगन्धि लवलीफलम् ॥४७१॥

ज्योत्स्ना—चान्दनी । मुक्ताफल—मोती के सदृश गोल श्वेत फल । श्यामल—काला । विशद—अपिच्छल ॥४७१॥

१०८. ताम्बूलम्[2] ।

Piper Betle. The Betel climber. Leaves aromatic, stomachic, carminative, stimulant, and antiseptic.	(हिं०, गु०, म०) पान, नागरवेल, (बं०) पान, । वल्ली, पत्र सर्वत्र प्रसिद्ध । पत्र सुरभित, दीपन, अनुलोमन, उष्ण कृमिघ्न ।

१. "हरफारेवड़ी का वृक्ष अत्यन्त सुन्दर होता है, पत्ते कसौंदी के समान होते हैं। फल गूलर के सदृश शाखाओं में से निकलते हैं।"—शालिग्रामनिघण्टु फलवर्ग । मुलूद, एलान, लवली आदि प्रसिद्ध फल नहीं हैं। २. **पांन** की वल्ली पंजाब, सिन्ध वा मरुभूमि में नहीं उपजती, परन्तु वंग, मध्य प्रान्त, यू० पी०, मद्रास आदि जलाढ्य उष्ण प्रदेशों में प्रचुर होती है। वल्ली अधिक ऊंची नहीं जाती, परन्तु कहीं २ वृक्षों पर चढ़ी हुई मिलती है। वल्लीस्तंभ तथा शाखाए प्रचुर मोटी होती हैं। **पर्ण** 'पान' को, जो भारत में सब जगह चर्वणार्थ मिल जाता है, सब लोग जानते हैं। 'देशमृत्तिकाविशेषान्नानाकारं याति काये गुणे च' अर्थात् देश, मट्टी आदि भेद से पान की आकृति और गुणों में बड़ा अन्तर हो जाता है, इस कारण से भारत में पान नाना प्रकार के मिलते हैं, यथा बंगला, महोवा, महाराजपुरी, विलोआ, कानपुरी, मद्रासी आदि। प्राचीन ग्रन्थों में कृष्णपर्ण, शुभ्रपर्ण (धन्व० नि०), और श्रीवाटी, अम्लवाटी, सतसा आदि अनेक भेदों का वर्णन है। इन में आकारभेद के अतिरिक्त रस और गन्ध में भी विलक्षणता होती है। पाश्चात्य चिकित्सकों ने पान के पत्तों से **ताम्बूल तैल** (Betel Oil)

ताम्बूलवल्ली ताम्बूली नागवल्ली च नागिनी ॥४७२॥

पर्याय—ताम्बूलवल्ली (पान की लता), ताम्बूली, नागवल्ली (सर्पवत् वक्र वल्ली), नागिनी (सर्पिणी) ॥४७२॥

ताम्बूलवल्लिकापत्रं तिक्तं पाकरसोषणम् ।
तीक्ष्णोष्णं तुवरं क्षारं दीपनं विशदं सरम् ॥४७३॥
रोचनं स्रंसनं स्वर्यं रक्तपित्तविवर्द्धनम् ।
कफवातास्रदौर्गन्ध्यकण्डूक्लेदमलापहम् ॥४७४॥

और एक अन्य तेल **चविकोल** (Chavicol) निकाला है, इन तैलों के न्यूनाधिक्य पर ताम्बूल की विशेषता निर्भर है । **ताम्बूलचर्वण** की रीति भारत में बहुत प्राचीन काल से चली आती है, और भोजन के पश्चात् यह लाला (थूक) को बढ़ा कर पाचन में सहायता देता है । यह कामोत्तेजक भी है । पूग, कत्था, चूर्ण, सौंफ आदि से मिल कर ताम्बूल अधिक रुचिकर और लाभदायक बन जाता है, परन्तु पान का अधिक और अनियमित व्यवहार, जैसा कि मद्रासी और बंगाली लोगों में प्रायः देखा जाता है, जो पान को हर समय अजावत् चबाते रहते हैं, सर्वथा अनुचित और हानिकर है। पान गरम है, इस के अधिक उपयोग से रक्तपैत्तिक विकारों के होने की सम्भावना है । चाय की तरह इस से अन्त्रक्रिया में प्रथम उत्तेजना, पुनः हानि होती है । पंजाब में पान को लोग अच्छी दृष्टि से नहीं देखते, परन्तु नियमित उपयोग हानिकर नहीं । श्रीवाग्भट्ट के वचनों में 'ताम्बूलं क्षतपित्तास्ररूक्षोत्कुपितचक्षुषां । विषमूर्च्छामदार्त्तानामपथ्यं शोषिणामपि ॥' ऐसे पुरुषों के लिए पान निषिद्ध है । वैद्यक चिकित्सा में पान का स्वतन्त्र व्यवहार बहुत कम है, परन्तु कास, श्वास, पार्श्वशूल, मन्दाग्नि, जीर्णज्वरादि में पान का **स्वरस** मधुमिश्रित अनुपान के रूप में बहुत दिया जाता है । **ताम्बूल के पत्ते** गरम करके और तैल से चुपड़ कर छाती पर बांधने से कास, श्वास, निमोनिया आदि में बहुत लाभ देते हैं । पान के पत्र शिरोवेदना में शिर पर, आमवात में सन्धियों पर, ग्रन्थिशोथ में ग्रन्थियों पर और दुग्धह्रासार्थ स्तनों पर बांधे जाते हैं, वा उन का कल्क लगाया जाता है । ताम्बूल का डण्ठल (Petiol or Stalk) तैल से स्निग्ध करके बच्चों की गुदा में रुद्ध मल की अधःप्रवृत्त्यर्थ दिया जाता है । पान दुष्ट व्रणों पर बांधने से उन्हें शुद्ध करता है । वातकफात्मक विकारों में पान के पत्तों को गरम करके बच्चों की छाती पर बांधना बहुत फलप्रद है । **कुलिञ्जन** को लोग पान की जड़ समझते हैं, जो अशुद्ध है । इस का वर्णन अन्यत्र देखें ।

१०९. क्रमुकम्[1]।

Areca Catechu.
Areca-nut or Betel-nut.
A high palm-like tree.
Astringent, stimulant, exhilarant and anthelmintic.

(हिं०, बं०, म०, गु०) सुपारी। तालवत् दीर्घ उच्च वृक्ष। स्तम्भ तनु सरल, ८०-१०० फुट ऊंचा। पूगफल ग्राही, उत्तेजक, मदकर, उदरकृमिघ्न।

क्रमुकं कम्बुकं पूगं कषायफलपुष्पकम्।
स्यात्पूगफलमुद्वेगं स्रंसि घोंटाफलं फलम्।
खपुरं चिक्कणं चिक्का गुवा चिक्कं च चिक्ककम्[2] ॥४७५॥

पर्याय—कषायफलपुष्पक (जिस के फल और पुष्प कषाय हैं), उद्वेग (उत्तेजक, जोश पैदा करने वाली), स्रंसि (रेचक), चिक्कण (चिकनी) ॥४७५॥

पूगं रूक्षं सरं किञ्चित्कषायं मधुरं गुरु।
रोचनं मोहनं हृद्यं कफपित्तनिबर्हणम्।
दीपनं वक्त्रवैरस्यमलदौर्गन्ध्यनाशनम् ॥४७६॥

मोहन—मदकर। **वक्त्र**—मुख ॥४७६॥

आर्द्रं गुर्वभिष्यन्दि दृष्टयग्निबलकृत्परम्।
शुष्कं तु वातलं स्विन्नं त्रिदोषशमनं परम् ॥४७७॥

---

१. **सुपारी** के दीर्घ उच्च वृक्ष वंग, मद्रास, मलयादि देशों के समुद्रतट पर प्रचुरता से मिलते हैं। **वृक्ष** बहुत कुछ ताड़ वा नारियल के सदृश हैं, परन्तु उन की अपेक्षा बड़े पतले, ऊंचे और सीधे होते हैं। **पत्रों** वा **शाखाओं** का झुंड केवल शिखर पर ही होता है। शरद ऋतु में पुष्प और वसन्त में फल आते हैं। **फल** गोलाकार सौत्रिक कोश के रूप में लगता है, और व्यास में एक इंच भर होता है। कोश को हटाने से **सुपारी** निकल आती है। सुपारी में Tannic और Gallic Acid के कारण कषायपन है, और यह द्रव्य कच्ची सुपारी में अधिक होते हैं, और पक्की में कम। इन के अतिरिक्त उस में एक तैल भी होता है, **दग्ध पूग** का कोयला दांतों को दृढ़ करता है। सुपारी का चूर्ण २, ३ माषे तक शर्करायुक्त दुग्ध में मिलाकर दिया जा सकता है, परन्तु उसके खाने से चक्कर आते हैं। डाक्टरों ने सुपारी को उदरकृमि (Tape-worm or Roundworm) को निकालने में लाभकारी पाया है, और तदर्थ उसका सत्त्व (Arecaline) व्यवहार करते हैं। सुपारी ग्राही और शोषक होने से श्वेतप्रदर को नष्ट करती है, अतः आजकल **पूगीपाक** (सुपारी पाक) का व्यवहार एतदर्थ अधिक हो रहा है, परन्तु यह पुरुषों के कटीशूल वा नपुंसकता में भी लाभकारी है। शास्त्र में सुपारीपाक का व्यवहार अधिकतर पुरुषों के लिए विहित है। **पूगचूर्ण** की पोटली योनिशोषक तथा संकोचक है। सुपारी वातसंस्थान (Nervous System) को बल देती है। घृतभृष्ट सुपारी खानी चाहिये। २. ब—चिक्कं च चिद्यकं।

स्विन्नं पूगं त्रिदोषघ्नं पक्वशुष्कं **तु वातलम् ।**

पक्वार्द्रं **गुर्वभिष्यन्दि** बालार्द्रं **कफपित्तहृत् ॥४७८॥**

आर्द्र (ताजी, गीली) **सुपारी** भारी, अभिष्यन्दि (कफकर), और दृष्टि, अग्नि तथा बल को बढ़ाने वाली है। **शुष्क सुपारी** वातप्रकोपक है, परन्तु **स्विन्न** (उबाली हुई) सुपारी त्रिदोषशमक है। **पक्व** और **शुष्क** सुपारी वातल है। **पक्व** और **आर्द्र** भारी और कफकर है, परन्तु कच्ची और आर्द्र सुपारी कफपित्त को हरती है ॥४७७-८॥

पूगं स्याद्दृढमध्यं यच्छ्रेष्ठं नानाविधं हि तत् ।
पाकदेशादिभेदेन चिक्कणं सर्वदोषजित् ।
कृमिकृत्पूगपुष्पं तु कषायं मधुरं गुरु ॥४७९॥

उत्तम सुपारी के लक्षण—श्रेष्ठ सुपारी वह है, जिस का मध्यभाग कठोर हो। पाक और देशादि के भेद से सुपारी नाना प्रकार की है। चिक्कनी (स्निग्ध) सुपारी त्रिदोषनाशक है। **पूगपुष्प** (सुपारी का फूल) कषाय, मधुर और कृमिनाशक (वा कृमिकारक) है ॥४७९॥

फलमज्जसामान्यगुणाः ।

फलस्य यस्य यस्येह वीर्यं भवति यादृशम् ।
तस्य तस्येह वीर्येण मज्जानमपि निर्दिशेत् ॥ ४८० ॥

जिस २ फल का जैसा २ वीर्य होता है, उस की मज्जा का गुण उस के वीर्य के तुल्य निर्देश करना चाहिये ॥४८०॥

वर्ज्यफललक्षणम् ।

हिमानिलोष्णदुर्वातव्याललालादिदूषितम् ।
कृमिजुष्टं जले मग्नमभूमिजमनार्तवम् ।
पाकातीतं रुजायुक्तमामं बिल्वं विना त्यजेत् ॥४८१॥

बिल्व को छोड़कर (जिसे कच्चा ही प्रयोग करना है), जो फल कच्चा, हिम (बरफ), वायु, गरमी, अन्धेरी आदि दुष्ट वायु, व्याल (सर्पसिंहादि) की लाला (थूक) से दूषित, कृमि से युक्त, जल में डूबा हुआ, अभूमिज (दुष्ट भूमि पर उत्पन्न), अनार्तव (उचित ऋतु में अनुत्पन्न), अतिपक्व और रोगयुक्त हो, उस को छोड़ देना चाहिये ॥ ४८१ ॥

अथ शाकानि ।

वर्ज्यशाकलक्षणम् ।

रूक्षसिद्धं त्यजेच्छाकं परिजीर्णमभूमिजम् ।
कोमलं जठरं चाति जन्तुजुष्टमकालजम् ।
हिमानिलादिसंजुष्टं शुष्कमन्यत्र मूलकात् ॥ ४८२ ॥

जो शाक रूक्षसिद्ध (स्नेह के बिना पकाया गया) हो, परिजीर्ण (अति पुरातन

वा अति पक्व), अभूमिज (दुष्ट भूमि में उत्पन्न), अति कोमल, अति कठोर, जन्तुजुष्ट (कीटों से युक्त), अकालज (यथासमय अनुत्पन्न), और हिम, वायु आदि से दुष्ट हो, वह और मूली के विना (जिसे शुष्क प्रयोग करने में हानि नहीं), सब शुष्क शाक छोड़ देने चाहिएं ॥४८२॥

शाकेषु लाघवनिर्देशः।

यथोत्तरं च लघुता कन्दनालफलेष्वपि।
सपुष्पच्छदनेष्वेव विजानीयाद्भिषग्वरः ॥४८३॥

वद्य कन्द, नाल, फल, पुष्प और पत्र शाकों को उत्तरोत्तर हलका जाने ॥४८३॥

शुष्कशाकनिन्दा।

परिशुष्कं सर्वशाकं कार्श्यविष्टम्भवातकृत् ॥४८४॥

सब प्रकार के शुष्क शाक कृशता, विष्टम्भ और वायु को करते हैं ॥४८४॥

जीवन्ती सर्वशाकेषु वरा हीनस्तु सर्षपः ॥४८५॥

जीवन्ती सब शाकों में उत्तम और सर्षप (सरसों) निकृष्ट है ॥४८५॥

शाकप्रकाराः।

शाकं तु चतुर्विधं पुष्पपत्रकन्दफलाख्यं ॥४८६॥

शाकभेद—पुष्प, पत्र, कन्द (स्थूल मूल Tubor) और फल के भेद से शाक चार प्रकार का होता है ॥४८६॥

११०. कूष्माण्डम्[1]।

Benicassa Cerifera.
Pumpkin or white melon.
The well-known creeper.
Fruit Cooling, alterative, styptic and nervine tonic.

(हिं०) पेठा, कुम्हड़ा, कोहड़ा, (बं०) कुमड़ा, (म०) कोहोला, (गु०) भूरु कोलु।
सुप्रसिद्ध लता,फल गोल श्वेताभ। फल शीत, रसायन, रक्तस्तम्भक, चेतोरोगशमक।

---

१. फलशाकों में पेठा सर्वोत्तम और सुप्रसिद्ध शाक है। भारत में सर्वत्र और सदैव मिल जाता है। लता कद्दू के तुल्य होती है, जो सुप्रसिद्ध है। सम्पूर्ण फल दीर्घ काल तक बिगड़ने के बगैर ही पड़ा रहता है। फल प्रायः व्यञ्जनार्थ वा मिठाई बनाने में काम आता है। मिठाई बड़ी शीत और पौष्टिक है। रक्तपित्त, यक्ष्मा, सुज़ाक, रक्तमेहादि पैत्तिक विकारों तथा मानसिक रोगों में पेठे का प्रयोग शाक, मिठाई वा मधुमिश्रित स्वरस के रूप में बड़ा लाभकारी है। कई डाक्टरों ने यक्ष्मा की प्रथमावस्था में पेठे के प्रयोग को फलप्रद पाया है। यक्ष्मा रुक जाता है। पेठे के **बीज** मूत्रल हैं, उन को घोट कर ठंडाई के रूप में सुजाक में दे सकते हैं। कूष्माण्डतैल (जो बीजों के निष्पीड़न से निकलता है) पेट के कीड़ों (Tape-worm) को निकालने में Male Fern की तरह लाभकारी है। तैलमात्रा—

कूष्माण्डकी स्थिरफला पीतिका सोमका स्मृता ।
महाफला पुष्पफला कुमारी सोमयष्टिका ॥४८७॥

पर्याय—स्थिरफला (फल चिरकाल तक स्थिर रहता है जिस का), पीतिका (पीले पुष्पों वाला), सोमका (ठण्डा), महाफला (बड़े फल वाला), पुष्पफला (पुष्प से होने वाला फल, वा पुष्पवत् सुन्दर फल), सोमयष्टिका (शीत काष्ठ वाला) ॥ ४८७ ॥

कूष्माण्डं शीतलं वृष्यं स्वादुपाकरसं गुरु ।
हृद्यं रूक्षं सरं स्यन्दि श्लेष्मलं वातपित्तजित् ॥४८८॥
बालं पित्तहरं शीतं मध्यमं तु कफापहम् ।
पक्वं तु सर्वदोषघ्नं दीपनं बस्तिशोधनम् ॥४८९॥
लघूष्णं स्वादु सक्षारं पथ्यं चेतोविकारिणाम् ।
कूष्माण्डभाण्डी सक्षारा मधुरा रोचनी गुरुः ॥४९०॥
कफवातहरा रूक्षा शर्कराश्मरीभेदिनी ।
तन्मज्जा मधुरो वृष्यः पित्तहृद्बस्तिशोधनः ॥४९१॥
कूष्माण्डशाकं गुरु सन्निपातज्वरामशोफानिलदाहहारि ।
वह्निप्रदं रोचनमुष्णवीर्यं कफे सपित्ते च हितं सरं स्यात् ।
दोषत्रयं तस्य रसो निहन्ति ज्वरेषु पथ्यो लघुरग्निकारी ॥४९२॥
कूष्माण्डं[1] श्लेष्मलं विद्यान्नवं शरदि भक्षितम् ।
तदल्पदोषं भवति यत्तु संवत्सरोषितम् ॥४९३॥

स्यन्दि—अभिष्यन्दि, क्लेदकारी । **बालं**—तरुणफलं । **मध्यमं**—अर्द्धपक्वं फलं । **रसः**—स्वरसः । **कूष्माण्डं श्ले०**—तरुण कूष्माण्ड शरद ऋतु में खाया हुआ कफ को बढ़ाता है, परन्तु जो वर्ष भर पुराना हो, वह दोषरहित हो जाता है ॥ ४८८–९१ ॥

१११. राजकर्कटी[1] ।

Cucurbita maxima.	(हिं०) मिठा कद्दू, लाल कद्दू,
The red or sweet gourd.	कांशीफल, गोल कद्दू, (बं०)
An annual climbing herb.	विलाती कद्दू, (गु०) शाकर कोलु ।
Cooling and nutritive	प्रसिद्ध वार्षिक बृहद् लता ।
vegetable.	शीत पौष्टिक व्यञ्जन ।

१–२ तोले । **पक्वफल** का रस पारदविष (Mercurial Poison) को दूर करता है । **कूष्माण्डक्षार** (अन्तर्धूमविधि द्वारा निर्मित), उदरशूल (Colic) में लाभकारी है । १. यह सुप्रसिद्ध फलशाक सर्वत्र बाहुल्य से और सदैव मिल जाता है । इस का फल कभी २ बीस सेर तक भारी हो जाता है । यह व्यञ्जन और हलुवे के बनाने

गुड़योगफलाऽन्यारुः कर्कारू राजकर्कटी ।
कर्कारु मधुरं स्वादु पाके रूक्षं हिमं गुरु ॥४९४॥
रक्तपित्तहरं ग्राहि स्यन्दि विष्टम्भि दोषलम् ।
पक्कं पित्ताग्निरुचिकृत्सक्षारं श्लेष्मवातहृत् ॥४९५॥

गुड़योगफला—मधुर फल वाली । शेष—सुगम ॥४६४–६५॥

११२. कालिङ्गकम्[1] ।

Citrullus vulgaris.	(हिं०) तरबूज, (बं०) तरमूज,
The water-melon.	(म०) कलिंगड, (गु०) तरबूच ।
Well-known annual climber.	सुप्रसिद्ध वार्षिक लता ।
Cooling, diuretic, and strengthening.	फल शीत, मूत्रल, बलकर ।

कालिन्दकं स्यात्कालिङ्गं कृष्णबीजं प्रकीर्त्तितम् ।
कालिङ्गं शीतलं ग्राहि स्वादुपाकरसं गुरु ॥४९६॥
विष्टम्भि स्यन्दि दृक्शुक्रपित्तनुत् कफवातजित् ।
कालिङ्गपत्रं रुचिरं स्थापनं तिक्तमुच्यते ॥४९७॥

कृष्णबीजं—काले बीजों वाला । दृक्शुक्र०—दृष्टि, वीर्य और पित्त को हरने वाला । रुचिरं—रोचकं । स्थापनं—रक्तस्थापकं ॥४९६–७॥

११३. स्वादुतुम्बी[2] ।

Lagenaria vulgaris.	(हिं०) कद्दू, घिया कद्दू, लाऊ, लौकी, (बं०) लाऊ, (गु०) दुधलुं, (म०) दुध्या भोंपाल ।
The Bottle Gourd.	
A large annual trailer.	प्रसिद्ध वार्षिक वल्ली ।
Cooling, antibilious and refreshing.	शीत, पित्तहर, हृद्य फलशाक ।

में काम आता है, और शीत तथा पौष्टिक आहार है । इस के **बीज** छिलके सहित भून कर और शर्करा से मिलाकर ½ छ० रात्रि सोते समय खिला दें, प्रातः एरण्ड-तैल पिला दें । इस से पृथुकृमि Tapeworm) निकल जाते हैं । बीजों का तैल भी कूष्माण्डतैलवत् व्यवहार कर सकते हैं । १. यह प्रसिद्ध लता सब जगह मिलती है, परन्तु इस का प्रिय स्थान मरुदेश है, जहां बहुत बड़े तरबूज (१ मन भर के) मिल जाते हैं । यह वहां ग्रीष्म काल में ही होते हैं । बालुमय भूमि में यात्रियों के समूह को जहां यह दो चार फल मिल जाते हैं, इन से उन की सुतृप्ति और तृषाशान्ति हो जाती है । कालिंगजल बहुत मधुर, रुचिकर और तृषाशमक है । **कालिङ्गबीज** का शीतकषाय (ठंडाई) शीत और मूत्रल है । २. **कद्दू** सर्वत्र सुलभ है । फल दो प्रकार के मिलते हैं, (१) गोल कद्दू, २) लम्बा कद्दू ।

राजालाबुर्महातुम्बी मधुरालाबुनी मता ।
शाकालाबुस्तुम्बकः स्यात् भक्षालाबुरलाबुनी ॥४९८॥
राजालाबु हिमं रूक्षं रुच्यं विष्टम्भि वातलम् ।
स्वादु पाकरसं भेदि कफपित्तहरं गुरु ॥४९९॥
तद्वच्छ्लेष्मकरं तुम्बीशाकं गुरु विषापहम् ।
कृमिश्रमहरं ग्राहि हिमं वैशद्यनाशनम् ॥५००॥
अलाबुनलिका गुर्वी मधुरा पित्तनाशिनी ।
वातश्लेष्मकरी स्निग्धा शीतला मलभेदिनी ॥५०१॥

राजालाबु—बड़ा कद्दू । **मधुरालाबुनी**—मीठा लाऊ । **शाकालाबु**—शाकार्थ व्यवहार होने वाला कद्दू । **तुम्बकः**—तूम्बा । **भक्षालाबु**—खाने योग्य अलाबु । **तुम्बीशाकः**—अलाबु के पत्रों का शाक । **अलाबूनलिका**—कद्दू की नाल वा डण्ठल । **मल भेदिनी**—रेचक ॥४९८-५०१॥

११४. कटुतुम्बी[1] ।

Bitter variety of No. 113. Bitter, emetic and purgative.	(हिं०) कड़वी तुम्बी, तित् लौकी, (बं०) तित् लाऊ, (म०) कडवा भोपला, (गु०) कडवी तुंवड़ी । तिक्त, वामक, रेचक ।

तुम्बी लम्बा पिण्डफला राजन्या प्रवराऽपरा ।
कटुतुम्बी तिक्तबीजा तिक्तालाबुर्महाफला ॥५०२॥
राजपुत्री पिण्डफला दुग्धिनीका च दुग्धिका ।
तुम्बी तिक्ता कटुः पाके वामनी वातपित्तजित् ॥५०३॥
अहृद्या शीतला कासश्वासज्वरविषापहा ।
अलाबुपत्रं मधुरं पित्तघ्नं मूत्रशोधनम् ॥५०४॥

वामनी—वान्तिकारक, कै कराने वाली ॥ ५०२-४ ॥

गुणों में दोनों समान हैं । कद्दू का व्यञ्जन बड़ा शीत, पित्तशमक और लघु है । ज्वरसन्ताप और प्रलाप में कद्दू सिर और मस्तक पर, तथा हस्तपाददाह में हाथ और पाओं पर मला जाता है । अलाबूतैल (रोगन कद्दू) जो कद्दू के बीजों से निकलता है, शिरोवेदना में सिर पर लगाते हैं । यह सोमात्मक है ।

१. इस की लता अलाबु के सदृश है । फल भी तद्वत, परन्तु स्वाद में तिक्त । इस के खाने से वान्ति और रेचन हो जाता है । कहीं २ एतदर्थ इस का प्रयोग होता है । इस के पत्रों का क्वाथ शर्करामिश्रित कामला में लाभकारी है । पक्व फल, जो नाना प्रकार के होते हैं, शुष्क होकर तैरने वा बजाने वाले तूम्बों के निर्माण में काम आते हैं । पंजाब में एक चपटा कद्दू **'चपणी'** (Squash Gourd) के नाम से मिलता है, यह भी अलाबु का भेद है ।

११५. कर्कटी[1]।

Cucumis utilissimus.	(हिं०) ककड़ी, तर, (बं०) कांकुड,
The cucumber.	(म०) कांकड़ी, (गु०) कांकडी।
An annual climber.	सुप्रसिद्ध वार्षिक लता तथा फल।
Cooling, refreshing & diuretic	शीत, हृद्य, मूत्रल।

११६. त्रपुसम्[2]।

Cucumis Sativus.	(हिं०) खीरा, (बं०) शशा, (म०)
The cucumber.	तवसें, खिरा, (गु०) तांसली।
An annual creeper.	प्रसिद्ध वार्षिक लता, फल
Cooling, diuretic and refreshing.	लम्बवर्त्तुल। शीत, मूत्रल, हृद्य।

(१) कर्कटी लोमशी स्वाद्वी व्यालपत्रा बृहत्फला।
गजदन्तफलैर्वारुरुर्वारुर्मूत्रला मता ॥५०५॥

(२) त्रपुसं वसुधावासो मूत्रलं कटुकं तथा।
अपरं कटुकं तिक्तं विपाण्डुर्हस्तिपर्णिनी।
दीपनीया मूत्रफला पाण्डुपत्रा मुखप्रिया ॥५०६॥

पर्याय—(१) लोमशी (रोमदार), स्वाद्वी (मीठी), व्यालपत्रा (खर पत्रों वाली), बृहत्फला (बड़े फल वाली), गजदन्तफला (हाथी दांत के तुल्य फल है जिसका), मूत्रला (मूत्रप्रवर्तक—Diuretic)। (२) वसुधावास (भूमि पर चलती है लता जिसकी), हस्तिपर्णिनी (बड़े पत्रों वाला), पाण्डुपत्रा (श्वेत पत्तों वाला), मुखप्रिया (मुख को प्रिय लगने वाला) ॥५०५-६॥

एर्वारुकद्वयं स्वादु रूक्षं तिक्तं हिमं गुरु।
रुच्यं संग्राहि कृच्छ्रघ्नं ज्वरवातकफप्रदम् ॥५०७॥
पक्वं पित्ताग्निकार्युष्णं दोषतृट्क्लमदाहजित्।
तत्पाण्डुकफकृज्जीर्णमम्लं वातकफापहम् ॥५०८॥
एर्वारुकस्य पत्रं तु प्रसेकि क्लेदनं परम्।
गुरूग्रगन्धि त्रपुसं न वर्षासु हितं भवेत्।
तदल्पदोषं भवति हेमन्ते त्रपुसं नवम् ॥५०९॥

१.-२. ककड़ी और खीरा दोनों ही बड़े प्रसिद्ध ग्रीष्म ऋतु के फलशाक हैं। यह प्रायः कच्चे खाए जाते हैं। उन्हें नमक तथा काली मरिच के बिना खाना उचित नहीं। उन का व्यञ्जन भी बड़ा रुचिकर और लघु है। रोगियों के लिए सुन्दर पथ्य शाक है। इन के बीज शीत और मूत्रल हैं, अतः सुजाक और मूत्रकृच्छ्र में दिए जाते हैं। उन का तैल भी पैत्तिक शिरोवेदना में सिर पर मला जाता है। कहीं २ एर्वारुक से फुट (खर्बूजे का भेद) ग्रहण होती है। यहां कर्कटी का ही पर्याय है।

एर्वारुकद्वयं—कर्कटीत्रपुसे । **कृच्छ्रघ्नं**—मूत्रकृच्छ्रहरं । **क्लमं**—क्लान्तिः (थकावट)। **प्रसेकि**—कफपातकं ॥५०७-९॥

११७. चिर्भटम्[1] ।

Cucumis Pubescens. Pubescent cucumber. An annual creeper. Fruit astringent, sour and digestive.

(हिं०) कचड़ी, चिभड़, गोरख-ककड़ी, (बं०) काकुड़, (म०) चिबूड़, टक्मकें, (गु०) चिभड़ां। प्रसिद्ध वार्षिक वल्ली। फल ग्राहि, अम्ल, पाचन, दीपन।

गोरक्षकर्कटी ज्ञेया गोदुग्धं चिर्भटं स्मृतम् ।
चिर्भटं मधुरं पाके रूक्षं स्वादूषणं गुरु ॥५१०॥
अनुष्णं ग्राहि विष्टम्भि बालं चानिलकोपनम् ।
कफपित्तहरं स्यन्दि पक्वमुष्णं तु पित्तलम् ॥५११॥
सक्षारमुष्णं वितनोति वह्निं पित्तावहं तल्लघु रोचनं च ।
साष्ठीलमानाहमपाकरोति फलं तु तिक्तं गजचिर्भटस्य ॥५१२॥

सक्षार०—जो चिर्भट खारा हो, वह अग्नि को प्रदीप्त करता है, पित्तप्रवर्तक, लघु और रुचिकर है, तथा अष्ठीला (वस्ति प्रदेश में पत्थर के तुल्य गोल लम्बी कठोर शोथविशेष), और आनाह को दूर करता है। गजचिर्भट (बड़े चिभड़) का फल तिक्त होता है ॥५१०-१२॥

११८. चीनाकम्[2] ?

११९. तिन्दसम्[3] ।

Citrullus fistulosus. An annual creeper. Cooling and antibilious vegetable.

(हिं०, पं०) टिंडा, टेंडा, ढेंडश। वार्षिक लता, फल गोल, रोमश। शीत, पित्तशामक फलशाक।

---

१. **चिर्भट** की वल्ली ककड़ी के सदृश होती है। यह सब जगह मिल जाती है, परन्तु बालुमय भूमि में अधिक मिलती है। फल गोलाकार, व्यास में लगभग १ इंच, हरिताभ और श्वेत बिन्दुओं वा रेखाओं से चित्रित होता है। **आम** फल किंचित् तिक्त, कषाय और **पक्व** व्यक्ताम्ल तथा बीजों से पूर्ण, और **फलकोष** स्थूल और कठोर होता है। जहां ताजा मिलता है, लोग इसे कच्चा ही खा जाते हैं, अन्यथा शुष्क चिर्भट **'कचड़ी'** के नाम से बाजार में मिलता है। कचड़ी अम्ल और दीपनपाचन है। इसे दाल वा अन्य शाकों में डाला जाता है। मृगाक्षी आदि चिर्भट के कई भेद हैं, जो आकार में इस से बड़े और मृदु होते हैं। २. यह **त्रपुस** वा कर्कटी (Cucumber) का भेदविशेष है, परन्तु इस समय इस नाम से प्रसिद्ध कोई फल नहीं मिलता। सम्भव है, कि नामान्तर से प्रसिद्ध हो। ३. **तिन्दस**

चीनाकं चीनकं चीनातिन्दुकं तिन्दसं तथा।
चीनाकतिन्दिसे स्वादू रसे पाके च भेदिनी।
गुरुणी स्यन्दने रूक्षे पित्तघ्ने कफवातले ॥५१३॥

१२०. बालकम्[1] ?

बालकं मूत्रलं मूत्रफलं केशाम्बुकाण्डके।
अपरं तु विपाण्डु स्यान्मूत्रशोधनकं मतम् ॥५१४॥
बालकं मधुरं तिक्तं रुच्यं रूक्षं हिमं गुरु।
भेदि विष्टम्भ्यभिष्यन्दि मूत्रलं रक्तपित्तजित्।
पक्वं कफापहं हृद्यं सक्षारं दीपनं लघु ॥५१५॥

१२१. वनत्रपुसम्[2]।

A wild variety of No. 116.	सं० ११६ का भेदविशेष।
Wild Cucumber.	जंगली खीरा।
Bitter, purgative and emetic	तिक्त, रेचक, वामक।

मुखवासः शीर्णवृन्तो वनत्रपुसकं मतम्।
विचित्रं पाण्डुरं चित्रफलं च वरतिक्तकम् ॥५१६॥
अरण्यत्रपुसं रूक्षं तिक्तं संग्राहि वामनम्।
हन्ति कृच्छ्रकफानाहमष्ठीलामुदराणि च ॥५१७॥
शीर्णवृन्तं स्वादु तिक्तं क्षारं रुच्यग्निपित्तकृत्।
हृद्यं भेद्युष्णमष्ठीलानाहदोषास्रजिल्लघु ॥५१८॥

विचित्रं—नाना प्रकार के चित्रों वा रेखाओं से युक्त। **पाण्डुरं**—श्वेताभ। **चित्रफलं**—चित्रित वा रेखाङ्कित फल। **वरतिक्तं**—बहुत कड़वा ॥५१६–१८॥

(टिंडा) पंजाब, संयुक्त प्रान्त और सिंध में बहुत होता है, अन्य प्रान्तों में लोग इसे नहीं जानते। फल गोलाकार, परन्तु वृन्त पर कुछ चपटा होता है, उस पर अति मृदु सूक्ष्म रोम होते हैं, अतः इसे 'रोमश' फल भी कहते हैं। जिस फल पर यह न हों, वह पक्व और शाक बनाने के अयोग्य समझना चाहिए। इस का व्यञ्जन बड़ा स्वादु, रुचिकर, लघु और पित्तहर है। सब रोगों में सुन्दर पथ्य है। १. यह भी त्रपुस वा कर्कटी का प्रकारविशेष है, कर्कटी वा त्रपुस की शास्त्रों में लगभग १५ जातियां हैं। धन्वन्तरिनिघण्टु में बालक के स्थान पर 'बालुक वा बालुकी' शब्द का उल्लेख है। बालक से ह्रीवेर (नेत्रवाला) ग्रहण करना भूल है। यहां फलशाकों का वर्णन हो रहा है। २. यह खीरे का भेदविशेष है। ध० नि० में **'शीर्णवृन्त'** का पाठ पृथक् है, जो खीरे वा कर्कटी का भेद है।

त्रपुसादीनां सामान्यगुणाः।

त्रपुसैर्वारुककर्कारुकूष्माण्डालाबुचिर्भटाः।
मधुरा रूक्षणाः शीता गौरवं चोत्तरोत्तरम् ॥५१९॥

त्रपुसादि फलशाक मधुर, रूक्ष, शीत और उत्तरोत्तर गुरु हैं ॥५१९॥

१२२. पटोलः[1] (तिक्तः)[1]

Trichosanthes Cucumerina. A pubescent climber. Leaves bitter tonic and antifebrile; root a cathartic; and fruit antibilious, laxative, and febrifuge.

(हिं०) कड़वा परवल, (बं०) तित् पटोल, तित् पल्ता, (म०) कडवा पडवल, (गु०) कड़वा पटोल। पत्र तिक्त रसायन, ज्वरघ्न; मूल तीव्ररेचन; फल पित्तहर, रेचक, ज्वरघ्न।

राजिफलः पाण्डुफलः पाण्डुकः कर्कशच्छदः।
जाती तु कूलको ज्योत्स्ना राजीमानमृतफलः ॥५२०॥
तिक्तोत्तमा बीजगर्भाऽपरा राजपटोलिका।
अस्या मूलं तु रमणं पटुपत्रं प्रकीर्त्तितम् ॥५२१॥

पर्याय—राजिफल (रेखायुक्त फल), पाण्डुफल (श्वेताभ फल), पाण्डुक

---

१. **पटोल** मधुर और तिक्त भेद से दो प्रकार का है, यहां तिक्त पटोल ही अभिप्रेत है। इस की वल्ली स्वभावतः जंगलों में मिलती है। **पत्र** कुछ वृक्काकार, २–४ इंच परिमाण में, और स्पर्श में खर, अतः पटोल को 'कर्कशच्छद' कहते हैं। **पुष्प** श्वेत, **फल** पूर्व नीलहरित, पुनः श्वेतरक्त, बीजपूर्ण, और १ इंच चौड़ा, ३ इंच लम्बा, करेले की तरह गोल, परन्तु मसृण। **बीज** भिंडी के बीज के तुल्य। इस के सब भाग तिक्त होते हैं। **पटोलपत्र** १ तोला और धान्यक १ तोला एकत्र अष्टगुण जल में रात्रि को भिगो रखे, प्रातः जल छान कर उस में मधु मिला दें। यह शीत कषाय पैत्तिक ज्वरों को शीघ्र कुनीनवत् शान्त कर देता है। **पटोलमूल** तीव्ररेचन है, अतः जलोदर में प्रायः दिया जाता है। **तिक्त फल** ज्वरों और पैत्तिक रोगों में शाकार्थ व्यवहार होता है। **पटोलनाल** कफनाशक है और **बीज** ज्वरनाशक तथा कृमिघ्न हैं। पटोल पंजाब, सिन्ध और मरुदेश को छोड़ कर अन्य सब जगह होता है। **मधुर पटोल** (T. dioica) इस तिक्त पटोल को यत्न से पुनः २ लगाकर प्राप्त किया गया है। यह यू० पी०, मद्रास, बम्बे, बंगादि उष्ण आनूप देशों में बहुत पैदा किया जाता है, और इस का फल तिक्त न होने से शाकार्थ व्यवहार होता है। बंगाली लोग तैलभृष्ट पटोल तथा उस के पकौड़े बड़े स्वादु बनाते हैं। इन के पत्रों में अत्यल्प तिक्तता होने से उन का शाक भी बनता है। परवल के फल पंजाब में यू० पी० से आजाते हैं, परन्तु पंजाबी लोग इसे व्यवहार बहुत कम करते हैं।

(श्वेताभ), कर्कशच्छद (खर पत्रों वाला), ज्योत्स्ना (चान्दनीवत् श्वेत भीतर से वा सोमगुणात्मक), राजीमान् (लकीरों वाला), अमृतफल (अमृततुल्य फल), तिक्तोत्तमा (श्रेष्ठ तिक्त फल), बीजगर्भ (बीजों से पूर्ण फल), राजपटोलिका (बड़ा पटोल) ॥५२०-२१॥

पटोलः कटुस्तिक्तः सरोष्णः कफपित्तनुत्।
कण्डूदाहतृषाकोष्ठकुष्ठरक्तज्वरान् जयेत् ॥५२२॥
फलं तस्य कटु स्वादु पाके तिक्तं रसे लघु।
मलानुलोमनं वृष्यं हृद्यं दीपनपाचनम् ॥५२३॥
स्निग्धोष्णं रोचनं हन्ति दोषश्वासज्वरकृमीन्।
पटोलपत्रं पित्तघ्नं वल्ली चास्य कफापहा।
फलं त्रिदोषशमनं मूलं चास्य विरेचनम् ॥५२४॥
मूलं सरं वातहरं पलाशनालं ज्वरघ्नं तु फलं पटोल्याः।
तिक्तं त्रिदोषज्वरमेहकुष्ठकासकृमिघ्नं रुचिकृत्कटुक्याः ॥५२५॥

सरोष्णः—सर (रेचक) और उष्ण (गरम)। वल्ली—काण्ड। पलाशनालं—पत्रनाल (डण्ठल) ॥५२२-२५॥

१२३. तिक्तकोशातकी[1]।

Luffa amara.	(हिं०) कड़वी तोरई, जंगली तोरई,
Bitter Luffa.	(बं०) घोषालता, (म०) कडूदोड़की,
A wild annual climber.	(गु०) कडवी घीसोडी।
All parts bitter, emetic	वनजा वार्षिक लता।
and purgative.	सर्वशः तिक्त, वामक, रेचक।

श्वेतघोषा कृमिच्छिद्रा घण्टाली कृतवेधना।
मृदङ्गकः कोशवती मृदङ्गफलिका तथा ॥५२६॥
कोशातकी कर्ककोटी जालिनी कर्कशच्छदा।
क्ष्वेडः सुतिक्ता घण्टाली ज्योत्स्ना जाली च घोषकः ॥५२७॥

---

१. कोशातकी के ३ भेद मिलते हैं, (१) तिक्त कोशातकी, (२) राजकोशातकी, (३) महाकोशातकी, इन की लताओं में परस्पर भेद बहुत थोड़ा है, जो तीनों को एक साथ देखने से समझ में आसकता है। तिक्त कोशातकी स्वभावतः वनों में वृक्षों पर चढ़ी हुई मिल जाती है। पंजाब में कम मिलती है, बंगदेश वा सं० प्रा० में प्रचुरता से वृक्षों पर देखी जाती है। इस का व्यञ्जन नहीं बनता, क्योंकि यह लता सर्वशः (पत्रफलादि में) अत्यन्त तिक्त होती है। फल (आर्द्र वा शुष्क) तथा बीज वामक और रेचक हैं। १५-२० दिन तक निरन्तर १ तोला प्रातः और १ तोला सायं क्वाथ पिलाने से यकृत्, प्लीहा, वा जलोदर रोग में बड़ा लाभ पहुंचता है। शुष्क फल की नस्य कामला में दी जाती है।

पर्याय—श्वेतघोषा (सफेद फल), कृमिच्छिद्रा (कीट हैं जिस के छिद्रों में), घण्टालिका (घोषा, घण्टा वा शब्दकर यन्त्र), कृतवेधना (काटने वाली, तीच्ण), मृदङ्गक (मृदङ्गाकार वा जिस से मृदङ्ग तबले आदि बनते हैं), कोशवती (कोश खोल वाली), मृदङ्गफलिका (मृदङ्गाकार फल), कोशातकी (कोशवती), जालिनी (तन्तुपूर्ण कोष), कर्कशच्छदा (खर पत्रों वाली), क्ष्वेड (विष वा शब्दमय मृदङ्गादि बनने से), सुतिक्ता (बहुत कड़वी), ज्योत्स्ना (श्वेत) ॥५२६–२७॥

कोशातकी कटुस्तीक्ष्णा पक्वामाशयशोधनी ।
लघ्वी रूक्षा कटुः पाके जयेत् कासगरोदरम् ॥५२८॥
पाण्डुशोफकफप्लीहगुल्मार्शःकुष्ठकामलाः ।
फलमस्याः कटु स्निग्धं तिक्तं पाके हिमं लघु ॥५२९॥
दीपनं भेदनं हृद्यं वातलं हन्त्यरोचकम् ।
कासमेहज्वरश्वासकुष्ठपित्तकफानिलान् ॥५३०॥

पक्वामाशयशोधनी (पक्वाशयशोधक—रेचक, आमाशयशोधक—वामक), गर—विष ॥५२८–३०॥

१२४. राजकोशातकी[1] ।

Luffa acutangula.	(हिं०) तोरई, घिया तोरई, (बं०)
Acute-angled Luffa.	झिंगा, (म०) दोडकी, शिराली,
	(गु०) तुरियां ।
A large hairy annual climber.	रोमश वार्षिक लता, फल धारामय ।
A cool and light vegetable.	शीत तथा लघु फलशाक ।

राजकोशातकी हस्तिपर्णिका पीतपुष्पिका ।
धामार्गवः कोशफला महाजाली सपीतकः ॥५३१॥
राजकोशातकी तिक्ता मधुरा कफवातला ।
पित्तघ्नी दीपनी हन्ति कासश्वासज्वरकृमीन् ॥५३२॥

१२५. महाकोशातकी[2] ।

Luffa aegyptiaca.	(हिं०) मूंगी तोरई, (बं०) धुन्दुल,
Luffa without ridges.	(म०)घोषाली, (गु०) तुरयां, गलकां ।
A large hairy climber.	रोमश वार्षिक लता । फल धारा-
A light cool vegetable.	रहित। लघु शीत फलशाक ।

१. यह वह **तोरई है,** जिस का वर्ण हरित और जिस पर लगभग १० धाराएं वा रेखाएं होती हैं । इन में कोई २ तोरई सर्वांश बड़ी कड़वी होती है, और कोई केवल एक ओर, परन्तु बहुधा इन में तिक्तता का अभाव ही होता है । यह कच्ची शाकार्थ व्यवहार होती है । पक्व तोरई के बीज वामक और रेचक होते हैं । **पत्रस्वरस** वर्त्मार्श (कुकरों) को दूर करने के लिए नेत्र में डाला जाता है । **पत्रकल्क** मधुसहित खाना अर्श, प्लीहा और कुष्ठ में लाभकारी है । २. **महाकोशातकी**

अन्यात्वेभ्यां हस्तिघोषा महत्पुष्पा सपीतिका ।
हमाकोशातकी तस्याः कथितं जाङ्गलं फलम् ।
हस्तिघोषा सरा स्निग्धा मधुरा श्लेष्मला गुरुः ॥५३३॥

हस्तिघोषा (बड़ी तोरई), महत्पुष्पा (बड़े फूलों वाली), सपीतिका (पीले फूलों वाली) । उस का जंगली फल महाकोशातकी कहलाता है ॥ ५३३ ॥

१२६. वार्त्ताकम्[1] ।

Solanum Melongena.	(हिं०) बैंगन, (बं०) बेगुन, (म०)
The Brinjal or Egg-plant.	बांगे, (गु०) रिंगणी ।
A prickly annual herb.	कांटेदार वार्षिक क्षुप ।
A heavy indigestible fruit.	गुरु दुष्पाच्य फलशाक ।

वातिङ्गिनी च वृन्ताकी वार्ताकी चौरभाण्डिका ।
वार्त्ताकं कटु तिक्तोष्णं कटुपाकमपित्तलम् ॥५३४॥
मधुरं दीपनं हृद्यं सक्षारं शुक्रलं लघु ।
कफवातहरं हन्ति ज्वरकासारुचिक्रमीन् ॥५३५॥
तत्पक्वं पित्तलं क्षारं बालं कासज्वरापहम् ।
त्रिदोषशमनं पथ्यं मधुरं रसपाकयोः ॥५३६॥
रुच्यं ज्वरघ्नमर्शोघ्नं क्षुद्रवातिङ्गिनीफलम् ।
श्लेष्मलं सृष्टविण्मूत्रं शीतलं गुरु बृंहणम् ॥५३७॥
वातपित्तकरं वृष्यं स्थूलवातिङ्गिनीफलम् ।
वार्त्ताकं कोमलं पथ्यं चक्षुष्यं सर्वदोषजित् ।
मध्यमं पित्तजननं पक्वं वातप्रकोपणम् ॥५३८॥

वृन्ताकी (वृन्तमय), वार्ताकी (वृत्त, गोल, अण्डाकार), चौरभाण्डिका (चोर का बर्तन) । **अपित्तलं**—ईषत्पित्तलं । **बालं**—कच्चा छोटा फल । **क्षुद्र०**—छोटे बैंगन का फल ॥५३४–३८॥

राजकोशातकी से बड़ी होती है, और उस पर रेखाओं वा धाराओं का अभाव होता है । इस का व्यवहार राजकोशातकी के सदृश जानें । इन दोनों का शाक लघु, शीत और रोगियों के लिए पथ्य है । १. **बैंगन** भारत में सर्वत्र मिलता **है** । इस के पत्र और शाखाएं कण्टकावृत होती हैं । यदि भूमि अच्छी हो, तो कण्टक कम होते हैं । वार्त्ताकु दो प्रकार के मिलते हैं, (क) गोल—S. insanum, (ख) दीर्घ वर्तुलाकार—S. longum. दीर्घ वार्त्ताकु उत्तम होता है, परन्तु दोनों गुरु, गरम, कफपित्तकर और दुष्पाच्य हैं । उनका अधिक व्यवहार उचित नहीं । अजीर्णी और प्रमेही लोग उसे जितना थोड़ा खाएं, उतना अच्छा है । छोटा मृदु बैंगुन लाभपूर्वक खाया जा सकता है । **बीज** गरम और काबिज़ होते हैं ।

१२७. बिम्बी[1] ।

Cephalandra indica.
A climbing annual herb.
Bitter alterative and anti-diabetic.

(हिं०) कन्दूरी, (बं०) तेलाकुचा, (म०) कोंडं वली, (गु०) घोली । वार्षिक लता । फल सुन्दर रक्त । तिक्त, रसायन, प्रमेहनाशक ।

बिम्बी रक्तफला चोष्णफला विद्रुमपाक्यपि ।
दन्तच्छदा तुण्डिकेरी तुण्डी गोह्ला च तिन्तिड़ी ॥५३९॥
तुण्डिकेरफला विद्रुमफला पीलुपर्णिका ।
बिम्बी स्वाद्वी रसे पाके वामन्यश्लेष्मला ॥५४०॥
शाकं तु मधुरं तिक्तं कषायं तु शीतलं लघु ।
सग्राहि कटुकं पाके वातलं कफपित्तजित् ॥५४१॥
तिक्तं प्रसूनं पित्तघ्नं तत्परं कामलापहम् ।
बिम्बीफलं स्वादु शीतं स्तम्भनं लेखनं गुरु ॥५४२॥
पित्तास्रदाहशोषघ्नं वाताध्मानविबन्धकृत् ।
तिक्तबिम्बीफलं तिक्तं पित्तघ्नं वातकोपनम् ॥५४३॥
विषघ्नमतिरुच्यं स्याद्गुरु श्लेष्मकरं न च ।
शोफास्रपाण्डून् जयति न मेध्यं छर्दिकृत्परम् ॥५४४॥

पर्याय—बिम्बी (बिम्बाकार), रक्तफला (लाल फलों वाली), विद्रुमपाकी (पककर विद्रुम प्रवाल के तुल्य लाल हो जाने वाली), दन्तच्छदा (दन्दानेदार वा खर पत्र हैं जिसके), तुण्डिकेरी (शुकतुण्डवत् रक्त), तुण्डी (शुकतुण्डाकार) । **प्रसूनं-**

---

१. **बिम्बी** पंजाब में विरल, परन्तु पर्वतों एवं बंग, यू० पी०, मलयादि प्रान्तों में प्रचुरता से पाई जाती है। यह **तिक्त** और **मधुर** भेद से दो प्रकार की है। **तिक्त बिम्बी** वनों में स्वाभाविक रूप में मिलती है और **मधुर बिम्बी** की वल्ली लगाई जाती है। उसके फल और पत्र दोनों शाकार्थ काम आते हैं । बिम्बी के **पत्र** पटोल वा कपास के पत्तों से कुछ २ मिलते हैं। पत्र सम्पूर्ण नहीं होता, प्रत्युत कटा हुआ पञ्चकोणाकार (five-angled) बन जाता है, और २–४ इञ्च व्यास में होता है। **फल** अपक्वावस्था में हरित, परन्तु पक कर उज्ज्वल रक्त (Bright red) वर्ण का हो जाता है, जिसकी उपमा कवियों ने बिम्बौष्ठ आदि शब्दों में दी है। फल ओष्ठवत् रक्त होता है, वा सुन्दर युवतियों के ओष्ठ बिम्बीफलवत् रक्त होने चाहिएं। फल की आकृति छोटे पटोल वा खज्जूर के तुल्य गोल लम्बी होती है। **तिक्तबिम्बी** का फल तिक्त, वामक और रेचक है। उसके पत्र तथा मूल भी तिक्त होते हैं। **मूलस्वरस** वा **पत्रस्वरस** बंगीय वैद्य मधुमेह वा अन्य प्रमेहों में भी चन्द्रप्रभावटी बसन्त-कुसुमाकर आदि के साथ अनुपान के रूप में देते हैं। स्वरसमात्रा–१ तोला। **पत्रकल्क** व्रणरोपक है। कहीं २ बिम्बी का प्रयोग सुज़ाक में भी किया जाता है।

फूल। न मेध्यं—बुद्धिवर्धक नहीं है। छर्दिकृत्—वामकं ॥५३९-४४॥

१२८. कारवेल्लकम्[1]।

Momordica Charantia. The well-known creeper. Stimulant, stomachic, anthelmintic and antirheumatic.	(हिं०) करेला, (बं०) करला उच्छे, (म०) कारलें, (गु०) कारेला। प्रसिद्ध पीतपुष्प वल्ली। उष्ण, दीपक, पाचक, कृमिघ्न, आमवातारि।

कण्डीरं काण्डकटुकं सुकाण्डं कारवेल्लकम्।
उग्रकाण्डं कठिल्लं स्यान्नासासंवेदनः कटुः ॥५४५॥

कण्डीर—काण्डमय। काण्डकटुकं—काण्ड में कटु वा तिक्त। सुकाण्डं-सुन्दर काण्ड वाला। उग्रकाण्डं—उग्रगन्धि काण्ड वाला। नासासंवेदनः—नासा को अपनी गन्ध जताने वाला, उग्रगन्धि ॥५४५॥

कारवेल्लदलं पथ्यं कृमिहृत्पित्तलं परम्।
कारवेल्लं सकटुकं कटुपाकमवातलम् ॥५४६॥
दीपनं भेदनं तिक्तमवृष्यमहिमं लघु।
हन्त्यरोचकपित्तास्रकफपाण्डुव्रणकृमीन् ॥५४७॥
श्वासकासप्रमेहाश्माकोठकुष्ठज्वरानपि।
क्षुद्राख्यं कारवेल्लं तु लघूष्णं कृमिवातजित् ॥५४८॥
दीपनं स्वादु पथ्यं च सर्वश्रेष्ठं च तद्विदः।
कारवेल्लीफलं वन्यं ज्वरार्शःकृमिनाशनम्।
कासघ्नं दीपनं हृद्यं सतिक्तं कफवातजित् ॥५४९॥

कारवेल्लदलं—करेले का पत्र। अहिमं—उष्ण। अश्म—पत्थरी। आकोठं—मण्डल। क्षुद्राख्यं कारवेल्लं—छोटा करेला, करेली। वन्यं—जंगली ॥५४६-४९॥

१२९. जलकारवेल्लकम्[2]।

A variety of No 128 growing in moist regions.	आनूप देश में होने वाला करेले का भेदविशेष।

---

२. कारवेल्ल सर्वत्र सुलभ और सर्वपरिचित है। यह दो प्रकार का है, (क) करेला बड़ा, जिस के नाम ऊपर दिए गए हैं, (ख) कारवेल्ली—करेली वा छोटा करेला (M. Muricata) इस पर छोटे २ अनेक उभार भी होते हैं। गुणों में दोनों सम हैं, परन्तु छोटा करेला ज्वरघ्न होने के कारण ज्वर में दिया जाता है। करेले का शाक ज्वर, आमवात, यकृत् तथा प्लीहा के रोग और कृमि में दिया जाता है। पैत्तिक रोगों में **पत्रस्वरस** देकर वमन और विरेचन कराये जाते हैं। पाददाह में पत्रस्वरस पाद पर मला जाता है, और पामादि त्वग्रोगों में प्रलेप के रूप में प्रयुक्त होता है। २. यह करेले का ही भेद है, जो जलाढय देशों में होता है और उसकी अपेक्षा अधिक तिक्त है।

पलाशिका बृहद्वल्ली[1] तोयवल्ल्यफलापि च ।
कारवल्ली करवल्ली[2] सुषवी[3] सुकुमारिका ।
कारवेल्लं तु जलजं कृमिपित्तकफे हितम् ॥५५०॥

पलाशिका—पत्रमय, बहुत पत्रों वाली । **बृहद्वल्ली**—बड़ी बेल । **तोयवल्ली**—जलाढ्य देश में होने वाली लता । **अफला**—छोटे फलों वाली वा फलरहित । **करवल्ली**—हस्ताकार पत्रों वाली वल्ली ॥५५०॥

१३०. बन्ध्याकर्कोटी[4] ।

Momordica dioica ?
A twining herb .
Bitter, errhine and antidote for many poisons.

(हिं०) बांझ ककोड़ा, बनककोड़ा, बांझ खखसा । (बं०) तित् कांकरोल, तित् कांकड़ी, (म०) बांझ करोली । लता कर्कटीवत् । तिक्त, छिक्काकर, विषघ्न ।

बन्ध्याकर्कोटी देवी विषप्रशमनी स्मृता ।
निष्फला मज्जमदनी मनोज्ञा विषकण्टका ॥५५१॥

बन्ध्याकर्कोटी—बांझ ककड़ी । **देवी**—कुमारी । **विषप्रशमनी**—विषनाशक । **कुमारिका**—सदैव कुमारी वा बांझ रहने वाली, फल न देने वाली । **नागरिपु**—सर्पशत्रु, सर्वविषनाशक । **विषकण्टकिनी**—विषप्रशमक । **निष्फला**—फलरहित, बांझ । **मज्जमदनी**—मज्जा है मदकारक जिस की । **मनोज्ञा**—सुन्दर, मदकर ॥५५१॥

बन्ध्या तिक्ता कटुस्तीक्ष्णा लघुर्व्रणविषास्रजित् ।
बलाससर्पदर्पघ्नी विषवीसर्पनाशनी[2] ॥५५२॥
कर्कोटक्याः कृमिघ्नं दलममृतरसं सर्वदोषापहारि (?) ।
रुच्यं वृष्यं ज्वरघ्नं क्षयकसनहरं श्वासहिक्कार्शसां च (?) ॥५५३॥
कर्ककोटफलं गुल्मशूलपित्तकफापहम् ।
प्रसेककुष्ठमेहघ्नमीषन्मधुरातिक्तकम् ।
कासश्वासज्वरहरं मारुतघ्नं परं लघु ॥५५४॥

बलास०—कफ और सर्प के अभिमान (विष) को हरने वाली । **कसन**—कास ॥५५२-५४॥

---

१. ब—वृत्तवल्ली । २. द—वारवल्ली । ३. यू-चुषवी । ४. **बन्ध्याकर्कोटी** ककोड़े का भेद है, जिस में फल नहीं आता, प्रत्युत एक कोष सा लगता है, अतः **इसे बन्ध्या** कहा जाता है । यह लता सं० प्रा० और बंगदेश में जंगलों में बहुत मिलती है । पंजाब में नहीं होती । यह सर्वांश: तिक्त है । लता की मूल में एक कन्द रहता है, जो कफनिःसारक और ज्वरघ्न है, तथा सर्पदंश पर बांधा जाता है । **शुष्कफल** का चूर्ण सूंघने से बहुत छींकें आती हैं, और नाक से प्रचुर पानी निकलता है । कन्द विषों में खाने एवं लगाने के लिए काम आता है । २. द—नास्ति ।

१३१. विषमुष्टिः[1] ?

विषमुष्टिः क्षुद्रमुष्टिः केशमुष्टिः सुमुष्टिका।
विषमुष्टिः कटुस्तिक्तः कफपित्तजित् ॥५५५॥
हन्ति मेदःकृमिश्वासगुल्मार्शोमूषिकाविषम्।
विष्टम्भि रोचनं चोष्णं सुमुष्टिफलमग्निकृत् ॥५५६॥

१३२. कोशशिम्बी[2]।

Dolichos Leb-leb.	(हिं०) सेम, सुअर सेम, (बं०)
The Bean.	शेमगाछ, (म०) खड्सां वेल,
A well-known creeper.	(गु०) तरवाड़ी। प्रसिद्ध लता।
A heavy nutritive pod.	गुरु, पौष्टिक फलशाक।

काकाण्डोला कोशशिम्बी[3] तथा शूकरपादिका।
दीर्घपुष्पी तु काकाण्डा खट्वा पर्यङ्कपादिका ॥५५७॥
काकाण्डोला रसे स्वादुर्वातघ्नी कफपित्तला।
शुक्राग्निसादकृद्वृष्या बद्धविड् रुचिदं गुरु ॥५५८॥

कोशशिम्बी—कोशमय सेम। **शूकरपादिका**—सुअर सेम, शूकरपादाकार पत्रों वाली। **काकाण्डा**—काकाण्डवत् बीजों वाली ॥५५७–५८॥

१३३. शूकशिम्बी।

Mucuna pruriens.	(हिं०) कौंच, कौंचबीज, (बं०)
The Cowhage plant.	आल्कुशि, (म०) कुहिली,
A semi-woody climber.	(गु०) किवांच।
Seeds nutritive, aphrodisiac,	काष्ठिक लता।
and nervine tonic.	बीज बृंहण, वृष्य, वातरोगनाशक।

---

१. **विषमुष्टि** कुचले का प्रसिद्ध नाम है, परन्तु यहां कुचला (Nux Vomica) अभिप्रेत नहीं, क्योंकि यहां फलशाकों का वर्णन हो रहा है, और कुचला शाक के रूप में अति तिक्त और घोर विष होने के कारण प्रयोग नहीं हो सकता। यहां कोई सुलभ फलशाक अतिप्रेत है, परंतु कुचला वृत्त बड़ा विरल और विशेष स्थलों में मिलता है। यह कोई तिक्त मुष्टिप्रमाण फल कर्कटी वा कर्कोटी का भेदविशेष है। श्रीकैयदेव ने इस का भाषा नाम 'डोडी' लिखा है। यदि कुचला मान लिया जावे, तो उस का विस्तृत वर्णन पीछे नं० ७४ में दे चुके हैं।
२. **शिम्बी** सब जगह मिल जाती है। इस की लता वृक्षों पर चढ़ी रहती है और ३, ४ वर्ष तक चली जाती है। आजकल शिम्बीफल अनेक प्रकार के मिलते हैं, मोटे, पतले, छोटे, लम्बे, श्वेत, हरित, देशीय, अंग्रेजी आदि। उन के बीज भी भिन्न २ आकृति और वर्ण के होते हैं। सेम की फली (Pod) ही शाकार्थ व्यवहार होती है। पत्रस्वरस मुख की झाईयों पर मला जाता है। ३. द–कोलशिम्बी।

ऋष्यप्रोक्ता शूकशिम्बी कपिरोमफलर्षभी।
कपिकच्छूरात्मगुप्ता कण्डूरा प्रावृषायणी ॥५५९॥
कण्डूकर्यजहा गुप्ता स्वयंगुप्ता च मर्कटी।
कपिलोमा वृषाध्यण्डा वामनी दुरभिग्रहा ॥५६०॥

पर्याय—ऋष्यप्रोक्ता (रीछ के सदृश), शूकशिम्बी (शूकावृत्त सेम, शूक-सुए, कांटे), **कपिरोमफला** (वन्दर के तुल्य रोमाच्छादित फल), ऋषभी (गोवत् रोमाकीर्ण फली), कण्डूरा (कण्डूकारक), प्रावृषायणी (प्रावृट् काल में होने वाली), कण्डूकरी, अजहा (वकरियों का भक्ष्य), वृषाध्यण्डा (वृषाण्डवत् शुभ्र), वामनी (वामक), दुरभिग्रहा (पकड़ने में कठिन) ॥५५९–६०॥

कपिकच्छूः स्वादुस्तिक्ता वातपित्तकफास्रजित्।
शीतलं बृंहणं वृष्यं माषतुल्यं तयोः फलम् ॥५६१॥
कपिकच्छूफलं वृष्यं शीतं स्वादुरसं गुरु।
रक्तपित्तानिलहरं दुष्टव्रणविशोधनम् ॥५६२॥

---

१. **कौंच** की लता पंजाव, सिन्ध वा मरु देश में नहीं मिलती, अन्यत्र और विशेषतः मध्य तथा बम्बई के प्रान्तों में बहुत होती है। **लताकाण्ड** मृदु नहीं होता, प्रत्युत कठोर और बहुवार्षिक (Perennial)। **पत्र** ३-४ इंच बड़े और रोमाच्छन्न। **फल** शिम्बीवत, परन्तु सूक्ष्म, तीक्ष्ण रोमाच्छादित। फल शरीर पर जहां लग जावे, वहां चिरकाल तक खुजली होती रहती है, जो बड़े प्रयत्न से और कई मास गुजरने पर जाती है। फल के भीतर से **बीज** निकलते हैं, जिन्हें **कौंचबीज** कहते हैं। **बीजकोष** हटाने पर श्वेत भक्ष्य पदार्थ (Starch-like) निकलते हैं, यह बड़ा पौष्टिक और वृष्य द्रव्य है। ये (३ माषे) समभाग शर्करा से मिलाकर रात्रि वा प्रातः दुग्ध से वीर्यवृद्ध्यर्थ दिया जा सकता है। उसे दुग्ध में उबाल कर पायस (खीर) बना सकते हैं, वा मूसली, राल, विदारीकन्द, बंगभस्म, कर्पूर, शर्करादि से मिलाकर अत्युपयोगी वीर्यस्तम्भक चूर्ण बना कर लाभ उठा सकते हैं। यह ध्यान रहे, कि बीज ताज़े हों, कृमिभक्षित न हों। उन से जो चूर्ण निकले, वह श्वेत हो। यह **बीजचूर्ण** वातरोग, श्वेतप्रदर तथा रजःकृच्छ्र में भी दिया जाता है। **रोमाकीर्ण फलकोष** (३-४ रक्ति) वा रोम (१ रक्ति) पेट के कीड़े निकालने के लिए मधु और मक्खन वा दही से मिलाकर दे सकते हैं, परन्तु उस के ६ घंटे बाद एरण्डतैल वा इच्छाभेदी रस विरेचनार्थ देना आवश्यक है, ताकि रोम निकल जावें, अन्यथा वे अन्त्रियों में क्षतादि अपकार करेंगे। **कपिकच्छूमूल** का कल्क योनि में धारण करने से वा उस के क्वाथ द्वारा योनिप्रक्षालन से योनि का संकोच हो जाता है। यहां शाकवर्ग में शूकशिम्बी का वर्णन करना शोभा नहीं देता। सम्भव है, कि कच्ची फलियां शाकार्थ व्यवहार होती हों। कौंच-बीज को थोडा सा भून लिया जावे, तो उस का कोष शीघ्र टूट जाता है॥

१३४. वनशिम्बी[1]।

Wild Bean (See No. 132.) । जंगली सेम (देखो नं० १३२)

कुशिम्बीवल्ली कुत्साम्रशिम्बी पुस्तकशिम्बिका।
पुस्तशिम्बी तु मधुरा रसे पाके हिमा गुरुः ॥५६३॥
वातपित्तहरा बल्या श्लेष्मला दाहनाशनी।
वनशिम्बीफलं स्वादु पित्तलं कृमिकारकम्।
विसर्पकहरं रुच्यं विशेषाद्विद्रधिं जयेत् ॥५६४॥

कुशिम्बीवल्ली (कुत्सित सेम की लता), पुस्तकशिम्बी (मोटी बेडौल सेम) ॥५६३-४॥

१३५. श्लेष्मातकः[2]।

Cordia Myxa.
A moderate-sized deciduous tree. Ripe fruit demulcent, mucilaginous, cooling and anticatarrhal.

(हिं०) लिसोड़ा, निसोड़ा, लसूड़ा, (म०) भोंकर, (गु०) गुन्दो मोटो। साधारण वृक्ष। पक्क फल स्निग्ध, पिच्छल, शीत, प्रतिश्यायघ्न।

---

१. यह सेम का जंगली भेद है, जो आकृति में बड़ा बेडौल और फल कठोर सा होता है। २. श्लेष्मातक पंजाब में बहुत होता है, परन्तु बंगदेश तथा मद्रास में इस का सर्वथा अभाव है, अतः इस का कोई बंगाली नाम नहीं दिया गया। बंगालियों के हां एक छोटा सा अन्य पादप है, जिस के फल को बहुवारं कहते हैं, क्योंकि उस के ऊपर बहुत से वार (परदे) होते हैं, यह बहुत कुछ लकुच (नं०९१) से मिलता है। इस का अचार डाला जाता है। श्लेष्मातक (लिसूड़ा) का वृक्ष ३०-४० फुट तक ऊंचा जाता है, उस का कांड सरल नहीं होता। **पत्र** प्रायः गोल, परन्तु किनारा कटा हुआ। **फल** गोल $\frac{1}{2}$-$\frac{3}{4}$ इंच व्यास में, अपक्वावस्था में हरित, पक्वावस्था में मृदु, रक्तपीत, और लेसदार रस से परिपूर्ण, अस्थि एक और कठोर। कच्चा फल अचार में काम आता है, सम्भव है कि कभी इस का व्यञ्जन बनता हो, जिस कारण से इसे शाकवर्ग में सम्मिलित किया गया है। औषध में शुष्क श्लेष्मातकफल ही काम आता है, इस का क्वाथ बड़ा लेसदार है, और इसी कारण से शरीर के आभ्यन्तरिक मार्गों में, जहां रूक्षता और खरता हो, यथा वातिक वा शुष्क कास, प्रतिश्याय, श्वासादि में, वहां इस का प्रयोग बड़ा लाभकारी है। यूनानी हकीम इसे बहुत बरतते हैं। लिसूड़ा (शुष्क), मुलहटी, उनाब, गुलबनफशा (त्रायमाण), बिह दाना, सौंफ इत्यादि द्रव्यों का क्वाथ, फाण्ट वा शीतकषाय छाती के रोगों तथा प्रतिश्यायादि में लाभकारी है। **श्लेष्मातकत्वक्** (छाल) ग्राही होने से अतिसार, प्रमेहादि में दी जाती

श्लेष्मातकः श्लेष्मफलः शापितो द्विजकुत्सितः ।
कर्बुदारो बहुवारो केलुको बहुदारुकः ॥५६५॥
मुक्तमुक्तफलः स्याद्वा वासन्तकुसुमः शलुः ।
पिच्छिलो लेशसारश्च शैलूषो भूतपादपः ॥५६६॥

श्लेष्मातक (श्लेष्मवत् चपकने वाला), श्लेष्मफल (श्लेष्मवत् फल), शापित (सराप दिया हुआ), बहुवार (बहुत परदों वाला), बहुदारुक (बहुत काष्ठ वाला), लेशसार (लेसदार), भूतपादप (भूतों का वृक्ष) ॥५६५–६६॥

शैलुः केश्यः सतिक्तोष्णो मधुरस्तुवरः कटुः ।
विषवीसर्पविस्फोटव्रणपित्तकफप्रणुत् ॥५६७॥
फलं तु मधुरं शीतं तिक्तकं वातलं लघु ।
कषायं कटुकं पाके ग्राहि पित्तकफास्रजित् ॥५६८॥

१३६. व्याघ्राटकम्[1] ?

तिक्तं स्वादु कषायं च सद्योऽभिष्यन्दनाशनम् ।
पित्तलं श्लेष्मविषहृद्रुच्यं व्याघ्राटकं स्मृतम् ॥५६९॥

सद्योऽभि०—तुरन्त क्लेदघ्न ॥५६९॥

१३७. फांफटफलम्[2] ?

फांफटस्य फलं तिक्तं श्लेष्मलं कृमिनाशनम् ।
पित्तलं गुरु विष्टम्भि रुच्यं चोष्णं कटु स्मृतम् ।
कुष्ठमेहज्वरश्वासकासाभिष्यन्दजित्तथा ॥५७०॥

॥ इति फलशाकानि ॥

अथ पत्रशाकानि ।

पत्रशाकगर्हितत्वम्[3] ।

सर्वं शाकमचक्षुष्यमिन्द्रियघ्नं बलापहम् ।
पित्तास्रघ्नमवृष्यं तु श्लेष्मलं वातकोपनम् ॥५७१॥

है । लिसूड़े के तुल्य एक अन्य वृक्ष है, जिसे संस्कृत ग्रन्थों में **क्षुद्र श्लेष्मातक** वा भूकर्बुदार (C. Rothii) कहा गया है, यह पंजाब की **गोंदी** वा गोंदनी है । यह गुणों में बहुत कुछ श्लेष्मातक के तुल्य है । इस का फल लिसूड़े से बहुत छोटा और अधिक लाल होता है, और खाने में अधिक रुचिकर ।

१.–२. श्री कैयदेव ने इन का भाषा नाम 'बाघोट' और 'फ़ांफट' दिया है । यह दोनों शब्द इस समय अप्रसिद्ध हैं । ३. हमारे शास्त्रकारों ने पत्रशाकों की बड़ी निन्दा की है, और वास्तुकादि शाकों को छोड़ कर शेष सब शाकों के खाने का निषेध किया है । वस्तुतः पत्रशाकों में भोज्य पदार्थ बहुत थोड़ा है । उन में ९५ %

तथाग्निमान्द्यविष्टम्भशूलारोचककारकम् ।
अन्यत्र वास्तुमत्स्याक्षीमेघनादपुनर्नवात् ।
शाकं तु सर्वदा शुष्कं कार्श्यविष्टम्भवातकृत् ॥५७२॥

वाथू, मत्स्याची, तण्डुलीय और पुनर्नवा के सिवाय शेष सब शाक अचक्षुष्य (नेत्रों के लिए अहितकर), इन्द्रियघ्न (नेत्रकर्णादि इन्द्रियों को नाश करने वाले), बलनाशक, रक्तपित्तान्तक, वीर्यहर, कफकारक, वातप्रकोपक, और मन्दाग्नि, अजीर्ण, शूल, तथा अरुचि करने वाले हैं। शुष्क शाक सदैव दुर्बलता, अजीर्ण और वायु की करते हैं ॥ ५७१–७२ ॥

१३८. वास्तुकः[1] ।

Chenopodium album.	(हिं०) वाथू, बथुआ, जौसाग,
The white goose-foot.	चिल्ली, (बं०) बेतुआ, बाथू शाक,
	(म०) चाकवत, (गु०) चील ।
An erect small herb.	क्षुद्र तथा सरल हरितक ।
Saltish, digestive and laxative pot-herb.	लवण, पाचक, मृदुरेचक पत्रशाक ।

वास्तुको वीरशाकः स्यात् क्षारपत्रं प्रनालकः ।
प्रसादकः शाकवीरश्चन्द्रिलष्टं कवास्तुकः (?)॥ ५७३ ॥
वास्तुको मधुरः क्षारः पाके स्वादुः कटुर्लघुः ।
पाचनो रोचनो हृद्यो मेधाग्निबलशुक्रकृत् ।
त्रिदोषकृमिकुष्ठार्शःप्लीहोदावर्त्तहारकः ॥ ५७४ ॥

जल होता है, और शेष ५ % में से ४ भाग सूत्र, तन्त्वादि काष्ठोज (Cellulose) और केवल १ भाग खनिज लवणों का है, जिन के कारण यह शाक कुछ लाभदायक समझे जा सकते हैं। उन में स्नेह (Fat), श्वेतसार (Starch), शर्करा (Sugar) आदि द्रव्यों का सर्वथा अभाव है। अतः शाक प्रायः निःसत्त्व हैं। उन्हें खाकर शरीर पुष्ट नहीं हो सकता, प्रत्युत क्षीण होता है। अल्प मात्रा में प्रयोग हानिकर नहीं। पश्चिमी विद्वानों का यह मत है, कि जिन्हें सदैव विबन्ध रहती हो, वह उसे लाभपूर्वक खा सकते हैं, क्योंकि शाकतन्तु अपाच्य होने से मलसहित स्वयं बाहर निकल जाते हैं, और एवं विबन्ध को दूर करते हैं। शीत, उष्ण, भेदक, ग्राही, रक्तशोधकादि सुगुण कई शाकों में पाए जाते हैं। वे प्रकृति और रोगानुसार व्यहार किए जा सकते हैं। १. वास्तुकशाक सर्वत्र प्रसिद्ध और सुलभ है। शीतकाल में यवादि क्षेत्रों में उपजता है। इस में लवण और क्षार की मात्रा अधिक होने से यह विबन्धभेदक है, अतः अर्श, गुल्म, अजीर्ण आदि उदर रोगों में लाभकारी है, इसी कारण से भावमिश्र ने तो इसे **शाकराट्** (शाकों का राजा वा उत्तम शाक) कहा है, परन्तु आज कल इसे लोग प्रायः व्यवहार नहीं करते।

१३९. जीवन्ती[1] ।

जीवन्तको रक्तनालस्ताम्रपत्रः प्रनालकः ।
शाकवीरः समधुरो वास्तुको मार्षकः स्मृतः ।
जीवन्तकः स्वादुपाकः क्षारो वृष्यस्त्रिदोषहा ॥ ५७५ ॥

१४०. यवशाकम्[2] ।

A variety of No. 138. । नं० १३८ का प्रकारान्तर ।

चिल्लिकाकृति रक्ताभं यवशाकं महद्दलम् ।
प्रायशो यवमध्येऽथ चिल्ली स्याद्गौरवास्तुकः ॥ ५७६ ॥

जो शाक बड़े पत्रों वाला, रक्ताभ, चिल्लिका (Kite-पतंग) के आकार वाला, और प्रायः जौ के खेत्र में मिलता है, वह चिल्लीशाक (गौर वास्तुक) है ॥५७६॥

चिल्ली सैव द्वितीया स्यात् क्षारपत्रं तद्वास्तुकम् ।
यवशाकं सरं शीतं मधुरं लवणं गुरु ॥ ५७७ ॥
कफवातहरं रूक्षं रुच्यं विष्टम्भि पित्तलम् ।
चिल्ली समधुरा रूक्षा तुवरा शीतला सरा ॥ ५७८ ॥
कटुपाका कटुक्षारा रोचनी दीपनी लघुः ।
मेध्या बल्या जयेद्रक्तप्लीहदोषत्रयकृमीन् ॥ ५७९ ॥

चिल्ली वही दूसरा शाक है (जो ऊपर कहा गया है), परन्तु वास्तुक वह है, कि जिस के पत्र खारे (और छोटे) होते हैं। यवशाक—साधारण बाथू शाक । चिल्ली—बड़ा लाल बाथू ॥ ५७७-७९ ॥

रक्तवास्तुकवत् क्षेत्रवास्तुकं सूक्ष्मपत्रकम् ॥ ५८० ॥

१४१. कालशाकम्[3] ।

कालिका कालशाकं च कालिकाशाकमित्यपि ।
कालशाकं कटु क्षारं तिक्तं दीपनं पाचनम् ।
भेदनं वातलं शस्तं कफशोफगरार्शसाम् ॥ ५८१ ॥

---

१. "जीवन्तीशाकं शाकानां" (चरक सू० अ० २५) इस प्रमाण से जीवन्ती शाक सर्वश्रेष्ठ है, परन्तु इस समय यह अनिश्चित सा है, इस पर विशेष वक्तव्य पृष्ठ २२ पर देखें। कैयदेव इस का नामान्तर 'जीवण' वा 'रक्त वास्तुक' देता है। संभव है, कि यह लाल बाथु शाक हो। २. यह वास्तु का ही भेद है, इस के पत्र कुछ बड़े और गौर वर्ण के होते हैं। गुण तद्वत् समझें। ३. कालशाक अन्य ग्रन्थों में नाड़ीशाक वा पट्टशाक का पर्याय है। यदि यही नाड़ीशाक मान लिया जावे, तो यह बम्बे प्रान्त में जलाशयों में बहुत मिलता है, इस की वल्ली जल में फैलती है, और काण्ड नल्याकार तथा रिक्त होता है। पत्र बहुत कुछ सन के सदृश होते हैं। यह उधर प्रायः खाया जाता है, सं० प्रा० में भी मिल जाता है। इस का प्रसिद्ध नाम पटुआ साग वा नाड़ी साग वा नरिचां है।

१४२. तण्डुलीयः[1]।

Amarantus spinosus.
An erect annual herb.
A light pot-herb, diuretic and antidote for snake-poison.

(हिं०) चुलाई, कांटेदार चुलाई, (बं०) क्षुद्र नटे, चांपा नटे, (म०) तांदुलजा, चवलाई, (गु०) तांजल जो, (मुलतानी) तन्दूले दा साग। लघु शाक, मूत्रल, सर्पविषघ्न।

तण्डुलेरस्तु चण्डालश्च बालस्तण्डुलीयकः।
काण्डीरस्तण्डुलीवेगो मेघनादो घनस्वरः ॥ ५८२ ॥
विषघ्नः कन्धरो बीजपरो मारिषवाष्पकौ[2] (?)।
तण्डुलीयो हिमो रूक्षः स्वादुपाकरसो लघुः।
मदपित्तविषास्रघ्नो दीपनः सृष्टमूत्रविट् ॥ ५८३ ॥

तण्डुलेर (तण्डुल—चावल वा छोटे दानों के सदृश हैं बीज जिसके), मेघनाद (मेघवत् नाद शब्द है जिस का), घनस्वर (घन-मेघ-वत् शब्द है जिसका), बीजपर बहुत सूक्ष्म बीजों वाला) ॥ ५८२–८३ ॥

१४३. मारिषः[3]।

Amarantus paniculatus ?
A tall annual herb.
A heavy and unwholesome pot-herb.

(हिं०) मरसा, नवड़ा, (बं०) कांट नटे, (गु०) डांभो, (म०) माठाची भाजी। दीर्घ वार्षिक क्षुप। गुरु, दुष्पाच्य, अपथ्य पत्रशाक।

मारिषो मधुरो रूक्षः पटुः शीतो गुरुः सरः।
वातश्लेष्मकरो हन्ति मदपित्तास्रतृड्विषम् ॥५८४॥
रक्तवाष्पो गुरुर्नाति सक्षारो मधुरः सरः।
श्लेष्मलः कटुकः पाके स्वल्पदोषं वदेदमुम् ॥५८५॥

---

१. **तण्डुलीयशाक** सब जगह प्राकृतिक रूप में मिलता है। इस के दो भेद हैं, (१) **सकण्टक** (कांटे दार), (२) **निष्कण्टक**। उपरोक्त अंग्रेजी नाम कांटेदार चौलाई का ही है, औषधरूप में इसे व्यवहार किया जाता है। इस के मूल का क्वाथ सर्पविष में उपयोगी है। अब डाक्टरों ने इसे (मूल को) सुज़ाक में लाभकारी पाया है। यह प्रदरनाशक भी है। इस के पत्रों का उपनाह (Poultice) व्रणशोधक है। दूसरी साधारण चौलाई वर्षा के पश्चात् इतस्ततः बहुत मिलती है। मृदु पत्र शाकार्थ काम आते हैं। यह एक सुपाच्य शाक है। कांटेदार चौलाई स्वर्ण को भस्म करने में भी काम आती है।

२. द—त्र्षकवाष्पकौ। ब—त्रार्षिकवाथकौ। ३. **मारिष** वंगदेश में बहुत मिलता है, पंजाब में नहीं होता। इस का क्षुप २–३ फुट ऊंचा और कांटेदार होता है। **पत्र सूक्ष्म और नानावर्ण।** इस के प्रायः रक्त, श्वेत, कृष्ण (वा हरित) आदि कई भेद मिलते हैं।

हरितो रक्तवर्णश्च सक्षारः स्वादुपिच्छलः ।
अम्लवाष्पोऽम्ललवणो मधुरो दोषकोपनः ॥५८६॥
जलवाष्पो विशेषेण रक्तार्शोविनिवारणः ।
सरं ध्रवाष्पं(?) रुच्यं च हृद्यं कफकृमिप्रणुत् ।
दीपनं तूष्णवीर्यं च रक्तपित्तप्रकोपनम् ॥५८७॥
वाष्पस्य कन्दः कफवातकोपी जन्त्वाकरः पित्तकरः सुरुच्यः ।
विष्टम्भमूत्राम्लातिसारकारी विपाककाले कटुको गुरुश्च ॥५८८॥

मारिषः—साधारण वा श्वेत मारिष । **रक्तवाष्पः**—रक्त मारिषः । **जल-वाष्पः**—जलाढ्य भूमि में होने वाला मारिष ॥ ५८४-८८ ॥

महावाष्पो गुरुतरस्तत्रपथ्यः श्लेष्मलः सरः ॥५८९॥

१४४. कुसुम्भशाकम्[1] ।

Carthamus tinctorius.	(हिं०) कुसुम, कर्. कुसुंभा, (बं०)
The safflower or Carthamus.	कुसुम फूल वा फल, (गु०) कुसुंबो,
A glabrous herb with red	करड, (म०) करडाई ।
flowers. Laxative, antirheu-	मृदु, हरित, रक्तपुष्प क्षुप ।
matic and antiseptic.	मृदुरेचक, आमवातारि, कृमिघ्न ।

१. **कुसुम्भ** का कांटेदार क्षुप भारत में सर्वत्र मिलता है। **पत्र** बहुत कुछ नीम के तुल्य छोटे और लम्बे, किनारा कटा हुआ। **पुष्प** का वर्ण कुंकुम (केसर) जैसा होता है, और इसी कारण से कुसुम्भ को 'ग्राम्य कुंकुम' और 'वर्हिशिखा' कहते हैं। पुष्प वस्त्र रंगने में काम आता है, और कहीं २ इस से केसर का काम लेते हैं, अर्थात मसूरिका में पिड़िका निकालने के लिए खिलाते हैं। **बीज** शुभ्रवर्ण, क्षुद्र और मोटे गोधूम जितने होते हैं। इन्हें पंजाबी में **खर** वा **पोलियां** कहते हैं। **बीजकोष** हटाने पर क्षुद्र, श्वेत मज्जा निकलती है, इस में ३०% तैल होता है, जो निष्पीड़न से निकल सकता है। शुष्क **कुसुम्भपुष्प** का चूर्ण (३ माषे) शर्करामिश्रित कामला को दूर करता है। **कुसुम्भबीज** (पोलियां-Carthamus Seeds) मूत्रल और स्वेदल हैं। आजकल लोग उन को खसखस, त्रपुसबीजादि से मिलाकर घोटते हैं, और छानकर शीतकषायवत् पी लेते हैं, इस से मूत्रकृच्छ्र सुजाकादि में बहुत लाभ पहुंचता है। यह रेचक भी हैं। **कुसुम्भतैल** (Carthamus Oil) तनु और पीताभ होता है, यह प्रायः खाया जाता है, परन्तु इस के व्यवहार से रक्त दुष्ट हो जाता है। गत महायुद्ध में सर्षपतैल में कुसुम्भतैल की मिलावट के कारण वंगदेश में वातबलासकज्वर (Beri-Beri) महामारी के रूप में प्रकट हो गया था। यह तैल मृदुरेचक और व्रणशोधक है। पशुओं के व्रणों पर प्रायः इसे लगाते हैं। यह गरम होने से आमवात में अभ्यंगार्थ व्यवहार करते हैं। यहां कुसुम्भपत्र का शाक ही अभिप्रेत है, जो गरम परन्तु रक्तदूषक है।

लद्वकः स्याद्गुरुलकः[2] शाकं त्वन्ये कुसुम्भजम्।
कौसुम्भं पित्तलं स्वादु रूक्षोष्णं श्लेष्मकृल्लघु ॥५९०॥

कौसुम्भं—कुसुम्भे का शाक। ॥ ५६० ॥

१४५. सर्षपशाकम्[3]।

Brassica Camprestris.	(हिं०) सरसों, पीली सरसों, सफेद सरसों, (बं०) सरिषा, सर्षे, (गु०) शरशव, (म०) शिरस।
The well-known herb.	सुप्रसिद्ध पीतपुष्प क्षुप।
A digestive pot-herb; seeds digestive, emetic and counter-irritant.	पत्रशाक दीपन पाचन। बीज पाचक, वामक, शोथघ्न।

सार्षपं कटुकं रूक्षं गुरूष्णं बद्धमूत्रविट्।
सक्षारलवणं स्वादु दोषत्रयकरं परम् ॥५९१॥

१४६. राजिका[4]।

Brassica juncea.	(हिं०) राई, लाई, (बं०) राई सरिषा, (म०) रायी, मोहरी, (गु०) राई।
The Mustard.	
Uses as above.	गुण सर्षपवत्।

---

१. यू—लघ्वकः, लट्वाकः। २. व—स्याद्गुरुगुलुवः। ३. **सर्षप** प्रसिद्ध क्षुप है, जो भारत में सब जगह, परन्तु पंजाब में शीतकाल में बहुत लगाया जाता है। सर्षपक्षेत्र वसन्त काल में पीतपुष्पों के कारण बसन्ती नज़र आते हैं। सर्षपशाक गरम और पाचक है। पंजाबी इसे बहुत पसन्द करते हैं, परन्तु चरक ने इस को शाकों में गर्हित माना है। इस में सन्देह नहीं कि इस के अधिक उपयोग से अम्लपित्त, दाह, रक्तदुष्ट्यादि हो जाती है। सर्षपबीज अल्प मात्रा में दीपन पाचन, परन्तु अधिक खाने से वामक और आमाशयशोथकारक है। राई की तरह इस का लेप भी शोथ पर कर सकते हैं। सर्षप का एक भेद सिद्धार्थ वा गौर सर्षप (सफेद सरसों) है, जो प्रायः धूपन में काम आता है। इसे सूतिकागृह में भी कृमिनाशार्थ फैंकते हैं। **सर्षपतैल** का वर्णन तैलवर्ग में देखें। ४. **राजिका** का क्षुप बहुत कुछ सर्षप के सदृश है। उस से कुछ बड़ा होता है। पुष्प तद्वत् पीत। शाक का व्यवहार आज कल नहीं होता, परन्तु यह उस की अपेक्षा अधिक गरम है। राई के **बीज** सरसों से छोटे और रंग में पिंगल वा भूरे होते हैं। बहुशः बीज का **प्रलेप** (Mustard Plaster) वा **उपनाह** (Mustard Poultice) में व्यवहार होता है। पुलटिस बनाते समय समभाग आटा मिला लेना चाहिए, ताकि उस की तीक्ष्णता कम हो जावे। यह फोड़ों को पकाने वा फाड़ने तथा गंठिया की शोथ में लाभकारी है। राजिकाचूर्ण को गरम जल में हिलाने से विलेपी सी बन जाती है, यह प्रलेप (Plaster) है, जो शोथ वा शूल वाले

तद्वच्च राजिकाशाकं रक्तपित्तविदाहकृत् ।
तीक्ष्णं रूक्षमचक्षुष्यं भृशोष्णं कृमिहृद्गुरु ॥५९२॥

१४७. चणकशाकम्[1] ।

Cicer arientinum.	(हिं०) चना, छोला, (बं०) छोला
Gram or Chick-peas.	गाछ, (म०) हरभरे, (गु०) चण्या ।
An annual herb.	प्रसिद्ध वार्षिक क्षुप ।
Leaves sour and digestive.	पत्रशाक अम्ल, दीपन, पाचन ।
Seeds starchy and costive.	बीज विष्टम्भि, श्वेतसारयुक्त ।

शाकं चणकजं स्वादु रसे पाके च दुर्जरम् ।

स्थान पर किया जाता है । १०–१५ मिनट में स्थान लाल हो जाता है, वहां दाह प्रतीत होता है । जब वह असह्य हो, तब प्रलेप हटालें । वहां फुंसियां भी हो जाती हैं, जिन का जल निकल जाने पर वैज़ीलीन वा मक्खन (कर्पूरसहित) लगा देना चाहिए । बच्चों वा मर्मस्थानों पर प्रलेप मलमल के वस्त्र पर लगा कर करना चाहिए । यह सुगमता से हटाया जाता है । यह प्रलेप छाती, शिर, सन्धि, गर्भाशय आदि अंगों के शूल वा शोथ में बहुत लाभकारी है । राई के स्थान पर सर्षप वा तुवरी (तारामीरा) का प्रयोग कर सकते हैं, परन्तु वह राई जैसे तीक्ष्ण नहीं । राई के ४–५ दाने खा लेने से पाचनशक्ति बढ़ती है, परन्तु ५–६ माषे राई को गरम पानी से निगल जाने पर वान्ति हो जाती है, अतः राजिका से अहिफेनादि निद्राजनक विषों, ज्वर, आमाजीर्णादि रोगों में वान्ति कराई जाती है । राई कांजी एवं अचारों में पड़ती है । राई का अधिक प्रयोग अम्लपित्त और आमाशय में क्षत (Gastric ulcer) करता है । सर्षप, तुवरी और राजिका यह तीनों Cruciferea N.O. में सम्मिलित हैं, अतः तीनों ही प्रायः समगुण हैं । १. **चणक** सर्वत्र सुलभ । मृदु पत्र आर्द्र वा शुष्क शाकार्थ काम आते हैं । पत्रक्वाथ घन करने पर एक अम्ल द्रव्य प्राप्त होगा । यह **चणकाम्ल** है । प्रातः काल चणकपादपों पर, जब वे तुषार (ओस) से आछन्न हों, स्वच्छ चादर डाल देनी चाहिए । यह भीग जायगी । इसे निचोड़ कर पानी घन कर लो । यह चणकाम्ल बनाने की दूसरी विधि है । शुष्क पादप (पंचांग) जला कर और राख को षोड्श गुण जल में भिगोने, पुनः छानने और जल को घन करने पर चणकक्षार बन जाता है । आर्द्र चणकबीज शीतल और ग्राही हैं, शुष्क और भृष्ट उष्ण हैं । **चणकदाल** वातल और विष्टम्भि है । **बेसन** (चने का आटा) पकौड़े, मिठाई आदि अनेक पदार्थों के बनाने में काम आता है । यह भी विष्टम्भि है । मधुमेह में बेसनयुक्त गोधूम चूर्ण की रोटी लाभकारी है । **चणक-यूष** (Gram Soup) दुर्बल रोगियों के लिए रुचिकर और बलप्रद द्रव है ।

वातश्लेष्महरं रुच्यं पित्तकृद्दन्तशोफकृत् ॥५९३॥
चणकाम्लमत्यम्लं दीपनं दन्तहर्षणम् ।
लवणानुरसं रुच्यं शूलाजीर्णविबन्धनुत् ॥५९४॥

दन्तशोफकृत्—दांतों वा मसुड़ों में सूजन करने वाला ॥ ५९३-९४ ॥

१४८. कलायम्[1] ।

Pisum sativum.	(सं०) सतीनकं, (हिं०) मटर,
The Pea. A creeper.	(बं०) मठर, मटर, (म०) वाटाण, (गु०) मटाणा ।
A nitrogenous legume.	प्रसिद्ध लता । पुष्टिकर बीजशाक ।

कलायं कटुकं शाकं वातकृल्लघु भेदनम् ।
स्रंसनं कफपित्तघ्नं कटुपाकं विरूक्षणम् ॥५९५॥

स्रंसनं—रेचकं । **विरूक्षणं**—धातुशोषकं ॥५९५॥

१४९. पालङ्क्या[2] ।

Spinacia oleracea.	(हिं०) पालक, (बं०) पालङ्शाक,
The Spinach herb.	(म०) पालख,(गु०)पालख नी भाजी।
A cool pot-herb.	प्रसिद्ध हरितक । शीत शाक ।

पालङ्क्या वास्तुकाकारा किञ्चिच्चीरितपत्रिका ।
पालङ्क्या मधुरा रूक्षा शीतानिलप्रदा ॥५९६॥
विष्टम्भिनी स्वादुपाका भेदिनी पिच्छला गुरुः ।
अश्लेष्मला विषश्वासपित्तमदापहा ॥५९७॥

---

१. **मटर** सुप्रसिद्ध बीजशाक है, और Leguminosea (N.O.) का विख्यात अंग है, जिस में वह पादप सम्मिलत हैं, जिन्हें फलियां (Legumes) आती हैं, जैसे चणक, कांचनार, माष, शीशम आदि । मटर आजकल दो प्रकार का मिलता है, (१) बड़ा मटर (अंग्रेज़ी मटर), (२) छोटा मटर (देशी मटर) । आर्द्र मटर का व्यञ्जन अति पुष्टिकर और स्वादु होता है । मटर में प्रोटीन (Protien) बहुत है । शुष्क छोटे मटर (सतीनक) की दाल बड़ी बादी (वातप्रकोपक) है । यद्यपि मटर यहां पत्रशाकों में आया है, तथापि इस के पत्रों का प्रयोग शाकार्थ नहीं होता । २. **पालक** सुप्रसिद्ध हरितक है । रक्तपित्त, ज्वर, अजीर्ण, अर्श, कामलादि में पथ्य शाक है । इस के बीज शीत और मृदु रेचक हैं । पालक को प्रायः मेथी से, जो उष्णवीर्य है, मिलाकर पंजाब में व्यवहार करते हैं ।

१५०. चञ्चुः[1] ।

Corchorus fascicularis.	(हिं०) चंचु, चेंचुना, (बं०) चेचको, (म०) चंचु, (गु०) छुंछादि ।
An annual erect herb.	वार्षिक सरल क्षुप ।
Mucilaginous, cool and restorative.	पिच्छल, शीत, रसायन ।

१५१. (क) बृहल्लोणिका[2] ।

Portulaca oleracea.	(हिं०) कुल्फा, कुरफा, बड़ा लोणिया, (बं०) बड णुनी, (म०) भुई घोल, (गु०) लुणी मोटी ।
A saltish annual herb.	नमकीन वार्षिक हरितक ।
Leaves refrigerant, alterative and diuretic.	पत्र हृद्य, रक्तशोधक, मूत्रल ।
Seeds cool and diuretic.	बीज शीत, मूत्रल ।

१५१. (ख) लघुलोणिका ।

Portulaca quadrifida.	(हिं०) लोनी, नोनिया, (बं०) क्षुद्रे णुनी, (म०) घोल, (गु०) लुणी शीणी ।
An annual succulent herb.	
Properties similar to No. 151 (क)	गुण पूर्ववत् ।

---

१. **चञ्चु शाक** पंजाब को छोड़कर अन्य उष्ण प्रान्तों में बहुत मिलता है । इस की अनेक जातियां हैं । इसे पीत पुष्प और फलियां लगती हैं । फलियों से बीज निकलते हैं, जो मधुर, पिच्छल और मूत्रल हैं । बहुफली (Corchorus antichorus) भी चुंचु का भेद है । यह बड़ी शीत, फिच्छल और मूत्रल है । इसे सुजाक म देते हैं । २. **लोणी** के दो भेद, जो ऊपर दर्शाए गए हैं, गुणों में समान हैं । **बृहल्लोणी** (कुल्फे का शाक) सब जगह मिलता है । इस का व्यञ्जन स्वाभाविक लवण के कारण दीपनपाचन, गुल्मघ्न और यकृद्रोगनाशक है । **पत्रकल्क** पैत्तिक शिरोवेदना तथा ज्वरदाह की निवृत्त्यार्थ सिर पर मला वा बांधा जाता है । अग्नि से जलने के कारण, जो स्फोट आदि व्रण हो जाते हैं, उन पर भी यह लाभ पूर्वक बांधा जा सकता है । **क्षुद्र लोणी** भी इसी तरह व्यवहार हो सकती है । यह जंगली रूप में पंजाब में रूक्ष बालुमयी भूमि पर बहुत उगती है, इस के पत्र चावल जितने लम्बे और मोटे होते हैं, और स्वाद में नमकीन तथा खट्टे । **लोणीबीज** (लूनक के बीज) शीत और मूत्रल हैं, अतः इन्हें ठण्डाई के रूप में सुजाक, मूत्रकृच्छ्र, रक्तपित्त, रक्तच्छर्दि, रक्तमेह, रक्तार्श, प्रवाहिकादि में दिया जाता है । स्कर्वी (Scurvy) रोग में, जो शरीर में लवणाभाव से होता है, कुल्फे का शाक बहुत खिलाना चाहिए । चंचु और लोणी सर्वशः पृथक् क्षुप हैं, परन्तु श्रीकैयदेव ने इन दोनों को मिला दिया है ।

चञ्चुः स्याच्चञ्चुकश्चञ्चुर्बृहद्घोटी तु लोणिका।
चञ्चू रूक्षा सरा शीता मधुरा सर्वदोषहा ॥५९८॥
अम्ला सरोष्णा विनिहन्ति वातं पित्तं बलासं च करोति घोटी।
त्वग्दोषगुल्मव्रणशोफकासश्वासप्रमेहाक्षिगदेषु पथ्या ॥५९९॥
लोणिका कटुका रूक्षा वातश्लेष्महरा गुरुः।
अर्शोघ्नी दीपनी चुक्रा मन्दाग्निविषनाशनी ॥६००॥

घोटी—बड़ी लोणी, कुल्फा। लोणिका—छोटी लोणी। ५९८–६००॥

१५२. कुठिञ्जरः।

कुठिञ्जरः[1] स्यात्कुठिरो रूक्षशाकस्तु डण्डुकः।
कुठिञ्जरं स्वादु पाके स्वादु क्षारं हिमं कटु।
रसे स्वादु सरं रूक्षं गुरु विष्टम्भि दोषलम् ॥६०१॥

१५३. कुन्तलिका।

कुलिञ्जकः कुन्तलिका बदरस्तिलपर्णिका।
कुन्तली शीतला तिक्ता तुवरा मधुरा पटुः ॥६०२॥
रूक्षा पाके कटुः स्वादुर्भेदनी श्वासकासहा।
निहन्ति पित्तं कुरुते वातं न कुरुते कफम् ॥६०३॥

१५४. तिलपर्णी[2]।

तिलपर्णी बदरको वर्वरश्च प्रकीर्त्तितः।
तिलपर्णी कटुस्तिक्ता विपाके कटुका लघुः ॥६०४॥
अहिमा ग्राहिणी रुच्या शोफपित्तकफापहा।
वह्निकृद्बादरं बीजं गुल्मानाहामशूलजित्।
उष्णवीर्यं कफहरं मारुतज्वरनाशनम् ॥६०५॥

तिलपर्णी (तिलपत्र के समान हैं पत्र जिस के)। बादरं बीजं—तिलपर्णी के बीज ॥ ६०४–५ ॥

१५५. फञ्जी[3]।

फञ्जी स्वल्पमला श्लेष्मश्वासकासविषापहा ॥६०६॥

---

१. यू—चंचुभेदः। २. तिलवन वा तिलिनी शाकविशेष। ३. फञ्जी वृद्धदारुक (?) (बिधारा, समुद्रशोष–Rourea Santaloids ?) का भेद है। यह लता खेतों के किनारों पर लगाई जाती है। पंजाब में यह नहीं मिलती। फञ्जी शब्द भार्ङ्गी, योजनवल्ली आदि अनेक द्रव्यों का पर्याय है, निश्चयरूप से उसे किसी नामविशेष में लगाना कठिन है।

१५६. उपोदिका[1] ।

Basella alba.

A fleshy twining herb.

A cool, demulcent, anticatarrhal and diuretic pot-herb.

(हिं०) पोई का शाक, (बं०) पुई शाक, (म०) मायाठ लघु वा थोड़, मायाक भाजी, (गु०) पोथी ।

शीत, स्निग्ध, प्रतिश्यायघ्न, मूत्रल शाकविशेष।

पोतक्युपोदिका मत्स्यकाली सुतुङ्गी सङ्कटी ।
कलम्बिका तु वृन्ताकी[2] तुरङ्गी कण्टकी तथा ॥६०७॥
मदघ्नी पिच्छिला ज्ञेया वृन्ता मदलिका मता ।
उपोदिका हिमा स्निग्धा स्वादुपाकरसा हिमा[3] ॥६०८॥
सक्षारा श्लेष्मला बल्या निद्राशुक्रातिपुष्टिदा ।
अकण्ठ्या पिच्छिला हन्ति रक्तपित्तमदानिलान् ॥६०९॥

१५७. भूमिपोतिका[4] ।

Basella lucida. | छोटी पोई ।

मधुरा रसपाकाभ्यां वातश्लेष्मकृमिप्रदा ।
वृष्या पित्तप्रशमनी शीतला भूम्युपोदिका ॥६१०॥

१५८. कुरण्डिका[5] ?

कुरण्डिका क्षेत्रभूषा कुरण्टी शीर्षमञ्जरी ।

---

१. **उपोदिका** शाक बंगादि आनूप देशों में बहुत मिलता है, वहां ग्रामों में घर २ लगा हुआ देखते हैं। पादप ३-४ फुट ऊंचा, सीधा और मोटे १ गज लंबे डण्ठलों जैसे शाखाओं से युक्त होता है । **पत्र** श्वेतहरित और प्रायः गोल । पक्कफल के निष्पीड़न से बैंगुनी रंग का रस निकल आता है । बाजार में पैसे के २--३ डण्ठल मिल जाते हैं। शाक मधुर, पिच्छल और कण्ठदूषक होता है, परन्तु शीतवीर्य होने से रक्तपित्त, रक्तार्श, और रक्तातिसार में लाभकारी है। यह रक्तशोधक भी है, अतः इस के प्रयोग से फोड़े फुंसी ठीक हो जाते हैं। **पत्रकल्क** का उपनाह (Poultice) फोड़ों को पका देता है। **पत्रस्वरस** सुजाक में दिया जाता है। अन्य निघण्टुकारों ने पोतकी चार प्रकार की मानी है, (१) श्वेत जो ऊपर वर्णित है, (२) रक्त वा वन पोतकी (Basella rubra), (३) मूलपोतकी, (४) क्षुद्र पोतकी। पिछली तीनों प्रायः जंगली और रक्तवर्ण हैं। २. द—अष्टतर्का । ३. द—सरा । ४. यह क्षुद्र पोतकी है, जो गुणों में उपोदिकावत् समझें । ५. **कुरण्टिका** (पं०, हिं०कुरण्ड) क्षेत्रों में सर्वत्र जंगली मिलती है। इस की आकृति बहुत कुछ चौलाई (तण्डुलीय) के समान है, अतः उस के साथ २ उगने से कई लोग उसे भूल कर चौलाई समझने लग जाते हैं। श्वेत पुष्प और

श्रीहस्तिनी सिंहकेशी चुचुकः[1] क्षेत्रनाशनी ॥६११॥
कृष्णसूक्ष्मफला ज्ञेया सितिवारस्तु कुर्कुटी[2] ।
कुरण्डिका हिमा स्वाद्वी स्वादुपाका कटुः पटुः ॥६१२॥
तिक्ता रूक्षा सरा वृष्या गुर्वी मारुतपित्तला ।
वस्तिमारुतकृच्छ्राश्मकफरक्तं नियच्छति ॥६१३॥

क्षेत्रभूषा (खेत का भूषण), कुरण्टी (कुरण्ड), शीर्षमञ्जरी (सिर पर फूलों का गुच्छा है जिस के) । पटुः—लवणरसा । मारुतपित्तला—वातपित्तप्रकोपक ॥६११-३॥

१६६. द्रोणपुष्पी[3] ।

Leucas linifolia.	(हिं०) गोमा, गूमा, (बं०) घलघसे,
An annual erect herb.	(म०) कुंभा, तुम्बा, (गु०) कुबो ।
Stimulant, expectorant, diaphoretic and febrifuge.	वार्षिक सरल क्षुप । उष्ण, कफप्रसेकि, स्वेदल, ज्वरघ्न ।

कुम्भयोनिर्द्रोणपुष्पी द्रोणछत्रं कुतुम्बकः ।
कौडिन्योऽथ महाद्रोणस्तथा द्रोणकुतुम्बकः ॥६१४॥

बाजरे के समान बीज इसकी शाखा पर बहुत होते हैं। पंजाब में इसे **कुरण्ड** कहते हैं, और वस्तुतः कुरण्डिका शब्द का अंश कुरण्ड ही हो सकता है। शाकवर्ग में वर्णित होने से शाकवत् व्यवहार भी हो सकती है। कई टीकाकारों ने इसे वृक्षविशेष माना है और किसी ने दादमारी (हिं०), ददरबूटी (पं०), अग्निबूटी (वम्बे)—Ammania vesicatoria (Latin) माना है। यह एक स्फोटकारक (Vesicant) तीक्ष्ण हरितक है। कुरण्डिका के गुण, जो ऊपर दिए गए हैं, दादमारी में एक भी नहीं और न ही दादमारी को किसी भाषा में कुरण्ड कहा गया है, न ही उस का शाक बनता है। अतः कुरण्डिका को दादमारी कहना सर्वथा अशुद्ध है। १.—बुबुकः । २. द—कर्कुटी । ३. **द्रोणपुष्पी** पंजाब में विरल, परन्तु अन्य प्रान्तों में विशेषतः दक्षिण भारत में बहुत मिलती है। **क्षुप** २-३ फुट ऊंचा, **पत्र** २-३ इंच लम्बे, $\frac{1}{2}$ इंच चौड़े, किनारा दंदानेदार, **पुष्प** श्वेत, गोल, व्यास में $\frac{1}{2}$ इंच, शाखाओं पर पत्रों के कोण में लगे हुए, आकृति द्रोण (मटके वा प्याले) के तुल्य (cup or bucket shaped), अतः प्रसिद्ध नाम द्रोणपुष्पी । गोमा का **क्वाथ** वा **स्वरस** ज्वरनाशक है, परन्तु विषमज्वर (Malaria), कास, कामलादि में लाभकारी है । **पुष्पनस्य** शिरोऽर्ति, प्रतिश्यायादि में गुणकारी है । इस से छींकें आती हैं, अतः द्रोणपुष्पी को 'क्षवपत्री' (क्षव—छींक) कहा गया है । **बीजों** से तैल निकलता है । **शाक** गरम और ज्वरघ्न है । द्रोणपुष्पी के ३-४ प्रकार हैं, जो सब के सब Leucas (N. O Labiatea) में सम्मिलित हैं ।

वृषसारः[1] श्वसनकः[2] श्वसनः स्यात्कुसुम्भकः ।
द्रोणपुष्पी स्वादुपाका स्वाद्वम्ला[3] लवणा गुरुः ॥६१५॥
सक्षारा कटुका रूक्षा भेदिनी वातपित्तकृत् ।
कफामकामलाशोफतमकश्वासजन्तुजित् ॥६१६॥

कुम्भयोनि (कुम्भ-द्रोण-वत् योनि है जिस की, योनि—उत्पत्तिस्थल, पुष्प), द्रोणपुष्पी (द्रोण—कुम्भ—आकार पुष्प है जिस का), द्रोणछत्र (छत्र—छत्राकार गोल पुष्प वाली), कुतुम्बक (कुत्सित तुम्बी), महाद्रोण (बड़ी द्रोणपुष्पी—L. cephalotes.) । **स्वादुपाका**—पाके मधुरा । **जन्तु**—कृमि ॥६१४–१६॥

१६०. मूलकम्[4] ।

Raphanus sativum. The Radish. A course edible tuberous herb. Laxative, digestive, diuretic and lithontriptic.	**(हिं०) मूली, मुरइ, (बं०) मुला, (गु०) मूला, मोगरी, (म०) मुला। प्रसिद्ध भक्ष्य कन्द वा मूल । मृदुरेचक, पाचक, मूत्रल, अश्मरीशर्करानाशक ।**

मूलकं तु महाकन्दं स्वस्तिको हस्तिदन्तकः ।
नीलवर्णं नीलकन्दं रुचिष्णं हस्तिकन्दकम् ॥६१७॥
शालामर्कटकं मिश्रहस्तिका क्षारसेवितम् ।

---

१. द—वृषकारः । २. यू, द—स्वस्तनकः । ३. व—स्वादूष्णा ।

४. **मूलक** में विशेष गन्ध एक वर्णरहित तैल (A sulpheretted volatile oil) के कारण है, जो गन्धक (Sulpher) और स्फूरकाम्ल (Phosphoric acid) का योगविशेष है । मूली कच्ची एवं पका कर भी खाई जाती है । उस के पत्र भी कन्दवत् तीक्ष्ण गन्धमय हैं, और मूली की तरह काम आते हैं । मूलक शीतस्पर्श है, परन्तु वीर्य में उष्ण, तथापि वह (कन्द, पत्र वा बीज) एक अच्छा मूत्रल द्रव्य है । अतः **मूलकस्वरस** सुजाक, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी आदि मूत्ररोगों में लाभकारी है । मूलक रक्तार्श में भी गुणकारी है । रसाञ्जन (रसौंत) को मूलकस्वरस से ३-४ वार भावना देकर छोले के समान गोलियां बनालें । यह गोलियां प्रतिदिन प्रातः मक्खन से खिलावें, तो रक्तार्श दूर हो जाता है । **शुष्कमूलक** शोथ में उपनाह वा शुष्क मूलकादि तैल (चक्रदत्त) के रूप में लाभकारी है । इस का यूष ज्वर, अर्श, प्रवाहिका, शोथादि में दिया जा सकता है । पंजाब में **मूलकबीज** का क्वाथ रजःकृच्छ्र में दिया जाता है । मूलक की फली का नाम **मोगरा** वा **मूंगरा** है, जो शाकार्थ व्यवहार होता है । इस के दो भेद हैं, (१) बड़ा मूंगरा (लम्बी फली), (२) छोटा मूंगरा । यह दोनों उष्णवीर्य और रस में कटु हैं । मूली मद्रास में नहीं मिलती । मूलक, चाणक्यमूलक, लघुमूलक, नेपालमूलकादि मूली के कई भेद हैं ।

अदंशमक्षमं तीक्ष्णं विष्णुगुप्तमनन्तकम् ।
चाणाक्यमूलं चान्यद्बालमूलकं पोतिका ॥६१८॥

पर्याय—मूलक (मूल वा जड़), महाकन्द (बड़ा कन्द वा मूल), स्वस्तिक (शुभ फल वा मूल), हस्तिदन्तक (हाथी के दांत के तुल्य), रुचिष्य (रोचक), हस्तिकन्द (महाकन्द) ॥६१७–१८॥

बालमूलकमत्यल्पक्षारं तिक्तोषणं लघु ।
रोचनं दीपनं स्वर्यमुष्णं हृद्यं त्रिदोषजित् ॥६१९॥
निहन्याद्दद्रुशूलामकोठोदावर्त्तपीनसान् ।
गुल्मकासक्षयश्वासव्रणनेत्रगलामयान् ॥६२०॥
महदामं कटु स्वादु रसे पाके त्रिदोषकृत् ।
रूक्षं विदाहि तीक्ष्णोष्णमुत्क्लेदि स्तम्भि गुर्वपि ॥६२१॥
तदेव स्नेहसिद्धं तु दोषत्रयनिबर्हणम् ।
शुष्कं लघु हरेच्छोफं विषं दोषत्रयं तथा ।
तत्पुष्पं कफपित्तघ्नं फलं कफवातजित् ॥६२२॥

बालमूलकं—लघु मूलक । स्वर्यं—स्वर वा गले के लिए हितकर । महदामं—बड़ी परन्तु कच्ची मूली (अर्थात् जो कच्ची खाई जावे) । स्नेहसिद्धं—घृतादि स्नेह में बनाई हुई ॥६१९–२२॥

१६१. गृञ्जनः[1] ।

Daucus carota.

The carrot root or seeds.

An annual or biennial tuberous herb.

Root sweet, cool, refrigerant. Seeds stimulant, laxative, emmenagogue and abortive.

(हिं०, बं०, म०, गु०) गाजर ।

वार्षिक वा द्विवार्षिक कन्दल हरितक ।

मूल मधुर, शीत, हृद्य ।

बीज उष्ण, मृदुरेचक, गर्भाशय-शोधक तथा गर्भपातक ।

---

१. गाजर Umbelliferea N. O. में सम्मिलित है, जिस पर Umbel वा छत्राकार पुष्प तथा फल आते हैं, जैसा कि धान्यक (Coriander), जीरक (Cumin Seeds), अजमोद, मिश्रेयादि में । गाजर कच्ची एवं व्यंजन के रूप में भी खाई जाती है । गाजर का हलवा पंजाब में बहुत रुचिकर, शीत और पौष्टिक समझा जाता है । गाजर की काञ्जी रुचिकर और दीपक पेय पदार्थ है । गाजर के पत्र व्यवहार में नहीं आते । गाजर के बीज गरम हैं, अतः उन का क्वाथ रजःकृच्छ्र, गर्भाशयशूल, दुःप्रसवादि स्त्रीरोगों में दिया जाता है । पुरुष उन्हें वाजीकर समझ कर प्रयोग करते हैं । गाजर (मूल) उपनाह (Poultice) दुष्ट व्रण, पामादि को शुद्ध करके भर देता है । गाजर का लेप दग्ध व्रणों पर लाभकारी है । गाजर

नारङ्गकं टंकजरं[1] पीतकं गृञ्जनस्तथा ।
गृञ्जनः कटुकः पाके तीक्ष्णोष्णस्तिक्तको लघुः ॥६२३॥
विदाही दीपनो हृद्यो ग्राही रूक्षोऽस्रपित्तजित् ।
ग्रहण्यर्शोऽनिलश्लेष्मह्रद्कृशुक्रारुचिजन्तुजित् ॥६२४॥

गृञ्जनः—गाजर के बीज (क्योंकि बीज ही कटु, तीक्ष्णादि गुणयुक्त हैं, न कि मूल, जो भावप्रकाश में 'मधुरं रुच्यं......दाहतृषापहं' कही गई है । सम्भव है कि यह गुण जंगली गाजर के हों, जो कटु और तीक्ष्ण होती है) ॥६२३-२४॥

१६२. पाठा[2] ।

Cissampelos hexandra.	(हिं०) पाढ़, (बं०) आकनादि, निमुका लता, (म०) पहाड मूल, (गु०) काली पाट, करेटी मूल ।
A slender twiner.	तनु लता ।
Bitter, stomachic, astringent and febrifuge.	तिक्त, पाचक, ग्राहि, ज्वरघ्न ।

पाठा कुचैला स्थपनी त्रिवृच्चाश्मसुता वरा ।
अम्बष्ठाऽम्बष्ठकी यूथा प्राचीनाविद्धकर्णिका ॥६२५॥
एकैषी त्रिशिरा देवी बृहत्तिक्ता वृक्की रसा ।
वृहत्तिक्ता पापचेलिका मालती वृकदन्त्यपि ॥६२६॥

पर्याय—स्थपनी (स्थापक, अतिसारघ्न), त्रिवृत् (तीन वृत्तों वा चक्रों—Whorls—वाला), अश्मसुता (पर्वतपुत्री वा पहाड़ों पर होने वाली लता), वरा (श्रेष्ठ), अविद्धकर्णिका (जिस के कर्ण वा पत्र अविद्ध अछिद्र हों), त्रिशिरा (तीन शिराओं वा सिरों वाली), देवी (श्रेष्ठ वा गुणप्रद लता), वृहत्तिक्ता (बड़ी कड़वी),वृक्की (वृक्काकार—Kidney-shaped), रसा (रसमय—J ,uicy),

---

को मद्रासी लोग नहीं जानते । काली, लाल, पीली आदि गाजरें कई प्रकार की मिलती हैं । प्राचीन ग्रन्थों में कहीं २ गृञ्जन मूलक का भेद माना गया है, और गृञ्जर वा गर्जर से गाजर समझी जाती है । १. व—दंजदं । २. **पाठा** की लता पार्वतीय देशों में शिलाओं पर चढ़ी हुई बहुत मिलती है । **पत्र** प्राय गोल और मृदु, **डण्ठल** पत्र के मध्य में लगा हुआ, **पुष्प** सूक्ष्म तथा श्वेताभ, **फल** सूक्ष्म रक्तकृष्ण और मकोय के समान । पाठामूल (चूर्ण वा क्वाथ) बिल्वमुस्तकादि पाचक द्रव्यों से मिल कर अतिसार, अजीर्ण, ज्वरादि रोगों में लाभकारी है । पाठा-मूल योनि में रखने से सुखप्रसवकारक है । पाठा का भेदान्तर **लघु पाठा** (Cissampelos Pareira) है, जो गुणों में पाठा के तुल्य है । **पाठा के पत्र** जल में डालने से जल को हिमवत् जमा देते हैं, और इसी कारण से अतिसाररोधक हैं ।

पापचेलिका (पापात्मक), वृकदन्ती (वृक—वघियार के तुल्य दांत वा पत्रधाराएं हैं जिस की) ॥६२५-२६॥

पाठा तु कटुका तीक्ष्णा लघुरुष्णा त्रिदोषहा ।
हरेत्कुष्ठज्वरच्छर्द्दिदाहातिसारहृद्रुजः॥६२७॥
गुल्मकण्डूविषश्वासव्रणशूलगरकृमीन् ।
कुचैलिका तिक्तरसा स्वादुपाका हिमा लघुः ।
ग्राहिणी वातला पित्तकफरक्तविनाशनी ॥६२८॥

कुचैला—पाठा वा लघु पाठा (?) ॥६२७-२८॥

१६३. कारफलम्[1] ।

कारफलं पित्तहरं च शीतं[2] कषायमाधुर्ययुतं गुरु स्यात् ।
तस्यैव पत्रं त्वथ शीतवीर्यं रूक्षं गुरु ग्राहि निहन्ति मेहम् ॥६२९॥

१६४. कासमर्द्दः[3] ।

Cassia Sophera.	(हिं०)कसौंदी,(बं०)कालकासुन्दा,
A wild annual shrub.	(गु०)कसन्दी,(म०)रानकासविंदा।
Cathartic, expectorant, anti-periodic and germicidal.	जंगली वार्षिक क्षुप वा झाड़ी । रेचक,कासहर,ज्वरवेगघ्न,कृमिहर।

---

१. **कारफल** से कारवेल्लक (करेला) ही अभिप्रेत है, जो पीछे अंक १२८ में वर्णित है। उस के नामादि वहां देखलें। यहां पत्रशाक के रूप में उस के पत्रों का गुण निर्देश किया गया है । २. व—कारं फलं च कफपित्तहरं च शीतं । ३. **कासमर्द्द** का क्षुप प्रायः सब जगह मिल जाता है। **पादप** ४-५ फुट ऊंचा; **पत्र** गोल लम्बे, और डण्ठल पर आमने सामने लगे हुए; **पुष्प** क्षुद्र और पीतवर्ण; **शिम्बी** (फली-Pod) पतली, लम्बी, चक्रमर्द्द (अंक १७१) के तुल्य, **बीज** छोटे, माषतुल्य । कासमर्द्द उसी Cassia जाती का अंग है, जिस में चक्रमर्द्द, सोना मक्की (Senna), चाक्सू (C. absus), आरग्वध (Cassia fistula) आदि सम्मिलत हैं। कसौंदी के सब भाग तीव्ररेचक (Cathartic) हैं। **पत्रस्वरस** (१-२ तो०) समभाग मधुमिश्रित हिक्का, कासश्वासादि में लाभकारी है। कासमर्द्द का मूल मुख में रख कर कर्ण में फूत्कार करने से वृश्चिकाविष नष्ट हो जाता है। मूल का चूर्ण कांजी वा सिरके में मिलाकर दद्रु, पामादि पर लेप करने से बहुत लाभ होता है, और **बीज** भी इसी प्रकार प्रयोग हो सकता है । **बीजचूर्ण** [३ माषे] मधुमिश्रित मधुमेह में लाभकारी है। **मूलक्वाथ** अनेक विषों में लाभ करता है। ४ रक्ति **बीजचूर्ण** स्तन्यमिश्रित बच्चों के ज्वर, कास और आक्षेप (Convulsions) में देना बहुत गुण करता है। **पञ्चांगक्वाथ** योषापस्मार (Hysteria) में देने से वायु को शान्त करता है। **पत्रशाक** रेचक, रसायन, और कास, ज्वर, कण्ड्वादि रोगों का नाशक है ।

कालः कतकः कासारिः[1] कासमर्द्दोऽतिमर्द्दकः।
कासघ्नः कर्कशो ज्ञेयः सूषाऽन्या कासमर्द्दिका ॥६३०॥

काल (काले बीजों के कारण), कासारि (कासशत्रु, कासघ्न), कासमर्द (कास को मर्द्दन-नाश-करने वाला), अतिमर्द्दक (अत्यन्त नाश करने वाला), कर्कश (कठोर), कासमर्द्दिका (छोटा कासमर्द) ॥६३०॥

कासमर्द्दः कटुस्तिक्तो मधुरः कण्ठशोधनः।
पाचको रोचनो रूक्षो दोषकासविषापहा ॥६३१॥
रूक्षं सरं वातकफौ निहन्ति कृमींश्च वह्निं वितनोति पित्तम्।
कासारुचिश्वासहरं लघूष्णं कासघ्नपत्रं कटुकं विपाके।
कासमर्द्दस्य पुष्पं तु श्वासकासोर्ध्ववातनुत् ॥६३२॥

वितनोति—बढ़ाता है। **ऊर्ध्ववात**—हिक्कादि रोग ॥६३१-३२॥

१६५. सुनिषणकः[2] (शितिवारः)।

Marsilea Quadrifolia.
A four-leaved aquatic hot-herb.
Cool, diuretic and astringent.

(हिं०) शिरिआरी, चौपतिया, (बं०) शुषुनिशाक, (म०) करडू, (गु०) उटींगण। चतुष्पत्री हरितक। शीत, मूत्रल, ग्राही।

सुनिषणः सूचीपत्रश्चतुष्पत्रो वितुन्नकः।
श्रीवारकः सितिवारः[3] स्वस्तिकः कुक्कुटः सितिः[4]।
चांगेरीपत्रसदृशपत्रः शूल्या[5] च वायसः ॥६३३॥

पर्याय—सुनिषण्ण (अच्छी तरह बैठा हुआ वा झुका हुआ), सूचीपत्र (सूच्याकार पत्रों वाला ?, यह नाम ठीक नहीं, क्योंकि पत्र गोल होते हैं), चतुष्पत्र (चार पत्रों वाला), वितुन्नक (टूटा हुआ वा कटा हुआ), श्रीवारक (सुन्दर पत्रों वाला), सितिवार (श्याम पत्रों वाला), स्वस्तिक (स्वस्तिकाकार-Cross-like-आमने सामने पत्र हैं जिस के), सिति (श्याम), चांगे० (चांगेरी के तुल्य ४ पत्रों वाला),

---

१. ब—कालं च कनकासारिः। २. **शितिवार** (शिरि आरि) वंगदेश में जलाशयों के किनारों पर बहुत उगता है। क्षुप १ फुट से ऊंचा नहीं जाता और आकार में चांगेरी (खट्टी बूटी) के तुल्य होता है, केवल पत्रों में अम्लत्व नहीं होता। **'शाको जलान्विते देशे चतुष्पत्रीति चोच्यते'** यह भावमिश्रोक्त वर्णन अतिसुन्दर है। वंगदेश में **सुनिषणक शाक** अधिक खाया जाता है। श्रीशालिग्राम ने सुनिषण्णक के बीजों को जो पिच्छिल होते हैं **उटिंगण के बीज** माना है। उटिंगण के बीज जिस क्षुप से पैदा होते हैं, उस का लैटिन नाम Blepharis edulis है, जो पंजाब और सिन्ध में बहुत मिलता है। सुनिषण्णक यहां नहीं होता। अतः यह सुनिषण्णक और उटिंगण की एकता सन्देहास्पद है। ३. ब—श्रीतिकारकः। ४. यू—शिरि। ब—स्वितः। ५. ब—शून्या।

शूल्या (शिवशूलाकार–Cross–like), वायस (काकवत् काला) ॥६३३ ॥

सुनिषण्णो हिमः स्वादुः कषायो दीपनो लघुः।
अविदाही त्रिदोषघ्नो रूक्षो हृद्यो वृषत्वकृत्।
ग्राही हन्ति ज्वरश्वासकुष्ठमेहारुचिभ्रमान् ॥६३४॥

१६६. अपराजिता[1] (श्वेतनीलपुष्पा)।

Clitoria Ternatea.

A fine-flowered climber.

Demulcent, purgative, diuretic, aperient, and antidote for poisons.

(सं०) आस्फोता, गिरिकर्णिका, (हिं०)कोयल सफेद या नीली,(बं०) अपराजिता, (गु०) गरणी, (म०) पांढरी, गोकरण, (पं०) धनत्तर। सुपुष्पित लता। स्निग्ध, रेचक, मूत्रल, ज्वरघ्न, विषहर।

सफली भूर्द्दधिसमी विष्णुक्रान्ताऽपराजिता।
सतीनिका नीलपुष्पी दानिकी क्षुरिका जया ॥६३५॥

पर्याय—सफली (फली-pod-वाली), विष्णुक्रान्ता (आकाश-Sky-पर चढ़ी हुई, ऊंची जाने वाली, वा आकाशवत् नील पुष्पों वाली), अपराजिता (पराजित न होने वाली, फलने फूलने वाली), सतीनिका (मटर के तुल्य पुष्प वा फूलों वाली लता), नीलपुष्पी (नीले फूलों वाली), जया (जीतने वा खूब बढ़ने वाली) ॥ ६३५ ॥

विष्णुक्रान्ता कटुस्तिक्ता बुद्धिमेधास्मृतिप्रदा।
कषाया कटुका पाके व्रणक्रिमिविषापहा ॥६३६॥

---

१. **अपराजिता** की सुन्दर लता पंजाब में विरल परन्तु वंगादि देशों में बहुत मिलती है। मलयदेश में तो मैं ने उसे प्रत्येक घर में देखा है। लता वृक्षों, दीवारों वा शिलाओं पर चढ़ जाती है, और सुन्दर पुष्पों के कारण लगाई जाती है। **पत्र** छोटा और गोल. **पुष्प** नील वा श्वेत (जिन के कारण अपराजिता के दो भेद हो जाते हैं), और एक एक करके शाखा पर लगे हुए। **फल** प्रायः मटर की फली के समान, और **बीज** प्रायः कलायवत्। **मूलस्वरस** रेचक और मूत्राल है, उस की नस्य देने से अर्द्धावभेदक (Hemicrania) दूर होता है। पत्रस्वरस गलगण्ड तथा अन्य त्वग्रोगों में लेप करने में काम आता है। मूलस्वरस वा चूर्ण मधुमिश्रित सर्पविष में लाभकारी है। मूल (शुष्क वा आर्द्र) का ही अधिक व्यवहार होता है। **बीज** रेचक और ज्वरघ्न हैं।

१६७. सर्पाक्षी[1] ।

Ophiorrhiza Mungos ?
A shruby herb.
Bitter, tonic, germicidal and antidote for snake-poison.

(हिं०) सरहची, सरहटी, गिन्नी, (बं०) पान शिउली ।
भूम्याच्छन्न हरितक ।
तिक्त, रसायन, कृमिघ्न, सर्पविषघ्न ।

शुक्लपुष्पा भूमिलग्ना ह्रस्वसाराऽऽखुपुष्पिका ।
सूक्ष्मपत्रवरा ज्ञेया सर्पाक्षी क्षीरपुष्पिका ॥६३७॥

पर्याय—शुक्लपुष्पा (सफेद फूलों वाली), भूमिलग्ना (भूमि पर लगी हुई छोटी बूटी), ह्रस्वसारा (तना पत्रादि बहुत छोटे हैं जिस के), आखुपुष्पिका मूषककर्णाकार पुष्प हैं जिस के), सूक्ष्मपत्रवरा (बहुत छोटे पत्रों वाली), सर्पाक्षी (सर्पाक्षवत् क्षुद्र वा सर्पारि), क्षीरपुष्पिका (शुक्लपुष्पी) ॥६३७॥

सर्पाक्षी **कटुस्तिक्तोष्णा कृमिजालनिकृन्तनी ।**
वृश्चिकोन्दुरसर्पाणां विषघ्नी व्रणरोपणी ॥६३८॥

कृमि०—सर्वकृमिनाशक (Germicide) । **उन्दुरः**—मूषक ॥६३८॥

१६८. हिलमोचिका[2] ।

Enhydra fluctuans.
A glabrous aquatic herb.
Bitter, antibilious, laxative, useful in skin and nervous diseases.

(हिं०) हुरहुर ? (बं०) हिंचे शाक, हेलिंचा ।
मृदु जलासन्न क्षुप ।
तिक्त, पित्तघ्न, रेचक, शाक, त्वग्रोगान्तक, मेध्य ।

हिलमोची शंखधरा जलब्राह्मी प्रकीर्त्तिता ।
जलब्राह्मी सरा शोफकुष्ठपित्तकफप्रणुत् ॥६३९॥

---

१. **सर्पाक्षी** की आकृति बड़े सुन्दर रूप से ऊपरोक्त श्लोक में वर्णन की गई **है** । यह आनूप पार्वतीय स्थानों में बहुत मिलती है । इस की **मूल** अत्यन्त तिक्त होती **है** । यह सर्पादिविषों में खाने एवं लगाने के काम आती है । मूल का चूर्ण, स्वरस वा क्वाथ काम आता है, तथा पंचाग का क्वाथ वा स्वरस भी दे सकते हैं । इस का शाक भी विषघ्न **है** । २. **हिलमोचिका** आसाम तथा वंगदेश में पुष्करों वा पंकज तथा जलान्वित स्थलों पर बहुत उगती है । **क्षुप** हाथ भर ऊंचा जाता **है**, **पत्र** छोटे **और** लम्बे, स्वाद में तिक्त । वंगदेश में इस का तिक्त शाक रक्तशोधक, पित्तघ्न **और** मेध्य समझा जाता **है** । कलकत्ता के वैद्य इस का **स्वरस** (१ तोला शिरोऽर्ति तथा अन्य वायुरोगों (Nervous diseases) में रसों के साथ अनुपानवत् देते हैं।

१६९. दुग्धिका[1] ।

Euphorbia pilulifera.	(हिं०) दुद्धि, दुधिया, (पं०) दोधक छोटी वा बड़ी, (बं०) दुधि, दुदुले, क्षीरइ, (म०, गु०) दुधी ।
An annual weedy herb.	वार्षिक क्षुद्र तृणाक्षुप ।
Cool, astringent and germicide.	शीत, ग्राही कृमिघ्न ।

राजक्षवो दुग्धिनीका दुग्धिका स्वादुपुष्पिका ।
क्षीरावी क्षीरिका शीता सिताम्बुःमधुपर्णिका ॥६४०॥

पर्याय–दुग्धिका, क्षीरिका (दुग्धवत् रसमय), सिताम्बु (श्वेतरसयुक्त) ॥६४०॥

क्षीरावी मधुरा तिक्ता गुर्वी क्षीरा कटुः पटुः ।
रूक्षोष्णा वातला हृद्या शुक्रला सृष्टमूत्रविट् ।
विष्टम्भिनी गर्भकरी[2] कृमिकुष्ठकफप्रणुत् ॥६४१॥

१७० चुक्रा[3] (चाङ्गेरी)

Oxalis Corniculata. The Indian sorrel.	(हिं०) चूका, (पं०) खट्टी बूटी, (बं०) चूकापालङ्, आमरूल शाक, (म०) आंबचूका, (गु०) चूको खाटी भाजी ॥
An annual diffuse herb.	वार्षिक विस्तृत हरितक ।
Sour, cooling, refrigerant, astringent and aromatic.	अम्ल, शीत, हृद्य, ग्राही, दीपक, पाचक ।

---

१. **दुग्धिका** सर्वत्र सुलभ । यह ३, ४ प्रकार की है, (१) ऊपरोक्त साधारण दुग्धिका, जो ८-१० अंगुल ऊंची जाती है, और पत्रकोणों में गोल पुष्प वा फल होते हैं । (२) अति-सूक्ष्म पत्रों वाली भूम्याच्छन्न (E microphylla, micro-सूक्ष्म, phylla-पत्र), (३) हाथ भर ऊंची, पत्र बड़े (E. hypericifolia) दुग्ध तिक्तोष्ण, (४) नं० (२) से बड़ी, रक्ताभ, बहुशाखा, भूम्याच्छन्न (E. thymifolia) पंजाब में दुर्लभ । (१) और (२) प्रायः गुणों में समान हैं, शीतवीर्य, विष्टम्भि, गर्भस्थापक, वीर्यस्तम्भक । इन के शुष्क पुष्पों वा अंकुरों का चूर्ण (२-३ माषे) शर्करामिश्रित वीर्यस्तंभक है । **आर्द्र क्षुप** को घोट छान कर ठण्डाई की तरह पंजाब में पिया जाता है, यह शीत और मूत्रल है । **दुग्ध** को त्वग्रोगों पर लेपार्थ प्रयुक्त किया जाता है । **शुष्क क्षुप** का चूर्ण गोदुग्ध वा जल से प्रवाहिका, अतिसार, श्वेतप्रदर, तथा रक्तप्रदर में खिलाना लाभकारी है । (३) रेचक और उष्ण है । उसकी मूल को रजःकृच्छ्र में दिया जाता है । स्तन्यवृद्धि के लिए नं० (२) लाभकारी है । Euphorbia N. O. में वह क्षुप शामिल हैं, जो प्रायः दुग्ध वाले हैं । स्नूही (थोहर) भी इस में आजाती है । २. गर्भहरी । ३. **चुक्रा** और चाङ्गेरी (Wood sorrel) में बड़ा थोड़ा अन्तर है । प्रायः

क्षुद्राम्लिका चतुःपर्णी चुक्रा दन्तशठाऽम्लिका ।
अम्बष्ठका तु चांगेरी लोटा लोणाऽम्ललोणिका ।
सुनिषण्णच्छदा राजमोटा मोटाऽम्लदोलिका ॥६४२॥

पर्याय—क्षुद्राम्लिका (छोटी इमली), चतुःपर्णी (चतुष्पत्री), चुक्रा (खट्टा), दन्तशठा (दांतों को ठगने वाला), अम्लिका (अम्ल, खट्टा), सुनिषण्णच्छदा (सुनिषण्ण-वत् ४ पत्र हैं जिस के) ॥६४२॥

चाङ्गेर्यम्ला कषायोष्णा मधुरा दीपनी लघुः ।
पित्तला हन्त्यतिसारग्रहण्यर्शःकफानिलान् ॥६४३॥

१७१. चक्रमर्दः[२] (दद्रुघ्नः) ।

Cassia alata. A large annual shrub. Cathartic and specific for ring-worm, itches, etc.	(हिं) पवाड़, पमाड़, दादमारी, (बं) चाकुन्दे, (म०) टांकाला, दादमर्दन, (गु०) कुवाधियो । बृहद्वार्षिक क्षुप । रेचक, दद्रुपामादि त्वग्रोगनाशक ।

चार पत्रों वाली हरितक का नाम **चाङ्गेरी है**, और इसी कारण से 'सुनिषण्णच्छदा' इसे कहा गया है, और **त्रिपत्री** हरितक को **चुक्रा** कहते हैं, परन्तु यहां कैयदेव ने दोनों को 'चतुष्पर्णी' कहा है, कहीं चुक्रा पांच पत्रों वाला और कहीं २ पालक के समान पत्रों वाला माना गया है, वस्तुतः दोनों प्रायः तुल्य हैं । इन में अम्लत्व का कारण Oxalic acid (or acid potassium oxalate) है । जहां मूत्र में Oxalates नामक लवण हों, वहां चांगेरी निषिद्ध है, अन्यथा मन्दाग्नि आदि में लाभकारी है । **चांगेरीघृत** (चक्र०) गुदभ्रंश वा योनिभ्रंश में दिया जाता है । **चांगेरीस्वरस** वा **कल्क** बहुत शीतस्पर्श है, उसे पैत्तिक शोथ वा शिरोऽर्ति में लेपार्थ व्यवहार किया जाता है । चां० स्वरस धत्तूरविष को शान्त करता है । और ज्वर, स्कर्वी (Scurvy) आदि में लाभकारी है । चांगेरी वा चुक्रा को अन्य शाकों से मिला कर व्यञ्जनवत् पकाया जाता है । १. व—अम्लदा चलः । २. **चक्रमर्द** और **कासमर्द** (देखो अंक १६४) को एकत्र देखे विना भेद करना कठिन है । दोनों Cassia वा शिम्बीजाति के अङ्ग हैं, और प्रायः समगुण हैं । चक्रमर्द कासमर्द की अपेक्षा छोटा परन्तु स्थूल होता है । **च० पत्र** अधिक लम्बा और नोकीला । **च० पुष्प** बृहत् (२-३ अंगुल) और का० पुष्प क्षुद्र (१-२ अंगुल); **च० शिम्बी** (Pod) १०-१२ अंगुल लम्बी और १-२ अंगुल चौड़ी, का० शिम्बी ५-७ अंगुल लम्बी और कम चौड़ी वा गोलप्राय । चक्रमर्द की एक शिम्बी में प्रायः **५० बीज** होते हैं, जो पक्व फली के स्वभावतः खुलने से भूमि पर गिर जाते हैं, और दूसरे वर्ष क्षुप को पैदा करते हैं । कासमर्द की एक शिम्बी में प्रायः १५-२० बीज होते हैं, और यह फली स्फोटी (Dehiscent) भी नहीं ।

दद्रुघ्नः स्यादेड़गजः क्षोदुको मर्द्दकस्तथा ।
आवर्त्तकस्त्वेड़गजश्चक्रमर्द्दश्च चक्रिका ।
पद्माटो मेषकुसुमः प्रपुन्नाटः प्रपुन्नटः ॥६४४॥

पर्याय—दद्रुघ्न (दाद को नाश करने वाला-Ringworm-killer), चोदुक (मर्द्दक, नाशक, पेषक), मर्द्दक (दद्रुनाशक), आवर्त्तक (गोल, चक्र इत्यादि नामों वाला), चक्रमर्द्द (चक्र-दद्रु—घ्न), चक्रिका (गोल), मेषकुसुम (मेषाचिवत् पुष्प हैं जिसके), प्रपुन्नाट (पंवाड़) ॥६४४॥

प्रपुन्नाटो हिमो रूक्षो हृद्यः स्वादुः पटुर्लघुः ।
विष्टम्भी सृष्टविण्मूत्रः कुर्यात्पित्तानिलौ हरेत् ॥६४५॥
कफकुष्ठज्वरश्वासकासमेहारुचिक्रमीन् ।
प्रपुन्नाटस्य शाकं तु कफकुष्ठानिलापहम् ॥६४६॥
पित्तप्रकोपनं बल्यं दद्रुपामाहरं गुरु ।
तत्फलं कटुकं सोष्णं जयेत्कुष्ठकफानिलान् ।
विषकण्डूगुल्मदद्रुश्वासकासक्रमीन् जयेत् ॥६४७॥

प्रपुन्नाटः—चक्रमर्द्द (पंवाड़) पचांग वा सामान्यरूप । **शाकं**— पत्रपुष्पसिद्ध-व्यञ्जनं । **तत्फलं**—चक्रमर्द्द बीज ॥६४५–४७॥

१७२. वाकुची[1] ।

Psoralea corylifolia.	(हिं०) वाकुची, बावची दाना, (बं०)
Scurfy pea.	हाकुच, (म०, गु०) बावची ।
An erect anuual shrub.	वार्षिक क्षुप वा झाड़ी ।
Laxative, stimulant, and useful in leucoderma, leprosy, etc.	मृदुरेचक, उष्ण, श्वित्रकुष्ठघ्न ।

चक्रमर्द्द में एक वृन्त पर ८-१० जोड़े पत्तियों (Leaflets) के होते हैं, और कासमर्द्द में ५-६ जोड़े । चक्रमर्द्द वंग, बम्बे आदि में बहुत होता है, और पंजाब में कम, परन्तु कासमर्द्द पंजाब में बहुत मिलता है । **चक्रमर्द्दबीज** (पवाड़ बीज) मूलकाम्बु, अम्ल दधि, निम्बुरस, काञ्जी वा सिरके (Vinegar or acetic acid) में पीसकर दद्रु वा अन्य कण्डूात्मक त्वग्रोगों पर लेप करने से बहुत लाभ पहुंचता है । चतुर्थांश 'चोक' मिलाने से यह लेप अधिक गुणप्रद और तीक्ष्ण हो सकता है । राल और बीज का चूर्ण सिध्म पर मलने से सिध्म दूर हो जाता है । **च० पुष्प और पत्र** का क्वाथ वा स्वरस वा कल्क दद्रुनाशक है । दद्रुघ्न रेचक है, तथा कास, गुल्म, सर्पविषादि में लाभकारी हैं । **च० शाक** रेचक, रक्तशोधक और कासहर है ।

१. वाकुची (बावची दाना) बाजार में कृष्ण छोटे २ गोल चपटे दानों के रूप में मिलती है । **क्षुप** २–३ हाथ ऊंचा, पत्र गोल, व्यास २–३ इंच, कठोर और ऊर्ध्वाधः कृष्णबिन्दुलाञ्छित; **पुष्प** २०–३० इकट्ठे और गुच्छाकार, पीतवर्ण,

१७३. सोमराजी[1] ।

Vernonia anthelmintica. Wild cumin. Worm seeds.

A robust leafy annual.

Bitter, anthelmintic and antiperiodic.

(हिं० काली जीरी, (बं०) सोमराज, (म०) कारल्ये, (गु०) कड़वी जीरी ।

विशाल पत्रमय वार्षिक क्षुप ।

तिक्त, कृमिघ्न, ज्वरवेगरोधक ।

वाकुची चन्द्रशकला चन्द्रिका सोमवल्लिका ।
अवल्गुजः पूतिफला चन्द्रराजी वराऽमृता ॥६४८॥
सोमराजी चन्द्ररेखा मलयूरिन्दुराज्यपि ।
कालमेषी कृष्णफला सोमखण्डा सुवल्लिका ॥६४९॥

पुष्पदण्ड (peduncle) दीर्घ, **फल** शिम्बीवत् (pod-like), छोटा और कृष्णवर्ण । शोढल नि० में वाकुची का स्वरूप "**क्षुपो वाकुचिकायाश्च गोवारीसदृशो भवेत् । पीतपुष्पो गुच्छफलो दुर्गन्धः कृष्णबीजकः ॥**" ऐसा दिया गया है । गोवारी—गोवारा (गवारा), N. O.—Leguminosea । वाकुची को यथार्थ श्वित्रारि कहा गया है, क्योंकि **श्वित्र** (Leucoderma-white Patches–फुलबहरी, सफेद कोढ़ वा दाग), के लिए यह दाने बड़े लाभकारी हैं । **वाकुचीबीज** को काञ्जी, दधि, निम्बुरसादि में घिस कर श्वित्र पर लेप करने से त्वचा रक्ताभ हो जाती है, पुनः क्षुद्र पिड़िका (Vesicles or pimples) निकल आती हैं, जिन में जल भर जाता है । यदि इन को छेड़ा न जावे, वा केवल शतधौत घृत वा मक्खन लगाया जावे, तो यह सूख जाती हैं, और अपने पीछे त्वचा पर काले दाग छोड़ देती हैं, जो शनैः २ बढ़कर त्वचा पर साधारण वर्ण ला देते हैं । यदि स्फोटादि व्रण गम्भीर और अधिक हो जावें, तो साधारण व्रणवत् क्रिया करनी चाहिए । **वा०बीज** स्फोटकारक (Vesicant) हैं । इन का **चूर्ण** वा **घन तैल** (निष्पीडन द्वारा प्राप्त) मक्खन वा वैज़ीलीन में मिलाकर प्रलेप कर सकते हैं । कहीं २ चूर्ण को गैरिकादि द्रव्यों से मिलाकर टिकड़ियां बनाई जाती हैं, जो जल में घिस कर लगाई जा सकती हैं । बीजों को तैल में पकाकर **वाकुचीतैल** बन जाता है । वाकुची रूक्षोष्ण है, स्थौल्य, रजःकृच्छ्र, कफादि को नाश करती है । १ माषा दाने खिला सकते हैं, इन से शरीर में गर्मी उत्पन्न होती है । और वा० बीज रात्रि को जल में भिगो रखें, प्रातः जल नित्थार कर पिला दें । यह अन्तःप्रयोग भी श्वित्र को ठीक करने में सहायता देता है । वाकुची अन्य त्वग्रोगों तथा उदरकृमि में लाभकारी है ।

१. अनेक निघण्टुकारों और टीकाकारों ने **सोमराजी** (१काली जीरी) और वाकुची को एक ही द्रव्य समझा है, जो सर्वथा अशुद्ध है । वाकुची का वर्णन ऊपर कर दिया गया है । सोमराजी का **क्षुप** दो हाथ ऊंचा, दृढ़ और विशाल होता है । **पत्र** अत्यधिक, ५–१२ अंगुल लम्बे चौड़े और दंदानेदार । **पुष्प** सूर्यमुखीवत् संयुक्त

पर्याय—चन्द्रिका (चन्द्रवत् शीतवीर्य), सोमवल्लिका (ठंडी लता), पूतिफला (दुर्गन्धित फल), चन्द्रराजी (ठण्डी किरणों वा वीर्य वाली), वरा (श्रेष्ठ), अमृता (शीत, अमृतरूप), इन्दुराजी (सोमराजी, इन्दु—चन्द्र), कालमेषी (काली), सुवल्ली (सुन्दर क्षुप) ॥६४८–४९॥

वाकुची तुवरा तिक्ता कटुपाका हिमा लघुः ।
दीपनी मधुरा रूक्षा रुच्या हृद्या रसायनी ॥६५०॥
विष्टंभिनी सरा मेध्या रक्तपित्तकफापहा ।
हन्ति कुष्ठकृमिश्वासकासमेहज्वरारुचीः ।
तत्फलं पित्तलं कुष्ठकफानिलहरं कटु ॥६५१॥

१७४. काकमाची[1] ।

Solanum Nigrum.	(हिं०) मकोय, कवैया, (बं०) गुड़-कामाई, काकमाची, (म०) कामोनी, (गु०) पीलुड़ी, (पं०) कांपीलू, मको ।
A small glabrous herb.	क्षुद्र मृदुपर्ण हरितक ।
Alterative, laxative, diaphoretic, diuretic and anodyne.	रसायन, मृदुरेचक, स्वेदल, मूत्रल, वेदनाशमक ।

(Composite), गोल, व्यास २ अंगुल, रक्ताभ; **फल** गोल; **बीजकोष** क्षुद्र और लंबे जिन में एक एक लम्बा **बीज**, जो जीरे के तुल्याकार परन्तु कृष्णवर्ण और दुर्गन्धित (पूतिक) होता है । सोमराजी (बीज) अत्यन्त तिक्त और अरुचिकर होते हैं । उन की फांट वा शीतकषाय ज्वरघ्न, रक्तशोधक और कृमिनाशक है । सोमराजी, धत्तूरबीज और अहिफेन का **लेप** गण्डमाला, ग्रन्थि, शोथादि पर करने से वेदना शान्त करता है और उन्हें लीन भी कर देता है । सोमराजी का उपनाह (Poultice) भी लाभकारी है । सो० बीज (२ माषे) मधुमिश्रित खिलाने से और पुनः ४,५ घंटे बाद रेचन देने से उदरकृमि बाहर आ जाते हैं । **सोमराजी** वा **बृहत्सोमराजी तैल** (चक्र०) कुष्ठ, पामादि में बहुत लाभकारी है । **सोमराजी पत्र** शाकार्थ काम आते हैं । **पत्रस्वरस** रक्तपित्त में देते हैं । सोमराजी शीतवीर्य है । १. **काकमाची** सर्वत्र सुलभ तथा सुप्रसिद्ध । क्षुप की शाखाओं पर पत्रों के कोण में गोल, छोटे, कृष्णवर्ण मृदु फलों के गुच्छे लगे रहते हैं । फल को अंगुलियों में दबाने से कृष्णवर्ण तिक्त रस निकल आता है, जिस में पाश्चात्यानुसाधान द्वारा एक **विषैला सत्त्व** सैलोनीन (Salonine) सिद्ध किया गया है । पंजाब में एक वार तीन बच्चों की मृत्यु काकमाची के फलों के खाने से हुई थी । फल खाने के पश्चात् उत्क्लेश, वान्ति, उदरशूल, तृष्णा, भ्रम मूर्च्छा, मोह और तदनन्तर मृत्यु हुई । अतः केवल फलों का प्रयोग सावधानी से करना चाहिए । पञ्चांग प्रयोग में

काकसाह्वा काकमाची कामाता जघनेफला ।
काकजंघा नदीकान्ता कामाची जघनेफला ॥६५२॥
सर्वतिक्ता बहुफला स्वादुपाकफला स्मृता ।
काकमाची काकिनी ज्ञेया कुष्ठघ्नी वायसी तथा ।
ध्वांक्षमाची गुड़फला रसायनवरा कटुः ॥६५३॥

पर्याय—काकसाह्वा (काक के पर्यायों वाली), काकमाची (कृष्णवर्ण पीलु-तुल्य फलों वाली), कामाता (काली माता), जघनेफला (जघन-शाखा-पर होते हैं फल जिस के), सर्वतिक्ता (सर्वांगतिक्ता), बहुफला (गुच्छफला), वायसी (काकी), ध्वांक्षमाची (ध्वांक्ष काक), गुड़फला (मधुर वा गुटिकाकार फलों वाली), रसायनवरा (श्रेष्ठ रसायन), कटु (कटुरसा) ॥६५२–५३॥

काकमाची कटुस्तिक्ता सोष्णा स्निग्धा रसायनी ।
हृद्या वृष्या सरा स्वर्या त्रिदोषघ्नी लघुर्जयेत् ।
कुष्ठशोफप्रमेहार्शःश्वासकासारुचिज्वरान् ॥ ६५४ ॥

१७९. काकजङ्घा[1] ।

Leea hirta.
An evergreen course shrub.
Tubers and stems astringent and mucilaginous.

(हिं०) काकजंघा, मसी, (ब०) केउयाठेङ्गा, कांटा गुड़कांउलीं, (म०) कांगांचें झाड़, (गु०) अघेड़ी ।
सदा हरित खरस्पर्श झाड़ी ।
मूल तथा शाखा ग्राही, पिच्छल ।

हानि नहीं । पञ्चांग काकमाची का **स्वरस** (१–२ तो०), क्वाथ (३–५ तो०), और अर्क (५–१० तो०) ज्वर, यकृद्वृद्धि (Enlargement of Liver), हृद्रोग (Heart-diseases), वृक्करोग (Kidney-diseases), शोफ (Dropsical swellings), प्लीहरोग (Englarged Spleen), आमवात, सुजाक, कुष्ठ, पामादि रोगों में लाभपूर्वक दे सकते हैं । यूनानी हकीम अर्क बहुत प्रयोग करते हैं । पत्र वा पञ्चांग के कोष्ण **कल्क** से मुष्कशोथ (Swelling of the testicles), अर्शः (Piles), सन्धिशोथ (Rheumatic swellings) आदि पर स्वेद करना और बांधना बड़ा लाभकारी है । शुष्क काकमाची का **क्वाथ** छान कर शेष कल्क हाथ पाओं की शोथ पर बांध सकते हैं । वस्तुतः काकमाची का **शाक** भी इन रोगों में दे सकते हैं । उस का **शर्बत** स्वेदल और कासहर है ।

१. **काकजंघा** पंजाब में विरल परन्तु अन्य प्रान्तों में विशेषतः नदीतट वा जलासन्न स्थानों में बहुत मिलती है । **क्षुप** २-३ हाथ ऊंचा और कठीला, **पत्र** लम्बे, रोमश और किनारे कटे हुए; **शाखा** वा तना पतला, काष्ठिक, खर और रेखाङ्कित (ridged), थोड़े २ अन्तर पर ग्रन्थियां होती हैं, जो काकजानुवत् समझें और शेष पर्व काकजंघावत् । पत्रादि भाग प्रायः कृष्णवर्ण । **काकजंघामूल** वा **पञ्चाङ्ग**

काकजंघा काकतिक्ता नदीकान्ता सुलोमशा।
मदव्याकर्मणी काका पारावतपदी तथा ॥६५५॥

पर्याय—काकजंघा (काक की जंघा के तुल्य खर रेखान्वित शाखाएं हैं जिस की), काकतिक्ता (काकमाचीवत् तिक्त), नदीकान्ता (नदीप्रिय जलासन्न देश में होने वाली), सुलोमशा (लोमदार), मदव्याकर्मणी (मदनाशक), काका (काक-सदृश), पारावतपदी (कबूतर के पाओं की तरह कटे हुए किनारों वाले पत्र हैं जिस के) ॥६५५॥

काकजंघा हिमा तिक्ता कषाया कफवातजित्।
निहन्ति ज्वरकुष्ठास्रव्रणकण्डूविषकृमीन् ॥६५६॥

१७६. काकनासा[1] ?

काकास्यसस्या काकाङ्गी चोरस्नायुः शिरोबला।
काकनासा तु काकास्या जीवनीया सुरङ्गिका ॥६५७॥
काकनासा कषायोष्णा कटुका रसपाकयोः।
कफघ्नी वामनी तिक्ता शोफार्शःश्वित्रकुष्ठहा ॥६५८॥

१७७. ज्योतिष्मती[2]।

Celastrus paniculatus.	(हिं०)मालकांगुनी, काङ्गनी, (म०) मालकांगोणी, (गु०) मालकांगणी।
A large climbing shrub.	बृहल्लतारूपी क्षुप।
Stimulant, aphrodisiac, nervine tonic and stomachic.	उष्ण,वाजीकर,मेध्यरसायन,दीपक।

का चूर्ण वा क्वाथ निद्रानाश, यक्ष्मा, कास, पाण्डु, प्लीहा, प्रदरादि में लाभकारी है।

१. **काकनासा** का क्षुप(हिं०–कौआ ठोडी वा बिछुआ,बं–केउयाठुटी, L.–Gymbrima sylvestris ?) हरिद्वार आदि के इतस्ततः पर्वतों पर बहुत मिलता है। उस का कृष्ण कठोर फल काक की ठोडी से मिलता जुलता है । उस का एक भाग काकनासा वा काक की चोंच के तुल्य और तद्वत् तीक्ष्ण होता है। वहां बच्चे उस से खेला करते हैं और हास्य में एक दूसरे को चुभोते हैं। यह कषायरस और कासादि वक्षोरोगों के लिए लाभकारी है। उस का अधिक व्यवहार नहीं होता, परन्तु कई विद्वानों का मत है कि यह काकनासा नहीं।

२. **ज्योतिष्मती** बंगदेश में दुर्लभ, अतः उस का कोई बंगीय नाम नहीं दिया गया। काश्मीर, चम्बादि पंजाब के पर्वतों में यह वृक्षारूढ़ लता बहुत होती है। **काण्डत्वक्** पीताभ, मृदु, अवमोटित और सूत्रमय (Fibrous); **पत्र** अण्डाकार, नोकदार और किनारे कटे हुए, पत्रों के ५–६ जोड़े एक कोमल शाखा पर लगे रहते हैं, **पुष्प** १–२ अंगुल, पीला, **पुष्पदण्ड** ३–४ अंगुल लम्बा, **पक्वफल** गोल, कोशाकार, रेखान्वित, उज्ज्वल पीत, **बीज** ३-३ एक फल में। बीज वा **मज्जा**, जो बाजार में ज्योतिष्मती के नाम से मिलती है, सुप्रसिद्ध द्रव्य है। यह वा उस का

काकाण्डकी सूक्ष्मफला वेगा काकादनी लता।
पीततैला सलवणा पिरायाक्ता च स्फुटत्वचा।
ज्योतिष्मती कङ्गुणिका कट्वीका कटुनी वृष्या ॥६५६॥

पर्याय—काकाराडकी (काकाराडवत् फलों वाली), वेगा (उत्तेजक), काकादनी (काकभच्या), पीततैला (पीले तैल वाली), पिरायाक्ता (तैलमय, स्निग्ध), स्फुटत्वचा (शिथिल त्वचा वाली), ज्योतिष्मती (ज्योतिर्मय, मेध्य वा अग्निसम उष्ण), कट्वीका (कटुरसा) ॥६५६॥

ज्योतिष्मती तु सुस्निग्धा तिक्तोष्णा कटुका सरा।
कषाया वामनी तीक्ष्णा मोहमेधाग्निवर्णदा।
कफानिलहरा हन्ति व्रणवीसर्पपाण्डुताः ॥६६०॥

१७८. ब्राह्मी[1] ?

Herpestis Monniera. (Syn.:-Gratiola Monniera.) Marshy glabrous runner. Bitter, diuretic and nervine tonic.	(हिं०) जलनीम, ब्राह्मी ? (बं०) विर्मि, अधविर्णी, (म०)नीरब्राह्मी। जलासन्न मृदुपर्ण भूमिलुण्ठित वल्ली। तिक्त, मूत्रल, मेध्यरसायन।

तैल बड़ा गरम है। अधिक मात्रा (२–३ माषे) खा लेने से उत्क्लेश और वान्ति हो जाती है। अतः अल्प मात्रा (५–१५ बीज, १०–१५ बिन्दु तैल) व्यवहार करना उचित है। मात्रा शनैः बढ़ा सकते हैं। बीजों के निरन्तर प्रयोग से मेधाशक्ति बढ़ जाती है। प्राचीन काल में विद्वान् लोग स्मृति और बुद्धि की वृद्धि के लिए इस के बीजों को प्रतिदिन प्रातः खाते थे। ज्योतिष्मतीबीज, जायफल, लोबान, लवङ्ग और जावत्री को समभाग चूर्ण करके पातालयन्त्र द्वारा खेंचने से एक कृष्णवर्ण तैल (Black Oil–Oleum nigrum) प्राप्त होता है, जो ५-१५ बिन्दु तक दुग्ध वा जल में देने से उत्तम वाजीकर प्रभाव दिखाता है। यह तैल **ध्वजभङ्ग तैल** (तिला) के रूप में शिश्न पर मला जाता है, तदनन्तर पान के पत्र लिंग पर बांध देने चाहिएं। यह तैल आमवात, वातरोग, ग्रन्थि, गराडमालादि पर भी लगाया जाता है। इस तैल के खाने से २-३ घंटे बाद बहुत पसीना आता है। कई डाक्टरों ने इस कृष्ण तैल को वातवलासक ज्वर (Beri-beri) में लाभकारी सिद्ध किया है। केवल ज्योतिष्मती के बीजों से जो तैल निष्पीड़न द्वारा प्राप्त होता है, वह वर्ण में पीत, तनु और कृष्ण तैल की अपेक्षा कम उपयोगी है। वह भी तिला वा अभ्यंगादि में प्रयोग कर सकते हैं। **ज्यो० पत्रशाक** घृतभृष्ट रजःप्रवर्तक है।

१. **ब्राह्मी** जैसी दिव्य महौषधी अभी तक सन्देहग्रस्त है। पंजाब वा सं० प्रा० में तो मराडूकपर्णी को ही वैद्य वा सर्वसाधाररा जन ब्राह्मी समझते हैं, परन्तु बंगीय वैद्य **जलनीम** को ही ब्राह्मी कहते हैं। जो नाम वा वर्णन ऊपर दिया गया है, वह

सरस्वती सत्यवती स्मारिणी ब्रह्मचारिणी।
सत्यनामा ब्रह्मसोमा ब्राह्मी ब्रह्मसुवर्चला ॥६६१॥

पर्याय—सरस्वती (विद्या की देवी वा मेधावर्धक), सत्यवती (दिव्यशक्तियुक्त), स्मारिणी (स्मृतिकारक), ब्रह्मचारिणी (दिव्य गुणों के कारण ब्रह्म में चलने वा चलाने वाली), ब्रह्मसोमा (ब्रह्मप्राप्ति के लिए सोमवत् गुणकारी), ब्रह्मसुवर्चला (ब्रह्मतेजस्विनी)। गुण आगे श्लोक ६६३–६४ में देखें ॥६६१॥

१७६. मण्डूकपर्णी[1]।

Hydrocotyle asiatica. Prostrate perennial herb Astringent and tonic, useful in brain, blood and skin diseases.	(हिं०) ब्रह्ममाण्डूकी, चरेली, (बं०) थुलकुड़ि, थानकुनि, (म०) ब्राह्मी, करिंगा, (गु०) विद्याब्राह्मी, खरब्राह्मी। भूमिलुण्ठित बहुवार्षिक क्षुप। ग्राही, मेध्य, रक्तत्वग्दोषान्तक।

मण्डूकपर्णी मण्डूकी ब्राह्मणी दुर्जरच्छदा।
सुनामा मुनिका त्वाष्ट्री दिव्या मेध्या महौषधी।
कपोतवेगा लावण्या वयःस्था सोमवल्ल्यपि ॥६६२॥

जलनीम का ही है, न कि ब्राह्मी का। जलनीम प्रायः सर्वत्र भारत में जलाशयों वा पंकज स्थलों में होती है। इस की वल्ली वा क्षुप भूमि पर लेटा रहता है; **पत्र** सूक्ष्म, गोल, वृन्तरहित, मांसल, रसमय और तिक्त। **पुष्प** क्षुद्र, पञ्चदल (5 petals), यह शरद् ऋतु में बहुत होती है। यह मेध्य है वा नहीं ? यह कहना बड़ा कठिन है। ब्राह्मीघृतादि में बंगीय वैद्य इस को व्यवहार करते हैं। प्रायः इस का पञ्चांग काम आता है। जिस ब्राह्मी को खाकर मेधा, तेजः, बल, आयु आदि की वृद्धि होती है, वा जो सोमतुल्य है, उस को हिमालय में जाकर ढूंडना चाहिए और उस का प्रयोग वर्षों तक कुटीप्रवेशविधिपूर्वक कर के निश्चय करना चाहिए।

१. **मण्डूकपर्णी** नहरों वा नदियों के तट पर अन्य तृणों से मिश्रित वा आच्छादित मिलती है। यह भूमि पर फैली रहती है। **पत्र** गोलप्राय, वृक्काकार तथा खरस्पर्श, स्थानभेद से बड़े वा छोटे; **पत्रवृन्त** (डण्ठल—Petiole) लम्बा, शाखारूप और भूमिप्रविष्ट मूल से जुड़ा हुआ, **पुष्प** क्षुद्र और ३–३ एक गुच्छे में। बंगदेश को छोड़ कर अन्यत्र सब जगह प्रायः यही ब्राह्मी के स्थानास्पद व्यवहार होती है। क्या यह भी ब्राह्मी के गुणों से सम्पन्न है वा नहीं ? कहना कठिन है। तथापि यह शीतवीर्य, ग्राही और वीर्यस्तम्भक है। ग्रीष्म ऋतु में लोग इस को बादाम, एलादि के साथ घोट छान कर ठण्डाई की तरह पीते हैं। उन्माद, अपस्मार, विस्मृति आदि मानसिक रोगों में इसे अन्य द्रव्यों से मिला कर प्रयोग कराया जाता है, जैसे ब्राह्मीघृत, ब्राह्मीशर्बतादि। मण्डूक (मेंडक) से इसे क्या सादृश्य है, जिस से इसे मण्डूकपर्णी कहा गया ? यह समाधान भी कठिन है। सम्भव है, कि पत्र

पर्याय—मण्डूकपर्णी (मण्डूककर्णाकार पत्रों वाली ?), मण्डूकी (मेंडकी), ब्राह्मणी (दिव्य गुणात्मक), दुर्जरच्छदा (दुष्पाच्य पत्रों वाली), सुनामा (सुन्दर वा उत्तम ब्रह्म नाम वाली), वयःस्था (आयु बढ़ाने वाली), सोमवल्ली (सोमगुण क्षुप वा लता) ॥६६२॥

ब्राह्मीमण्डूकपर्ण्योर्गुणाः[1] ।

ब्राह्मी शीता सरा तिक्ता कषाया मधुरा लघुः ।
मेध्या स्वर्या स्वादुपाका हृद्याऽऽयुष्या रसायनी ॥ ६६३ ॥
मतिस्मृतिप्रदा हन्ति कुष्ठं कण्डूं ज्वरं मलान् ।
शोफारुचिविषश्वासकासमेहास्रपाण्डुताः ॥ ६६४ ॥

आयुष्या—वयःस्था वा आयुर्वर्धक । **मलान्**—तीनों दोषों को ॥६६३—६४॥

१८०. सूर्यावर्त्ता[2] ।

Helianthus vulgare.	**(हिं०) सूरजमुखी फूल, हुल हुल ?,**
Sun-Rose or Sun-flower.	**(ब०) हुडहुडे, बनशलते, (म०) सूर्य**
A tall yellow-flowered plant.	**फूल, (गु०) सूरजमुखी ।**
Seeds laxative and anthelmintic.	**दीर्घ पीतपुष्प क्षुप ।**
	बीज रेचक, कृमिनाशक ।

मण्डूककर्णाकार हों, परन्तु मण्डूक का तो बाह्य कर्ण ही नहीं होता, केवल एक परदा होता है, जिस के पीछे श्रोत्रेन्द्रिय गुप्त रहती है । वा मण्डूकवत् जलासन्न स्थानों से प्रेम के कारण इसे मण्डूकपर्णी कहा गया हो, वा माण्डूक ऋषि ने अपने नाम पर इसे प्रसिद्ध किया हो, वा मण्डूकवत् इतस्ततः भूमि पर फैलने वा दौड़ने वाला क्षुप, इत्यादि समस्याएं विचाराधीन हैं ।

१. गुणों में प्रायः दोनों समान हैं, अतः गुण यहां इकट्ठे कह दिए गए हैं, और शास्त्र में प्रायः यह एक दूसरे के पर्याय रूप आते हैं । प्रतीत होता है कि यह दिव्य औषधिएं प्रायः समान और एक दूसरे के समीप पाई जाती होंगी, और रचना में इतना भेद न होगा, जितना कि जलनीम और मण्डूकपर्णी में ।

२. सूर्यावर्त्त वा सूर्यमुखी प्रसिद्ध सुन्दर पुष्पपादप है । उस के पीले सूर्यमण्डलाकार फूल शिशिर वा वसन्त में होते हैं । वे सूर्य के साथ २ दिशा परिवर्तन करते रहते हैं । उन के इस सूर्यप्रेम को देख कर कई वैद्य उन को सूर्यावर्त्त (शिरोऽर्ति), में देने का विधान करते हैं । पर्यायों से तो सूर्यमुखी ही सिद्ध होता है, परन्तु कुछ वैद्य उस को **हुल हुल** (वा हुर हुर–Gynandropsis pentaphylla or Cleome pentaphylla) का नाम देते हैं, जो सूर्यमुखी से भिन्न क्षुप है । इस के पांच पांच बड़े लंबे चौड़े पत्त एक वृन्त से लगे रहते हैं, और वृन्त पर एक छोटासा श्वेत वा पीत पुष्प होता है, जिस के पकने पर फल में से छोटे २ वृक्काकार कृष्णवर्ण

अर्ककान्ता दिव्यतेजा शीतवृक्षा वरौषधी।
रविवल्ली तु वरदा मूलपर्णी सुखोद्भवा॥ ६६५॥
सुवर्चला सूर्यभक्ता सूर्यावर्त्ता रविप्रिया।
अर्कपुष्पी च पृथ्वीका पार्थी ब्रह्मसुवर्चला॥ ६६६॥

पर्याय–अर्ककान्ता (सूर्यप्रिया), दिव्यतेजा (दिव्य तेज वाली), वरौषधी (सुन्दर वनस्पति), शीतवृक्षा (शीतकाल में होनेवाला क्षुप), रविवल्ली (रवि–सूर्य), वरदा (सुखदायक), सुवर्चला (तेजोमय), सूर्यभक्ता (सूर्यप्रिया), सूर्यावर्त्ता (सूर्य के साथ २ आवर्तन करने वाली वा फिरने वाली), रविप्रिया (सूर्यभक्ता), अर्कपुष्पी ब्रह्मसुवर्चला(ब्रह्म के तेज वाली)॥ ६६५–६६॥

सुवर्चला हिमा रूक्षा स्वादुपाका सरा गुरुः।
अपित्तला पटुः क्षारा विष्टम्भकफवातजित्॥ ६६७॥
अन्या तिक्ता कषायोष्णा लघू रूक्षा सरा कटुः।
निहन्ति कफवातास्रश्वासकासारुचिज्वरान्।
विस्फोटकुष्ठमेहाश्मयोनिरुक्कृच्छ्रपाण्डुताः॥ ६६८॥

१८१. मत्स्याक्षी[1]।

मत्स्याक्षको मत्स्यगन्धा बाह्नी नाड़ीकडायका[2]।
मत्स्यादनी तु गण्डाली तथा गर्तकलम्बुका॥ ६६९॥

पर्याय–मत्स्याक्षक (मछली के नेत्र के समान क्षुद्र पुष्प हैं जिस के), मत्स्यगन्धा (मछली की गन्ध वाली)॥ ६६९॥

बाह्नी तिक्ता स्वादु शीता कषाया ग्राहिणी लघुः।
वातला कटुः पाके कफपित्तास्रकुष्ठजित्॥ ६७०॥

और खरस्पर्श **बीज** (हुल हुल नाम वाले) निकल आते हैं। बीज सर्षपवत् तीक्ष्ण होते हैं। उन में से एक तैल भी निकलता है। **पत्रस्वरस** कर्णशूल में लाभकारी है। पत्रों की पुल्टिस फोड़ों पर बांधी जाती है। हुल हुल प्रायः वर्षाकाल में होता है। इस का शाक (आर्द्र वा शुष्क) व्यवहार होता है। यह उष्णवीर्य, विबन्धभेदक और शोथघ्न है। हुल हुल की तीव्र गन्ध सूंघ कर वृश्चिकदष्ट पुरुष शीघ्र निर्विष हो जाता है। यह N. O. Capparidea में शामिल है, और सूर्यावर्त्त N. O. Composite में। इन दोनों जातियों में बड़ा अन्तर है। कई वैद्य इस को **अर्कपुष्पी** नाम देते हैं, जो सूर्यावर्त्त का पर्याय है।

१. **मत्स्याक्षी** (हिं०–मछेली) सर्पाची (अंक १६७)के तुल्य छोटासा क्षुप होता है, जो प्रायः जलाढ्य भूमि पर मिलता है। उस की गन्ध मछली के तुल्य होती है। **पुष्प** श्वेत वा पीत परन्तु क्षुद्र। प्रयोग प्रायः विषों में। **२.** द–नाड़ीकलापकः।

१८२. जलपिप्पली[1]।

Lippia nodiflora.	(हिं०) जल पीपर, जलपीपरि, (बं०) कांचड़ा घास, (म०) जलपिंपली, (गु०) रतबेलियो।
An annual creeping weed.	वार्षिक भूमिलुरिठत तृणक्षुप।
Cool, diuretic and a good maturant for boils.	शीत, कृच्छ्रघ्न, व्रणपाचक।

तोयपिप्पल्यभिहिता शारदा शकुलादनी।
गण्डूपदी तोयवल्ली लाङ्गली कश्चटं मतम्॥ ६७१॥

पर्याय—तोयपिप्पली (जलपिप्पली), शारदा (शरद् ऋतु में होने वाली), शकुलादनी (मछली को खाने वाली (?) वा मछली के छिलकों के तुल्य हैं पत्र जिस के), गण्डूपदी (गण्डूपद—गेण्डवे के तुल्य हैं वर्त्तुल फल जिस के), तोयवल्ली (जलाढ्य भूमि में होने वाली), लाङ्गली (पुच्छवत् गोल फलों वाली)॥६७१॥

कश्चटं शीतलं तिक्तं कषायं वातलं लघु।
कटुपाकरसं रूक्षं हृद्यं रुच्यग्निवर्द्धनम्।
तीक्ष्णं संग्राहि चक्षुष्यं दोषदाहव्रणास्रजित्॥६७२॥

१८३. गोजिह्वा[2]।

Elephantopsus scaber. Cabbage or cauliflower.	(हिं०) गोभी, गोजिया, (बं०) दाड़ि शाक, गोजिया, (म०) पाथरी, हस्तिपाता, (गु०) भोपाथरी।
A thick perennial herb.	स्थूल बहुवार्षिक क्षुप।
A cool indigestible vegetable.	शीत, दुष्पाच्य पुष्पशाक।

गोधूमिका दर्वीपत्री दर्विका कोष्ठशूलिका।
गोभी गोली च गोजिह्वा विज्ञेया भूमिकालिका॥६७३॥

पर्याय—दर्वीपत्री (कड़वी वा सर्पच्छद के तुल्य बड़े चौड़े और गहरे पत्र हैं जिस के), गोजिह्वा (गोजिह्वावत खर बृहत पत्रों वाली)॥६७३॥

---

१. **जलपिप्पली** भारत में सर्वत्र वर्षा के पश्चात् जलासन्न भूमि पर बहुत देखी जाती है। **क्षुप** भूमि पर बिछा रहता है। **पत्र** क्षुद्र (½–१ अंगुल), कोमल, स्थूल, किनारा कटा हुआ; **पुष्प** वा **फल** पिप्पली के तुल्य गोल, लम्बा (१ अंगुल), रक्ताभ; **रस** तिक्तकषाय, शीतवीर्य। शिशुओं को कोष्ठबद्धता में इस का क्वाथ वा स्वरस (१ छोटा चमचा) देने से बड़ा लाभ पहुंचता है। **स्वरस** मूत्रकृच्छ्र, मन्दाग्नि और सन्धिशूल में लाभकारी है। इस का उपनाह (Poultice) व्रणों को शीघ्र पचा देता है। इस के स्वरस की भावना देने से अभ्रक बड़ा शीतवीर्य और ज्वरघ्न बन जाता है। पारदशुद्धि में भी यह काम आती है। कहीं २ इस को मत्स्य तथा शाकों के साथ पका कर खाया जाता है। २. **गोजिह्वा** (गोभी) सुप्रसिद्ध पुष्पशाक है। यह

गोजिह्वा तुवरा तिक्ता स्वादुपाकरसा हिमा ।
वातला ग्राहिणी हृद्या कफपित्तहरा लघुः ।
हन्यात्कासारुचिश्वासप्रमेहास्रव्रणाज्वरान् ॥६७४॥

१८४. मेषशृङ्गी[1] ।

Gymnema sylvestre.
A stout woody climber.
Astringent, stomachic, tonic and expectorant.

(हिं०) मेढासिंगी, गुड़मार? (बं०) मेढाशिङ्गी (म०) मेण्डफली, (गु०) मडाशींगी । दृढ़ काष्ठिक लता । कषाय, पाचक, रसायन, कफसे कि

श्रीवृक्षो मेषशृङ्गी च वस्तशृङ्गी च शृङ्गिका ।
पादवृक्षो घनशृङ्गश्चक्षुष्यो बहुलाङ्गकः ॥६७५॥
शक्रनेमी सर्पदंष्ट्रा मेढ्रवल्ली च वर्त्तिका ।
महाकाली तिक्तदुग्धा त्वजशृंग्यक्षिभेषजम् ।
द्वितीया दक्षिणावर्त्ता वृश्चिकाली सुपुच्छिका ॥६७६॥

पर्याय—श्रीवृक्ष (सुन्दर वृक्ष वा वल्ली), मेषशृङ्गी (मेष-भेड़-के तुल्य लम्ब-वर्तुल फल है जिस का), वस्तशृङ्गी (वस्त–अजा), शृङ्गिका (शृङ्गवत् फल वाली), चक्षुष्य (नेत्रहित), बहुलाङ्गक (बहुल-बड़े वा अनेक अङ्गों वाला वा बड़े पोंछ वाली),

---

मन्दाग्नि पुरुषों को कम खाना चाहिए । इस में यदि आर्द्रक मिला दी जावे, तो इस का विष्टम्भि वातश्लैष्मिक स्वभाव दूर हो जाता है । गोभी का शुक्त (अचार) भी बनता है । इस के पत्रों का शाक रक्तार्श में लाभकारी है । मूल वा पत्र का क्वाथ वा स्वरस मूत्रकृच्छ्र, रक्तार्श और रक्तप्रदर में गुण करता है। इस **पुष्पगोजिह्वा** के अतिरिक्त **गण्ड** और **बन्ध गोभी** अन्य दो प्रसिद्ध शाक हैं । वह भी इस के समगुण समझें, परन्तु वह इतने विष्टम्भी नहीं, जितनी कि फूलगोभी । कुछ वैद्य गोजिह्वा से **गाओज़बान** (गाज़बान) अर्थ लेते हैं, जो प्रसिद्ध यूनानी द्रव्य है । इस का अर्क ज्वरादि रोगों में हृदय को शक्ति देने के लिए बहुत दिया जाता है । यहां शाकवर्ग में गोभी अर्थ करना उचित है । १. **मेषशृङ्गी** दक्षिण देश में बहुत मिलती है । यह एक दृढ़ महालता है, जो वृक्षों पर चढ़ी रहती है । **पत्र** गोलप्राय, नोकीले, ४-५ अंगुल लंबे, घन हरितवर्ण, ऊर्ध्वपृष्ठ स्निग्ध चिक्कण, अधःपृष्ठ फीके रंग का; **पुष्प** क्षुद्र, पीतवर्ण, वा श्वेताभ; **फल** मेषशृङ्गतुल्य गोल, लम्बे । दक्षिण देश में इस की **मूल** का चूर्ण ऐरण्डतैलमिश्रित सर्पदंश पर मलते हैं । मूलचूर्ण वामक और कफनिष्कासक है । **पत्र** को चबाने से जिह्वा की मधुर और तिक्त रसनाशक्ति नष्ट हो जाती है, अर्थात १ वा २ पत्र चबा लिए जावें, तो २४ घण्टे तक उस के प्रभाव से मधुर और तिक्त द्रव्य फीके प्रतीत होते हैं, अतः कई इस को गुड़मार भी कह देते हैं, और मधुमेह में प्रयोग करते हैं, परन्तु यह उस में लाभकारी सिद्ध नहीं हुई । मेषशृङ्गी वामावर्त्त (वृक्षों पर वामदिशा को चढ़ने वाली) है और वृश्चिकाली दक्षिणावर्त्त ।

शक्रनेमी (इन्द्र का चक्र वा इन्द्रधनुष), सर्पदंष्ट्रा (सर्प की दाढ़ की आकृति वाली वा सर्पविषनाशक), मेढ़्वल्ली (मेढ़्-मेष), वर्त्तिका (वर्तुल, गोल), महाकाली (अतिकृष्णवर्णयुक्त), अक्षिभेषज (नेत्रों का औषध), दक्षिणावर्त्ता (वृक्षों पर दक्षिण दिशा को लपेट खाने वाली), वृश्चिकाली (बिच्छू के तुल्य), सुपुच्छिका (सुन्दर पुच्छाकार] ॥६७५–७६॥

शृङ्गिका तुवरा तिक्ता दाहपित्तकफास्रहा।
निहन्ति तिमिरकासश्वासव्रणकृमीन्।
मेषशृङ्गीफलं तिक्तं कुष्ठमेहकफप्रणुत् ॥६७७॥

१८५. शिग्रुत्रयम्[1]।

Moringa pterygosperma. Drumstick or Horse-radish. A large pretty tree. Stimulant, pungent, expectorant, digestive, antispasmodic and anthelmintic.

(सं०) श्वेतशिग्रुः, (हिं०) सौंजिना, (पं०) सोहांजना, (बं०) शजिना, (म०) मुरंगा, शेगट, (गु०) शरघवो, मुंगा। वृहत् शोभामय वृक्ष। उत्तेजक, तीक्ष्ण, कफहर, आक्षेपनिवारक वा वायुशमक, कृमिघ्न।

(क) शोभाञ्जनः कृष्णगन्धो मुरङ्गी शालनक्षमः।
घनच्छदस्तीक्ष्णगन्धो मेचको बहुलच्छदः ॥६७८॥

---

१. शोभाञ्जन (शिग्रु) सर्वत्र सुलभ और सर्वपरिचित। शास्त्र में इस के ३ भेद **नीलशिग्रु** (वा कृष्ण शिग्रु), **मधुशिग्रु** (वा रक्त शिग्रु), और **श्वेतशिग्रु** (वा सामान्य शिग्रु) वर्णित हैं, जो ऊपर पर्यायों में भली भान्ति दिए गए हैं, परन्तु **नीलशिग्रु** इस समय दुर्लभ है। वनस्पति शास्त्रों में भी उस का नाम नहीं मिलता। **मधुशिग्रु** वा रक्त शिग्रु सिन्ध, राजपूताना वा दक्षिण भारत में कहीं २ मिल जाता है, इस को लेटिन (Latin) भाषा में Moringa Concanensis कहते हैं। इस का **वृक्ष** सामान्य श्वेतशिग्रु के सदृश, परन्तु **पुष्प** रक्ताभ तथा मधुगन्धि (Honey-scented) और स्वाद में श्वेतशिग्रु से कम कटु वा अल्प तीक्ष्ण हैं। **फल** १२-१५ इञ्च लम्बा और अल्प कटु। जो सर्वसाधारण शिग्रुवृक्ष सब जगह मिलता है, वह **श्वेतशिग्रु** है, उस का लेटिन नाम ऊपर दिया गया है। इस को सफेद **फूल** आता है। शिग्रु के सब भाग प्रायः कटु और तीक्ष्ण हैं। **मूल** वा **मूलत्वक्** का लेप वा उपनाह (Poultice) त्वचा पर व्रण (स्फोट) कर देता है, अतः यह राजिकावत् **स्फोटकारक** (Rubefacient) है। वह कल्कवर्त्ती वा पोटली के रूप में योनि में रखने से **गर्भपातक** (Abortifacient) है। उस का क्वाथ (२-३ तो०) हिंगुसैन्धवमिश्रित गुल्म अन्तर्विद्रधि, अन्तःशोथ, अश्मरी शूल, आनाह, मूर्च्छा, पक्षाघातादि (Nervous and Paralytic affections), योषापस्मार (Hysteria), रजःकृच्छ्र (Dysmennorrhea)

अवदंशो मूलपर्णी मुखभङ्गो हलच्छदः ।
सुभञ्जनो विद्रधिघ्नः काक्षीवो मूलकच्छदः ॥६७९॥
(ख) रक्तोऽन्यो मधुशिग्रुः स्यान्मधुरो मधुश्रृङ्गकः ।
स्वादुगन्धिर्गृञ्जनकः शीघ्रकः सिंहकेशरी ॥६८०॥
(ग) शिग्रुर्हरितशाकोऽन्यः श्वेतः श्वेतमरीचकः ।
तद्बीजं श्वेतमरिचं शिग्रुतैलं च बैजकम् (?)॥६८१॥

आदि वातश्लैष्मिक रोगों में लाभकारी है। उस की पुल्टिस शोथघ्न है। **मूलस्वरस** दुग्धमिश्रित मूत्रल, अश्मरीघ्न (Antilithic) और दीपक पाचक है। मूलस्वरस की **नस्य** शिरोऽर्त्तिनाशक है। **शिग्रुत्वक्** (Bark) का क्वाथ वा स्वरस ऊपरोक्त रोगो में दिया जा सकता है। यह मूल की अपेक्षा हीनगुण और अल्प तीक्ष्ण है। उस की मूल का स्वरस कर्णशूल में भी लाभकारी है। यह मधुमिश्रित देने से उदर-कृमि नष्ट करता है। **पुष्प** तथा **फल** (वा फली-Moringa Pod or Capsule) दोनों को अच्छी तरह उबाल कर घृतभृष्ट करके व्यञ्जनवत् खाया जाता है। यह बहुत गरम और ऊपरोक्त वातश्लैष्मिक रोगों, तथा आमवात,कृमिरोगादि में लाभकारी है। अधिक प्रयोग से पैत्तिक प्रकृति वालों को अम्लपित्त वा विदाह होने की सम्भावना हो सकती है। फलियों का अचार भी पड़ता है। पंजाब में मृदु फलियां खाई जाती हैं, परन्तु मद्रासी लोग उन को तब शाक में व्यवहार करते हैं, जब पककर डण्डे की तरह कठोर और मोटी हो जाती हैं, अतः उन्हें अंग्रेज़ी में प्रायः Drumstick (ढोल बजाने की लकड़ी वा डण्डी) कहा जाता है। उस के टुकड़े करके और उबाल कर तरीदार (जलमय भाजी) बनाते हैं और उन काष्ठखण्डों को चूसने से मद्रासियों को बड़ा आनन्द आता है। पंजाब में शुष्क पुष्प तथा फल शाक में काम आते हैं। **औषध** में उन का व्यवहार कम है। **शिग्रुपत्र** का स्वरस, कल्क, क्वाथ, उपनाहादि का लाभ मूलवत् समझें। मूलस्वरस वा पत्रस्वरस की **मात्रा** ६ माषे से १ तो० तक है। **शुष्क पक्वफली** (Ripe capsule) से मरिचाकार गोल परन्तु श्वेतवर्ण बीज निकलते हैं, जो **सफेद मरिच** के नाम से प्रसिद्ध हैं। यह भी कटु और तीक्ष्ण हैं। वर्त्मार्श (कुक्करों–Granular lids) के लिए श्वेतमरिच (शिग्रुबीज), समुद्रफेन, चाक्सू, दग्धशंख, जंगाल (Copper acetate ?), कृष्णाञ्जन (काला सुरमा–सर्वसम वा शेष सब से दुगना) मिलाकर गुलाब के अर्क से दीर्घकाल तक पेषण करने से उत्तम सुरमा वा अञ्जन बन जाता है। यह तीक्ष्णाञ्जन शुक्ररोग (White spots on the cornea) में भी लाभकारी है। जंगाल तीक्ष्ण होने के कारण कम डालना उचित है। बीजचूर्ण की नस्य शिरोरोग, मूर्च्छादि में लाभकारी है। बीजों के निष्पीडन से **शिग्रुतैल** (Ben Oil) निकलता है, जो सन्धिशोथ, कण्डू, कुष्ठादि में मलने के काम आता है। शिग्रु बहुत उपयोगी द्रव्य है। उसके अन्य अनेक प्रयोग हो सकते हैं।

(क) **कृष्णशिग्रुपर्याय**—शोभाञ्जन (सुन्दर अञ्जन बनता है जिस का), कृष्णगन्ध (कटु वा तीक्ष्ण गन्धवाला—pungent-smelling), घनच्छद (मोटे पत्रों वाला), तीक्ष्णगन्ध (तेज गन्ध वाला), बहुलच्छद (बहुत पत्रों वाला), मुखभङ्ग (मुख की जड़ता को तोड़ने वाला), हलच्छद (हलाकार पत्रों वाला), सुभञ्जन (शीघ्र टूटने वाली लकड़ी है जिस की), विद्रधिघ्न (विद्रधि-गम्भीर फोड़े-Abscess—को नष्ट करने वाला), मूलकच्छद (मूलकवत् तीक्ष्ण पत्रों वाला)। (ख) **रक्तशिग्रुपर्याय**—मधुशिग्रु (मीठा शिग्रु, मधुगन्धि पुष्पों वाला), मधुशृङ्क (मीठी फलियों वाला), स्वादुगन्धि (मधुर गन्ध वाला , गृञ्जनक (गाजर के तुल्य मधुर), शीघ्रक (शीघ्रकारी, तीक्ष्ण), सिंहकेशरी (सिंहवत् जटाएं हैं जिस की) । (ग) **श्वेतशिग्रुपर्याय**—हरितशाक (हरित पत्रों वाला), श्वेत (श्वेत पुष्पों वा बीजों वाला), श्वेतमरीचक (मरिचों के तुल्य श्वेत बीज हैं जिस के) । उस का बीज **श्वेतमरिच** सफेद मरिच के नाम से लोक में प्रसिद्ध है), और उस के वा अन्य शिग्रुबीजों के तैल को बैजक (बीजोत्पन्न, Eng.-Ben Oil) कहते हैं ॥६७८—८१॥

शिग्रुः कटुः कटुः पाके तीक्ष्णोष्णो मधुरो लघुः ।
दीपनो रोचनो रूक्षः क्षारस्तिक्तो विदाहकृत् ॥६८२॥
संग्राह्यशुक्रलो हृद्यः पित्तपित्तास्रकोपनः ।
चक्षुष्यः कफवातघ्नो हन्ति श्वयथुविद्रधीन् ।
मेदोऽपचीविषप्लीहगुल्मगण्डव्रणकृमीन् ॥६८३॥

शिग्रुः—सामान्य शिग्रु । **कटुः कटुः पाके**—रस में कटु और पाक में कटु । **रोचन**—रुचिकारक । **क्षारः**—क्षारवत् उष्ण, दीपक, पाचक । **अशुक्रल**—अवृष्य । **हृद्य**—रुचिकर ॥६८२—८३॥

मधुशिग्रुः **कटुस्तिक्तः शोफघ्नो दीपनः सरः ।**
तत्पत्रं वातपित्तघ्नं चक्षुष्यं स्वादु शीतलम् ॥६८४॥
बृंहणं शुक्रहृत् स्निग्धं मेदःकृमिहरं परम् ।
सकषायं लघु ग्राहि चक्षुष्यं कृमिनाशनम् ॥६८५॥
तथा मुरङ्ग्याः पुष्पं **तु श्लेष्मकृमिविनाशनम् ।**
पित्तहृत् दृष्टिपथ्यं स्याद्रक्तपित्तप्रसादनम् ॥६८६॥
शोभाञ्जनफलं **स्वादु कषायं कफपित्तजित् ।**
शूलकुष्ठक्षयश्वासगुल्मघ्नं दीपनं परम् ॥६८७॥
चक्षुष्यं शैग्रवं बीजं **तीक्ष्णोष्णं विषनाशनम् ।**
अवृष्यं कफवातघ्नं, स्वरसादशिरोऽर्त्तिनुत्[1] (?) ॥६८८॥

मधुशिग्रुः—रक्तपुष्पशिग्रुः । **मुरंग्याः पुष्पं**—शिग्रुपुष्प (सामान्य) । **शैग्रवं**

---

१. श्लोक का यह चतुर्थ पाद अशुद्ध प्रतीत होता है, क्योंकि अन्य ग्रन्थों में प्रायः '**शिग्रुवल्कलपत्राणां स्वरसः परमार्त्तिहृत् ।**' यह पाठ मिलता है और

बीजं—शिग्रु का बीज (वा श्वेत मरिच)। चक्षुष्यं—नेत्रहित। स्वरसा०—पत्रादि के स्वरस की नस्य शिरोऽर्ति को नाश न (?) करने वाली ॥६८४–८८॥

१८६. श्वेतपुनर्नवा[1]।

Trianthema monogyna.	(हिं०, पं०) विषखपरा, (बं०) श्वेत पुण्या, श्यापुण्या, (म०) खापरा, (गु०) वख खापरा।
A prostrate succulent herb.	भूम्याच्छन्न मासल हरितक।
Properties as in No. 187.	गुण आगे अंक १८७ के समान।

पुनर्नवा पुनर्भूः स्यात्सदा मण्डलपत्रकः।
श्वेतमूलश्च वृश्चीको वर्षाभूः क्षुद्रपत्रकः।
शोफघ्नी जटिला सद्योविशेषो दीर्घपत्रकः ॥६८९॥

पर्याय—पुनर्नवा (पुनः पुनर्नवा भवतीति पुनर्नवा—वर्षाकाल में फिर ताजा हो जाने वाली), पुनर्भू (फिर २ होने वाली), मण्डलपत्रक (गोल पत्रों वाली), श्वेतमूल (सफेद मूल वाली), वृश्चीक (वृश्चिकादिजन्तुविषनाशक), वर्षाभू (वर्षाकाल में होने वाली), क्षुद्रपत्रक (छोटे पत्रों वाली), शोफघ्नी (शोफनाशक), जटिला (जटाकार मूल वाली), सद्योविशेष (ताजी प्रयोग करने योग्य), दीर्घपत्र (लम्बे पत्रों वाली) ॥६८९॥

वर्षाभूर्मधुरा तिक्ता कषाया कटुका सरा।
क्षारोष्णा दीपनी रूक्षा शोफानिलकफापहा।
हृद्या रुच्या जयेदर्शोव्रणपाण्डुगरोदरम् ॥६९०॥

तदर्थवाचक ही यह पाद है। तीनों हस्तलिखित ग्रन्थों (यू, द, ब, Manuscripts) में एक ही पाठ मिलने से परिवर्तन को सम्पादननियमों के विरुद्ध समझ कर उसे वैसे का वैसा रहने दिया है। १. श्वेत पुनर्नवा रक्त की अपेक्षा कम मिलती है। उस का क्षुप भूमि पर फैला रहता है;यदि यह बढ़ता जाय,तो एक ही क्षुप ३-४ हाथ स्थान घेर लेता है। पत्र प्रायः गोल, मांसल और रसमय (Juicy); शाखा कोमल, क्षुद्र, सूक्ष्मरोमाकीर्ण; पुष्प श्वेत और क्षुद्र, मूल स्थूल और श्वेत। पर्यायों में पत्रों को मण्डल, दीर्घ वा क्षुद्र कहा गया है,जो स्थलभेद से हो सकता है। यह वर्षाकाल में ही होती है, पूर्व वा पश्चात् मिलना कठिन है। भूमि में दबी हुई मूल पर वर्षाजल पड़ते ही यह अङ्कुरित हो जाती है और ज्यों २ वर्षा होती है, त्यों २ यह फूलती और फलती है। वर्षा समाप्त होते ही क्षुप सूख जाता है और मूल आगामी वर्षा की प्रतीक्षा में भूमि में दबी रहती है, इसी कारण से इसे वर्षाभू का सुन्दर नाम दिया गया है। गुणों का वर्णन आगे रक्तपुनर्नवा में देखें।

१८७. रक्तपुनर्नवा[1]।

Boerhaavia diffusa.

A diffusely branched herb.

Stomachic, laxative, diuretic, expectorant and emetic.

(हिं०) सांठ, गदहपूर्णा, (पं०) इट्सिट्, (बं०) गादापुण्या, (म०) घेंटुली पांढरी, (गु०) मोटो साटोडो। बहुविस्तृत कांड वाली हरितक। दीपक, मृदुरेचक, मूत्रल, कफ़-प्रसेकि, वामक।

अपरा क्षुद्रवर्षाभू रक्तपुष्पा शिवाटिका।
कठिल्लको वर्षकेतुः क्रूरको रक्तवृन्तकः ॥६६१॥

---

१. **रक्तपुनर्नवा** श्वेत की अपेक्षा अत्यधिक मिलती है। पंजाब में वर्षाकाल के बाद खेतों में इतनी होती है, कि कृषक लोग निकाल कर इतस्ततः फैंक देते हैं, और इसी कारण से इस का पंजाबी नाम **इट् सिट्** (इधर उधर फैंको) बहुत सार्थिक रखा गया है। इस की भी मूल वर्षाकाल में फूट पड़ती है। **क्षुप** श्वेत की अपेक्षा छोटा; **पत्र** क्षुद्र, गोल, **शाखा** मृदु और क्षुद्र। **पुष्प** एवं पत्र और शाखा प्रायः रक्ताभ वा रक्त। एक और **नीलपुनर्नवा** का वर्णन भी शास्त्रों में मिलता है, परन्तु उस का क्षुप प्रायः दुर्लभ है। पुनर्नवा श्रेष्ठ शोथनाशक और मूत्रल है, अतः उसे जलोदर (Ascites) प्लीहयकृद्वृद्धि, सुजाक, मूत्रकृच्छ्र, कामला, वृक्करोग, अर्श, अन्तर्विद्रधि, हस्तपादशोथादि में उस का स्वरस (१-२ तो०), क्वाथ (३-४ तो०), और मूलचूर्ण (३-६ माषे) देते हैं। यह शरीरस्थ जल को मूत्र द्वारा बाहर निकाल कर शोथ को नाश कर देती है। पुनर्नवा पंचाग को जलाकर **पुनर्नवाक्षार** बना सकते हैं, जो उतम मूत्रल द्रव्य है। पुनर्नवाष्टक क्वाथ (भै० शोथे), पुनर्नवागुग्गुलु (चक्र० वातरोगे), पुनर्नवादिमण्डूर (चरक शोथे), पुनर्नवादिघृत (शोथे), इत्यादि अनेक योग शास्त्रों में पुनर्नवा के दिए गए हैं। पुनर्नवा का शाक भी इन रोगों में दिया जा सकता है। यह कुछ कटु होता है, अतः पुनर्नवा को उबाल कर पानी निकाल देना चाहिए। पुनर्नवा के क्वाथ वा कल्क से शोथ पर स्वेद और उपनाह किया जा सकता है। गर्भाशयशोथ में इस के क्वाथ की उत्तर वस्ति (Vaginal Douche) वा योनिस्वेद लाभकारी है। अब डाक्टरों ने उस का **तरल सत्त्व** निकाला है, जिस का नाम Extractum Punarnavinam Liquidum रखा गया है। यह जलोदरादि में दिया जाता है। श्वेतपुनर्नवामूल दुग्धमिश्रित चातुर्थक ज्वर को रोक देता है। उस का क्वाथ नष्टनिद्रा (Insomnia) को ठीक करता है। नेत्रशोथ पर स्वरस लगाया जाता है। पुनर्नवा काकमाची (अ० १७४) के समान बहुत गुणकारी है।

पर्याय—क्षुद्रवर्षाभू (श्वेत की अपेक्षा क्षुद्र), रक्तपुष्पा (लाल फूलों वाली), शिवाटिका (कल्याणकारक), क्रूरक (कटु, तीक्ष्ण), रक्तवृन्तक (लाल डण्टल वा डण्डी वाली) ॥६६१॥

कठिल्लकं हिमं तिक्तं विपाके कटुकं लघु।
संग्राहि वातलं पित्तकफशोणितनाशनम ॥६६२॥

१८८. वेतसः[1]।

Calamus Rotang.	(हिं०) बेंत, बैत, (बं०) वेत, (म०)
The Cane. Common Rattan.	थोड़ वेत, (गु०) नेतर।
Chair-bottom cane.	ताड़ वा वंश के तुल्य क्षुद्र क्षुप।
A low bamboo-like plant.	शीत, मूत्रल, ग्राहि।
Cool, diuretic and astringent.	

वेतसो वञ्जुलो नम्रः कलनः पत्रमाल्यपि।
रथोऽभ्रपुष्पो नादेयो रालोकाम्रश्च (?) वृन्तकः।
वानीरः पुष्पगन्धश्च सुषेणो दीर्घपत्रकः ॥६६३॥

पर्याय—नम्र (नम जाने वाला), अभ्रपुष्प (श्वेत वा श्याम पुष्पों वाला), नादेय (नदीप्रिय, जलदेशज), दीर्घपत्रक (लम्बे पत्रों वाला) ॥६६३॥

वञ्जुलस्तुवरस्तिक्तो हन्ति पित्तकफानिलान्।
अनुष्णो दाहशोफार्शोविसर्पाश्मरीकृच्छ्रनुत् ॥६९४॥
अतिसारतृषायोनिरुजारक्तव्रणापहा।
तच्छाकमूषणं क्षारं लघूष्णं कटु वातलम् ॥६९५॥
पत्रं तु भेदनं तिक्तं कषायं लघु शीतलम्।
विपाके कटुकं श्लेष्मपित्तास्रघ्नं न वातलम्।
फलं **स्वादु कषायाम्लं रूक्षं पित्तकफास्रजित् ॥६९६॥**

---

१. **वेतस** प्रायः आसाम, बंग तथा दक्षिण भारत में अधिक होता है। **पत्र** बहुत लम्बे और कांटेदार, आकार में बांस के पत्रों जैसे। वेतस अनेक प्रकार का इन देशों में मिलता है और प्रायः उधर से ही पंजाब वा अन्य प्रान्तों में आता है। बेत की छड़ियां स्कूल के छात्र भली भान्ति जानते हैं, कि वे उन की शिक्षोन्नति में कैसी सहायक हैं। कुरसियों के तल (seat) वेतससूत्रों से ही बनते हैं। जहां वेतस ताजा मिलता है, वहां उस के पत्रों के मृदग्र शाकार्थ काम आते हैं। **वेतसमूल** के लेप से योनि दृढ़ और संकुचित होती है। अलर्कविष में वेतसमूल का शीतकषाय लाभकारी है।

१८६. जलवेतसः[1]।

Calamus viminalis.
Water-cane. Walking-stick rattan. The rest as in No. 188.

(हिं०) जल वेंत, (बं०) जल वेत, जलासन्न वा जलज वेतस। शेष अंक १८८ के समान।

नदीकूलप्रियोऽन्यः स्यान्निचुलो जलवेतसः।
निकेतनस्तोयकामो विदुलो वन्धुवेतसः ॥६९७॥
निकुञ्जक. परिव्याधो जलौकः संवृत्ताम्बुजः।
नीरप्रियः संभृतोऽम्ली सुशीलः क्षीरवृक्षकः ॥६९८॥

पर्याय—नदीकूलप्रिय (नदीतट पर होने वाला), निकेतन (घर वा गृहनिर्माण में लाभकारी), तोयकाम (जलप्रिय, नदीप्रिय), नीरप्रिय (जलप्रिय) ॥६९७-९८॥

कषायः शीतलो रूक्षः संग्राही जलवेतसः ॥६९९॥

१९०. मूषाकर्णी[2]।

Ipomea reniformis.
A glabrous creeping herb.
Bitter, diuretic, cool, useful in ear-ache.

(हिं०) मूसाकानी, (बं०) ऊन्दर-कानी पाना, (म०गु०) उंदरकानीं। भूमिलुण्ठित मृदु हरितक। तिक्त, मूत्रल, शीत, कर्णशूलहर।

मूषकः श्रावणी लीका भूदर्याखुश्रुतिच्छदा।
वृषकर्णी चाखुकर्णी श्रावणी भूदराश्रया ॥७००॥

पर्याय—मूषक (मूषकर्णाकार पत्र हैं जिस के), श्रावणी (श्रावण मास-वर्षा-में होनी वाली वा श्रवणतुल्य), भूदरी (मूषिका), आखुश्रुतिच्छदा (मूषकर्णाकार पत्रों वाली), वृषकर्णी (बैल के कानों के तुल्य पत्रों वाली) ॥७००॥

आखुकर्णी कटुस्तिक्ता कषाया शीतला लघुः।
विपाके कटुका हन्ति कफमूत्रामयक्रमीन् ॥७०१॥

---

१. **जलवेतस** जलासन्न स्थानों में होता है। गुण वेतसवत् समझें।

२. **मूषाकर्णी** प्रायः दक्षिण तथा मध्य प्रान्त में मिलती है। कहीं २ राजपूताने में भी देखी जाती है। दूर से इस की आकृति मण्डूकपर्णी (अंक १७९) के तुल्य प्रतीत होती है। इस के **पत्र** तद्वत् वृक्काकार (Reniform), परन्तु बहुत मृदु; प्रत्येक पत्र का (डण्ठल) मूल से जुड़ा रहता है। **क्षुप** भूमि पर फैलता जाता है। **पुष्प** पीतवर्ण और पञ्चदल (5-petalled); फल गोलप्रायः; बीज क्षुद्र तथा कृष्ण। इस का स्वरस कर्णरोगों में तथा आखुविष (Rat-bite) में काम आता है।

१९१. हंसपदी[1] ।

Adiantum lunulatum.
The Fern.
An erect leafy herb.
Cool, febrifuge, expectorant, anthelmintic and useful in skin-diseases.

(हिं०) हंसराज, हंसपादी, काली झोंट, (बं०) गोयालिया लता, (म०) हंसपादी, हंसराज, (गु०) हंसराज।
पर्णमय सरल क्षुप ।
शीत, ज्वरघ्न, कासहर, कृमिघ्न, त्वग्रोगघ्न ।

प्रह्लादनी विषग्रन्थिस्त्रिपादी त्रिपादी पदी ।
हंसपादी हंसपदी रक्तपादी मधुस्रवा ।
कीटनामा कीटमारी घृतमण्डालसेलका (?) ॥७०२॥

पर्याय—प्रह्लादनी (दर्शन से खुश करने वाली, सुन्दर क्षुप), विषग्रन्थि (विषमय ग्रन्थियों वा मूल वाली), त्रिपदी (तीन पत्रों वाली ?), हंसपादी (हंस-

---

१. **हंसपादी** (हंसराज) जलाशय, कूप, वापी, जलासन्न और शीत शिलादि स्थानों पर बहुत होती है। पत्र छोटे २, पक्षाकार (Pinnate), हंस के पाद (पंजे) की तरह कटे हुए, मृदु, तनु और सुन्दर हरित वर्ण; **शाखा** तथा **वृन्त** मृदु, तनु, रक्ताभ; **मूल** कोमल और लाल। इस के पुष्प वा फल नहीं होते। इन के अभाव में उत्पत्तिक्रम यह है, कि पत्रों (Fronds) के निम्न पृष्ठ पर बाहर के किनारे के साथ २ ध्यान से देखने पर श्यामवर्ण बिन्दुओं की माला वा रेखा सी नज़र आती है। यह बिन्दु वा कण (Sorus or Spore or Seed-germ कहलाते हैं, यही बीजवत् अन्य क्षुप उत्पन्न कर देते हैं, अतः हंसपदी को Sporangea वर्ग में गिना गया है। हंसराज की अनेक जातियां हैं, जैसे Adiantum Caudatum, A. Venustum, A. Cappillus-Veneris, A. flabellulatum आदि। इन में भेद पर्णाकृति, क्षुप वा शाखा की लम्बाई, उंचाई आदि पर निर्भर है। इन सब को अंग्रेज़ी में Fern कहते हैं। यह शब्द **पर्ण** का अपभ्रंश है। वस्तुतः यह क्षुप पर्णप्रधान हैं। पाश्चात्य चिकित्सा में हंसपदी की विशेष जाति Dryopteris Filix-mas (Male Fern) की मूल (Rhizome) से एक तरल **सत्त्व** (Extractum Filicis Liquidum or Liquid Extract of Male Fern) बनता है, जो डाक्टर लोग व्रध्नकृमि (Tapeworm) में विशेष लाभकारी समझते हैं। इस के पूर्व वा पश्चात् उदरशुद्धि आवश्यक है। मात्रा—४५ से ९० बिन्दु। हमारे हां इसे शीतवीर्य समझा जाता है, अतः व्रणशोथादि पर दाहनिवृत्त्यर्थ इस का लेप किया जाता है। इस का क्वाथ ज्वर और कास में देते हैं। शर्बत भी बनता है। कहीं २ इसे रजःप्रवृत्ति के लिए भी देते हैं।

पादवत् कटे हुए पत्रों वाली), रक्तपादी (रक्त मूल वा शाखा वाली), मधुस्रवा (मधुरूपी स्राव वाली), कीटमारी (कीट वा कृमियों को नाश करने वाली) ॥७०२॥

हंसपादी हिमा गुर्वी रोपणी हन्ति शोणितम् ।
दाहातिसारवीसर्पलूताभूतविषव्रणान् ॥७०३॥

रोपणी–व्रणरोपक । शोणितं–रक्तपित्तं । लूता–मकड़ी का विष (Spider poison) ॥७०३॥

१६२. नागदमनी[1] ?

Artemesia vulgaris.
A tall aromatic herb.
Stomachic, expectorant, deobstruent, vermifuge and antispasmodic.

(हिं०) नागदौना, नागदवन, (बं०) नागदोना, नागदमनी, (म०) नागदवणा, सरबन्द, (गु०) नागडमणा, (पं०) अफसन्तीन ? दीर्घ सुरभित क्षुप । पाचक, कफहर, विबन्धभेदक, कृमिनाशक, शूलहर ।

नागदन्ती नागविघ्ना श्वेतदन्ता च नागिनी ।
एकपर्णी शुक्लपुष्पा श्वेतगण्डोदरस्फुटा ॥७०४॥
मधुपर्णी सर्वपुष्पी सशल्या काण्डिनी स्मृता ॥
पर्वपुष्पी श्वेतघण्टा शूलिनी रामदूतिका ॥७०५॥
नागिनी रोचनी तिक्ता तीक्ष्णोष्णा कफपित्तनुत् ।
विनिहन्ति विषं शूलं योनिदोषवमिकृमीन् ॥७०६॥

१६३. (अन्या) नागदमनी ?

ईश्वरी नागदमनी महायोगेश्वरी तथा ।
योगेश्वरी नागपुष्पी लूतागर्दभघातिनी ॥७०७॥
नागदन्ती नागपत्री रास्ना सर्वग्रहापहा ।
सर्पगन्धा सर्पसहा विषदंष्ट्रा विषापहा ॥७०८॥

---

१. **नागदमनी** सन्देहग्रस्त है, क्योंकि इस नाम से कोई ऐसा क्षुप प्रतीत होता है, जो सर्पविष में बहुत लाभकारी है, तथापि नागदौन नाम से एक क्षुप, जिसका लेटिन नाम ऊपर दिया गया है, काश्मीर, आबू, विन्ध्यादि पर्वतों पर मिल जाता है। पंजाब में इस का बाजारी नाम **अफसन्तीन** है जो प्रसिद्ध यूनानी द्रव्य है । यह शुष्क पत्रों तथा पुष्पों का चूर्ण सा होता है, स्वाद में तिक्त । इस का क्वाथ सुरभित, तिक्त, ज्वरघ्न, श्वासहर, रक्तशोधक और मेध्य है । विषमज्वर के प्रायः सब प्रकारों में लाभकारी है । यह पेट से कृमि भी निकालता है । मन्दाग्नि में इस का तिक्त रस बड़ा लाभकारी है । अफसन्तीन अरब और पारस देश में से भी आता है । उस का नाम Artemesia persica है । नागदमनी के पत्र उपनाह लेपादि में भी काम आते हैं । श्री कयदेवोक्त गुण अफसन्तीन से मिलते हैं ।

महायोगेश्वरी तिक्ता कटुका हरते व्रणान्।
रक्षोग्रहविषसर्पलूतागर्दभजालकान् ॥७०९॥

१९४. सोमवल्ली[1]।

सोमक्षीरी धन्वतरुर्यज्ञनेता द्विजप्रिया।
यक्षपत्रो महार्घोऽन्यो महागुल्मो मशप्रभुः ॥७१०॥

---

१. **सोमवल्ली** वही सोमलता है, जिसका वर्णन वेदों में है, और जिस के स्वरसपान से पुरुष अमर वा देवतुल्य हो जाता है। यह चरक और सुश्रुत में महा-रसायन मानी गई है, जिस के प्रयोग से जीर्ण शरीर शीर्ण होकर नव देह प्राप्त होता है, जो दीर्घकाल तक सुखपूर्वक रहता है। "**ओषधीनां पतिं सोममुपयुज्य विचक्षणः। दशवर्षसहस्राणि नवां धारयेत् तनुं ॥ नाग्निर्न तोयं न विषं......... । चरत्यमोघसङ्कल्पो देववच्चाखिलं जगत् ॥**" (सु० चि० अ० २९) ॥ उस का नाम **सोम** (चन्द्र) रखने का कारण यह था, कि शुक्लपक्ष में उस को क्रमशः एक एक कर के १५ पर्ण उत्पन्न होते थे, जो कृष्णपक्ष में एक एक कर के झड़ जाते थे और अमावस्या को लता नग्न होती थी। पौर्णमासी के दिन पूरे १५ पत्र होते थे। "**सोमो नामौषधिराजः पञ्चदशपर्णः स सोम इव हीयते वर्धते च।**" च० चि० अ० १ पाद ४र्थ। सुश्रुत में इस बात को अधिक स्पष्ट रूप से कहा गया है, "**तानि (पत्राणि) शुक्ले च कृष्णे च जायन्ते निपतन्ति च ॥ एकैकं जायते पत्रं सोमस्याहरहस्तदा। शुक्लस्य पौर्णमास्यां तु भवेत् पञ्चदशच्छदः ॥ शीर्यते पत्रमेकैकं दिवसे दिवसे पुनः। कृष्णपक्षक्षये चापि लता भवति केवला ॥**" सु० चि० अ० २९। सुश्रुत ने सोमलता २४ प्रकार की बताई हैं। उन का स्थान "हिमवत्यर्बुदे सह्ये महेन्द्रमलये तथा।......"इत्यादि बताया है, और यह भी कहा है,कि सिन्धु महानद में भी यह मिलती है। सुश्रुत तथा चरक के समय में यह महौषधि मिलती थी वा न? अनुमान करना कठिन है। मुझे प्रतीत होता है,कि यह उस समय भी लुप्तप्राय थी, और केवल श्रुतमात्र वचन् लिख दिए गए हैं। "**न तान् पश्यन्त्यधर्मिष्ठाः कृतघ्नाश्चापि मानवाः। भेषजद्वेषिणश्चापि ब्राह्मणद्वेषिणस्तथा।**" सु० चि० अ० २९। ऐसे कारण प्रायः दुर्लभ द्रव्यों के लिए दिए जा सकते हैं। यदि यह सत्य हो, तो आज पापात्मक कलियुग में उस की प्राप्ति असम्भव है, परन्तु वैद्य शालिग्राम जी अपने 'निघण्टुभूषण' में यों लिखते हैं, "थूहर की जो कोई प्रकार की जातिहै उन में से सोमलता भी एक भान्ति की वेल है," धन्य है आप की विद्वत्ता जो थोहर और सोमलता को एक कर दिया। और फिर उस का लेटिन नाम Sarcostemma brevistigma दे दिया है, जो दक्षिण देश में होने वाली एक पत्ररहित झाड़ी का नाम है। वह उत्तरावर्त्त में होती ही नहीं और न ही उस का कोई गुण वा लक्षण **सोमलता** से मिलता है। यह नाम उन्हों ने

श्येनाहृतस्तस्य भेदा विंशतिश्चतुरुत्तमा ।
सोमवल्ली कटुस्तिक्ता त्रिदोषघ्नी रसायनी ॥७११॥

१९५. चूड़ाला[1] ?

उत्तानको बद्धशिखो चूड़ाला शुक्लोज्वला ।
चूड़ाला मधुरा पाके रसे पित्तज्वरापहा ।
मुखशोषभ्रमश्वासमदतृष्णा विनाशिनी ॥७१२॥

१९६-७. नाकुली गन्धनाकुली च[2] ?

Rauwolfia serpentina.

A small glabrous shrub.

Bitter, tonic, febrifuge and antidote to snake-bite.

(हिं०) नाई, नाकुलीकन्द, छोटा चान्द, हरकाई चन्दा, (बं) छोटा चान्द, (म०) हरकाई, चन्द्रा ।

क्षुद्र मृदु हरित क्षुप ।

तिक्त, रसायन, ज्वरघ्न, सर्पविषघ्न ।

वैद्यक शब्दसिन्धु से देख कर लिख दिया है, जिस के कर्ता श्री उमेशचन्द्र गुप्त ने भी कहीं से यह नाम देख कर लिखा है। क्या ही अच्छा होता कि यह महानुभाव सोमलता को अज्ञात कह कर सचाई का प्रकाश कर देते । इस में हानि ही क्या थी ! न जाने श्री शालिग्राम ने कौन सी थोहर को सोमलतारूपी अमृततुल्य लाभकारी पाया था !!

१. चूड़ाला शब्द मयूरशिखा वाचक हो सकता है, परन्तु मयूरशिखा, सुशिखा, शिखिनी आदि प्रसिद्ध नामों में से यहां एक भी नहीं दिया गया । पुनः बद्धशिखा अन्य ग्रन्थों में मयूरशिखा के पर्यायों में नहीं मिलता, अतः चूड़ाला मयूरशिखा से कोई भिन्न क्षुप है । श्रीकैयदेव ने मयूरशिखा का वर्णन आगे पुष्पवर्ग में (तुलसी से पूर्व) दिया है ।

२. नाकुली तथा **गन्धनाकुली** दोनों ही सन्देहग्रस्त हैं । ऊपरोक्त नाम एक क्षुद्र क्षुप के हैं, जो हिमालय, विन्ध्या, नीलगिरि आदि पर्वतों के निचले भागों में मिलता है। **क्षुप** २-३ हाथ ऊंचा, **वल्कल** श्वेत, **पत्र** २-३ अंगुल चौड़े और ५-६ अंगुल लम्बे, अण्डाकार (Elliptical), मृदु, हरित, **पुष्प** श्वेत वा रक्ताभ, २ अंगुल लम्बा, **पुष्पदल** (corolla) घंटाकार वा नल्याकार (tubular), पुष्प प्रायः गुच्छों में लगते हैं । **फल** बदरीवत् कृष्ण वर्तुल । निश्चयरूप से इसे नाकुली कहना कठिन है, क्योंकि जिन लोगों ने इसे सर्पदंश पर प्रयोग किया है, उन को सफलता नहीं हुई । शास्त्र ने तो इसे सर्प, लूतादि विषों में बड़ा उपयोगी लिखा है, तथापि इस क्षुप की मूल बड़ी तिक्त और ज्वरघ्न है । इसे उदरशूल में भी दक्षिणी लोग व्यवहार करते हैं । **पत्रस्वरस** जावा द्वीप के लोग नेत्रशुक्र (Opacity of the Cornea) पर लगाते हैं। श्री शालिग्राम जी यों लिखते हैं, "नाकुलीकन्द सूरणकन्द के समान होता है बर्सात में इस कंद पर सांप के आकार गंदल निकलता है, सिमला प्रान्त में बहुत होता है, टकसाल में इस को

नकुलेष्टा महावीर्या तथा सर्पसुगन्धिका ।
विषघ्नी सुवहा सर्पगन्धा चीरितपत्रिका ॥७१३॥
सुगन्धा नाकुली सर्पलोचना गन्धनाकुली ।
सर्पकङ्कालिका ज्ञेया सुनन्दा दंष्ट्रिका मता ।
अन्या महासुगन्धा च छत्राकी कामचारिणी ॥७१४॥

पर्याय--नकुलेष्टा (नकुल को प्रिय--नकुल सर्प का शत्रु है), महावीर्या (बलवान् ओषधि), सर्पसुगन्धिका (सांप की गन्ध वाली, जिस से नकुल आकर्षित हो जाता है), सुवहा (सुगन्धित), चीरितपत्रिका (कटे हुए पत्रों वाली), नाकुली (नकुलप्रिय), सर्पकंकालिका (सर्प के कङ्काल अस्थिपञ्जरतुल्य मूल है जिस का) ॥७१३-१४॥

नकुलेष्टा कटुस्तिक्ता कषायोष्णा नियच्छति ।
व्रणकृमीन् सर्पलूतावृश्चिकाखुविषं विषं ॥७१५॥

१९८. सुदर्शना[1] ।

सुदर्शना सोमवल्ली चक्राङ्गी मधुपर्णिका ।
वत्सादनी च दध्याली मेचका मेयका तथा ॥ ७१६ ॥

पर्याय--सुदर्शना (सुन्दर आकृति वाला क्षुप), सोमवल्ली (शीत क्षुप), चक्राङ्गी (चक्रवत् मुड़े हुए वा गोल पत्र हैं जिसके वा गोल क्षुप) ॥ ७१६ ॥

दध्याली स्वादुतिक्तोष्णा कफशोफास्रवातजित् ॥ ७१७ ॥

'गोहका आदा' कहते हैं।" (देखो शालिग्राम निघण्टुभूषण पृष्ठ १८६)। वैद्यक शब्दसिन्धु इसे रास्ना, गन्धरास्ना (Vanda roxburgii) a variety of rasna कहा है, जो सर्वथा असत्य है। सत्य तो यह है कि यह उपयोगी द्रव्य अज्ञात है, इस की खोज करनी चाहिए। पंजाब में विडालनख के सदृश एक द्रव्य पंसारियों से मिलता है, जिसका यूनानी नाम अकलीलुल्मलिक है। कई लोग इस को भी नाकुली समझते हैं।

१. सुदर्शना (पं०--सुदर्शन, बं०--सुदर्शनगुलञ्च, पद्मगुलञ्च) का सुन्दर दर्शनीय क्षुद्र क्षुप उद्यानों में शोभार्थ बहुत लगाया जाता है। क्षुप ३ हाथ से अधिक ऊंचा नहीं जाता। क्षुप बहुवार्षिक (Perennial) होने से २-३ हाथ वा अधिक स्थान घेर लेता है, उसे के पत्र इक्षु वा हकीक के तुल्य लम्बे परन्तु अधिक चौड़े और हरे हरे होते हैं, वे भूमि से वा भूमिप्रविष्ट स्तम्भ से निकलते हुए प्रतीत होते हैं। सुदर्शना का स्तम्भ वा तना (Stem) नहीं होता। यह मानो तृणजाती (Graminea) का एक अङ्ग है। इस को प्रायः एक श्वेत सुन्दर पुष्प आता है, जो क्षुप के मध्य से निकलता हुआ दिखाई देता है। यह औषध में व्यवहार कम होती है। कहीं २ इसका स्वरस कर्ण में डाला जाता है, जिस से कर्ण शूल, कर्णस्रावादि रोग ठीक हो जाते हैं।

१९९. माचिका[1] (अम्बष्ठा) ।

The galls of Tamarix gallica. Astringent, heamostatic, used in dysentry and diarrhea.

(हिं०) मोईया, (पं०) माईं, (म०) मगिया माईं । कषाय, ग्राहि, रक्तस्तम्भक, अतिसारप्रवाहिकानाशक ।

अम्बष्ठाऽम्बष्ठकी दन्तशठा चाम्बालिकाऽम्बिका ।
बहुमूला सूचीमुखा सहस्रा माचिका शिवा ॥ ७१८ ॥
अम्बष्ठा मधुरा तिक्ता लघ्वम्ला रसपाकयोः ।
कफपित्तहरा कण्ठ्या पक्वातिसारनाशिनी ॥ ७१९ ॥

२००. मूर्वा ।

Sansevieria Roxburghiana. Bow-string hemp. A perennial thicket with dagger-shaped fleshy leaves and stout creeping root-stock. Laxative, diuretic, febrifuge, and cardiacal tonic.

(हिं०) चूर्णहार, मुर्हरी, (बं०) मुर्वा, मुर्गा, मूरहर, सूचमुखी, घोड़ा चक्र; (म०) मोरवेल, (गु०) मुर्वेल । धनुर्गुणोपयोग्य विटप । बहुवार्षिक क्षुप । पत्र कृपाणाकार तथा स्थूल । कन्द मांसल सर्पणशील । भेदी, मूत्रल, ज्वरघ्न, हृद्य, रसायन ।

---

१ माचिका पंजाब के बाजारों में माईं के नाम से बहुत मिल जाती है। यह छोटे २ पाण्डुवर्ण विषमाकार दाने से होते हैं। इन में दो प्रसिद्ध कषाय अम्ल (Gallic and Tannic acids) होते हैं, और इसी कारण से उन्हें अंग्रेजी में Galls कहा जाता है। इस कषायपन के कारण बब्बूलत्वक्वत् उन्हें रंगने (Tanning) के काम में लाते हैं। माचिका और कासीस (हीराकसीस— Iron Sulphate) के संयोग से नीलवर्ण (Blue colour) उत्पन्न होता है, अतः कई लोग इन दोनों को विशेष विधियों से मिलाकर नीलमसी (Blue Black Ink) बनाते हैं। रञ्जक लोग (ललारी) इन से वस्त्र रंगने का काम लेते हैं। झावुक (Tamarix Gallica), पिलछी, लेई (T. dioica), फरवांह, फराश (T. articulata) यह तीन प्रसिद्ध वृक्ष वा झाड़ियां पंजाब में नदियों के निकट बालुमयी भूमि पर बहुत उत्पन्न होती हैं। माचिका के दाने (Galls) इन से ही प्राप्त होते हैं। यह ईषदम्ल परन्तु कषायरसप्रधान द्रव्य क्वाथरूप में देने से अतिसार और प्रवाहिका को बंद कर देता है। यह क्वाथ व्रणशोधक तथा रोपक भी है। माचिका आमातिसार में देने से विबन्ध करके शूलादि उपद्रव उत्पन्न करता है, अतः पक्वातिसार में ही उस का प्रयोग हितकर है। कण्ठरोग

मूर्वा[1] मुरङ्गिका देवी देवश्रेणी पृथक्त्वचा ।
मधुस्रवा मधुरसातिरसा पीलुपर्णिका ॥ ७२० ॥
मूर्वा स्वादुः स्वादुपाका गुरूष्णा तिक्ता सरटा ।
जयेत् त्रिदोषकुष्ठास्रमेदोमेहवमिज्वरान् ॥ ७२१ ॥
मुखशोषभ्रमकण्डूतृष्णापित्तास्रहृद्गदान् ।
मूर्वाकन्दस्तु कृमिहृद्विषघ्नो गुदकीलहा ॥ ७२२ ॥

वा मुखरोग में माचिकाक्वाथ से गण्डूष (गरारे) करना लाभकारी है । माचिका चूर्ण वा क्वाथ रक्तस्तम्भक होने से सद्यःक्षत पर प्रयोग कर सकते हैं ।

१. **मूर्वा** को कई वैद्य मरोडफली समझते हैं, जो सर्वथा अशुद्ध है । श्री डल्हणाचार्य ने निबन्धसंग्रहाख्य सुश्रुतटीका में आरग्वधादि गण की टीका करते हुए, जिस में मूर्वा का पाठ आया है, यह लिखा है, "**मूर्वा धनुर्गुणोपयोग्या, 'दूधउड' इति लोके, अन्ये चोरस्नायुमाहुः ।**" (सु० सू० अ० ३८), और उन्हों ने पुनः अगले अध्याय के पित्तसंशमन वर्ग की टीका में यह लिख कर उस की आकृति और भी स्पष्ट कर दी है, "**मूर्वा कन्दलीसदृशस्वल्पविटपा 'हधोड' इति लोके ।**" (सु० सू० अ० ३९) । इन प्रमाणों से कुमारीसदृशविटप की सिद्धि होती है, जिस के नाम ऊपर दिए गए हैं । यह पंजाब में बहुत कम होता है, उद्यानों वा कोठियों में सौन्दर्य के लिए लगाया जाता है । कोकण देश (Coro-Mandel Coast) में बाहुल्य से मिलता है । **काण्ड** अतिक्षुद्र वा अविद्यमान, **पत्र** भूमि से निकलते हुए, दीर्घ, कुमारी की अपेक्षा पतले, कम मांसल वा ईषत् कठोर, कम चौड़े, पाण्डु तथा घनहरित वा श्याम रेखाङ्कित; **पत्राग्र** (Apex) सूचक (सुए) के तुल्य दीर्घतीक्ष्ण (अतः बंगीय नाम—सूच मुख); **पत्राकार** बहुत कुछ सिखों की कृपाण (किरपान) के तुल्य, **पत्रधारा** (किनारे) अन्दर को मुड़े हुए; **मूल** कोषाकार, गोल, स्थूल, मांसल (fleshy), यह भूमि में अपनी गौणशाखाओं (Secondery rootlets) द्वारा शनैः २ फैलती जाती है । अतः एक विटप (क्षुप–Clump) लगा देने से मूर्वा बढ़ कर अनेक विटप बन जाता है । पत्र मूल से ही निकल आते हैं । **पुष्प** कभी २ देखने में आते हैं, वे शुभ्ररक्तहरित वर्ण के होते हैं, गोल, लम्बे, गुच्छाकार । **फल** विरल, गोल; **बीज** कलायाकार क्षुद्र, श्वेताभ । पत्रों को भूमि में दबा कर गलाने से दृढ़ सूत्र वा तन्तु (Fibre) मिलते हैं, जो धनुष के गुण (तंदी, स्नायु–Bow-string) बनाने में काम आते हैं, अतः '**धनुर्गुणोपयोग्या**' मूर्वा का यथार्थ लक्षण है । कन्दली एक छोटा सा कन्द है, "**कन्दली श्वेतश्लक्ष्णबहुपुटकन्दविशेषः सर्पच्छत्रकमिति लोके**" (सु० सूत्र० अ० ३९), और मूर्वा के कन्द वा मूल (Rootstock) की तुलना श्री डल्हण ने कन्दलीकन्द से की है, न कि कदलीकन्द से, जैसा कि श्री० उमेशचन्द्र ने वैद्यक शब्दसिन्धु में लिखा है । दृढ़सूत्रिका, गोकर्णी,

२०१. क्षीरमोरटः[1] ।

घनमूलोऽपरः क्षीरमोरटोऽङ्कोष्टपूर्वकः ।
स्वदलो दीर्घमूलश्च कीर्णपुष्पो मधुस्रवा ।
हस्तिपर्णी पीलुपत्रः पुरुषो बद्धमूलकः ॥ ७२३ ॥

पर्याय—घनमूल (घन गम्भीर स्थूल मूल वाला),[1] क्षीरमोरट (शुभ्र-रस मय मर्वा वा श्वेत मूर्वा), मधुस्रवा (मधुर रस वाला) ॥ ७२३ ॥

मोरटो मधुरो दाहज्वरतृट्कफपित्तहृत् ।
तच्छाकं लवणं स्वादु रसे पाके हिमं गुरु ।
विष्टम्भि वातलं रूक्षं कफपित्तनिबर्हणम् ॥७२४॥

२०२. नीली[2] ।

Indigofera tinctoria. Indigo plant. A thin hairy annual shrub. Stimulant, pugative, used in poisons and abdominal disorders.	(हिं०) नील,लील, (बं०)नील गाछ, (म०) लघुनीली, (गु०) गली । तनु रोमाकीर्ण वार्षिक क्षुप । उष्ण, रेचक, विषघ्न,उदरामयहर ।

धनुर्माला, धनुर्गुणः, धनुःशाखा मधुरसा, अतिरसादि पर्याय ऊपरोक्त मूर्वा को ही सिद्ध करते हैं, न कि मरोड़फली को । मरोड़ फली का क्षुप मैं ने बम्बे के इतस्ततः पर्वतों पर देखा है । यह ५-६ हाथ ऊंचा, पत्र लम्बे वा अण्डाकार, इस के नीचे कोई कन्द नहीं मिलता और न ही मूर्वा से इसे कोई सादृश्य है । मरोड़ फली को कई विद्वान् आवर्त्तकी (फल आवर्त्ताकार होने के कारण) कहते हैं । श्री शालिग्राम जी "मूर्वा की वेल वन में होती है" ऐसा लिखते हैं । मूर्वा को वेल कहना अशुद्ध है । मूर्वा का कन्दस्वरस वा कल्क मधुमिश्रित ज्वर, क्षयकास तथा राजयक्ष्मा में लाभकारी है । मात्रा एक छोटा चमचा दिन में दो वार । **कन्दक्वाथ** ज्वरादि एवं रक्तपित्त और सुज़ाक, कुष्ठ, कण्डू, आमवातादि में दे सकते हैं । स्वरस स्वाद में मधुरतिक्त और मधुगन्धि होता है । **शुष्क कन्दचूर्ण** सुदर्शन चूर्ण वा अन्य योगों में पड़ता है । डाक्टरों ने उस का एक सत्त्व Sansevierine निकाला है । चरक ने इसे स्तन्यशोधक और सुश्रुत ने रेचक, कफहर और पित्तशमक माना है । पत्रों का प्रयोग विहित नहीं ।

१. **क्षीरमोरट** मूर्वा का भेद प्रतीत होता है । 'मोरट' शब्द मूर्वावाचक है । सम्भव है कि क्षीरमोरट मूर्वा का कोई ऐसा भेद हो, जिस का स्वरस दुग्धवत् श्वेत हो और जो अधिक मांसल तथा दीर्घमूल वाला हो ।

२. **नीली** नील (Indigo) का ही नाम है, न कि काले दाने का । भावप्रकाश निघण्टु के टीकाकार श्री पं० गंगाविष्णु ने नीली को काला दाना बता कर

ग्राम्या तुत्था नीलपुष्पा शारदी भारवाहिनी ॥७२५॥

पर्याय—ग्राम्या (ग्रामों में होने वाला क्षुप—सुपरिचित), तुत्था (तुत्थ-नीला थोथा—के तुल्य नील वर्ण वाला), नीलपुष्पा (नीले फूलों वाला), शारदा (शरद् ऋतु में पकने वाला) ॥७२५॥

नीली तिक्ता रसे पाके सरोष्णा भ्रममोहकृत्।
कफानिलहरा केश्या प्लीहोदरविषापहा।
वातरक्तमुदावर्त्तमामवातगदं हरेत् ॥७२६॥

बहुत भ्रम फैलाया है। काला दाना (कृष्ण बीज—Kala Dana—Pharbitis Seeds) यूनानी द्रव्य है, जो हकीम तथा डाक्टर रेचनार्थ जुलावा हर (Jallap) के स्थान में व्यवहार करते हैं। काला दाना Ipomea (इश्कपेचा) जाती की एक लता है, परन्तु नील Irdigofera जाती—N.O.Leguminosae का अङ्ग है। विदेशी कृत्रिम नील (Artificial Indigo) के आने के कारण भारत में नील का बोना प्राय: बन्द हो चुका है। पहले भारत में सर्वत्र नील बोया जाता था। पञ्चांग क्षुप काट कर एक पक्के कुण्ड में डाल देते थे, जहां पत्रादि पानी में गल कर नील वर्ण छोड़ देते थे, जो पुनः सूर्यताप द्वारा जल से पृथक् किया जाता था। पुराने नीलकुण्ड पंजाब में अब तक कहीं २ मिलते हैं। नील का **क्षुप** २-३ हाथ ऊंचा; **काण्ड** तथा **शाखाएं** प्रचुर और रोमाकीर्ण; **पत्र** २-३ अंगुल लंबे, हरित वा कृष्ण वर्ण; **पुष्प** क्षुद्र नीलाभ; **फली** (Pod) २ अंगुल लम्बी, पतली, गोल, सरल; **बीज** ८-१० एक फली में और छोटे २। अनेक रोगों में नीलिनी का प्रयोग चरकादि ग्रन्थों में रेचनार्थ दिया हुआ है। प्राय: पत्र, मूल वा सर्वांग का क्वाथ अन्य द्रव्यों से मिश्रित दिया जाता था, वा तच्छ्रित घृत के रूप में देते थे। इस की मूल निःसन्देह रेचक है। बीजप्रयोग का विधान नहीं मिलता। **पत्रस्वरस** (१ छटांक) श्वदंश (Dog-bite) में प्रातः कई दिन तक पिला दिया जाता है, इस से जलत्रास (Hydrophobia) के होने की सम्भावना नहीं रहती। निष्पीड़ित पत्रों का उपनाह और बन्धन श्वदंश पर किया जाता है। इस के स्वरसपान से प्राय: विरेचन, परन्तु कभी २ उत्क्लेश, वान्ति, हृच्छूलादि लक्षण प्रकट हो जाते हैं, तब इस का प्रयोग वन्द करना पड़ता है। **नीलिनीकल्क** अन्य विषैले जन्तुओं के दंश तथा व्रण, कुष्ठादि पर भी प्रयोग करते हैं। नीलिनी यकृत, प्लीहा वृक्क, हृत्कम्प, जलोदर, दद्रुकृमि, कासादि में व्यवहार होती थी। अब उस के न मिलने से व्यवहार कम हो गया है। इस का अभाव पाश्चात्य विज्ञानोन्नति का फल है। रञ्जनी, रक्तपत्री, स्थिररंगा आदि पर्याय नील की ही सिद्धि करते हैं, न कि काले दाने की, क्योंकि नील प्राचीन काल में रंगने के काम आता था, अब विदेशी नील बरता जाता है। काले दाने का वर्णन पृथक् परिशिष्ट में देखें।

२०३. गुञ्जा[1] ।

Abrus precatorius. A perennial glabrous twiner. Root like liquorice (No. 22) Seeds poisonous, purgative, aphrodisiac and nervous tonic.	(हिं०) रत्ती, घुंघची, चिरमिट्टी, (बं०) कुंच, (म०) गुंज, (गु०) गुमची, चणोठी । बहुवार्षिक मृदु परिवेष्टक लता । मूल मधुयष्टितुल्य (अंक २२) । बीज विषमय,रेचक,वाजीकर,मेध्य ।

गुञ्जा चूड़ामणिस्ताम्रा रक्तिका काकणन्तिका ।

---

१. **गुञ्जा** की लता भारत में सर्वत्र प्राय: पर्वतों पर अधिकतर मिलती है । **लता** वृक्षों दीवारों वा अन्य आश्रयों पर चढ़ी रहती है । **काण्ड** तनु, मृदु, पर्वमय; **पत्र** संयुक्त (Compound), पक्षाकार (Pinnate); **पत्तियां** इमली वा आमलकी के तुल्य क्षुद्र, लम्बी, रस में मधुर; **पुष्प** क्षुद्र, पीताभ, शिम्बीतुल्य; **फल** शिम्बीरूप (Pod or legume-like); **बीज** प्रसिद्ध । गुञ्जा का **पुष्प** शरत् काल में आता है, और **फल** शीत काल में । फल के पकने पर लता शुष्क हो जाती है । पुनः वर्षा पड़ने पर मूल फूट पड़ती है और फिर गुञ्जा का प्रतान बन जाता है । गुञ्जा शिम्बीजाती (N.O. Leguminosae) में शामिल है । गुञ्जा प्राय: रक्त और श्वेत ही मिलती है, उन दोनों पर कृष्ण चिह्न होता है । दक्षिण की ओर कृष्ण गुञ्जा भी मिलती है । **गुञ्जामूल** कास, प्रतिश्यायादि में मधुयष्टि (अंक २२) के तुल्य लाभकारी है, परन्तु उस से कुछ हीनगुण । **पत्र** मूल की अपेक्षा मधुरतर । **पत्रस्वरस** सर्षपतैलयुक्त वा गुञ्जापत्रश्रित सर्षपतैल वेदनास्थान पर लगाने से वेदना शान्त हो जाती है । **बीज** (रत्ती) को सात उपविषों में गिना गया है । नूतन अनुसन्धानों से यह सिद्ध हुआ है, कि गुञ्जाबीज में एक तैल (Abric acid) और एक घोर विष Abrin है, जो एरण्डविष (Ricin) और सर्पविष (Snake-venum) के तुल्य है । ४-५ दाने तक खा लेने में हानि नहीं । अधिक खा लेने से वान्ति, उदरशूल, अतिसार आदि लक्षण प्रकट होते हैं । अधिक मात्रा से मृत्यु भी हो सकती है । कई डाक्टरों का मत है, कि गुञ्जा खाने से हानिकारक नहीं, परन्तु व्रण पर लेप करने से शोथ, दाहादि हो कर बड़ा कष्ट पहुंचता है। नेत्र में लगाने से नेत्र और मुख सूज जाते हैं। श्वित्र पर गुञ्जा और चित्रक का लेप लाभकारी है । गुञ्जालेप इन्द्रलुप्त, सन्धिशूल, अपबाहुक, और पक्षाघात में गुण करता है । गुञ्जा दुग्ध में उबाल कर देने से वाजिकरणशक्ति बढ़ती है । इस से दिमाग को भी उत्तेजना मिलती है । रजस्वला होने के बाद ४-५ दाने प्रतिदिन दो वार निगल जाने से स्त्री को गर्भ नहीं हो सकता । ऐसा १०-१२ दिन तक निरन्तर करना चाहिए ।

शिखण्डिका शीतपाकी ह्युच्चटा कृष्णला रत्ती ॥७२७॥
अन्या श्वेता श्वेतपाकी चूड़ाला काकपीलुका।
दुर्माषा चक्रिका चूड़ा चक्रशीला भिरिण्टिका ॥७२८॥

पर्याय—ताम्रा (ताम्रवत् रक्ताभ), रक्तिका (रक्त, लाल) शीतपाकी (शीत काल में फलपाक वाली), कृष्णला (कृष्ण मुखी वा कृष्णबिन्दुयुक्त), चक्रिका (परिवेष्टनशील लता) ॥७२७–२८॥

गुञ्जानुष्णा रसे तिक्ता कषाया कफपित्तहा।
चक्षुष्या शुक्रला केश्या त्वच्या रुच्या बलप्रदा ॥७२९॥
इन्द्रलुप्तहरा तीव्रा सविषा मदमोहकृत्।
हन्ति रक्षोग्रहविषं कण्डूकुष्ठव्रणक्रमीन् ॥७३०॥

२०४. देवदाली[1]।

Luffa echinata. An annual climbing herb. Bitter, emetic, purgative, febrifuge, and used in snake-bite.

(हिं०) घघर बेल, विदाली, वंदाल, (बं०) घोषालता, देयाताड़ा, (म०) देवदाली, (गु०) कुकडवेल्य। वार्षिक लता। तिक्त, वामक, रेचक, ज्वरघ्न, सर्पविषहर।

जीमूतो जालिनी वेणी देवदाली गरागरी।
वृत्तकोषो देवताड़ः कर्कोट्याखुविषापहा ॥७३१॥
देवदाली रसे पाके तिक्ता तीक्ष्णा विषापहा।
वामनी हन्ति गुदजकफशोफकामलाः ॥७३२॥
ज्वरकासारुचिश्वासहिध्मपाण्डुक्षयक्रमीन्।
देवदालीफलं तिक्तं कृमिश्लेष्मविनाशनम्।
स्रंसनं गुल्मशूलघ्नमर्शोघ्नं वातजित्परम् ॥७३३॥

वृत्तकोष—गोल फल वाली। **स्रंसन**—रेचक ॥७३१–३३॥

---

१. **देवदाली** की वृहल्लता गुजरात, सिन्ध, बंग, बम्बे आदि प्रान्तों के जलाढ्य स्थलों में खेतों वा जलाशयों के इतस्ततः बहुत मिलती है। **पत्र** वृक्काकार और पञ्चकोण (5-angled); **पुष्प** क्षुद्र, पीत वा श्वेत, **फल** ककोरे के तुल्य, भीतर से प्रायः रिक्त वा सौत्रिकतन्तुयुक्त, बाहर से कण्टकावृत्त; **बीज** क्षुद्र। **देवदाली** तोरी (Luffa) जाती में शामिल है। यह सर्वांग तिक्त, वामक और रेचक है। २-३ फलों का क्वाथ पिलाने से वमन हो जाता है, अतः श्वास में जब कफ का रोध हो, यह क्वाथ लाभकारी है। यह जलोदर, पाण्डु, कृमि, सर्पविषादि में भी दे सकते हैं। देवदाली पंजाब में कम मिलती है।

२०५. उत्तमारणी[1] ?

करला कर्कशा द्रोणी दीर्घवृन्तोत्तमारणी ।
इन्दीवरा युग्मफला सुलोणी नीलिका मता ॥७३४॥
उत्तमारणिका शीता कषाया व्रणरोपणी ।
जयेद्बद्धमूत्रकृच्छ्रगर्भयोनिरुजानिलान् ।
शाकमुत्तमवारुण्या उष्णवीर्यं सतिक्तकम् ॥७३५॥
अर्शःकुष्ठकृमिहरं कफवातविनाशनम् ।
फलमुत्तमवारुण्याः सक्षारं दीपनं लघु ।
कटूष्णं तिक्तविशदं विषघ्नं पित्तकोपनम् ॥७३६॥

इति शाकानि ।

अथ वृक्षाः[2]

२०६. शाकः[3] ।

Tectona grandis.	(हिं०) सागवान, सागोन, (बं०)
The Teakwood tree.	शेगुन गाछ, (म०) सागवान (गु०)
A huge decidous tree.	शाग । महान् तरु, पत्र पतनशील ।
Bark astringent and cool.	वल्कल ग्राही, शीत; पुष्प तथा
Flowers and seeds diuretic.	बीज मूत्रल ।

भूमिरुहा द्वारदारुर्वरदारुः खरच्छदः ।
स्थिरसारो महापत्रः शाकः सुरभिसारकः ॥७३७॥

---

१. **उत्तमारणी** देवदाली के तुल्य किसी लता का नाम है, जो इस समय प्रसिद्ध नहीं । इन्द्रवारुणी का भी यह पर्याय है, परन्तु उस का वर्णन आगे पृथक् दिया गया है ।

२. शाकों के पश्चात् अब वृक्षों का वर्णन होगा । यद्यपि हरीतकी, बिल्वादि अनेक वृक्ष पूर्व वर्णित हो चुके हैं, तथापि यहां वह वृक्ष अभिप्रेत हैं, जिनका काष्ठत्वक् वा सार प्रधान है, न कि उनके फलादि अन्य भाग ।

३. **शाकवृक्ष** मध्यप्रान्त, उड़ीसा, ब्रह्मादि देशों में बहुत होता है । वृक्ष १२५ फुट तक ऊंचा चला जाता है । **पत्र** बहुत बड़े (१२ इंच प्रायः) खरस्पर्श, अण्डाकार, नोकदार (Acute); **पुष्प** शाखा पर मञ्जर्याकार, श्वेत, मृदु; **फल** क्षुद्र, गोलप्राय, रोमाकीर्ण । शाकवृक्ष की लकड़ी (सागवान–Teak-wood) पिंगल वर्ण, कठोर और दृढ़ होती है । जहां यह अधिकता से मिलती है, वहां गृहनिर्माण, वा अन्य काष्ठसामग्री (Furniture) के निर्माण में काम आती है । काष्ठचूर्ण का लेप शीत होने के कारण भल्लातकविष, दाह, व्रणशोथादि में लाभकारी है । फल से एक तैल

पर्याय—द्वारदारु (द्वारादिनिर्माणयोग्य काष्ठ है जिसका), वरदारु (श्रेष्ठ काष्ठ), खरच्छद (खर पत्रों वाला),स्थिरसार (दृढ़ काष्ठ वाला), महापत्र (बड़े पत्रों वाला), शाक (साग), सुरभि (सुगन्धित लकड़ी वाला) ॥७३७॥

शाकः कषायः शिशिरो रक्तपित्तप्रसादनः।
कुष्ठश्लेष्मानिलहरो गर्भसन्धानस्थैर्यकृत् ॥७३८॥
शाकपुष्पं प्रमेहघ्नं रूक्षं तुवरतिक्तकम्।
कफपित्तहरं वातकोपनं विशदं लघु ॥७३९॥

२०७. शालः[१]।

Shorea robusta.	(हिं०) साल, सांखु, (बं०) शाल गाछ, (म०) राले चा वृक्ष,साजरा।
The Sal tree.	
A large deciduous tree.	विशाल वृक्ष, पत्र पतनशील।
Bark astringent and cool.	वल्कल ग्राही, शीत।

शालः सर्जः सर्जरसः कान्तो मरिचपत्रकः।
शक्रद्रु रालनिर्यासः श्रीकरः शीतलस्तथा।
धूपवृक्षः स्निग्धदारुः कल्याणी कान्तिभूरुहः ॥७४०॥

पर्याय—शाल (विशाल वृक्ष), सर्ज (राल), सर्जरस (राल रस है जिस का), कान्त (सुन्दर वृक्ष), मरिचपत्रक (काली मरिच के पत्रों जैसे पत्र हैं जिस के), शक्रद्रु (इन्द्रतरु-विशाल वृक्ष), श्रीकर (शोभायमान), शीतल (शीत वीर्य), धूपवृक्ष (धूप-राल), स्निग्धदारु (चिक्कनी लकड़ी वाला) ॥७४०॥

शालः कषायो ग्राह्यस्रदग्धरुक् कफजित्क्रिमः।
कर्णरोगहरो रूक्षो विषहा व्रणशोधनः ॥७४१॥

निकलता है, जो केश्य और कण्डूनाशक है। पुष्पों का **शाक** प्रमेह में गुण करता है। काष्ठ अन्तर्धूमस्रवण (Destructive Distillation) से एक तैल प्राप्त होता है, जो पशुओं के व्रणों पर तथा रंगों में काम आता है।

१. शाल के उच्च वृक्षों के झुण्ड शिवालक, हिमालय, विन्ध्यादि पर्वतों के निचले तट पर बहुत मिलते हैं। **काष्ठ** शाकवत् दृढ़ और पिंगल, परन्तु खर। **पत्र** शाक से छोटे, मृदु, अण्डाकार और नोकदार। **पुष्प** श्वेत और मञ्जर्याकार। **फल** के साथ चमसाकार (Spatulate) ५ भाग पक्षवत् लगे रहते हैं। अकालपीड़ित लोग फल को पीस कर रोटी बनाते हैं और उससे अपना पेट भर लेते हैं। फल से एक तैल प्राप्त होता है, जो घृत के साथ मिला कर बेचा जाता है। **त्वक्** ग्राही और व्रणरोपक है। त्वक्क्वाथ से व्रण और कान धोए जाते हैं। **राल** (Resin)प्रसिद्ध निर्यास है, जिसका वर्णन आगे सुगन्धित द्रव्यों में देखें।

२०८. तमालः[1] ।

तमालः रक्तस्तापिच्छः कालस्कन्धः प्रकीर्त्तितः ।
तमालस्तद्गुणैस्तुल्यो नाहविस्फोटशोफजित् ॥७४२॥

तापिच्छ—तापि नदी के किनारे होने वाला । कालस्कन्ध—कृष्ण काष्ठ वाला । तद्गुणैस्तुल्यः—शाल के तुल्य गुण वाला ॥७४३॥

२०९. असनः[2] ।

Terminalia tomentosa.	(हिं०) असना, आसन, (बं०) पिया शाल; (म०) असन ।
A tall deciduous tree.	दीर्घ वृक्ष, पत्र पतनशील ।

२१०. बीजकः ।

Pterocarpus marsupium.	(हिं०) विजयसार, बीजा, पीतसार, (म०) बिबला, (गु०) बियां, (बं०) पियाशाल ।
A Large deciduous tree.	निर्यास (गोंद)—कमरकस ।
The gum known as Kino.	बृहद् वृक्ष, पत्र पतनशील ।
Both astringent used in diarrhea and dyspepsia.	दोनों ग्राही, कषाय, अतिसार, अजीर्णादि में लाभकारी ।

---

१. **तमाल** को तेजपत्र वा त्वक् (दालचीनी—Cinnamomum Tamala) कहना सर्वथा अशुद्ध है, क्योंकि 'तमालस्तद्गुणैस्तुल्यः' से कोई शालतुल्य वृक्ष प्रतीत होता है, जो तापि नदी के किनारे मिलता है । तमाल के गुण जो यहां वा अन्य निघण्टुओं में दिए गए हैं, त्वक् (दालचीनी) से नहीं मिलते । इस में सन्देह नहीं, कि तमालपत्र तेजपत्र का भी नाम है, परन्तु तमाल कोई पृथक् वनवृक्ष है । तमाल को कुछ वैद्य तम्माकू (Tobacco) कह देते हैं । यह भी अशुद्ध है, क्योंकि तम्माकू का वृक्ष नहीं होता, दूसरा यह द्रव्य विदेशी और नूतन है । "तमाल के वृक्ष प्रायः यमुना और तापी नदी के निकट बहुत होते हैं, वृक्ष की मूल और शाखा श्याम रंग की होती हैं, पत्ते गोल और शीशम की सदृश और फूल लाल २ और फल छोटे २ करौंदे के समान होते हैं ।"—शालिग्राम निघंटु । यह मत मान्य है ।

२. **असन** के वृक्ष नेपाल, सिक्कम तथा दक्षिण देशों के वनों में बहुत मिलते हैं । असन Terminalia जाति का अङ्ग है, जिस में अर्जुन, हरीतकी वा विभीतक सम्मिलित हैं, अतः असन की आकृति उन के सदृश समझें । अन्तर्दारु (Heart-wood) कठोर और पिंगल वर्ण की है । **पत्र** प्रायः लम्बे, नोकदार, **पुष्प** पीताभ, मञ्जर्याकार । फल ३-४ अंगुल लम्बा, २ अंगुल चौड़ा, हरीतकी वा अर्जुन के तुल्य । वल्कलक्वाथ ग्राही होने से अतिसार, प्रवाहिकादि में तथा व्रणों को धोने में काम आता है ।

असनो बीजकः काम्यः प्रियो बन्धूकपुष्पकः ।
शौरिः कार्श्यो महासर्जस्तिष्योऽन्यः कृष्णसर्जकः ।
सुगन्धिनीलनिर्यासपुष्पवृक्षोऽलिकः प्रियः ॥७४३॥
बीजकः कटुकः सोष्णः कषायः कफपित्तहा ।
त्वच्यः केश्योऽस्रपित्तघ्नः कृमिवीसर्पनाशनः ।
हन्ति कुष्ठकण्डूश्वित्रमेदोमेहं रसायनम् ॥७४४॥
असनस्य च पुष्पाणि विपाके मधुराणि च ।
तिक्तानि पाचनीयानि वातलानि भवन्ति हि ॥७४५॥

२११. तिनिशः[२] ।

Lagerstroemia Reginae.	(हिं०) तिरिच्छ, तिनिस, जारूल, (बं०) जारुल गाछ ।
A large deciduous tree.	बृहद् वृक्ष, पत्र पतनशील ।
Bark and root astringent.	वल्कल तथा मूल ग्राही ।

१. **बीजक** (विजयसार) मध्य प्रान्त, विहार और मद्रास में बहुत मिलता है । वृक्ष की त्वक् पर ऊर्द्धाधर रेखाएं होती हैं, जिन के कारण वह विदीर्ण प्रतीत होती है । **पत्र** संयुक्त (Compound), ५-७ पत्तियां एक दण्डी पर लगी रहती हैं । पत्तियां अण्डाकार और नोकीली होती हैं । **काष्ठ** बहुत कठोर और पीताभ, **पुष्प** पीताभ और मञ्जर्याकार । **बीजक** N.O. Leguminosea का अङ्ग है, अतः इसे फल शिम्बीतुल्य (Pod-like) आता है । **फली** ३-४ अंगुल लम्बी, उस में प्रायः २-३ बीज होते हैं । असन और बीजक को एक समझना अशुद्ध है । दोनों में कुछ सादृश्य है, परन्तु जाति, फल, पत्रादि में बड़ा अन्तर है, जो दोनों वृक्षों को एक साथ देखने से भली भान्ति ज्ञात होता है । बीजक से एक रक्तवर्ण निर्यास (गोंद) निकलता है, जिसे लोक भाषा में **कमरकस** (Kino) कहते हैं । यह द्रव्य पाश्चात्य चिकित्सा में ग्राही (Astringent) औषधों में पड़ता है । हकीम भी इस से बहुत काम लेते हैं । कमरकस के लड्डू पंजाब में लोग शीत काल में खाते हैं । कमरकस मुखरोगों में गरारों वा मधु में मिला कर लगाने वा चबाने के काम आता है । यह दस्तों को रोकता है । असन से कोई गोंद प्राप्त नहीं होता । पलाशनिर्यास (ढाक का गोंद) भी कमरकस के तुल्य है, अतः बाज़ारी कमरकस प्रायः पलाशनिर्यास ही है । कमरकस के तनु विलयन (Lotion) की उत्तरवस्ति सुज़ाक में लाभकारी है ।

२. **तिनिश** वृक्ष ५०–६० फुट ऊंचा होता है । यह प्रायः बंगाल, आसाम ब्रह्मादि में मिलता है । **वल्कल** मसृण, धूसर; **काष्ठ** कठोर, रक्ताभ, चमकदार ।

सुगर्भकः सर्वसारश्चक्रसंवरणास्तथा ।
स्यन्दनस्तिनिशो नेमी रथवृक्षोऽश्मगर्भकः ॥७४६॥

पर्याय—सुगर्भकः (सुन्दर गर्भ मध्यम काष्ठ है जिस का), सर्वसार (सम्पूर्ण साररूप कठोर), चक्रसंवरण (चक्रनेमी), नेमी (चक्रपरिधि), रथवृक्ष (रथ बनते हैं जिस से), अश्मगर्भक (पाषाणवत् दृढ़ काष्ठ वाला) ॥७४६॥

तिनिशस्तुवरो हन्ति श्वित्रकुष्ठव्रणक्रमीन् ।
प्रमेहपाण्डुतादाहबलासपित्तमेदसः ॥७४७॥

२१२. भूर्जः[1] ।

Betula Bhojpatra.
The birch.
A deciduous tree.
Bark astrigent, useful in Otorrhea and poisoned wounds.

(हिं०, गु०) भोजपत्र, (बं०) भूर्जि पत्र, (म०) भूर्जपत्र ।
वृक्ष, पत्र पतनशील ।
त्वक् ग्राही, कर्णस्राव तथा विषव्रणों में लाभकारी ।

भूर्जो भुजो बहुपुटो मृदुत्वचः स्थिरच्छदः ।
चित्रपत्रो बहुत्वचो भूतहा लेख्यपत्रकः ॥७४८॥

पर्याय—बहुपुट (बहुत सी पतली २ छालों वाला), मृदुत्वच (मृदु वल्कल वाला), स्थिरच्छद (स्थिर आच्छादन वाला), चित्रपत्र (चित्रित पत्रों वाला), बहुत्वच (बहुत सी पत्रवत् सूक्ष्म त्वचाओं वाला), भूतहा (कृमिनाशक), लेख्यपत्रक (त्वचा कागज़ के समान लिखने योग्य है जिस की) ॥७४८॥

पत्र ८–१० इंच लंबे, भालाकार । **पुष्प** रक्ताभ ४–५ अगुंल चौड़े । **फल** लम्बा नल्याकार । इस की लकड़ी अपनी कठोरता के कारण रथादि के निर्माण में काम आती है । इस के पादुक (खरावें) दृढ़ और लघु होते हैं । औषध में व्यवहार बहुत कम होता है, मूल और वल्कल का क्वाथ ग्राही है ।

१. **भूर्ज** के वृक्ष हिमालय के उच्चांश पर मिलते हैं । ऊंचाई प्रायः ४०–५० फुट । **वल्कल** मृदु स्निग्ध, भासुर, पाण्डु वा रक्ताभ व्यतस्त (Horizantal) रेखायुक्त । **बाह्यत्वक्** पत्रवत् (Paper-like) तनु भागों से युक्त होती है, जो शनैः २ पृथक् हो जाते हैं । इन का नाम ही भोजपत्र है, जो बाजार में सर्वत्र मिल जाता है । भोजपत्र पत्र नहीं, प्रत्युत त्वचा । प्राचीन काल में उत्तर भारत में पुस्तकें भोजपत्र पर लिखे जाते थे, जो अब तक मिलते हैं । दक्षिण भारत में लिखने के लिए ताड़पत्र प्रयोग होता था । भूर्जपत्र के क्वाथ से पूतियुक्त कान को धोना लाभकारी है । इस से विषाक्त व्रण भी धोए जा सकते हैं । यह क्वाथ योषापस्मार (Hysteria) में लाभकारी है ।

भूर्जः कषायो जयति बलासं पित्तशोणितम् ।
मेदोभूतग्रहरक्षःकर्णरोगविषप्रणुत् ॥७४६॥

२१३. अर्जुनः[1] ।

Terminalia Arjuna.	(हिं०) अर्जुन, कौह, (पं०) जुमरा,
A huge white-barked tree.	(बं०) अर्जुन गाछ, (म०) अमला,
Bark astringent, cooling,	(गु०) सादाड़ो, अर्जुन ।
cardiac tonic & heamostatic.	बृहत् श्वेतवल्कल वृक्ष ।
	वल्कल ग्राही, शीत, हृद्य, रक्तस्तंभक ।

१. अर्जुन अन्य प्रान्तों की अपेक्षा पंजाब में बहुत होता है । इस का वृक्ष अति विशाल और दर्शनीय है । बाह्यत्वक् श्वेत (अतः अर्जुन–श्वेत) और श्लक्ष्ण; **अन्तर्वल्कल** स्थूल, मृदु, रक्त और सौत्रिक; **पत्र** संयुक्त (Compound), १०–१५ जोड़े एक दण्डी पर, ४–५ इंच लम्बे, १–२ इंच चौड़े; **पुष्प** क्षुद्र, पीत; **फल**–२, ३ अंगुल लंबा, कमरख के आकारवाला, ५–७ उत्सन्न रेखाओं से युक्त । **पत्रस्वरस** कर्णशूलनाशक है । पत्र व्रणाच्छादनार्थ भी काम आते हैं । **फल** हरीतकीवत् रेचक और रसायन है । अर्जुन की त्वक् ही प्रायः काम आती है । अर्वाचीनानुसन्धान द्वारा उस में शर्करा, Tannin (कषाय द्रव्य), रक्त वर्ण (A red colouring matter) आदि द्रव्य सिद्ध हुए हैं । उस में एक Glucoside द्रव्य है, जो हृदयरोगों के लिए अत्यन्त लाभकारी है । यह हृदयकम्पन (Beats of the heart) को कम करता है, और उस की रक्तक्षेपक शक्ति को बढ़ाता है, अर्थात् अर्जुन के प्रयोग से दुर्बल हृदय बलवान् हो कर रक्त को धमनियों में बलपूर्वक भेजता है, (It acts as a cardiac stimulant and tonic, increasing the force of the beats of the heart, but slowing their number, but never completely stopping it–Dr. Ghoshal) वस्तुतः अर्जुन वही काम करता है, जो डाक्टरों का प्रसिद्ध औषध Digitalis, परन्तु जहां Digitalis घोर विष है, वहां अर्जुन विष नहीं । अर्जुन रक्तस्तंभक और प्रमेहघ्न है, मूत्र में Phosphates और Urates को अधिक करने से अश्मरी को दूर कर सकता है, परन्तु प्रयोग दीर्घ काल तक करना चाहिए । **अर्जुनत्वक्क्वाथ** घन रक्तवर्ण और स्वाद में कषाय होता है । उसे अकेला वा दुग्ध में मिलाकर दे सकते हैं । क्वाथ को घन कर के **अर्जुनसार** (Solid Extract of Arjuna) बना कर अर्जुनवटी आदि औषध निर्माण कर सकते हैं । क्वाथमात्रा ३–५ तो०, अर्जुनवटी ४—८ रक्ति, अर्जुनक्वाथभावित शिलाजतु हृद्रोग में लाभकारी है । अर्जुनारिष्ट, अर्जुनघृत, अर्जुनादिलोह भी हृदयरोगों में दे सकते हैं । अर्जुनक्वाथ भग्नसन्धानकारक है । व्रणों को इस से धो सकते हैं । अर्जुनत्वक् १ तोला १ पाव दुग्ध और १ पाव जल में उबालकर पिलाना

अर्जुनः फाल्गुनः पार्थः ककुभो धूर्तभूरुहः ।
श्वेतवाहो नदीसर्जो मधुगन्धिप्रसूनकः ॥७५०॥
अर्जुनस्तुवरः शीतो जयेत्पित्तकफव्रणान् ।
मेदोमेहास्रहृद्रोगस्वेदभग्नक्षतक्षयान् ॥७५१॥

२१४. खदिरः[1] ।

Acacia catechu.	(हिं०) खैर, (बं०) खयेर गाछ,
A thorny deciduous tree.	(म०) खैर, (गु०) खैरियो ।
The extract–Catechu.	कण्टकी वृक्ष, पत्र सूक्ष्म, पतनशील ।
Astringent, cooling, digestive and styptic.	खदिररसक्रिया—कत्था ।
	ग्राही, शीत, पाचक, रक्तस्तम्भक ।

सर्वोत्तम प्रयोग है। अर्जुन जितना अधिक श्वेत हो, उतना ही उसे अधिक गुणकारी समझना चाहिए। बम्बे प्रान्त के अर्जुन बहुत श्वेत होते हैं।

१. **खदिर** के वृक्ष हिमालय के निचले तट पर सर्वत्र मिल जाते हैं, मैदानों में कम मिलते हैं। **पत्र** शमी (जंड) वा आमलकी के तुल्य होते हैं। वृक्ष पर क्षुद्र वक्र (टेढ़े–Hooked) **कण्टक** बहुत होते हैं, अतः वक्रकण्टक, बहुकण्टकादि यथार्थ नाम दिए गए हैं। **पुष्प** क्षुद्र, पीतवर्ण; **फल** शिम्बीवत् (Legume), अतः यह N. O. Leguminosae में सम्मिलत है। **फली** पतली, लम्बी, श्याम, सरल। **बीज** ५–६ एक फली में। खदिर Acacia जाति का अंग है, जिस में बब्बूल आदि कई पादप शामिल हैं। यह प्रायः सब कषायरसप्रधान और ग्राही (Astringent) हैं। खदिर के पत्र, पुष्प, त्वक् आदि भाग भी कषाय और ग्राही हैं। उन का क्वाथादि में व्यवहार हो सकता है, परन्तु खदिर का प्रसिद्ध सार वा रसक्रिया **कत्था** (Catechu or Cutch) सर्वजगत्प्रसिद्ध द्रव्य है, जो न केवल वैद्यक चिकित्सा में उपयोगी है, प्रत्युत यूनानी और पाश्चत्य डाक्टरी में भी प्रयोग होता है। लोग उसे पान और सुपारी के साथ मिला कर खाते हैं। यह महोपयोगी द्रव्य खदिरकाष्ठ (अन्तर्दारु–Heart-wood) को उबाल कर क्वाथ छानने और पुनः मृदु अग्नि पर घन करने से प्राप्त हो सकता है। बाज़ारी कत्थे में श्वेतसार (आटा-Starch) आदि द्रव्य मिले रहते हैं, उसे जल में घोल कर छान लें और पुनः रसक्रिया करें, तो शुद्ध खदिरसार (Pure Extract of Catechu) प्राप्त हो सकता है। कत्था कृष्ण, श्वेत, बांगला, जौनपुरी आदि कई भेदों से प्रसिद्ध है, परन्तु श्वेत कत्था सर्वोत्तम है। कत्थे में ग्राही द्रव्य Catechu–tannic acid है, अतः कत्था अतिसार, प्रवाहिका, स्वरभेद, कास, कण्ठरोग, दन्तरोग, श्वेत प्रदर, कुष्ठ, व्रणादि रोगों में लाभकारी है। कत्थे की मात्रा ४ से ८ रक्ति तक है। इसे कमरकस (Kino), जातिफल, लवंग अहिफेनादि से मिला कर अतिसारादि के लिए लाभकारी गोलियां बना

गायत्री खदिरो गीतः कुष्ठघ्नः बालपत्रकः ।
क्षितिक्षमो रक्तसारो शल्यको बहुशल्यकः ॥७५२॥
गौरटः कदरः श्यामसारकः कुष्ठकण्टकः ।
कालस्कन्धः सारशल्यो महासारः पथिद्रुमः ॥७५३॥

पर्याय—गायत्री (श्रेष्ठ वृक्ष), कुष्ठघ्न (कुष्ठादित्वग्रोगनाशक), बालपत्रक (सूक्ष्म पत्तों वाला), रक्तसार (गर्भकाष्ठ रक्त है जिस का), शल्यक (कण्टकी), बहुशल्यक (बहुत कांटों वाला), गौरटः (श्वेत वा रक्त सारमय), कुष्ठकण्टक (कुष्ठनाशक), कालस्कन्ध (कृष्ण सार वाला), पथिद्रुम (मार्गतरु) ॥७५२-३॥

खदिरः शीतलस्तिक्तः कषायः कफपित्तहा ।
दन्त्यो हन्ति कृमिश्वित्रकुष्ठकण्डूव्रणज्वरान् ।
शोफाममेहमेदोऽस्रकासारोचकपाण्डुताः ॥७५४॥

२१६. इरिमेदः[1] ।

इरिमेदः सर्पमेदः गोधास्कन्धोऽरिमेदकः ।

सकते हैं । मात्रा २ रक्ति वा चणकतुल्य । खदिर वा महाखदिर वटी प्रसिद्ध कण्ठ-रोगनाशक औषध है । कत्था और फटकड़ी के गरारे वा उनका चूर्ण कण्ठ, दांतों और मसूरों के लिए लाभकारी है । कत्था,माजुफल और फटकड़ी की पोटली योनिमें रखने से श्वेतप्रदर नाश होता है। यह चूर्ण व्रणरोपक और रक्तस्तंभक भी है । उस में रसकर्पूर मिला कर उपदंश के व्रणों पर छिड़क सकते हैं । कत्थे का तनु विलयन (Lotion) व्रण धोने अतिसार में वस्ति (Enema) और सुज़ाक में उत्तर वस्ति (Urethral Syringe) देने के काम आसकता है । एवं बुद्धिमान् वैद्य अनेक योग कल्पना करके कत्थे से लाभ उठा सकता है । खदिर वृक्ष से एक निर्यास (गोंद) भी निकलता है, जो कमरकसवत् ग्राही समझना चाहिए ।

१. इरिमेद (विट्खदिर) खदिर का ही भेद है । कई लोग इसे फुलाई (प्रसिद्ध पंजाबी नाम)—Acacia Modesta (or Mimosa dumosa) समझते हैं । यह कांटेदार वृक्ष पंजाब में अधिक होता है । इस का दातन (दन्त-काष्ठ) बड़ा सुन्दर मधुरकषाय होता है, और दांतों के लिए लाभकारी है । कुछ वैद्य इसे Acacia ferruginea मानते हैं, यह खदिरतुल्य वृक्ष है । इसे गोंद (निर्यास) बहुत आता है, जो कीकर के गोंद (Gum acacia or Gum arabica) के नाम से प्रसिद्ध है । इस वृक्ष को कहीं २ खैर भी कहते हैं । कई वैद्यों के मत में इरिमेद का लेटिन नाम Acacia Farnesiana है । यह नाम विलायती कीकर का है । यह खदिर से सर्वथा भिन्न है । वस्तुतः खदिर की अनेक जातियां हैं, इस समय सब को पृथक् २ यथार्थ नाम देना कठिन है । शास्त्रों में खदिर, सोमवल्कल, ताम्रकण्टक, विट्खदिर और अरि (वल्लीखदिर) पांच भेदों का वर्णन पृथक् २ मिलता है ।

अरिमेदो विट्खदिरोऽरिमो मेदोऽरिपूरिमः ॥७५५॥
रिमः कटुः कषायोष्णस्तीक्ष्णो हन्ति कफं कृमीन् ।
कण्डुरक्तग्रहान्वस्तिमुखदन्तगदानपि ।
तत्फलं तिक्तमधुरं स्निग्धोष्णं कफवातनुत् ॥७५६॥

२१६. वल्लीखदिरः[1] ?

अरिष्ठ वल्ली खदिरस्तथा खदिरवल्लरी ।
ऐरावती सुगन्धा स्याद्वातप्रशमनी स्मृता ।
ऐरावती रसे पाके चाम्लोष्णाऽनिलकासहा ॥७५७॥

२१७. कन्थारी[2] ।

Capparis sepiaria.
A thorny wiry-branched shrub.
Pungent, stimulant, and expectorant.

(हिं०) कंतार, (पं०) हूं, (गु०, म०) कन्थार, (बं०) कांटा गुड़ कामाई ।
कण्टकीय तन्तुमय झाड़ी ।
कटु, उष्ण, कफप्रसेकी ।

कन्थारिका क्रूरकर्मा त्वहिंस्रा चक्रवल्लरी ।
अन्यः कपालकुलिकोऽम्लफला गुच्छगुल्मिका ।
कन्थारी कटुका सोष्णाश्वासकासत्रिदोषहा ॥७५८॥

---

१. वल्लीखदिर (अरिः) खदिरतुल्य पत्र, शाखा, कण्टकादियुक्त लता प्रतीत होती है । संभव है कि यह Acacia concinna हो, जो खदिरजातीय कण्टकी लता है । इस की फली (शिम्बी-Pod) तिक्त, कटु, अम्ल, उष्ण, रेचक और कासहर होती है । इन फलियों को बम्बे में 'चिकाकाई' कहते हैं । इन से सिर धोया जाता है, क्योंकि यह अरिष्ट (हरीठे) की तरह झाग देती है । ऊपर श्लोक में इसे अम्लोष्ण कहा गया है, न कि कषाय, जो खदिर का प्रधान गुण है । A. intsia और A. pennata अन्य दो खदिरजातीय लताएं है । इस चिकाकाई को बम्बे प्रान्त वाले सप्तला नाम देते हैं । सप्तला Euphorbia (थोहर) जाती का पादप प्रतीत होता है, न कि Acacia (खदिर) जाती का ।

२. कन्थारी एक कांटेदार झाड़ी है, जिस की आकृति, पुष्प, पत्र, फल, कण्टकादि बहुत कुछ करीर (पं० डेह्ला) से मिलते हैं । गुण भी तत्सम कटु, उष्ण, और कफघ्न समझें । यह सिन्ध, गुजरात, पंजाबादि के रूक्ष और बालुमय स्थलों में मिलती है । इस के नखाकार कण्टक के कारण इसे गृध्रनखी भी कहते हैं । वैद्यक शब्दसिन्धु में इसे फणिमन्सा बंगाली नाम दिया गया है । यह नाम नागफणी (छित्तर थोहर) का है, जिसे लोग सातला (वा सप्तला) कहते हैं । बंगाल जैसे

२१८. पलाशः[1]।

Butea frondosa. The forest-flame.	(हिं०) ढाक, टेसु, केसु, (बं०) पलाश गाछ, (म०) पलस, परस, (गु०) खाखरो।
A well-known deciduous tree.	प्रसिद्ध वृक्ष, पत्र पतनशील।
The gum Kino-like astringent	निर्यास (गोंद) कमरकसवत् ग्राही।
Butea seeds anthelmintic and aperient.	पलाशबीज कृमिघ्न, रेचक।
Flowers astringent & diuretic	पुष्प ग्राही, मूत्रल।

आनूप देश में कन्थारी उत्पन्न नहीं हो सकती, अतः उसे अशुद्ध समझा गया है। कन्थारी कभी २ छोटे वृक्ष जितनी होती है।

१. पलाश (किंशुकः) भारत में सर्वत्र प्रायः वनों में बहुत मिलता है। पलाश के वृक्ष बहुधा झुंडों में देखे जाते हैं। ऊंचाई प्रायः ४०—५० फुट; **काण्ड** वक्र और विषमरूप; **वल्कल** मटियाले रंग की और विदीर्ण; **पत्र** गोल और ३, ३ इकट्ठे (Trifoliate—ढाक के तीन तीन पात); **पुष्प** बड़े, सुन्दर, रक्तवर्ण; वसन्त काल में प्रायः पत्रों का अभाव होता है और वृक्ष उज्ज्वल रक्त पुष्पों के कारण दूर से ही पहचाना जाता है। मनुष्य उस की सुन्दर रक्त आकृति से आश्चर्यग्रस्त हो कर 'किं शुकोऽयं' ऐसा बोल उठता है, जिस से उस का नाम **किंशुक** पड़ गया है; पुष्पाकृति भी शुकतुण्ड से मिलती है। **केसू** (टेसु) किंशुक का अपभ्रंश है। **फल** शिम्बी (फली-Pod) के तुल्य, ८—१६ अंगुल लम्बी, १—२ अंगुल चौड़ी, चर्माकार; **बीज** गोलप्रायः, व्यास २—३ इंच, श्लक्ष्ण, श्यामरक्त, यह बाज़ार में पलाशबीज के नाम से मिल जाते हैं। वृक्ष पर छेद करने से रक्त निर्यास निकलता है, जो जम कर गोंद के तुल्य बन जाता है। मृदु क्षुप (पञ्चाङ्ग) जला कर क्षारविधि द्वारा **पलाशक्षार** बना सकते हैं, यह (मात्रा ४—८ रक्ति) गुल्म, अर्श, शूलादि में बहुत उपयोगी है। पलाश का नाम 'क्षारश्रेष्ठः' आया है। मृदु पत्रों का स्वरस वा क्वाथ ग्राही, रसायन और वृष्य है, पत्रों की पुल्टिस व्रणों को लीन कर देती है। मृदु पलाश पत्र को दुग्ध में पीस कर गर्भिणी स्त्री को पिलाने से पुत्र उत्पन्न होता है। **त्वक्** का क्वाथ शुंठीचूर्णसहित सर्पविषघ्न है। **पलाशपुष्प** (केसू के फूल जो बाजार में बहुत मिल जाते हैं) जल में उबाल कर उन की पोटली से वस्ति पर स्वेद करने से मूत्र खुल कर आ जाता है। आमवात, उदरशूलादि में उन का स्वेद लाभकारी है। उन के स्वेद से स्त्रियों का मासिक धर्म भी खुल जाता है। जो पानी शेष बचता है, वह लाल रंग का होता है। जब फूल उबल रहे हों, तो उनका वाष्पस्वेद (Steam-bath or hot fomentation) शोथ, शूलादि में लाभकारी है। **पलाशबीज** (Butea Seeds) का चूर्ण (१—२ माषे) मधुमिश्रित प्रातः और सायं ३ दिन खिलाने से और चौथे दिन

पलाशः किंशुकः कर्मी याज्ञिकश्च गणोत्कः ।
पट्टुपर्णी द्विजस्नेहस्त्रिवृन्तो रक्तपुष्पकः ।
क्षारश्रेष्ठो वातपोथो ब्रह्मवृक्षः समिद्वरः ॥७५९॥

पर्याय—पलाश (पर्णप्रधान वृक्ष), किंशुक (किं शुकोऽयं-क्या यह तोता है ? शुकतुण्डवत् वक्र रक्त पुष्प के कारण), कर्मी (यज्ञादि कर्मों में उपयोगी), याज्ञिक (यज्ञों में पलाशसमिधा प्रयोग होने से), द्विजस्नेह (यज्ञकर्ता ब्राह्मणों का स्नेही), त्रिवृन्त (त्रिपत्रक), रक्त पुष्पक (लाल फूलों वाला), क्षारश्रेष्ठ (उत्तम क्षारद्रव्य), वातपोथ (वायुनाशक), समिद्वर (श्रेष्ठ समिधा) ॥७५९॥

पलाशस्तुवरस्तिक्तः स्निग्धोष्णो दीपनः कटुः ।
सरः सन्धानकृद्वृष्यो जयेद्दोषव्रणकृमीन् ।
ग्रहणीगुल्मगुदजान् तत्पुष्पं स्वादु तिक्तं ॥७६०॥
कषायं कटुकं पाके वातलं ग्राहि शीतलम् ।
तृट्दाहकफपित्तास्रकुष्ठहृत्फलमस्य च ॥७६१॥
रूक्षं विपाके कटुकं लघूष्णं कफवातजित् ।
कुष्ठगुल्मोदर प्लीहमेहार्शःकृमिशूलजित् ।
किंशुकस्य प्रवालं[१] तु कृमिवातहरं परम् ॥७६२॥

प्रवाल—नवपल्लव ॥७६०-६२॥

प्रातः एरण्डतैल (२-३ तोले) पिलाने से बद्धकृमि (गोल कीड़े-Round worms) निकल जाते हैं। डाक्टरों ने इस का प्रयोग Santonine के समान लाभकारी पाया है। कई इस का विरोध भी करते हैं, क्योंकि इस का रेचक गुण कृमिनाश में बाधा डालता है । बीजकोश उतार लेने से जो मींगी वा मज्जा निकलती है, वह अधिक गुणकारी है, उस की मात्रा १ माषा पर्याप्त है। कृमिमुद्गरादि रसों में पलाशबीज पड़ते हैं। **बीजचूर्ण** निम्बुरस में मिलाकर लेप करने से दद्रु, पामादि में लाभ पहुंचता है। **पलाशनिर्यास** (Butea gum known as Bengal Kino or Butea Kino) कमरकस (विजयसार श्रंक २१०)के तुल्य कषाय, ग्राही और तद्वत् गुणकारी है। क्षय में देने से स्वेद कम होता है। "पलाशभवनिर्यासो ग्राही च क्षपयेद्ध्रुवम् । ग्रहणीं मुखजान् कासजाञ्जयेत्स्वेदातिनिर्गमम् ॥" (अ० संग्रह)। बाज़ार में कमरकस मांगने से ढाक का गोंद ही मिलता है। पलाशबीज अर्कक्षीर में घिस कर वृश्चिकदंश पर लगाने से शूल नष्ट हो जाता है। १. द—प्रभावं ।

२१९. धवः[1]।

Anogeissus latifolia. A small deciduous tree with white bark. Bark and gum astringent.	(हिं०) धावा, धौं, (बं०) धाऊया गाछ, (म०) धावड़ा, (गु०) धावड़ो। क्षुद्र वृक्ष, पत्र पतनशील। त्वक् तथा निर्यास ग्राही।

धवो दृढो नन्दिकश्च शकटाक्षो भरोद्वहः[2]।
कषायमधुरस्तिक्तः स्थिरो गौरो धुरंधरः ॥७६३॥

पर्याय—धव (धवल-श्वेत), दृढ (दृढ काष्ठ वाला वृक्ष), शकटाक्ष (गाड़ी का अक्ष—Axel), भरोद्वह (भारवाहक वा भार सहने वाला), स्थिर (दृढ), गौर (श्वेत), धुरंधर (धुरे को धारन करने वाला दृढ काष्ठ) ॥७६३॥

धवस्तुवरकः शीतो मधुरो मेहपाण्डुहा।
कफपित्तहरं तस्य फलं स्वादुकषायकम्।
हिमं रूक्षं गुरु स्तम्भि वातलं कफपित्तजित् ॥७६४॥

२२०. धन्वनः[3]।

Grewia Tilieafolia. A large deciduous tree. Bark mucilaginous hence useful in dysentry.	(हिं०) धामन, धामिनी, (बं०) धामना गाछ, (म०) धामण, (गु०) धामण। महान् वृक्ष, पत्र पतनशील। त्वक् पिच्छिल, प्रवाहिकाघ्न।

१. **धव** प्रायः पर्वतों वा घन वनों में मिलता है। वृक्ष प्रायः छोटे, परन्तु कभी २ ७०—८० फुट ऊंचे हो जाते हैं। **वल्कल** श्लक्ष्ण, पाण्डु, विदीर्ण और विषम; अन्तर्दारु (Heart wood), कठोर, उज्ज्वल, ग्रीष्म ऋतु में पत्राभाव, पत्र अमरूद के तुल्याकार; **पुष्प** छोटे और शाखाओं पर गुच्छों में लगे हुए। पक्व फल मृदु, गोलप्राय, क्षुद्र। **धवकाष्ठ** दृढ़ता के कारण शकट (गाड़ी) के अक्षों, और मूसलादि के निर्माण में काम आता है। इसकी त्वक् और फल प्रमेहातिसारादि में लाभकारी हैं, परन्तु धव औषधरूप में कम काम आता है।

२. ब—धवो दवो नन्दितकः शकटाक्षो भरोद्वहः।

३. **धन्वन** प्रायः वहां मिलता है, जहां धव। वृक्ष ४०—५० फुट ऊंचा; **वल्कल** खर और विदीर्ण, **पत्र** गोल, रोमश, फालसे के पत्रों से कुछ छोटे, किनारा कटा हुआ, अग्रभाग नोकदार; **पुष्प** क्षुद्र, पीत, पञ्चदल (5-petals); **फल** मटर के दानों के तुल्य, परन्तु कृष्ण। वल्कल को जल में भिगोने और मलने से एक पिच्छल रस प्राप्त होता है, यह अतिसार में लाभकारी है। वल्कल जल में घिसकर लेप करने से कपिकच्छुफल से उत्पन्न कण्डू नष्ट होता है। काष्ठचूर्ण वामक और अहिफेनविषनाशक है। शाखा दृढ और कठोर होने के कारण धनुर्निर्माण में काम आती है, और काष्ठ प्रायः गृहनिर्माण में लगता है।

गोत्रद्रुमो गोत्रपुष्पो धन्वनो धर्मणः स्मृतः ।
रुजाहरो धनुर्वृक्षः सारवृक्षः सुतेजनः ॥७६५॥
धर्मणः स्वादुस्तुवरो रूक्षः पित्तास्रजिल्लघुः ।
बृंहणो व्रणसन्धानरोपणो बलवर्द्धनः ।
फलं तस्य हिमं स्वादु कषायं कफवातजित् ॥७६६॥

२२१. सर्जकः[१] ।

Vateria indica. Indian Copal or Piney varnish An evergreen handsome tree. Resin and Oil used in diarrhoea, dysentry & varnishes.	(हिं०) सुन्दरस, राल, सफेद दागर,(बं०) चन्द्रस, (गु०) राल । सदाहरित सुन्दर वृक्ष । निर्यास तथा तैल अतिसार, प्रवाहिकादि रोगों में उपयोगी ।

अजकर्णो लतावृक्षो वस्तकर्णोऽथ सर्जकः ।
कुशरीरः स्नेहकरः कषायी रञ्जनद्रुमः ॥७६७॥

पर्याय—अजकर्ण (बकरी के कान के तुल्य पत्र हैं जिसके), वस्तकर्ण (अजकर्ण), सर्जक (राल), स्नेहकर (स्निग्ध), रंजनद्रुम (रंगने में उपयोगी वृक्ष) ॥ ७६७ ॥

सर्जः कषायो व्रणजित् कफस्वेदमलकृमीन् ।
वर्ध्मविद्रधिबाधिर्ययोनिकर्णरुजाहरः ॥७६८॥

२२२. अश्वकर्णः[२] ।

A variety of Sal tree (Shorea robusta) No. 207.	शाल वृक्ष का भेदविशेष । देखो अङ्क २०७ ।

अश्वकर्णस्तथारण्यः सस्यसंवरणोऽपि च ।
दीर्घपत्रो दीर्घवृक्षः कुशिकश्चारिपत्रकः ॥७६९॥
अश्वकर्णः कटुस्तिक्तः कषायोष्णो नियच्छति ।
कफपाण्डुश्रुतिगदान् मेहकुष्ठविषव्रणान् ॥७७०॥

---

१. सर्जक शाल के तुल्य वृहत् वृक्ष, परन्तु सर्जक के पत्र सदैव हरित रहते हैं। यह सुन्दर वृक्ष मद्रास प्रान्त में बहुत होता है। इस का निर्यास राल के तुल्य है, जिसे यहां सुन्दरस कह कर बाज़ार से ले सकते हैं। इसका प्रयोग राल के तुल्य समझें, जो आगे सुगन्धित द्रव्यों में वर्णित है। यह गरम तैल में शीघ्र मिलकर एक अच्छी मल्हम बन जाती है। सर्जकबीज से एक घन तैल निकलता है, जो मल्हमों के बनाने में काम आ सकता है। सन्धिशूलादि में यह तैल गरम करके मलने से लाभ पहुंचता है।

२. अश्वकर्ण शाल (अंक २०७) का भेद है। उसके गुण, आकृति आदि शालवत् जानें।

तत्फलं मधुरं रूक्षं शीतलं स्तम्भनं गुरु।
कषायं लेखनं स्तन्यवाताध्मानविबन्धकृत।
निहन्ति पित्तदाहास्रतृष्णाकासक्षतक्षयान्॥७७१॥

नियच्छति—दूर करता है। श्रुतिगदान्—कर्ण के रोगों को॥७७०-७१॥

२२३. वरुणः[1]।

Crateava religiosa.
A shady spreading tree.
Leaves rubefacient & vesicant
Bark antipyretic, alterative, diuretic and lithontriptic.

(हिं०) बरना, (बं०) वरुण गाछ, (मं०) वायवरणा, (गु०) वरणो। छायावान् विस्तृत वृक्ष। पत्र त्वग्दाहस्फोटकारक, वल्कल ज्वरवेगनिवारक, रसायन, मूत्रल, अश्मघ्न।

वरुणो वरणः सेतुरुरुमाणः कुमारकः।
शाकद्रुमः सेतुवृक्षो बोधवृक्षस्[2]तमालकः।
साधुवृक्षः श्वेतपुष्पस्तिक्तशाकश्चलापहः॥७७२॥

पर्याय—वरुण (श्रेष्ठ), वरण (गोल, छत्राकार), सेतुरुरुमाण (सेतुः, उरुमाणः), चलापह (मारुतापह, वायुनाशक)॥७७२॥

---

१. वरुण भारत में सर्वत्र छायार्थ लगाया जाता है। बिल्व की तरह उस के ३ पत्र (Trifoliate) एक वृन्त पर होते हैं, परन्तु कांटे नहीं होते। प्रायः सब लोग इस की आकृति से सुपरिचित हैं। **पुष्प** श्वेत वा पीताभ और सुगन्धित, पुष्पकाल वसन्त; **फल** कपित्थ के सदृश श्वेत, गोल, बाह्य कोष कठोर, खर; **फलमज्जा** (Pulp) पीत; **बीज** क्षुद्र, मज्जामग्न। **वरुणपत्र** शुक्त (Vinegar), निम्बुरस वा उष्ण जल में पीसकर उपनाह वा लेप के रूप में त्वचा पर लगाने से १५ मिनट में स्थान रक्त हो जाता है, यदि अधिक काल वह लेप लगा रहे, तो पिड़िकाएं उत्पन्न हो जाती हैं, अतः वरुणपत्र का प्रयोग वहां कर सकते हैं, जहां आजकल **राजिकालेप** (अंक १४६) किया जाता है; डा० मुडीन शेरिफ के यह शब्द आदर से पढ़ने चाहियें, "The existence of one or two plants of *C. religiosa* in each Hospital and Dispensary will certainly save them from the cost of the supply of Europe mustard for external use. The plant grows well with ordinary care." (Moodeen Sheriff)। वरुणपत्र के कोष्ण क्वाथ में अवगाहन (Hip-Bath) कराने से अर्शःशूल नष्ट हो जाता है। काण्डत्वक् वा मूलत्वक् का क्वाथ ज्वरघ्न, रेचक, रसायन, रक्तशोधक और अश्मरीघ्न है। वरुणमूलत्वक् का क्वाथ मधुयुक्त गण्डमाला और अन्तर्विद्रधि में लाभकारी है।

२. ब—राधवृक्षः।

वरुणो मधुरस्तिक्तः कषायः कटुको लघुः ।
रूक्षोष्णः पित्तलो भेदी दीपनः कफवातजित् ॥७७३॥
निहन्ति कफवातास्रमूत्राघातास्रहृद्गदान् ।
पुष्पं पित्तास्रहृद्ग्राहि फलं स्निग्धं रसं गुरु ।
स्वादूष्णं मधुरं पाके वातघ्नं कफपित्तजित् ॥७७४॥

२२४. वेल्लन्तरुः[1] ।

Dichrostachys cinerea or Mimosa Cinerea.

A throrny much-branched shrub.

Bitter, diuretic, and costive.

(हिं०) वरवेल, वरतुली, वेलन्तर, बिल्वान्तर, (माड़०) खेरी, (म०, गु०) वेलतूर । कण्टकीय बहुशाखायुक्त झाड़ी । तिक्त, मूत्रल, विवन्धकारक ।

वेल्लन्तरो वीरतरुः सुरा च बहुधारकः ।
दीर्घमूलो वृहद्वातो दीर्घपत्रोऽश्मकृच्छ्रहा ॥७७५॥

पर्याय—वेल्लन्तर (लताकार क्षुद्र क्षुप वा झाड़ी वा कम्पनशील तरु), वीरतरु (बहादुर वृक्ष), अश्मकृच्छ्रहा (पत्थरी और मूत्रकृच्छ्र को नाश करने वाला)॥७७५॥

वेल्लन्तरो रसे पाके तिक्तस्तृष्णाकफापहा ।
मूत्राघाताश्मजिद्ग्राहि योनिमूत्रानिलार्त्तिजित् ॥७७६॥

मूत्राघात—मूत्र का न आना वा पैदा न होना (Suppression of urine) । अनिलार्त्ति—वातरोग ॥७७६॥

---

१. वेल्लन्तरु पंजाब के मरुस्थलों में कहीं २, परन्तु मरुदेश तथा नर्मदातट पर (बम्बे की ओर) बहुत मिल जाता है । यह प्रायः झाड़ी वा क्षुद्र वृक्ष के रूप में होता है, काण्ड तथा शाखाएं कण्टकावृत्त, पत्र क्षुद्र, शमी (जंड) वा बब्बूल के तुल्य; पुष्प रक्त, नीलादि नानावर्ण, क्षुद्र, शाखा पर मञ्जर्याकार; फल शिम्बीवत् २-३ इंच लम्बा, ½ इंच चौड़ा, श्यामपिंगल, विषमवक्र; बीज गोल, चपटे, ६-१० एक फली में । यह Leguminosae N. O. का अंग है । श्री डल्हणाचार्य ने सुश्रुत के वीरतर्वादि वर्ग की व्याख्या करते हुए वीरतरु पर यह नोट दिया है, "वीरतरुः 'वेल्लन्तर' इति नाम्ना प्रसिद्धः, जाङ्गलदेशे नर्मदातटे चर्मण्वतीनदीसमीपे च तल्लक्षणमुच्यते, —"वेल्लन्तरुर्जगति वीरतरुः प्रसिद्धः श्वेतासितारुणविलोहितपीतपुष्पः । स्याज्जाटितुल्यकुसुमा शमीसूक्ष्मपत्रः स्यात् कण्टकी विजलदेशजः एष वृक्षः" भावमिश्र ने यही लक्षण अपने निघण्टु में दे दिए हैं । जाटी वस्तुतः जाती शब्द है, परन्तु पुष्पों को जातितुल्य कहना अशुद्ध है । यह शोथशूलादि में स्वेदार्थ लाभकारी है । पत्रकल्क अभिष्यन्द में नेत्रों पर बांधा जाता है ।

२२५. जिङ्गिणी[1] ।

Odina wodier.	(हिं०) जिगन, कैमल, (बं०) जीवल, (म०, गु०) मुई, मोई, मोक ।
A large deciduous tree.	महान् वृक्ष, पत्र पतनशील ।
Bark and gum astringent.	त्वक् तथा निर्यास ग्राही ।

जिंगणी किंकिणी किल्ली मोदकी गुडमञ्जरी ।
जातसारा च कलुखो मञ्जरी काममञ्जरी[2] ॥७७७॥
पार्वतेयी सुनिर्यासा तथा मदनमञ्जरी ।
मोदकी मधुरा सोष्णा कषाया योनिशोधनी ॥७७८॥
कटुपाका जयेद्वातव्रणातिसारहृद्रुजम् ।
निर्यासोऽस्या हरेन्नस्याद्रुजं स्कन्धांसबाहुजाम् ॥७७९॥

निर्यासोऽस्या०—इस का निर्यास (गोंद वा सार) नस्य देने से कन्धे, अंस और बाहू के शूल को हरता है ॥७७७–९॥

२२६. शल्लकी[3] ।

Boswellia serrata.	(हिं०) सलई, (बं०) शलई, (म०) धूपशलई, (गु०) सलई, (पा०) लोबान (निर्यास) ।
A deciduous tree.	साधारण वृक्ष, पत्र पतनशील ।
Gum-resin used in making ointments.	निर्यास (लोबान) मल्हमों के बनाने में उपयोगी ।

---

१. **जिंगणी** के वृक्ष प्राय: ब्रह्मा वा लंका देश में तथा दक्षिण के पर्वतों पर मिलते हैं । **पत्र** पक्षाकार, संयुक्त, पत्तियां लम्बी, बाणाकार, नोकदार; **पुष्प** क्षुद्र, रक्त, पीत; **फल** बदरीतुल्य । **त्वक्** ग्राही होने के कारण अतिसार में तथा कुष्ठादि त्वग्रोगों के धावन में लाभकारी है । वृक्ष पर एक निर्यास (गोंद) आता है । यह भी ग्राही है । २. द—कालमञ्जरी ।

३. **शल्लकी** के वृक्ष प्राय: भारत के स पर्वतों पर मिलते हैं । शाखाओं का झुंड वृक्ष के शिखर पर छत्रवत् फैला रहता है, **पत्र** निम्ब के पत्रों के तुल्य होते हैं । शल्लकी पर एक **निर्यास** (गोंद—Gum resin) लगता है, जो कुन्दरु, सलई वा लोबान के नाम से प्रसिद्ध है । लोबान प्राय: धूपों तथा मल्हमों में काम आता है, जो व्रण को शुद्ध कर के भर देता है । कर्पूर तथा लोबान को परस्पर मर्दन करने से एक लेप बन जाता है, जो प्लेग की ग्रन्थि पर वा अन्य ग्रन्थियों पर लगाने से उन्हें लीन कर देता है । लोबान तैल में रालवत् घुल जाता है । शल्लकी का मृदु, पिच्छल, दुर्गन्धि स्राव **गन्धबेरोज़ा है** । यह सरल वृक्ष से भी निकलता है,

शल्लकी सुरभी मोचा सुगन्धाह्लादिनी हृद्या ।
सुस्रावा सुवहा विन्ध्या महेरणाऽश्वमूत्रिका ॥७८०॥
गन्धकारी गन्धवीरा सल्लकी वनकर्णिका ।
गजभक्षा कुन्दरुकी सुतिक्तातिरसा रसा ॥७८१॥

पर्याय—शल्लकी (क्षुद्र शालतुल्य वृक्ष), सुरभी (सुगन्धित निर्यास वाला वृक्ष), आह्लादिनी (सुगन्ध के कारण हर्षजनक), हृद्या (आह्लादक), सुस्रावा (सुगन्धित निर्यास वाली), सुहवा (सुगन्धित), गन्धकारी (गन्धजनक), गन्धवीरा (गन्धाढ्य), गजभक्षा (गज का खाद्य पदार्थ-पत्र) ॥७८०-८१॥

शल्लकी तुवरा शीता क्रमेण रसवीर्ययोः ।
बलासपित्तपक्वातिसारव्रणविशोधनी ।
तत्पुष्पं कफवातार्शःकुष्ठारोचकनाशनम् ॥७८२॥

२२७. इङ्गुदः[1] ।

Balanites Roxburghi.	(हिं०) हिंगोटा, दलेल, (बं०) हिंगोट.
A small thorny tree.	(म०) हिगनबेट, (गु०) हिंगोरियों ।
Pungent, bitter, purgative and anthelmintic.	क्षुद्र कण्टकी वृक्ष ।
	कटु, तिक्त, रेचक, कृमिनाशक ।

इङ्गुदो भल्लकस्तिक्तमज्जः स्यात्पूतिकर्णिकः ।
कंवकीरोऽङ्गारवृक्षो बिन्दुको व्यवहारिकः ॥७८३॥
तिक्तकः कण्टकीवृक्षः कण्टकस्तापसद्रुमः ।
इंगुदस्तिक्तकः सोष्णः कटुपाको नियच्छति ॥७८४॥
कृमिकुष्ठविषश्वित्रशूलभूतग्रहव्रणान् ।
तत्फलं मधुरं तिक्तं स्निग्धोष्णं कफवातनुत् ॥७८५॥

और इसे प्रायः सरलस्राव कहते हैं । इस के स्रवण (Distillation) से प्रसिद्ध तारपीन का तैल (Turpentine Oil) निकल सकता है ।

१. इंगुद (वा इंगुदी) के कण्टकी वृक्ष गुजरात, अहमदाबाद, राजपूतानादि मरुस्थलों में अधिक मिलते हैं । **पत्र** प्रायः बब्बूलवत् क्षुद्र; **कण्टक** ३–४ अंगुल लम्बे और तीक्ष्ण; **फल** गोल, और लम्बा, छोटे आम के आकार का, परन्तु अत्यन्त कठोर । उस की कठोरता के कारण उसे माली लोग कमान (धनुष) में चढ़ा कर पक्षियों पर छोड़ते हैं, जैसा कि पंजाब में दलेल । फलमज्जा, रेचक, तिक्त और कृमिनाशक है । इंगुदी को श्री शालिग्राम ने गोंदी कहा है, जो सर्वथा अशुद्ध है । गोंदी कण्टकी वृक्ष नहीं और न ही कृमिनाशक है । इंगुदी फल से एक तैल निकलता है, जो अच्छा केशवर्धक है, उस के गुण यह हैं, "स्निग्धं मधुरं पित्तघ्नं शीतलं बल्यं कान्तिदं श्लेष्मलं केशवर्द्धनं च ।" राजनिघण्टु । गोंदी से कोई तैल प्राप्त नहीं होता ।

२२८. कटभी[1] ।

Careya arborea.

A large deciduous tree.

Fruit astringent, digestive and used in pickles.

(हिं०) कुम्भी, करही, वाकवं, (म०) वाकुम्भा, (गु०) वापुंगा ।

महान् वृक्ष, पत्र पतनशील ।

फल ग्राही, पाचक, अचार बनाने में उपयोगी ।

महाश्वेता श्वेतधामा श्वेतस्यन्दापराजिता ।
कटभी किणिही ज्ञेया लोहिनी गिरिकर्णिका ॥७८६॥
शिरीषपत्रा कालिन्दी विषघ्नी शतपद्यपि ।
श्वेतपुष्पा वाजिखुरा श्वेतपाटिली पिण्डिका ।
अपराऽव्यक्तगन्धाह्वा नीलपुष्पी गवादिनी ॥७८७॥
किणही तुवरा तीक्ष्णा कटुका विनियच्छति ।
दोषत्रयविषश्वित्रव्रणग्रहशिरोगदान् ॥७८८॥

२२९. कटम्भरः[2] ।

क्षुद्रश्वेता चोरशुंठी श्वेता पाटली शौण्डिका ।
मधुरेणुः श्वेतपुष्पाः संवीतस्तृणशौण्डिका ।
बहुरेणुः सुनामा च कैडर्योऽथ करम्भकः ॥७८९॥
कटम्भरः कटुः सोष्णो नाड़ीव्रणविशोधकः ।
निहन्ति कफकुष्ठास्रमेदोमेहविषक्रमीन् ॥७९०॥

---

१. **कटभी** शब्द ज्योतिष्मती, अपराजितादि द्रव्यों का पर्यायरूप शास्त्रों में प्रायः मिलता है, परन्तु यहां एक वृक्ष से अभिप्राय लिया गया है, जिस के पुष्प अपराजितावत् श्वेत, नीलादि वर्णों के और पत्र भी तद्वत् होते हैं। उसे फल अण्डाकार और मांसल लगता है, जिस की आकृति एरण्ड खरबूजा (पपीता—Papaye) के तुल्य होती है। फल तनिक कषाय होता है और गुजरात काठियावाड़ में अचार डालने के काम आता है। त्वक् शीत काल में रक्ताभ हो जाती है। इस का क्काथ सर्पविष में पिलाया जाता है और दंश पर उस का लेप भी करते हैं। सिन्ध में पुष्पों का प्रयोग स्त्रियें प्रसवकाल में बलाधानार्थ करती हैं। पत्रों की पुलटिस विषाक्त व्रणों पर लाभकारी है।

२. **कटम्भर** कटभी का ही भेद प्रतीत होता है, परन्तु यह (कटंभर) शब्द प्रसारणी, दन्ती, मूर्वादि अनेक अर्थों में व्यवहार होता है, क्योंकि कटभी को महाश्वेता और इसे क्षुद्र श्वेता कहा गया है।

२३०. मोक्षकः[1] ।

Schrebera swietenioides.	(हिं०) मोषा, मोखा, (बं०) घुण्टा पारूल, (म०) मोखा, (गु०) मखरो ।
A large deciduous tree.	महान् वृक्ष, पत्र पतनशील ।
Fruit digestive and laxative.	फल पाचक, मृदुरेचक ।

मुष्कको मोक्षकः क्षीरी शिखरी क्षीरपादपः ।
मूषीको[2] मुञ्चको घण्टापाटलिः क्षुद्रपाटलिः ।
गोलीढो मुञ्चको मुष्टिः क्षारश्रेष्ठो विषापहा ॥७६१॥

पर्याय—क्षीरी (क्षीरमय तरु), शिखरी (अग्निकारी), मुष्टि (फल मुष्टि प्रमाण लगते हैं जिस को), क्षारश्रेष्ठ (उत्तम क्षार वृक्ष) ॥७६१॥

मोक्षकः कटुकस्तिक्तो ग्राह्युष्णः कफपित्तहा ।
विषमेदोगुल्मकण्डूवस्तिरुक्कृमिशुक्रजित् ।
तस्य पुष्पं कफं पित्तं कुष्ठं वातं नियच्छति[3] ॥७६२॥
मोक्षकं फलमतीव दीपनं गुल्ममेहकफपाण्डुशुक्रजित् ।
भेदि रोचकं गुदांकुरान् जयेदश्मरीजठररोगनाशनम् ॥७६३॥

मोक्षकं फलं—मोखे का फल । **भेदि**—रेचक । **गुदांकुरान्**—अर्श के मस्सों को ॥ ७६२–६३ ॥

२३१. निम्बः ।

Melia azadirachta. The Margosa or Neem Plant.	(हिं०) नीम, (बं०) निम् गाछ, (म०) कडू निंब, (गु०) लिंबड़ो ।
A well-known shady tree.	सुप्रसिद्ध छायावान् वृक्ष ।
Bark a good febrifuge.	त्वक् ज्वरघ्न;
Leaves and oil germicide, antiseptic and useful in skin-diseases.	पत्र तथा तैल कृमिघ्न, कृमिरोधक; त्वग्रोगोपयोगी,
Flowers stomachic. Toddy stimulant and tonic. Gum demulcent and uterine tonic	पुष्प अग्निदीपक; ताड़ी (रस) उष्ण, रसायन; निर्यास पिच्छिल तथा गर्भाशयबलकर ।

---

१. मोक्षक के बड़े २ वृक्ष मध्य और दक्षिण प्रान्तों में बहुत मिलते हैं। वृक्षाकृति बहुत कुछ पाटला से मिलती है, अतः इसे घंटापाटली कहा गया है। **पुष्प** घंटाकार (Bell-shaped) होते हैं। वृक्ष प्रायः नम रहता है। केवल बसन्त में पत्र और पुष्प लगते हैं। मुष्कक श्वेत और कृष्ण दो प्रकार का होता है, गुण में दोनों समान हैं। फल अतीव दीपन है, और गोंद वीर्यवर्धक है।

२. यू—मूर्खकः । ३. यू—कुष्ठं वाति नियच्छति ।

निम्बो[1] नियमनोऽरिष्टः पिचुमर्दः सुतिक्तकः।
सुभद्रः सर्वतोभद्रः प्रभद्रः पारिभद्रकः॥
कृमिघ्नश्छर्दनो नेता यवनेष्टः शुकप्रियः॥९६४॥

१. निम्ब का सुन्दर छायावान् और अत्युपयोगी वृक्ष भारत के सब भागों में प्रचुर मिलता है। उसकी आकृति और गुण प्रायः सब लोग भली भान्ति जानते हैं। काष्ठ को छोड़कर अन्य सब भाग काम आते हैं, जिनका वर्णन श्रीकैयदेव ने ऊपर श्लोकों में कर दिया है। **पत्रों** का क्वाथ व्रणशोधक और कृमिघ्न होने से प्रायः व्रणों को धोने, योनि तथा कर्ण प्रक्षालन करने आदि में काम आता है। क्वाथ का पीना ज्वर और अरुचि में लाभकारी है, बद्ध यकृत् से पित्त को निकालता है; उसकी अधिक मात्रा वामक है। मृदु पत्रों को कल्क करके दुष्ट व्रणों एवं शीतला की पिड़िकाओं पर लेप करना गुणकारी है। पैत्तिक शिरःशूल में यह लेप गुणप्रद है। पत्रों को घोट छान कर पीना दुष्ट रक्त, रक्तार्श, कुष्ठादि में लाभकारी है। पत्रों के कल्क को सर्षपतैल में जलाने से कर्णशूल वा पूतिकर्णनाशक तैल बन जाता है। इसके ५–१० बिन्दु कान में छोड़ने से शूल तथा स्राव बन्द हो जाता है। पत्रक्वाथ से कर्ण को स्वेद देना भी लाभकारी है। **निम्बवल्कल** (मूलज वा काण्डज–पूर्व गुणोत्तर) का क्वाथ (१ छटांग अष्टगुण जल में) विषमज्वर के सब प्रकारों में लाभकारी है। विशेषतः जीर्ण ज्वरों में जहां यकृत् और प्लीहा की वृद्धि भी हो। इसका चूर्ण भी दे सकते हैं, परन्तु मात्रा अधिक होने से खाना कठिन है। इसका सत्त्व मद्यसार (Alcohol) में प्राप्त करके टिंकचर (Tincture) भी बन सकता है, जिसे निम्बारिष्ट कह सकते हैं। निम्ब पञ्चाङ्ग लेकर गुड़, धातकीपुष्प, मधु, जलादि से मिलाकर सुन्दर ज्वरघ्न अतितिक्त निम्बारिष्ट बना सकते हैं। **निम्बपुष्प** के चूर्ण वा फाण्ड (Infusion) मन्दाग्नि और अरुचि में लाभकारी है। अपक्व फलों को खण्डित करके शुष्क करने पर उनसे वल्कलवत् क्वाथ बना सकते हैं, जो त्वग्रोगों में रक्तशुद्ध्यर्थ दिया जा सकता है। **निम्बबीज** वा **मज्जा** के निष्पीड़न से **निम्बतैल** प्राप्त होता है, जिसमें निम्ब का विशिष्ट गन्ध पाया जाता है। यह तैल एक अच्छा कृमिघ्न द्रव्य है। उसे दुष्ट व्रणों पर अकेला वा सर्षपतैल से मिलाकर लगा सकते हैं। उससे साबून और मल्हम बनते हैं। यह निम्बतैल (Margosa or Nim oil) ५–२० बिन्दु की मात्रा (जो शनैः २ बढ़ानी चाहिए) दिन में दो तीन वार दुग्ध वा जल में मिलाकर पिलाने से जीर्ण ज्वर, कुष्ठ, कण्डू, श्वित्र, उपदंशिक व्रण (Syphilitic Sores), वातरक्त आदि दूर हो जाते हैं। शुष्क पत्र गन्धक और लोबान की धूनी मशकादि क्षुद्र कीटों को भगा देती है। नीम के शुष्क पत्र पुस्तकों और वस्त्रों में रखने से उन्हें कीट नहीं लगता। निम्ब और पटोल का शाक ज्वर, कुष्ठादि में लाभकारी है। कुष्ठ में निम्ब का प्रयोग स्नान, पान, अवगाहनादि रूपों में करने से बड़ा लाभ पहुंचता है। निम्ब उदरकृमि, रक्तपित्त, रक्तार्श, कामला,

पर्याय—नियमन (रोगनियन्ता), सुतिक्तक (अति कड़वा), सुभद्र (बहुत लाभकारी), सर्वतोभद्र (सब प्रकार से वा सब भागों में श्रेष्ठ) प्रभद्र (सुभद्र), पारिभद्रक (परित: सर्वतोभद्र:), छर्दन (वामक-Emetic), नेता(नियन्ता), ॥७६४॥

निम्बस्तिक्तः कटुः पाके लघुः शीतोऽग्निवातकृत् ।

वातरक्तादि अनेक रोगों में लाभपूर्वक दे सकते हैं। इन्द्रलुप्त में निम्बतैल की नस्य हितकर है । **निम्बनिर्यास** (नीम की गोन्द—Neem Gum) पिच्छिल, वातरोग और प्रतिश्याय में लाभकारी है । प्रसवकाल में स्त्रियें उसे गर्भाशय को शक्ति देने के लिए प्रयोग करती हैं। निम्ब की दातन दांतों के लिए बहुत लाभकारी है। कभी २ यह देखा गया है, कि नीम के वृक्ष से स्वभावत: एक मधुर रस वा स्राव (Sap) निकलने लगता है,जो ३–४ सप्ताह तक रहता है और २४ घंटे में २–३ बोतल रस प्राप्त हो जाता है। यह भूमि में रखने से मद्य बन जाता है, इस का नाम ताड़ी (Toddy) वा नीम की शराब है । यह रस ताज़ा मधुर, दुग्धवत् श्वेत, परन्तु तनिक पीत होता है। उस में से निम्बवत् गन्ध भी आता है। यह मधुर रस वा ताड़ी मन्दाग्नि, यक्ष्मा, ज्वर, कुष्ठ और पामादि त्वग्रोगों में लाभकारी है। यह बलकर, शीत और रसायन भी है, परन्तु यह दुर्लभ होने से अधिक प्रसिद्ध नहीं। यह जलाढ्य देशों के निम्ब वृक्षों से कहीं २ निकलता है। एक वृक्ष से ३–४ वर्ष के पश्चात् इस की उत्पत्ति होती है और उस वृक्ष की आयु में केवल ४–५ वार निकल सकता है। इस रस के निकलने का स्थान स्तंभ वा स्थूल शाखा वा मूल है। उन पर जो छिद्र हों, उन से यह बह निकलता है, परन्तु केवल चार पांच छिद्रों से ही एक वार निकलता है । कहीं २ निम्बतरु पर कृत्रिम छिद्र कर के यह रस निकाला जाता है, परन्तु सब जगह यह सम्भव नहीं। मद्रास नगर के माईलापुर विभाग में एक स्थूल पुरातन निम्बवृक्ष था, जो अब २०–२५ वर्ष से मर चुका है। तीसरे चौथे वर्ष के पश्चात् जब स्राव निकलने का समय आता था, तो वृक्ष से ३–४ दिन तक गड़गड़ादि शब्द निकला करता था, जिसे सुन कर लोग जान लेते थे, कि अब रस निकलेगा। उस वृक्ष का अधिपति (फैज़ अहमद खां) इतस्तत: सूचना भेज कर तद्रसेच्छुक लोगों को एकत्रित करके रस निकाल कर उन्हें दे देता था। मूल्य प्राय: ॥) वा १) प्रति बोतल लेता था। यह अमृत रूपी रस रोगी पीकर स्वस्थ हो जाते थे। निम्बपञ्चक वा पञ्चनिम्ब चूर्ण (पत्रमूलत्वक्-पुष्पफल) कुष्ठ, कामला, दुष्टव्रणादि में अत्युपयोगी है । प्राचीन काल में लोग ज्वरादिरोगनिवृत्त्यर्थ निम्बतरु घरों में वा सड़कों पर वा ग्राम के इतस्तत: लगाते थे, और उस का प्रत्यक्ष फल यह होता था, कि उन्हें विषम ज्वर (Malaria) न सताता था, परन्तु अब इधर ध्यान नहीं दिया जाता। बड़े नगरों में लोगों को भूमितल रहने को भी नहीं मिलता, वृक्ष घरों में कहां लगें । कमेटियों का इधर ध्यान ही नहीं, कि सड़कों पर नीम लगावें।

ग्राही हृद्यो जयेत्पित्तकफमेहज्वरकृमीन् ॥७९५॥
कुष्ठकासारुचिहृल्लासश्वयथुव्रणान् ।
ग्राहि प्रवालं निम्बस्य रक्तपित्तकफकृमीन् ॥७९६॥
कुष्ठघ्नं वातजननं नेत्ररोगान् विनाशयेत् ।
तद्वत्पत्राणि निम्बस्य व्रणघ्नानि विशेषतः ॥७९७॥
शलाका निम्बपत्रस्य कासश्वासविनाशनी ।
कृमिघ्ना तु वरिष्ठा स्यात्कुष्ठज्वरविनाशनी ॥७९८॥
चक्षुष्यं निम्बपुष्पं च कृमिपित्तविषप्रणुत् ।
वातलं कटुपाकं स्यात्सर्वारोचकनाशनम् ॥७९९॥
फलं तिक्तरसं पाके कटुकं भेदनं लघु ।
अरूक्षमुष्णं कुष्ठघ्नं गुल्मार्शःकृमिमेहनुत् ॥८००॥
निम्बस्य पक्वं मधुरं सतिक्तं स्निग्धं फलं शोणितपित्तरोगे ।
कफे प्रशस्तं नयनामयघ्नं क्षतक्षयघ्नं गुरु पिच्छलं च ।
निम्बबीजस्य मज्जा च कृमिकुष्ठविशोधनः ॥८०१॥

प्रवालं—नव पल्लव, मृदु पत्र । **शलाका**—नीम के पत्ते की डण्डी । **कृमिघ्ना वरिष्ठा**-श्रेष्ठ कृमिनाशक (Best antiseptic and germicide) । **मज्जा**—नीमबीज की गिरी ॥७९५–८०१॥

२३२. महानिम्बः[1] ।

Melia azadarach. The Persian Lilac. A well-known Neem-like tree. Bitter, anthelmintic, febrifuge, alterative, diuretic, used in skin-diseases.	(हिं०) धरेक, बकायन, महानीम; (बं०) घोड़ा निम, महानिम; (म०) बकाणी, निंब, कडुनिंब, (गु०) बकान्य । निम्बतुल्य प्रसिद्ध वृक्ष । तिक्त, कृमिनाशक, ज्वरघ्न, रसायन, मूत्रल, त्वग्रोगशामक ।

---

१. **महानिम्ब** निम्बवत् प्रसिद्ध वृक्ष है, परन्तु दक्षिण देश में यह कम मिलता है और पञ्जाब में अत्यधिक । इस के त्वक्, पत्र, फल, तैलादि के गुण निम्बवत् ही समझने चाहिएं, परन्तु वैद्य इसे औषध में व्यवहार कम करते हैं, जिस के दो कारण हैं, (१) यह विदेशी वृक्ष है, जो यूनानी हकीम भारत में लाए थे । इस का वर्णन चरकादि प्राचीन ग्रन्थों में नहीं मिलता, परन्तु उत्तर कालीन ग्रन्थों यथा भावप्रकाशादि में यह वर्णित है, (२) यह विषैला क्षुप है । यदि इस के पत्रादि विशेषतः फल का अधिक प्रयोग किया जावे, तो पूर्व निद्रा (Narcotism), पुनः मृत्यु हो जाती है । ८–१० बीज वा फल खा लेने से मृत्यु हो सकती है, परन्तु अल्प मात्रा में खाना वा बहिरुपयोग (External use) हानिकर

अपरस्तु महानिम्बो गिरिकः शुकमालकः ।
रोमकोऽरम्पको द्रेको निम्बको विषमुष्टिकः ।
कार्मुको मालकः क्षीरः शाकशालाक्षिपीलुकः ॥८०२॥

पर्याय—महानिम्ब (बड़ी नीम), गिरिक (पार्वतीय), शुकमालक (शुकों की पंक्तियां रहती हैं जिस पर), विषमुष्टिक (फल विषैले हैं जिस के), कार्मुक (सुपारीवत् फल हैं जिस के), चीर (दुग्धमय फल वाला), अक्षिपीलुक (अक्षिगोलकवत् फल हैं जिस के) ॥८०२॥

महानिम्बो हिमो रूक्षो ग्राही तिक्तः कषायकः ।
निहन्ति कफपित्तास्रकुष्ठकोठवमीकृमीन् ॥८०३॥

२३३-४. कुटजेन्द्रयवौ[1] ।

Holarrhena antidysenterica.	(हिं०) कुड़ा, कौरैया, (बं०) कुडचि गाछ, (म०) कुड़ा, (गु०) कड़ी ।
	बीज—इन्द्रयवः, कुटजबीजं, (हिं०) इन्द्र जौ ।
A small graceful tree.	क्षुद्र सुन्दर वृक्ष ।
Bark and seeds astringent, useful in dysentry, bleeding piles, etc.	त्वक् तथा बीज ग्राही, प्रवाहिका रक्तार्श आदि में लाभकारी ।

नहीं । इस के पत्रों के क्वाथ से व्रण, कर्णादि धो सकते हैं । इस का लेप शिरोऽर्त्तिनाशक है । अमरीका में पत्रों का क्वाथ योषापस्मार (Hysteria) में देते हैं । **वल्कलक्वाथ** एक एक तोला दिन में २-३ वार सप्ताह भर देने से बच्चों के पेट से कीड़े निकल आते हैं । अन्त में कोई रेचन देना चाहिए । महानिम्बतैल को तुवरक तैल (अंक १०२) से मिला कर कुष्ठ में दे सकते हैं । फलक्वाथ भी लाभकारी है । कहीं २ महानिम्ब से भी मधुर रस (Sweet sap) वा ताड़ी निकल आता है । महानिम्ब को निम्ब के स्थान पर प्रयोग कर सकते हैं, परन्तु ध्यान से ।

१. **कुटज** का सुन्दर वृक्ष हिमालय, विन्ध्या तथा दक्षिण के पर्वतों पर सर्वत्र मिल जाता है । मैदानों में बहुत कम होता है, परन्तु वंगदेश में प्रचुरता से मिलता है । वृक्ष बहुत ऊंचा नहीं जाता । **पत्र** धाराकदम्ब के पत्रों के तुल्याकार और स्निग्ध, नोकदार; **पुष्प** पाण्डु, अनुज्ज्वल, शुभ्र, मिलितदल, २-३ अंगुल परिमाण, अल्प मधुरगन्धयुक्त और वर्षाकाल में होने वाले; **फली** (शिम्बी) नल्याकार एक फुट लम्बी, व्यास ¼ इंच वा कम, सरल, स्निग्ध, श्वेत बिन्दुलाञ्छित; पक्व शुष्क फली को तोड़ने से यवसदृश परन्तु दीर्घ भासुर वा भूरे रंग के बीज निकल आते हैं, जो इन्द्रजौ के नाम से प्रसिद्ध हैं । औषध में **कुटजत्वक्** (हिं०—कुड़ासक, कुड़ा छाल) और कुटजबीज (इन्द्रयव) काम आते हैं । दोनों अतिसार और प्रवाहिका में बहुत उपयोगी हैं, अतः कुटज के वानस्पतिक नाम Antidysenterica

कुटजः वत्सकः काही कलिङ्गो गिरिमल्लिका।
गुच्छको मल्लिकापुष्पो वृक्षको वरतिक्तकः ॥८०४॥
शक्राऽन्या वंशकुटजा कुटजी नीलयष्टिका।
तयोः फलं भद्रयवः शक्राह्वययवाः स्मृतः।
कालिङ्गकाः कौटजा नियवभद्रयवेन्द्रकाः ॥८०५॥

पर्याय—कुटज (कूटे शृंगे शिखरे पर्वते वा जायते इति कुटजः), गिरिमल्लिका (पहाड़ी चम्बेली सुगन्धित पुष्पों के कारण), गुच्छक (सुगन्धित पुष्पों के गुच्छों वाला वृक्ष), मल्लिकापुष्प (चंबेली जैसे पुष्प हैं जिस के), वृक्षक (साधारण वा

(Dysentry—पेचिश का शत्रु) यथार्थ भाव से दिया है। डाक्टरों ने कुटजत्वक् का क्वाथ व्यवहार कर के यह निश्चय किया है, कि जहां अन्य औषध प्रवाहिका में काम न करें, वहां यह सफल हो जाता है। कुटजत्वक् के क्वाथ में कभी २ थोड़ी सी अहिफेन वा उस का टिंकचर (Tr. opii) मिला देते हैं, परन्तु क्वाथ अकेला ही पर्याप्त है। क्वाथमात्रा २ तोले ६–६ घंटे बाद। कुटजत्वक् स्वाद में अत्यन्त तिक्त है, अतः उस का प्रयोग कुछ अरुचिकर है, परन्तु यह बाधक नहीं। यह विषूचिका की वान्ति को बन्द कर देती है और दस्त भी रोक देती है। कुटजत्वक् ज्वर, रक्तपित्त, रक्तार्श, अश्मरी, वृक्कशूल, कृमि, श्वास, यक्ष्मादि रोगों में भी लाभकारी है। उस का तिक्त रस उस के प्रयोग में बहुत बाधाकारक गुण है। कहीं २ कुटजमूलत्वक् भी व्यवहार होता है। कुटजत्वक् के क्वाथ को घन करने से उस की रसक्रिया प्राप्त होती है, यह (मात्रा २–४ रक्ति) बहुत उपयोगी है। उस में अहिफेन भी मिला सकते हैं। आयुर्वैदिक ग्रन्थों में कुटज के अनेक योग वर्णित हैं, यथा कुटजावलेह, कुटजपुटपाक, कुटजरसक्रिया (Solid extract), कुटजादि क्वाथ (भाव०), कुटजादि घृत, कुटजारिष्ट, कुटजतैल, कुटजाष्टकादि। **कुटजबीज** (इन्द्रयव) तिक्त मधुर होते हैं और प्रवाहिका, अतिसारादि में उनका क्वाथ वा चूर्ण लाभकारी है, उनमें एक प्रकार का तैल होता है, अतः उन्हें कहीं २ भून (Roast) कर प्रयोग करते हैं। बीजों की अपेक्षा त्वक् बहुत उपयोगी है। **कुटजभेद**—चरक कल्पस्थान के पञ्चम अध्याय (वत्सककल्प) में आचार्य दृढ़बल ने स्त्रीपुरुष भेद से कुटज के दो प्रकार बताए हैं। "बृहत्फलः श्वेतपुष्पः स्निग्धपत्रः पुमान्भवेत्। श्यामा चारुणपुष्पी स्त्री फलवृन्तैस्तथाणुभिः॥ (च० कल्प० अ० ५) अन्य स्थलों में सितासित (श्वेत कृष्ण) भेद से दो प्रकार वर्णित हैं। सित कुटज पुरुष समझें और असित स्त्री। उत्तर भारत में प्रायः सित कुटज मिलता है और दक्षिण में तथा महाराष्ट्र में असित कुटज। सित कुटज के बीज तिक्त होते हैं और असित के मधुर। तिक्त बीज गुणोत्तर समझें। बाज़ार में प्रायः मधुर बीज (मीठे इन्द्रजौ) मिलते हैं। कुटज को वनस्पतिविशारदों (Botanists) ने भी दो प्रकार का माना है, एक का नाम ऊपर दिया गया है, दूसरे का नाम Wrightia tinctoria (असित कुटज-मीठा इन्द्रजौ) है।

छोटा वृक्ष), वरतिक्त (बहुत कड़वा), शक्रा (इन्द्र नाम वाला), वंशकुटज (वांस जैसे जौ लगते हैं जिस को) । **फल वा बीज के नाम**—भद्रयव (श्रेष्ठ यव), शक्राह्वयव (इन्द्र नाम वाले जौ–इन्द्र जौ), कलिङ्गका (यव), कौटज (कुटज के बीज) ॥ ८०४–५ ॥

कुटजः शीतलो रूक्षः कषायो दीपनः कटुः ।
कफपित्तास्रतृट्कुष्ठजन्त्वामार्शोऽतिसारहा ॥८०६॥
तत्पुष्पं शीतलं तिक्तं कषायं लघु दीपनम् ।
वातलं कफपित्तास्रकुष्ठातिसारजन्तुजित् ॥८०७॥
फलं तिक्तरसं ग्राहि कट्वनुष्णं त्रिदोषनुत् ।
दीपनं पाचनं कुष्ठज्वरवीसर्पशूलनुत् ।
गुदकीलकवातास्रश्रमलोहितनाशनम् ॥८०८॥

गुदकीलक—अर्शः वा ववासीर के मस्से । **लोहित**—रक्तपित्त ॥८०६–८॥

२३९. पारिभद्रः[1] ।

Erythrina indica.	(हिं०) पांगरा, फरहद,(बं०) पालते मादार,(म०)पानसे,(गु०, पाण्डेरवो
A large deciduous tree.	बृहत् वृक्ष, पत्र पतनशील ।
Febrifuge, antiseptic, anthelmintic, antidote to strychnine.	ज्वरघ्न, कृमिघ्न, उदरकृमिहर, विषमुष्टिप्रतिरोधक ।

निम्बद्रुमो रक्तपुष्पः प्रभद्रः पारिभद्रकः ।
मन्दारकः परिजातः कराटकी कराटकिंशुकः ॥८०९॥

पर्याय—निम्बद्रुम (निम्बवत् कृमिघ्न), रक्तपुष्प (लाल फूलों वाला), प्रभद्र (बहुत श्रेष्ठ), पारिभद्रक (सर्वतो भद्रः), कराटकिंशुक (कांटेदार और शुक तुराडवत् रक्त पुष्पों वाला) ॥८०९॥

---

१. **पारिभद्र** प्रायः भारत में सर्वत्र परन्तु पंजाब में कम मिलता है । शास्त्रों में उसे निम्बतरु कहा गया है, परन्तु निम्ब और इसकी आकृति में कोई सादृश्य नहीं । वृक्ष ४०–५० फुट ऊंचा जाता है । शाखाओं पर तनु स्थूल कराटक होते हैं; **पत्र** बड़े और कोमल । शिशिर काल में वे झड़ जाते हैं और वृक्ष नग्न रह जाता है । **पुष्प** वसन्त में आते हैं, देखने में बड़े सुन्दर, रक्त वा गुलाबी और कहीं २ श्वेत । पुष्पमूल में एक मधुर तरल रहता है, जो पुष्प को उलटने से मुख में डालकर चूस सकते हैं । **फली** १०–१२अंगुल लम्बी, १–२ अंगुल चौड़ी, भूरी वा कृष्ण, **बीज** ५–८ एक फली में और मूंगफली के बीजों के समाकार । मद्रास में पारिभद्र के पत्रों का रस तथा स्वेद कर्णशूल में व्यवहार करते हैं । पत्र को चबाने से दन्तशूल दूर हो जाता है । पत्रस्वरस उदरकृमि और उदरशूल में लाभकारी है । **त्वक्** का क्वाथ ज्वरघ्न और पित्तशमक है । पत्रों की पुलटिस व्रणशोथ पर बांधने से व्रण लीन हो जाता है ।

पारिभद्रोऽनिलश्लेष्मशोफमेहकृमीन् हरेत् ।
तत्पुष्पं पित्तरोगघ्नं कर्णव्याधिविनाशनम् ॥८१०॥

२३६. मदनः[1] ।

Randia dumentorum.	(हिं०) मैनफल, राड़ा, करहर (वं०) मयनाकांटार गाछ, (म०) गेल, (गु०) मिंढल ।
The Emetic nut.	
A thorny shrub and tree.	कांटेदार झाड़ी वा क्षुद्र वृक्ष ।
Emetic and aperient.	वामक तथा रेचक ।

मदनो गालनो गालः पिण्डी पिण्डीतकः फलम् ।
शल्यकः श्वसनो राठश्छर्दनो विषपुष्पकः ।
करहाटो मरुबको मातुलो बीजपुष्पकः ॥८११॥

पर्याय—मदन (मद करने वाला), गालन (कफ को पिघलाकर निकालने वाला), पिण्डीतक (फलमज्जा पिण्डाकार है जिस की), फल (मदनफल), शल्यक

---

१. **मदन** की कांटेदार झाड़ी वा क्षुद्र वृक्ष जमूं से लेकर सिक्कम तक हिमालय के अधस्तट पर तथा कूचबिहार (बंगाल) और दक्षिण वा महाराष्ट्र के पर्वतों पर बहुत मिलता है । **पत्र** अपामार्ग के तुल्य, किनारा सरल और लहरदार, पत्र कहीं २ गोल; शाखाओं पर लम्बे, तीक्ष्ण, सीधे, अनेक कांटे; **पुष्प** क्षुद्र, हरित, पीत वा श्वेताभ; **फल** नाशपाती के आकार का, गोल, पीताभ; **फलमांस** (गूदा) मधुर, तिक्त; गूदे के हटाने पर अखरोट जैसा गोला प्राप्त होता है, जिस के तोड़ने पर कृष्णवर्ण बीजों का पिण्ड सा निकल आता है, जिस की आकृति वृहदेला के बीजपिण्ड के तुल्य समझें । एक गोले से चार पिण्ड निकलते हैं, इन पिण्डों के कारण ही मदन को पिण्डीतक कहा गया है । कूचबिहार में लोग मदन फल के मांस को खण्ड २ कर के २–३ दिन धूप में सुखा कर खा जाते हैं । आर्द्र फल खाने पर वान्ति हो जाती है । **पुष्प** वामक और विषैला है । वृक्षत्वक् ग्राही है । फल सिरके में पीस कर नाभि पर लेप करने से उदरशूल (Colic) बन्द हो जाता है । फलमज्जा रेचक, उदरकृमिनाशक और पित्तशमक है, एतदार्थ मात्रा १-२ माषे पर्याप्त है, परन्तु वमनार्थ ३ माषे वा अधिक, जिसको अन्य उत्क्लेशकारक द्रव्यों वा मधु से मिला कर दिया जाता है । इस का क्वाथ, स्वरसादि भी दे सकते हैं । चरक कल्पस्थान प्रथम अध्याय **मदनकल्प** पर है, जिस में मदन का संचयप्रकार, प्रयोगविधि, आदि स्पष्ट वर्णित है । वहां मदन के १३३ प्रयोग बताए गए हैं । मदन श्वास, कासादि में वमनार्थ दिया जाता है, और डाक्टरों के (Ipecacuahna) के समान है । मदन प्रवाहिका में भी लाभकारी है । उस का टिंक्चर (Tincture) भी बन सकता है ।

(कांटेदार), श्वसन ('निर्जले देशेऽपि श्वसिति जीवति'—वनौषधिदर्पण), छर्दन (छर्दिकारक, वामक), विषपुष्पक (विषैले फूलों वाला) ॥८११॥

मदनो मधुरस्तिक्तो वीर्योष्णो लेखनोषणः ।
रूक्षो लघुः प्रतिश्यायज्वरविद्रधिकुष्ठहा ।
गुल्मशोफकफानाहव्रणहृद्वमनाग्रणीः ॥८१२॥

वमनाग्रणीः—वमन कराने में श्रेष्ठ ॥८१२॥

२३७. पिण्डीतकभेदाः[1] ।

अपरः श्वेतपिण्डीतः करहाटः कुरङ्गकः ।
चर्मकारतरुः श्वेतचर्मद्रुस्तीक्ष्णकीलकः ॥८१३॥
कृष्णोऽन्यो गन्धपिण्डीतो महापिण्डीतकोऽपरः ।
पीतकः स्नेहपिण्डीतः सूक्ष्मपिण्डीतकस्तथा ।
श्लक्ष्णपिण्डीतकः पर्णपिण्डीतो वस्तिशोधनः ॥८१४॥

श्वेत, कृष्ण, महान, श्लक्ष्णादि पिण्डीतक (मदन फल) के कई भेद शास्त्र में दिए गए हैं ॥ ८१३–१४ ॥

२३८. शाल्मली[2] ।

Bombax Malabaricum. Silk-Cotton tree. A huge deciduous tree. Gum astringent, demulcent. Tap-root mucilaginous and aphrodisiac. Flowers cool and astringent.	(हिं०) सेमल, सिंबल, (बं०) शिमूल गाछ, (म०) सांवरी, (गु०) शेमलो । अति बृहत् वृक्ष, पत्र पतनशील । निर्यास ग्राही, पिच्छल । तरुण मूल शुक्रवर्धक । पुष्प शीत तथा ग्राही ।

---

१. मदन के जो भेद ऊपर बताए गए हैं, वह फल, पुष्पादि की आकृति, वर्णादि पर निर्भर हैं । कहीं २ केवल श्वेत और कृष्ण दो भेद ही कह गए हैं ।

२ **शाल्मली** के उच्च विशाल वृक्ष भारत के वनों, पर्वतों और मैदानों में भी कहीं २ मिल जाते हैं । वृक्ष का अधोभाग बड़ा स्थूल, विषम, श्वेत और दर्शक के मन में मान स्थापना करने वाला होता है । शाखा तथा स्तम्भ पर क्षुद्र स्थूल कण्टक । वृक्ष पर पत्र बहुत थोड़े होते हैं, केवल शाखाओं के अन्त पर और एक वृन्त पर प्रायः ७, अतः उसे लेटिन में Bombax heptaphylla (सात पत्रों वाला) भी कहा गया है । शिशिर में पत्र झड़कर वृक्ष नग्न रह जाता है, और बसन्त में बड़े २ सुन्दर रक्त पुष्प लगते हैं । मुकुलित अवस्था में पुष्प हरिताच्छादन (Green Sepals) से ढपा हुआ एक गोला सा प्रतीत होता है, और इसी रूप में बाज़ारों में शाकविक्रेताओं से मिल जाता है । लोग इसका व्यञ्जन खाते हैं, यह विशेषतः रक्तप्रदर, रक्तार्शादि में लाभकारी है, "शाल्मलीपुष्पशाकं तु घृतसैन्धवसाधितम् । प्रदरं

शाल्मली पिच्छला मोचा कुक्कुटी स्थिरजाविका।
यामद्रुमः स्थूलफला कण्टकाख्या सुपूरणी ॥८१५॥
मानद्रुमो मातुलद्रुस्तूलिनी रक्तपुष्पिका।
शाल्मलीवेष्टकः पिच्छा मोचनिर्यासमोचकौ।
मोचा स्रावी मोचरसः शाल्मलीवेष्टकः स्मृतः ॥८१६॥

नाशयत्येव दुःसाध्यं च न संशयः ॥ (भावप्रकाश निघण्टु) ॥ इसका स्वरस भी रक्तप्रदर में दे सकते हैं। पुष्प के विकसित होने पर पुटपत्र (Sepals) गिर जाते हैं और रक्तवर्ण वृहदाकार दलपत्र (Petals) शेष रह जाते हैं, तब वृक्ष बड़ा सुन्दर प्रतीत होता है। पुष्प में एक तरल रहता है, जिसे आस्वादन करने के लिए पक्षिगण दूर २ से आते हैं। विकसित पुष्प शाक में काम नहीं आता। इसे शुष्क कर के चार बना सकते हैं। **शाल्मीफल** अर्कफल के तुल्याकार समझें। शुष्क तरुण फल का क्वाथ वा चूर्ण अश्मरी, शर्करा, वृक्कशूलादि मूत्ररोगों में लाभकारी है। यह बहुत मूत्रल है। पक्व फल से **तूली** (रुई–Cotton) निकलती है, जो क्षौम वा पट के तुल्य मृदु होती है। इसके वस्त्रादि बन सकते हैं। इसे व्रणबन्धनार्थ भी व्यवहार करते हैं। अग्निदग्ध व्रण पर इसका लेप किया जाता है। "पिष्ट्वा शाल्मलीतूलकैर्जलगता लोपात्तथा बालुका" । **शाल्मलीकण्टक** का लेप व्यङ्ग पर किया जाता है (चक्रदत्त क्षुद्ररोग)। सेमल वृक्ष के वल्कल पर जहां पुरातन क्षत हों, उसमें से श्वेत, घन पिच्छल स्राव सा निकलता है, जो वायु लगने पर रक्त होकर जम जाता है, इस का नाम **शाल्मलीनिर्यास** वा **मोचरस** (बाज़ारी नाम) है। यह गोंद (१–२ माषे) समभाग शर्करा से मिलाकर अजादुग्ध के साथ खिलाने से रक्तप्रदर रक्तातिसार, प्रवाहिकादि में बहुत लाभ पहुंचता है। यह ग्राही और रक्तस्तम्भक है, इसमें वही द्रव्य (Tannic and Gallic acids) हैं, जो कत्थे और कमरकस में होते हैं। तरुणशाल्मली का **मूल** (Tap–root) **सिंबल मूसली** (बाज़ारी नाम) कहलाता है। यह ताज़ा मक्खन के तुल्य मृदु और स्वादु नज़र आता है और शुष्क कठोर तथा रक्ताभ खण्ड (जो बाज़ार मे मिलते हैं)। यह पिच्छल और शुक्रवर्धक है। मदनानन्द मोदकादि अनेक शुक्रस्तंभक औषधों में उसे डाला जाता है, "कन्दोऽस्या मधुरः शीतः शुक्रस्तम्भकरो मतः। (नि० र०) यह यक्ष्मा मधुमेहादि में भी लाभकारी है। **शाल्मलीभेद** (१, **रक्त शाल्मली** जिसका वर्णन ऊपर किया गया है, (२) **श्वेत शाल्मली** (B. pentadrum) कुछ छोटा श्वेत पुष्पों तथा ५, ५ पत्रों वाला। नाम—सफेद सेमल, हत्यां, **निर्यास**—हत्यां गोंद। (३) **कूटशाल्मली** (कुत्सित शाल्मली वा 'कूटे शृंगे पर्वते वा जायत इति) B. Gosypinum—दक्षिणी समुद्र तट पर बहुत होता है। कंटकाभाव, पुष्प बृहत्तर और उज्ज्वल पीतवर्ण। उत्तर भारत में रक्तशाल्मली ही मिलता है, श्वेत कम।

पर्याय—पिच्छला (पिच्छल स्राव वाला), स्थिरजीविका (दीर्घ काल तक रहने वाला), कण्टकाख्या (कांटेदार वृक्ष), मानद्रुम (शानदार वृक्ष), मातुलद्रु (अन्य सब वृक्षों का मामा), तूलिनी (रूई वाला)। **शाल्मलीवेष्टक** (सिंबल की गोंद) **के नाम**–पिच्छा (पिच्छल), मोचनिर्यास (सेमल का गोंद), स्रावी (बहने वाला वृक्ष-त्वक से), ॥ ८१५-१६ ॥

शाल्मली शीतला स्वाद्वी रसे पाके रसायनी।
श्लेष्मला बृंहणी वृष्या स्निग्धा पित्तास्रनाशनी ॥८१७॥
पुष्पं स्वादु रसे पाके रूक्षं तिक्तं हिमं गुरु।
कषायं वातलं ग्राहि कफपित्तास्रजित्परम् ॥८१८॥
निर्यासः शीतलः स्निग्धो मृत्स्नो वृष्यः कषायकः।
प्रवाहिकातिसारामकफपित्तनिवर्हणः ॥८१९॥

शाल्मली—सिम्बल की मूल। **निर्यास**–मोचरस, सेमल का गोंद ॥८१७-१९॥

२३९. रोहीतकः[1]।

Amoora Rohituka.
A shady evergreen tree.
Bark useful in enlarged spleen and liver.

(हि०) रोहेड़ा, (बं०) रोढ़ा, रयना, (म०) रोहिड़ा, (गु०) रोह्ड़ो। साधारण सदाहरित छायावान् वृक्ष। वल्कल प्लीहयकृद्वृद्धिघाती।

---

१. **रोहितक** आनूप पूर्वी भारत यथा वंग, बिहार, आसाम में अधिक मिलता है। दक्षिण के पश्चिमी तट पर भी होता है। वृक्ष बहुत ऊंचा नहीं होता, शाखाएं घन सदाहरित पत्रों के कारण भूम्यभिमुख रहती हैं; **त्वक्** भूरी, वृक्षकाण्ड सरल; **पत्र** बहुत लम्बे, चौड़े, नोकदार और अण्डाकार; **पुष्प** दाड़िमपुष्पाकार तथा रक्त, वसन्त काल में होने वाले; फल गोल, मसृण, पीताभ वा रक्त, त्रिकोषयुक्त (3-Celled), रोहीतक के काण्ड वा मूल की **त्वक्** ही बहुधा व्यवहार होती है। उस का **क्वाथ** (८-१० तोले) दिन में एक दो वार पिलाना प्लीहा और यकृत् की वृद्धि के लिए बहुत लाभकारी है। **रोहीतकारिष्ट** (भोजन के बाद १-२ तोले) इन रोगों के लिए बड़ा सुन्दर योग है। रोहीतक लौह और रोहितक घृत भी व्यवहार होते हैं। रोहीतक अल्परेचन भी है और उदररोगों में सामान्यतः गुणकारी है। **रोहीतकपुष्प** कफपित्तमेह में देते हैं। **रोहीतकभेद**—(१) **रक्तपुष्प**–ऊपरोक्त, (२) **सितपुष्प**–इसे फल नहीं आता, अतः यह नरजातीय (Male) समझा जाता है, और रक्त रोहितक को फल आने से स्त्रीजातीय (Female) मानते हैं। गुणों में दोनों समान जानें। त्वक् क्वाथ रक्तवर्ण और स्वाद में तिक्त कषाय होता है। रोहितक के बीजों से एक तेल प्राप्त होता है, जो सन्धिशोथ में अभ्यंगार्थ गुणकारी है।

रोहितो लोहितो रक्तः रक्तपुष्पः कुशाल्मलिः।
रोहिणी रोचनी रोही रक्तघ्नः कटुशाल्मलिः।
प्लीहघ्नो दाड़िमपुष्पो रोहणः पारिजातकः ॥८२०॥

पर्याय—रोहितक, लोहितक (रक्त पुष्प तथा त्वक् वाला), कुशाल्मलि (कुत्सित सिंबल के तुल्य), रोहिणी (रक्त), रोचनी (रुचिकर), रक्तघ्न (प्लीहयकृत्संचितदुष्टरक्तनाशक), दाड़िमपुष्प (अनार के तुल्य रक्त फूलों वाला) ॥८२०॥

रोहीतः कटुस्तिक्तः सरोष्णः कफवातनुत्।
प्लीहोदरयकृद्गुल्ममांसमेदोविषापहा।
भूतानाहविबन्धास्रकासशूलरुजापहा ॥८२१॥

२४०. स्नुही[1] (सेहुण्डः)।

Euphorbia neriifolia.
A small, milky, fleshy, glabrous, and spiny tree.
Drastic purgative and rubefacient.

(हिं०) थोहर, सेहुण्ड, (बं०) मनसा गाछ, सिज गाछ, (म०) निवडुंग, (गु०) थोडदांडलियो।
क्षीरी, मांसल, हरितमृदु, कण्टकी, क्षुद्र वृक्ष।
तीव्ररेचन, त्वक्दाहजनक।

---

१. **स्नुही** भारत में सर्वत्र, रूक्षोष्ण स्थलों में अधिक, पर्वतों तथा आनूप देशों में कम मिलती है। इस की आकृति से सब परिचित हैं। स्नूही के प्रत्येक भाग से दुग्ध निकलता है, ऐसे दुग्धमय वनस्पति, जो रेचक हैं, Euphorbia जाती में सम्मिलित हैं। थोहर के अनेक प्रकार मिलते हैं, जैसे त्रिधारा, चौधारा, डंडा, विलायती, खुरासानी (पारसीक) आदि। परन्तु हमारे ग्रन्थों में प्रायः ३ भेद मिलते हैं—सेहुण्ड, त्रिधारा और स्नूही। चरक में केवल दो भेदों का वर्णन है, "द्विविधः स मतो यैश्च बहुभिश्चैव कण्टकैः। सुतीक्ष्णैः कण्टकैरल्पैः प्रवरो बहुकण्टकः॥" (च० कल्प० अ० १०—सुधाकल्प)—अर्थात् स्वल्पकण्टक और बहुकण्टक। इसी सुधाकल्प में स्नूही के २० योग लिखे हैं, उन्हें देखना बहुत लाभकारी है। स्नूहीपत्र का **शाक** जलोदर, गुल्मादि में लाभकारी है, इस से रेचन हो कर कोष्ठ शुद्ध हो जाता है। कोष्ण **पत्र** मूत्राशय पर बांधने से मूत्रप्रवर्त्तक हैं। कोष्ण **पत्रस्वरस** (५–७ विन्दु) कर्ण में छोड़ने से कर्णशूल दूर करता है, और नेत्र पर बहिस्तः मलने से दृष्टि की मन्दता दूर होती है। पञ्चांग वृक्ष को जलाकर **वज्रक्षार** बना सकते हैं, जो अनेक उदररोगों में लाभकारी है। **स्नूहीक्षीर** तीव्ररेचन द्रव्य है। उसे अकेला देना हानिकारक है। यह अन्त्रशोथादि कर देता है। स्नूहीक्षीरभावित चणक वा मरिच (१–३ दाने) उष्ण जल से निगल जाना कोष्ठशुद्धि के लिए पर्याप्त है। त्रिवृत्, त्रिफला, चणक, वा बाजरा का चूर्ण स्नूहीदुग्ध से भावित कर के २–३ रत्ति की मात्रा में देने से अच्छा रेचन करता है। दशमूल क्वाथ और स्नूहीक्षीर (सम

सुधा गुडा वज्रतुण्डो वज्री निस्त्रिंशपत्रकः ।
स्नूही समन्तदुग्धा स्नुग्गण्डीरो वज्रकण्टकः ।
महावृक्षो बहुस्रवः सेहुण्डः कुलिशद्रुमः ॥८२२॥

पर्याय—सुधा (असाध्यरोगों में शोधनार्थ अमृततुल्य लाभकारी), गुडा (गोलाकार काण्ड वाली), वज्रतुण्ड (तीक्ष्ण तुण्ड है जिस का), वज्री (तीक्ष्ण कांटों वाली), निस्त्रिंशपत्रक (३० से अधिक वा तीक्ष्ण पत्रों वाली), स्नूही (क्षीरवत् रस निकलता है जिस से), समन्तदुग्ध (सर्वतः दुग्धमय), गण्डीर (बहादुर), वज्रकण्टक (वज्रवत् तीक्ष्ण दीर्घ कांटे हैं जिस के), महावृक्ष (बड़ा वृक्ष—निन्दाभाव से Ironically), बहुस्रव (बहुत स्राव क्षीर वाली), कुलिशद्रुम (वज्रद्रुम) ॥८२२॥

वज्रकण्टः कटुस्तिक्तस्तीक्ष्णोष्णो दीपनो गुरुः ।
रेचनोऽनिलशूलामकफगुल्मोदरापहा ॥८२३॥
उन्मादमेहकुष्ठार्शःशोफमेदोऽश्मपाण्डुताः ।
व्रणाध्मानज्वरप्लीहविषं दूषीविषं हरेत् ॥८२४॥
उष्णवीर्यं स्नूहीक्षीरं स्निग्धं सकटुकं लघु ।
गुल्मिनां कुष्ठिनां चापि तथैवोदररोगिणाम् ।
श्रेष्ठमेतद्विरेकार्थे ये चान्ये दीर्घरोगिणः ॥८२५॥

गुल्मिनां कु०—यह (स्नूहीक्षीर) गुल्मी, कुष्ठी, उदररोगी, तथा अन्य दीर्घकालीन रोगियों के लिए रेचनार्थ अत्युत्तम द्रव्य है ॥८२३–२५॥

२४१. शातला[1] ?

विमला सातला सारी सप्तला वर्त्तिकी जनी ।
बहुफेना चर्मकषा चर्मसाह्वा सरालिका ।

भाग) अग्नि पर पका कर और गोलियां (चणकतुल्य) बना कर रख लें । १ गोली उष्ण जल से निगलना पर्याप्त रेचन करता है । स्नूहीक्षीर लवण से मिल कर जम जाता है, वह भी (मात्रा २-३ रक्ति) रेचनार्थ दिया जाता है । स्नूही दुग्धभावित सूत्र अर्श के मस्सों पर बांधने से वा केवल दुग्ध का लेप करने से मस्से झड़ जाते हैं । पूर्व वेदना तथा शोथ प्रायः होती है । दद्रू, पामा, कुष्ठादि पर निम्बतैलमिश्रित स्नूहीदुग्ध का लेप किया जाता है । वनस्पतिविशारदों ने भी स्नूही के अनेक भेद किए हैं:—
E. antiquorum (त्रिधारा सेहुण्ड), E. royleana, E. nivulia (सेहुण्ड), E. tirucalli (लङ्का सिज, डण्डा थोहर), इत्यादि । स्नूही श्वास, उपदंश, पूयमेहादि में भी देते हैं ।

१. शातला (सप्तला) सन्देहग्रस्त है । पंजाब में वैद्य **नागफणी थोहर** को ही सप्तला कहते हैं, परन्तु पीतदुग्धादि लक्षण नहीं मिलते । इस के रक्त फलों का शर्बत महाकास (काली खांसी—Whooping Cough) में बहुत लाभकारी

सनालिका पीतदुग्धा फेना दीप्ता रसालिका ॥८२६॥

पर्याय—बहुफेना (बहुत झाग देने वाली), चर्मकषा (चमड़े जैसी फल वाली), पीतदुग्धा (पीत दुग्ध वाली) ॥८२६॥

शातला शीतला तीक्ष्णा पाके कटुर्लघुः ।
हृद्यानिलं प्रकुरुते हरते हृद्रुजं कफम् ॥८२७॥
पित्तोदावर्त्तकुष्ठार्शोगुल्मोदरगरं विषम् ।
आनाहकृमिशोफामारुचीरुभयशोधनी ॥८२८॥

'उभयशोधनी—ऊर्ध्वाधरशोधनी, रेचक तथा वामक ॥८२७-२८॥

२४२. अङ्कोटः[1] ।

Alangium Lamarkii. A handsome evergreen tree. Bark bitter, purgative, emetic and antipyretic and diaphoretic.	(हिं०) अङ्कोटढेरा, (बं०) आंकोड़, (म०) आंकोली वृक्ष, (गु०) अंकोलय। सुन्दर सदाहरित वृक्ष । त्वक् तिक्त, रेचक, वामक, ज्वरघ्न, तथा स्वेदल ।

है । अंग्रेज़ बच्चे इन फलों को बड़ी रुचि से खाते हैं । श्री शालिग्राम ने Origanum vulgaris को सातला माना है, और लिखा है, "सातनेकी बेल जंगल और वनों में होती है, पत्ते खैर के पत्तों की समान छोटे छोटे होते हैं । फूल पीला होता है, उस में पतली तथा चपटी फली लगती हैं । उस में काले बीज निकलते हैं । इस में पीले रंग का दूध निकलता है ।" O. vulgaris काश्मीर से सिक्कम तक हिमालय में मिलता है । यह छोटा सा क्षुप (Herb) है, इस में कोई पीत दुग्ध नहीं होता, श्रीशालिग्राम ने कई लक्षण स्वयं लिख दिए हैं । इस क्षुप से एक सुगन्धित तैल (Volatile oil) निकलता है, जो दन्तशूलनाशक है । इस में कोई रेचन द्रव्य नहीं । इसे पंजाबी में **मीरज़ां जोश** और हिन्दी में **साथरा** कहते हैं । श्री शालिग्राम ने साथरा को सप्तला समझा है । महाराष्ट्र के वैद्य चिक्काकाई (Acacia Concinna) की फली को सप्तला समझते हैं (देखो वल्लीखदिर अंक २१६) । यह द्रव्य भूरिफेन और रेचक है, इस में सन्देह नहीं । कहीं कन्थारी (अंक २१७) को सप्तला कहा जाता है । एवं सप्तला के विषय में नाना मत देखने से कोई निश्चय नहीं हो सकता । बंगाली वैद्यों में सप्तला के लिए **चर्मकसा** शब्द प्रसिद्ध है, परन्तु इस नाम का कोई द्रव्य नहीं मिलता । सप्तलाशङ्खिनीकल्प (च० कल्प० अ० ११) में सप्तला के अनेक प्रयोग हैं, परन्तु वहां न ही दृढ़बल ने और न चक्रपाणि ने सातला की आकृति के सम्बन्ध में कुछ लिखा है । सप्तला निःसन्देह कोई कोष्ठशोधक क्षुप है और उस की भी मूल के व्यवहार का विधान है ।

१. **अङ्कोट** के सुन्दर छायावान् वृक्ष दक्षिण देश में बहुत मिलते हैं । बंग

अंकोटोऽङ्कोल्लको रेची गन्धपुष्पो निकोचकः ।
इरिकीलो दीर्घकीलो गुप्तस्नेहश्च भूसिता ।
पीतसारस्ताम्रफलो हुण्डिको रूढिमल्लिका ॥८२९॥

पर्याय--रेची (रेचक त्वक् वाला), गन्धपुष्प (सुगन्धित फूलों वाला), इरिकील (इरिमेद के तुल्य कीलों वाला), दीर्घकील (लम्बे कीलों वाला), गुप्तस्नेह (पुष्प, बीज, काष्ठ स्निग्ध है जिस का), पीतसार (पीत काष्ठ वाला) ॥

अङ्कोलस्तिक्तकः स्निग्धस्तीक्ष्णस्तुवरः कटुः ।
वामनो रेचनो हन्ति शूलशोफग्रहक्रिमीन् ।
विसर्पकफपित्तास्रकुक्कुराखुविषं विषम् ॥८३०॥
तत्फलं श्लेष्मलं शीतं मधुरं रसपाकयोः ।
सुस्निग्धं बृंहणं वृष्यं गुरु बल्यं विरेककृत् ।
निहन्त्यनिलपित्तास्रदाहवह्निक्षतक्षयान् ॥८३१॥

२४३. कोविदारः[1] ।

Bauhinia vari gata. A well-known deciduous tree. Bark and buds alterative, astringent, used in scrofula, leprosy etc.	(हिं०) सफेद कचनार, (बं०) सफेद काञ्चन, (म०) कांचन, (पं०) चिट्टी कचनाल । त्वक् तथा पुष्प रक्तशोधक, ग्राही, गण्डमाला, कुष्ठादि में लाभकारी ।

आस्फोतकः कोविदारः कुण्डलः कुण्डली कुली ।

तथा संयुक्त प्रान्त में भी कहीं २ होते हैं, परन्तु पंजाब में उन का सर्वथा अभाव समझें। **पत्र** आम्र के तुल्य लम्बे और मृदुहरित; शाखाओं पर दीर्घ कील; **पुष्प** श्वेत और सुगन्धित; **फल** बेर के तुल्य, श्यामरक्तवर्ण; **बीज** लम्बा गोल और स्निग्ध । **काण्ड-त्वक्** वा **मूलत्वक्** का क्वाथ (१ तोला) तिक्त, रेचक और अधिक मात्रा में वामक होता है। त्वक्चूर्ण की साधारण मात्रा १ माषा वा इस से भी कम है। यह ज्वरघ्न और स्वेदल है। इसे रक्तशुद्धयर्थ तथा नाना प्रकार की विषों में भी देते हैं। **अंकोटपुष्प** का अंजन विष में किया जाता है। **पक्व फल** मधुर, शीत और बृंहण है। रूक्ष स्थलों में अंकोट का वृक्ष छोटा वा झाड़ी के तुल्य होता है। इसे शुष्क और उच्च भूमि प्रिय है।

१. **कोविदार** का वृक्ष कांचनार के तुल्य होता है। उसे श्वेत पुष्प आते हैं। कहीं कोविदार के श्वेत, ताम्र, पीत और रक्त पुष्पों के कारण कई भेद कहे गए हैं, सम्भव है कि एक ही पुष्प में कई रंग हों, अतः उसे लेटन नाम Variegata (नानावर्णयुक्त) दिया गया है। रक्त पुष्प वाले वृक्ष को प्रायः काञ्चनार कहते हैं, "काञ्चनारः...शोणपुष्पकः" । (भावप्रकाश)। यदि कोविदार श्वेत काञ्चनार हो, तो B. racemosa नाम देना अधिक उचित है। वस्तुतः काञ्चनार (Bauhinia)

उद्दालकश्चमरिकः उद्दारः स्वल्पकेसरः ॥८३२॥
कोविदारो हिमो ग्राही कषायः कफपित्तजित्।
गण्डमालागुदभ्रंशव्रणकुष्ठकृमीन् जयेत् ॥८३३॥

२४४. काञ्चनारः[1]।

Bauhinia purpurea.	(हिं०) लाल कचनार, कचनार, (बं०) कांचन फूलेर गाछ, (म०) कारेल, (गु०) चम्पाकाटी।
A well-known tree.	
Uses as in No. 243.	गुण अंक २४३ वत्।

वरलघः कांचनको भ्रमरेष्टो मनोहरः।
रक्तपुष्पोऽपरः श्वेतः पाकारिः कांचनारकः ॥८३४॥
तद्वच्च काचनो ज्ञेयस्तयोः पुष्पं हिमं गुरु।
कषायं मधुरं पाके रसे संग्राहि रोचनम।
रूक्षं कासक्षतश्वासपित्तास्रप्रदरापहम् ॥८३५॥

२४५. अगस्तिकः[2]।

Sesbania grandiflora.	(हिं०) अगस्तिया, हथिया, हदगा, (बं०)वकफूलेर गाछ,(म०)अगस्ता, (गु०) अगथियो।
A small deciduous tree.	क्षुद्र वृक्ष, पत्र पतनशील।
Leaves and flowers used in catarrh, headache, fevers, etc.	पत्र तथा पुष्प प्रतिश्याय, शिरोऽर्ति, ज्वरादि में लाभकारी।

जाती के कई प्रकार हैं,यथा B. tomentosa, B. parviflora, B. purpurea (रक्त काञ्चनार), B. variegata etc. यह सब काञ्चनार और कोविदार के अन्तर्गत हैं। वर्बूदार काञ्चनार की लता समझनी चाहिए। इन के पत्रों को 'युग्मपत्र' इस लिए कहा जाता है, क्योंकि एक पत्र के दो भाग एक दूसरे के ऊपर लिपटे रहते हैं। कोविदार के गुण काञ्चनार के तुल्य हैं, अतः आगे अंक २४४ में देखें।

१. काञ्चनार का सुप्रसिद्ध वृक्ष भारत में सर्वत्र मिलता है। वसन्त में उसे रक्त पुष्प (कचनाल के फूल) आते हैं, जो मुकुलित (Bud) अवस्था में शाकार्थ व्यवहार होते हैं। इन का व्यञ्जन ग्राही और रक्तस्तम्भक है। इन का क्वाथ वा स्वरस रक्तप्रदर, रक्तातिसार, रक्तार्श आदि में दे सकते हैं। काञ्चनार-त्वक् रक्तशोधक है, अतः उसे गण्डमाला (Scrofula, glands), आदि में देते हैं। एतदर्थ **काञ्चनारगुग्गुलु** प्रसिद्ध योग है। काञ्चनार की त्वक् का लेप भी गण्डमाला पर किया जाता है। ग्रन्थों में उस के अनेक योग लिखे हैं।

२. **अगस्ति** के वृक्ष वंग, महाराष्ट तथा दक्षिण में अधिक मिलते हैं, मरुभूमि

अगस्तिकः कुम्भयोनिरगस्त्यो मधुशिग्रुकः।

मुनिवृक्षो वंगसेनः कोपावेरमधुर्यतिः (?) ॥८३६॥

पर्याय—अगस्तिक (अगस्त्य मुनि के नाम वाला), कुम्भयोनि (कुम्भाकार पुष्प हैं जिसके), मधुशिग्रुक (मधुशिग्रु के तुल्य पत्र हैं जिसके), मुनिवृक्ष (मुनि नाम वाला), यति (मुनि) ॥ ८३६ ॥

अगस्त्यः शीतलो रूक्षस्तिक्तो वातप्रकोपनः।

कफपित्तप्रतिश्यायचातुर्थकविनाशनः ॥८३७॥

अगस्त्यपत्रं कटुकं सतिक्तं गुरु कृमिघ्नं विशदं कफघ्नम्।

कण्डूहरं शोणितपित्तहारि स्यात् सूक्ष्ममुष्णं मधुरं विषघ्नम् ॥८३८॥

तत्पुष्पं नातिशीतोष्णं कटुपाकं सतिक्तकम्।

कषायं वातलं पित्तकफनक्तान्ध्यनाशनम् ॥ ८ ३९॥

सस्वादुतिक्तं कफहृद्विरूक्षं शूलप्लीहपाण्डुगरामयघ्नम्।

शोषं च गुल्मं च निहन्त्यगस्तिफलं नितान्तं प्रकरोति पित्तम् ॥८४०॥

चातुर्थक—विषमज्वर का प्रकार विशेष, चौथय्या ज्वर (Quartan fever)।

नक्तान्ध्य—रात्रि को नज़र न आना (Nacturnal or night blindness) ॥ ८३७-८४० ॥

तथा पंजाब में सर्वथा अभाव देखा जाता है। वृक्ष की शाखाएं शिग्रुवत् पृथक् २ और थोड़ी, **पत्र** शिग्रु वा शिरीष के तुल्याकार, संयुक्त (Compound) १०–२० जोड़े पत्तियां एक वृन्त पर; **पुष्प** श्वेत वा रक्त, ५–६ अंगुल लम्बा चौड़ा; **फली** (शिम्बी) १५–२० अंगुल लम्बी और कोमल। **पुष्प** प्रायः **अगस्त्यमुनि** (ताराविशेष) के (सितम्बर में) उदय होने पर निकलते हैं, अतः इन पुष्पों तथा वृक्षों को अगस्त्य नाम दिया गया है। कहीं २ **"सितपीतनीललोहित-कुसुमभेदाच्चतुर्विधोऽगस्तिः"** ऐसा पाठ मिलता है, परन्तु अब पुष्प प्रायः श्वेत वा रक्त ही मिलते हैं, मद्रास में मैंने केवल श्वेत पुष्प ही देखे हैं। **पुष्पस्वरस** नेत्र में छोड़ने से नक्तान्ध्य दूर होता है। पत्रस्वरस भी एतदर्थ नेत्रों में भी डालते हैं। इसकी नस्य देने से नासा से खूब दुष्ट जल निकलता है, अतः शिरोऽर्ति, प्रतिश्याय, कफज्वरादि इस से नष्ट होते हैं। पुष्पों तथा पत्रों का शाक और नस्य चातुर्थक ज्वर और अपस्मार में व्यवहार होते हैं। जहां इस के पुष्प और कोमल फलियां मिलती हैं, वहां लोग उन का व्यञ्जन (Curry) बना कर खाते हैं।

२४६. आरग्वधः [1] ।

Cassia Fistula.
The Purging Cassi.
The Well-known middle-sized golden-flowered tree.
Fruit-pulp cathartic. Root & flowers laxative & febrifuge.

(हिं०) अमलतास, घनबहेड़ा, (बं०) सोनालु, शोन्दाल, (म०) बाहवा, भावा, (गु०) गरमालो। सुप्रसिद्ध स्वर्णपुष्प वृक्ष । मज्जा तीव्ररेचन, मूल तथा पुष्प रेचन, ज्वरघ्न ।

आरग्वधो दीर्घफलो व्याधिघातो नराधिपः।
आरेवतो राजवृक्षः शम्पाकश्चतुरङ्गुलः ॥८४१॥
प्रगाहो रैवतः पर्णी कर्णिकारोऽपघातकः ।
आरोग्यशिम्बी कल्पद्रुः स्वर्णद्रुः कृतमालकः ॥८४२॥

पर्याय—दीर्घफल (लम्बे फलों वाला), व्याधिघात (रोगनाशक, कोष्ठशोधक

---

१. आरग्वध के वृक्ष सब जगह वनों एवं उद्यानों में मिल जाते हैं। वसन्त में सुन्दर स्वर्णाकार पुष्पमञ्जरियें (फूलों की मालाएं Golden racemes) वृक्ष को अति सुशोभित कर देती हैं। फल सुप्रसिद्ध नल्याकार, पकने और भूमि में गाड़ने से कृष्णवर्ण हो जाता है। पक्व फल को तोड़ने पर कठोर चक्रिकाओं (Discs) के मध्यस्थ से कृष्ण मृदु मज्जा निकलती है, जिस में गोल चपटे बीज दबे रहते हैं; यह मज्जा पृथक् वा चक्रिकासहित (प्रायः १–२ तोले) अष्टगुण जल में उबालकर वा चतुर्गुण सौंफ के अर्क में केवल कोष्ण करके और मसल कर कृष्ण क्वाथ वा रस निथार लें। यह बहुत सुन्दर विरेचन है। दस्त प्रायः ४–६ घण्टे के पश्चात् आते हैं। कोष्ठ खूब शुद्ध होता है। ज्वर, विबन्ध, कामला, कृमि, कुष्ठ, उदावर्त्त, वृक्कशूलादि में यह बड़ा लाभकारी रेचन है, अतः "ज्वरे तत् सततं पथ्यं कोष्ठशुद्धिकरं परम्।" भावप्रकाश का यह वचन अत्यन्त सन्मान और स्मरण के योग्य है। उस में ३ माषे सौंफ और २ रत्ती नवसादर डालने से उसे अधिक उपयोगी बना सकते हैं। यह उदर में तनिक शूल (Gripping pain) करता है, सौंफ और नवसादर से यह दोष दूर हो जाता है। रोगानुसार (जलोदर और शोथ में) पुनर्नवादि, (मूत्रकृच्छ्र और वृक्कशूल में) गोक्षुर, (ज्वर में) गुडूच्यादि क्वाथ से मिला सकते हैं। डाक्टर लोग इस का टिंकचर (Tincture Cassi.) वा फांट (Infusion) व्यवहार करते हैं। नवजात शिशु तक को यह रेचनार्थ दे सकते हैं। मात्रा १–२ टिकियां) १–२ चमचा उष्ण जल में मसल कर फलकोष। (कठोर छिलका) रजःप्रवर्त्तक है, उसे मिश्रेया (सोए), कलौंजी आदि से मिलाकर क्वाथ के रूप में दे सकते हैं। पुष्प भी रेचक हैं, उनका गुलकन्द बनता है। पत्रों का कल्क वा क्वाथ दद्रु, कुष्ठादि रोगों में लेप एवं धावनार्थ प्रयोग करते हैं। उसकी पुल्टिस व्रण-पाचक है। मूल भी रेचक है। उसे गण्डमाला में लेपार्थ प्रयोग करते हैं।

होने के कारण), नराधिपः (मनुष्यों का स्वास्थ्यदायक राजा), राजवृक्ष (वृक्षों का राजा), आरोग्यशिम्बी (स्वास्थ्यजनक फलों वाला), स्वर्णद्रु (सोने के तुल्य पीत पुष्पों वाला), कृतमालक (मालावत् पुष्प आते हैं जिसको) ॥८४१-४२॥

आरग्वधो हिमस्तिक्तो मधुरो मृदुरेचनः ।
गुरुर्दोषत्रयहरो ज्वरगुल्मोदरापहः ॥८४३॥
शूलोदावर्त्तहृद्रोगव्रणकृच्छ्रप्रमेहनुत् ।
पत्रमारग्वधस्यापि कफमेदोविशोषणम् ॥८४४॥
विरेके सततं पथ्यं मलदोषसमन्विते ।
कुसुमं शिशिरं स्वादु कषायं ग्राहि तिक्तकम् ॥८४५॥
तत्फलं कटुकं पाके कुष्ठपित्तकफापहम् ।
ज्वरे च सततं पथ्यं मलदोषसमन्विते ।
तन्मज्जा स्वादुः पाकेऽग्निकृत्स्निग्धोऽनिलपित्तहा ॥८४६॥

ज्वरे च०—मलदोषयुक्त ज्वर में यह सदैव हितकर है । **मज्जा**—गूदा ॥८४३-६॥

२४७. काम्पिल्लकः[1] ।

Mallotus philippinensis. The red dye-powder. A small evergreen tree. Cathartic, anthelmintic and vermifuge.	**(हिं०) कबीला, कम्बीला, (बं०) कमला गुडी, (म०) कपिला, (गु०) कपीलो । क्षुद्र सदाहरित वृक्ष । तीव्ररेचक, उदरकृमिघ्न, व्रणशोधक ।**

१. **काम्पिल्लक** के वृक्ष बहुत ऊंचे नहीं होते । वे हिमालय के निचले तट, एवं ब्रह्मा, लंका, दक्षिण भारत, सिंगापुर, अण्डेमनादि द्वीपों में प्रचुर मिलते हैं । **पत्र** उदुम्बरपत्र के तुल्य, परन्तु कोमल और हरित; **पत्रवृन्त** दीर्घ, उस पर दो अर्बुदाकार ग्रन्थियां होती हैं । **फल** छोटे बेर के तुल्य । **पक्वफल** पर सूक्ष्म रक्त रजःकण होते हैं । फलों को पांओं में रोंदने से यह कण पृथक् हो जाते हैं । इन का ही नाम काम्पिल्लक (कमीला–Red Dye Powder) है । बाज़ारी कमीला शुद्ध नहीं होता । उसमें बालु, मट्टी आदि द्रव्य मिश्रित रहते हैं, अतः बाजारी कमीला प्रायः गुणदायक सिद्ध नहीं होता । जब फल वृक्ष पर लगे हों, तब रक्त रजः को झाड़ कर जो कमीला प्राप्त हो, वह सर्वश्रेष्ठ होता है । पूर्वोक्त विधि से प्राप्त कमीला इस से हीनगुण जानना चाहिए । **उत्कृष्ट काम्पिल्लक की परीक्षा**—जलार्द्र अंगुलाग्र पर कमीला लगाकर श्वेत कागज़ पर संघर्षण करो, यदि स्पर्श में खरता न हो, प्रत्युत मसृणता, और कागज़ उज्ज्वल पीत हो जावे, तो कमीला श्रेष्ठ समझें, अन्यथा निकृष्ट । काम्पिल्लक में एक पीत रञ्जक द्रव्य (A yellow colouring matter) है, अतः उसे **रञ्जक** नाम दिया गया है । अंग्रेज़ी में उसे Monkey Face Tree (कपि-मुखरञ्जक वृक्ष) कहा गया है, क्योंकि बन्दर फलों से संघर्षण करके अपना मुख

काम्पिल्लको रेचनको रञ्जनो रक्तचूर्णकः।
रक्ताङ्गो रक्तशमनो विरेकी व्रणशोधनः ॥८४७॥

पर्याय—रेचनक (दस्तावर–Cathartic), रञ्जन (रंगने वाला-Dye Powder), रक्तचूर्णक (लाल चूर्ण-Red Powder), रक्तांग (रक्त फलों वाला)॥८४७॥

काम्पिल्लो दीपनो रेची कटूष्णः कफपित्तजित् ॥
व्रणगुल्मोदरानाहमेहाश्मविषजन्तुजित् ।
तच्छाकं शीतलं तिक्तं वातलं ग्राहि दीपनम् ॥८४८॥

२४८. तुणिः (तुणी)[1]।

Cedrela toona. The Toon or India Mahogany tree. A large shady tree. Bark astringent and antiperiodic.	(हिं०) तून, तूनी, (बं०) तुन्नगाछ, (म०)कुरुक, तून, (पं०) तुन्न, चिट्टी शिरींह। बृहत् छायावान् वृक्ष। त्वक् ग्राही तथा ज्वरवेगनिवारक।

लाल कर लेते हैं। कमीला (रक्तरजः) प्रायः पेट के कीड़ों को निकालने के काम आता है। मात्रा–६–१२ माषे मधु, गुड़, वा दधि से मिलाकर केवल प्रातःकाल। इस से कुछ उत्क्लेश होता है, परन्तु वान्ति नहीं होती। यह तीन चार दिन तक देना चाहिए। **"काम्पिल्लकचूर्णकर्षार्द्धं गुड़ेन सह भक्षितं। पातयेत् कृमीन् सर्वानुदरस्थान्न संशयः।"** (भावप्रकाश कृमिचिकि०)॥ इस से दस्त खुल कर आते हैं, पेट साफ हो जाता है। दद्रू, कुष्ठ, कण्डू, पामा, कच्छू आदि नाना त्वग्विकारों पर कमीला छड़का जाता है। बच्चों के क्षुद्र व्रणों वा गरम ऋतु की पिड़िकाओं पर माताएं कमीला छड़क देती हैं। कमीले और तैल को उबालने से एक अच्छा व्रणरोपक तैल बन सकता है। एक फल से ३ कृष्ण क्षुद्र गोल मरिच तुल्य बीज निकलते हैं, जिन्हें कई लोग विडंग (वायविडंग–Embelia Ribes) समझते हैं, जो अशुद्ध है।

१. **तुणी** के वृक्ष पंजाब और मध्य प्रान्त में बहुत मिलते हैं। वृक्ष दूर से निम्ब के सदृश प्रतीत होता है, परन्तु उस की पत्तियां निम्ब की पत्तियों (Leaflets) की तरह कटी हुई वा दन्दानेदार नहीं होतीं, प्रत्युत सम्पूर्ण (Entire)। वृक्ष निम्बतुल्य विशाल, उच्च, छायावान्, घनहरित, और शाखाबाहुल्य। शीत काल में पत्र झड़ कर वृक्ष नग्न रह जाता है, पुनः वसन्त में नवपल्लव लगते हैं। तुणी की आकृति अरिष्ट (हरीठे) से भी मिलती है। **पुष्प** क्षुद्र, श्वेत, सुगन्धित। **फल** कृष्ण वा भूरे। तुणी का व्यवहार औषध में विरल देखा जाता है। इस की **त्वक्** का क्वाथ वा फाण्ट (Infusion) कुछ डाक्टरों ने व्यवहार कर के उसे ग्राही और ज्वरघ्न ज्ञात किया है। कहीं २ यह कुनीनवत् ज्वर को रोक देता है। तुणी का **काष्ठ**

नन्दिस्तुणिर्नन्दिवृक्षः कच्छपस्तुणकस्तुणः ।
कंतालकः स्यादापीतो कुचतुन्नः कुबेरकः ॥८४९॥
कांतालकः कटुः पाके कषायो मधुरो लघुः ॥
तिक्तो ग्राही हिमो वृष्यो दोषासृग्व्रणकुष्ठहा ॥८५०॥

२४९. सप्तपर्णः ।

Alstonia scholaris.	(हिं०) सतोना, छतिवन, सतवन, (बं०) छातिम गाछ, (म०) सात्विन, (गु०) सप्तपर्ण ।
A large evergreen tree.	विशाल सदाहरित वृक्ष ।
Bark astringent, alterative, anthelmintic and febrifuge.	वल्कल ग्राही, धातुवर्धक, कृमिघ्न, ज्वरघ्न ।

सप्तपर्णः शुक्तिपत्रस्त्रिपर्णो गुच्छपुष्पकः ।
बहुच्छदो बहुत्वचश्छत्री शाल्मलीपत्रकः ।
सप्ताह्वः शारदः पर्णी स्थूलपत्रः सुपर्णकः ॥८५१॥

पर्याय—सप्तपर्ण (सात सात पत्र एक वृन्त पर-Heptafoliate), शुक्तिपत्र (शुक्त्याकार पत्र हैं जिसके), त्रिपर्ण (तीन पत्र हैं जिसके वृन्त पर), गुच्छपुष्पक

(त्वग्वर्जित) ईषद्रक्त, उज्ज्वल, मसृण (Polished), सम और सुगन्धित होता है । उस पर रन्दा खूब चलता है । इन कारणों से तुणीकाष्ट को मेज, कुर्सी आदि के निर्माण में प्रयोग किया जाता है ।

१. सप्तपर्ण एक विशाल, उच्च, आरण्य वृक्ष है; जो भारत के वनों में सब जगह मिलता है, परन्तु पंजाब और मरुदेश में विरल; **त्वक्** श्यामवर्ण, मृदु; **काष्ठ** मृदु और शीघ्र आटे में परिणत होने वाला; **पत्र** एक वृन्त पर ५ वा ७, अतः अयुग्मच्छदः, शाल्मलीपत्रः आदि नाम । **पुष्प** गुच्छाकार, श्वेत और सुगन्धित । **फल** रोमश, लम्बा, और पतला । **सप्तपर्णत्वक्** तिक्त और ग्राहि है । अतिसार, उदर-कृमि, प्रवाहिकादि के अतिरिक्त यह विषम ज्वरों के सब प्रकारों में कुनीनवत् लाभकारी है । सन्तत ज्वरों को उतार देती है और अन्येद्युष्कादि को रोक देती है, जैसाकि कुनीन, परन्तु कुनीनवत् बाधिर्य, भ्रम, निद्रानाशादि उपद्रव नहीं करती । त्वक् (½ छटांक) को अष्टगुण जल में उबाल कर शेष ¼ पाव रख कर छान लो और यह **क्काथ** एक वा दो वार करके पिला दो । त्वक्चूर्ण का **फाण्ट** (Infusion) भी बना सकते हैं । मैनिला द्वीप में कुनीन का व्यवहार बन्द करके डाक्टर सरकारी हस्पतालों में सप्तपर्ण के **तिक्त सत्त्व** (Bitter principle) को, जिस का नाम Datain (or Ditain or Ditamine) है, ज्वर में प्रयोग कर रहे हैं । सप्तपर्णादि क्काथ कुष्ठ का प्रसिद्ध शास्त्रिक योग है । पत्र तोड़ने पर शाखा से तिक्त दुग्ध निकलता है, यह व्रणों पर लगाया जाता है । पत्रों की पुल्टिस व्रणों पर बांधी जाती है ।

(गुच्छेदार फूल आते हैं जिसको), बहुच्छद (बहुत पत्रों वा मोटी छाल वाला), बहुत्वचः (मोटी छाल वाला), छत्री (वृक्ष छत्राकार), शाल्मलीपत्रक (सिंबल के सदृश सात सात पत्र हैं जिसके), सप्ताह्व (सात नाम वाला), शारदः (शरदि विकसनशीलः), पर्णी (पत्रमय छायावान् वृक्ष), सुपर्णक (सुन्दर पत्रों वाला) ॥८५१॥

सप्तपर्णः कषायोष्णः सुस्निग्धो दीपनः सरः।
हृद्यो दोषकृमिश्वासकुष्ठगुल्मव्रणास्रजित् ॥८५२॥

२५०. कदम्बः[1]।

कदम्बको वृत्तपुष्पः पुलकी पर्वताह्वयः।
हलिप्रियः प्रावृष्यो नीपो गिरिकदम्बकः ॥८५३॥
कदम्बः शिशिरो ग्राही कषायो वर्णकृद्गुरुः।
निहन्ति योनिदोषास्रकृच्छ्रदाहविषव्रणान् ॥८५४॥
शीतवीर्यं तत्प्रवालं कषायं दीपनं लघु।
रक्तपित्तातिसारघ्नमरोचकविनाशनम् ॥८५५॥
अम्लं तस्य फलं रुच्यं वीर्योष्णं श्लेष्मलं गुरु।
पक्वं वातहरं साम्लं कफपित्तप्रकोपनम् ॥८५६॥

२५१. करञ्जः[2] (वृक्षकरञ्जः, नक्तमालः)।

Pongamia glabra. An ordinay evergreen tree. Oil stimulant, parasiticide, used in skin-diseases.	(हिं०) करंज, सुखचैन, (बं०) डहरकरंज, (म०) चापड़ी करंज, (गु०) चरेलकणसे करंज। सदाहरित साधारण वृक्ष। तैल उष्ण, पराशीघ्र, त्वग्दोषशामक।

---

१. कदम्ब की आकृति, नाम, गुणादि विस्तार पूर्वक पीछे अंक ६६ में लिख चुके हैं। यहां वृक्षवर्ग में श्रीकैयदेव ने पुनः उसके फलादि भागों का वर्णन विस्तरशः कर दिया है। वृत्तपुष्प (गोल फूलों वाला) कदम्ब का सुन्दर नाम है। कदम्ब के पक्व फल तनिक खट्टे होते हैं, और लोग कहीं २ उन्हें खाते हैं।

२. करञ्ज का छायावान् वृक्ष प्रायः सब जगह परन्तु समुद्रतट और आनूपदेश में बहुत मिलता है। शाखाबाहुल्य के कारण वृक्ष भूम्यभिमुख रहता है। पत्र अतीव चिक्कण, मृदु और हरित, आकृति में प्लक्षपत्रतुल्य। पुष्प आकाशवत् नील (Sky-blue), गुच्छाकार, वसन्तज। फल (शिम्बी-Pod), कठोर, पीताभ, चपटी, अण्डाकार। बीज एक शिम्बी में केवल १, २-३ अंगुल लम्बा। करञ्जपत्र वा वल्कल का जलपिष्ट कल्क दद्रु, पामा, कच्छू, कुष्ठ, पिड़िका, व्रणादि पर शोधनार्थ लगाया वा बांधा जाता है। एवं मूलस्वरस वा शुक्तपिष्ट बीज। बीजों के निष्पीड़न से घृततुल्य, ईषत्पीत, तिक्तरस, पूतिमय, घन स्नेह वा तैल निकलता है, इसे

करञ्जो नक्तमालः स्यान्नक्ताह्वो गुच्छपुष्पकः ।
घृतपूरः स्निग्धपत्रः प्रकीर्या पुष्पमञ्जरी ॥८५७॥
उदकीर्या पूतिपर्णः प्रकीर्णो मातृनन्दनः ।
पूतिकरञ्जः पूतिकः कैडर्यश्चिरबिल्वकः ॥८५८॥

पर्याय—नक्तमाल (रात्रि की माला–Night garland) नक्ताह्व (रात्रि नाम वाला), गुच्छपुष्पक (गुच्छेदार फूलों वाला), घृतपूर (घृततुल्य तैल से पूर्ण), स्निग्धपत्र (हरे चिकने पत्रों वाला), पुष्पमञ्जरी (फूलों की माला), पूतिपर्ण (दुर्गन्धमय पत्रों वाला), प्रकीर्ण (फैला हुआ-Spreading), मातृनन्दन (माता को प्रसन्न करने वाला), पूतिकरञ्ज (दुर्गन्धितैलयुक्त वृक्ष), पूतिक (दुर्गन्धित) ॥८५७–५८॥

करंजः कटुकः पाके रसे तिक्तकषायकः ।
कटुको गुणतस्तीक्ष्णो वीर्योष्णो विनिर्यच्छति ॥८५९॥
बलासपित्तकुष्ठार्शोमेहोदरव्रणकृमीन् ।
तत्पत्रं कटुकं पाके रसे दीपनपाचनम् ।
कफवातापहं शोफविषार्शःकृमिकुष्ठजित् ॥८६०॥

२५२. करञ्जिका[1] ।

उत्तुण्डकी काकतिक्ता शार्ङ्गष्टाङ्गारवल्लिका ।
कटुका वीर्यसीवल्ली[2](?) ध्वांक्षवल्ली करंजिका ॥८६१॥
करंजिका कटुः पाके सतिक्ता तुवरा कटुः ।
वीर्योष्णा ग्राहिणी हन्ति मेदःकुष्ठवमिकृमीन् ।
वीर्योष्णं तत्कुसुमं सतिक्तं कफवातनुत् ॥८६२॥

करंजतैल (Karanj Oil) कहते हैं। यह व्रणशोधनार्थ एवं सन्धिशूल पर अभ्यंगार्थ प्रयुक्त होता है। यह एक अच्छा कृमिनाशक तैल है। उसे गन्धक और कर्पूर आदि से मिलाकर सन्धिशोथ पर और निम्ब वा तुवरक तैल से मिलाकर व्रणों पर प्रयोग करते हैं। शास्त्रों में करञ्ज के अनेक प्रयोग लिखे हैं। करञ्जतैल बंगाल से बहुत मिल सकता है। **करञ्जपुष्प** मधुमेह में लाभकारी हैं। **करञ्जबीज** की माला काली खांसी (Whooping Cough) के प्रतिकारार्थ बच्चों के गले में डाली जाती है। **बीजचूर्ण** (१ माषा) मधुमिश्रित खिलाने से भी काली खांसी को लाभ पहुंचता है।

१. **करञ्जिका** वृक्षकरञ्ज से छोटी होती है, परन्तु आकारादि में कोई विशेष भेद नहीं। इस के अतिरिक्त करञ्ज के कई और भेद भी हैं, जिन का वर्णन यहां अनावश्यक है। उन सब का लेटिन नाम तथा गुण समान समझें॥

२. ब—वीर्यशीवल्ली ।

२५३. कण्टकरञ्जः[1] (लताकरञ्जः) ।

Caesalpinia bonducella.
A climbing prickly shrub.
Seeds bitter, antipyretic, tonic and anthelmintic.

(हिं०) करंजुआ, (बं०) नाटा करञ्ज, (म०) सागरगोटा, (गु०) काकाचिया, काकंचू । कांटेदार लतारूप झाड़ी । बीज तिक्त, ज्वरघ्न, रसायन, कृमिघ्न ।

वारुणास्तीरवाः कण्टकरञ्जस्तिरिगुच्छिका[2] ।
तिरिगुच्छी सतुवरा सतिक्ता सोष्णा जयेत् ।
बलासपित्तशोफार्शःशूलाध्मानव्रणकृमीन् ॥८६३॥

---

१. कण्टकरञ्ज की कांटेदार गुल्माकार (प्रतानवान्) और बहुवार्षिक (Perennial) लता सब जगह मिल जाती है और सुप्रसिद्ध है । यह प्रायः वृक्षाश्रित रहती है । **काण्ड** कठोर, काष्ठिक । **पत्र** गोल, क्षुद्र, शिरीषतुल्य और रोमावृत्त । **पुष्प** बृहत्, गन्धकवर्ण, मञ्जर्याकार (Racemes) ; **फल** (शिम्बी-Pod) गोलप्राय, चपटा, घनकण्टकावृत्त । **बीज** २ वा ३ एक शिम्बी में, गोल, कमलबीज-तुल्य, श्वेतश्याम । **बीजकोष** तोड़ने पर भीतर से श्वेत मज्जा निकल आती है, जिसे चूर्ण करके मधु से मिलाकर विषमज्वरों में दे सकते हैं । मात्रा— १-३ माषा । यह स्वाद में तिक्त है, और कुनीन की तरह विषम ज्वरों के भेद अन्येद्युष्क (Quotodian), तृतीयक (Tertian), और चातुर्थक (Quartan) के वेग (Onset) को रोकने में सफल हो जाता है । ज्वरकाल से पूर्व ही करञ्जबीज की २–३ मात्रा १–३ घंटे बाद दे देनी चाहिए । करञ्जचूर्ण के साथ कृष्ण मरिच, शुद्ध वत्सनाभ (मिठा तेलिया) तुलसीपत्रस्वरसादि द्रव्य मिलाकर उत्तम ज्वरनाशक गोलियां बना सकते हैं । करञ्ज और पलाश का चूर्ण उदरकृमि में दे सकते हैं । करञ्ज-बीजमाला गर्भरक्षार्थ स्त्रिएं पहना करती हैं । अग्निभ्रष्ट बीजचूर्ण मूत्रवृद्धि (Hydrocele) में खिलाते तथा एरण्डतैल में मिलाकर अण्डकोष पर लेप करते हैं । कोष्ण **पत्रकल्क** मद्रासी वैद्य मूत्रवृद्धि पर बान्धते हैं । **करञ्जतैल** (बीजनिष्पीड़न द्वारा प्राप्त) आक्षेपक (Convulsions), पक्षाघात (Palsy) आदि वातरोगों (Nervous Diseases) में अभ्यंगार्थ प्रयोग करते हैं । युवानपिड़िका (Pimples) तथा व्यंग (झांई) पर यह तैल मला जाता है । **करञ्जभेद**-शास्त्रों में प्रायः '**करञ्जद्वयमिति**' यह शब्द मिलता है, जिससे **वृक्षकरंज** महाकरञ्ज वा चिरबिल्व (अंक २५१) तथा **लताकरंज** वा कण्टकरञ्ज अभिप्रेत हैं । अंक २५२ में वर्णित भेद वृक्षकरञ्ज के अन्तर्गत समझें ।

२५४. शिरीषः[1] ।

Albizzia Lebbeck or Mimosa Sirisa.
A well-known large tree.
Seeds used in eye-diseases. Leaves and bark in skin-diseases.

(हिं०) सिरस, सिरीं, (बं)शिरीष गाछ, (म०) शिरसी,(गु०)शिरीस । सुप्रसिद्ध महान् वृक्ष । बीज नेत्ररोगों में, पत्र तथा वल्कल त्वग्दोषों में उपयोगी ।

शिरीषः कलिमो विष्लो मृदुपुष्पः कपीतनः ।
भण्डीरो मण्डिलो भण्डी प्लवगः शंखिनीफलः ।
शुकपुष्पः शुकतरुः श्यामवर्णः शुकप्रियः ॥८६४॥

पर्याय—कपीतन (पुष्प तनिक पीला),शुकपुष्प (शुकप्रिय पुष्प हैं जिसके)॥८६४॥

शिरीषो मधुरोऽनुष्णः सतिक्तस्तुवरो लघुः ।
निहन्ति दोषविसर्पशोफकासविषव्रणान् ॥८६५॥

२५५. देवशिरीषः[2] ।

चक्रेन्द्रको बदरकस्त्रिदशाह्वयसर्षपः ।
देवाह्वः सर्षपास्तिक्तस्तीक्ष्णो रूक्षः कटुर्लघुः ।
शिरोविरेचनो हन्ति कफपित्तानिलक्रमीन् ॥८६६॥

---

१. शिरीष सर्वत्र सुलभ और सुपरिचित । **पत्र** शीतकाल में पतनशील । **पुष्प** पीत, हरित, लोमशः, सुगन्धित । **फल** (शिम्बी–Legume) लम्बा, पतला, चपटा; **बीज** चपटे, गोल, पीताभ, ६–१० एक फली में । जलपिष्ट बीजों का **लेप** गण्डमाला कुष्ठादि में लाभकारी है । नक्तान्ध्य, तथा अन्य नेत्ररोगों वा विषों में इनका अंजन किया जाता है । बीज ग्राही, शुक्रवर्धक और रसायन हैं । **वल्कल** (मूलज वा काण्डज) का क्वाथ मसूड़ों को दृढ़ करता है । त्वक्चूर्ण दन्तमञ्जनों में डाल सकते हैं । पत्रों तथा त्वक् का उपनाह (Poultice) व्रणादि पर हितकर है । **पुष्प** भी शुक्रल हैं । चरक ने इसे "शिरीषो विषघ्नानां" कहा है—अर्थात् शिरीष विषघ्न द्रव्यों (Antidotes to poisons) में श्रेष्ठ है और इसी कारण से चरकादि ग्रन्थों के विषाध्यायों में शिरीषपञ्चकादि अनेक योग दिए गए हैं ।

२. देवशिरीष शिरीष का प्रकारान्तर है, जो इस समय इस नाम से नहीं मिलता । वैद्यक ग्रन्थों में भी इसका उल्लेख विरल है । वनस्पतिविशारदों ने शिरीष के यह भेद बताए हैं, (१) ऊपरोक्त (अंक २५४), (२) A. Odoratissima-सुगन्धित पुष्पों वाला शिरीश, (३)A. Julibrissin- पार्वतीय शिरीष । (४) A. amara–कृष्ण शिरीष, जो प्रायः बम्बे की ओर मिलता है । उपयोग साधारण शिरीषवत् ।

२५६. शिंशिपा[1] ।

Dalbergia Sissoo.

A large deciduous tree.

Oil useful in cutaneous affections.

(हिं०) सीसम, सिसु, (फा०) शीशम, (पं०) टाहली, (बं०) शिशु-गाछ, (म०) काला शिशवा (गु०) शिशम । महान् प्रसिद्ध वृक्ष, पत्र पतनशील । तैल त्वग्दोषनाशक ।

शिंशिपा पिच्छला कृष्णसारा मण्डलपत्रिका ।
महाश्यामाङ्गा ससारा कपिला गुरुसारिका ।
अन्या कुशिंशिपा भस्मपिंगला च वसादनी ॥८६७॥

पर्याय—पिच्छला (श्लेसदार पत्रों वाली), कृष्णसारा (काला अन्तर्दारु है जिस का), मण्डलपत्रिका (गोल पत्रों वाला), महाश्यामाङ्गा (अति कृष्ण काष्ठ वाली), ससारा (सारगर्भित, कठोर), कपिला (भूरी वा श्याम), गुरुसारिका (भारी काष्ठ वाली) । **प्रकारान्तर**—कुशिंशिपा (निकृष्ट शीशम), भस्मपिंगला (भस्मवत् पाण्डु), वसादनी (वसा को खाने वाली—Fat-dissolving—वसामेहनाशक) ॥८६७॥

शिंशिपा कटुका तिक्ता कषाया गर्भपातनी ।
उष्णवीर्या हरेन्मेहकफदाहवमिव्रणान् ।
शोफकुष्ठकृमिश्वित्रवस्तिरुक्पीनसानपि ॥८६८॥

---

१. **शिंशिपा** पश्चिमोत्तर भारत में अत्यधिक, परन्तु वंग एवं दक्षिण में विरल होती है । मद्रास प्रान्त में तो यह मिलती ही नहीं । शीत काल में पत्र झड़ जाते हैं । ग्रीष्म में वृक्ष घनी छाया करता है । **पत्रों** का पिच्छल क्वाथ सुज़ाक में दिया जाता है । पत्रों का उपनाह व्रणों पर करते हैं । काण्ड का अन्तर्भाग कृष्ण वा कपिल होता है । उसे खण्ड २ करके अन्तर्धूमविधि वा पातालयन्त्र (Destructive Distillation) द्वारा एक घन कृष्ण **तैल** (Black Sissoo Oil) प्राप्त होता है । यह चर्मदल (चम्बल) तथा अन्य कुष्ठभेदों के लिए बहुत लाभकारी है । यह तीक्ष्ण होने से एक अच्छा कृमिघ्न द्रव्य है, और व्रणों को लगता है । इस से मल्हमें बना सकते हैं । वङ्गसेन में **शिंशिपावलेह** नामक गृध्रसीनाशक एक सुन्दर योग दिया गया है । पंजाब में शिंशिपा अधिक मिलने से उसका व्यवहार गृहनिर्माण एवं कुर्सी आदि सामग्री बनाने में बहुत होता है । उसका काष्ठ बड़ा दृढ़ और कृमियों से सुरक्षित रहता है । कपिल और श्वेत शिंशिपा दो प्रकार की होती है ।

२५७. जलशिरीषः[1] ।

A marsh-loving variety of No. 254.

जलप्रिय शिरीष । (अंक २५४) का भेद

शिरीषिका ढिढिणिका दुर्बलाम्बुशिरीषिका ।
शिरीषी तुवरा वातकफमेदोविषापहा ॥८६६॥

२५८. अरिष्टकः[2] ।

Sapindus trifoliatus.
The Soap-nut tree.
A large deciduous tree.
Fruit pulp nauseant, emetic, purgative, abortive, expectorant, useful in hemicrania, snake-bite, etc.

(हिं०) रीठा, हरीठा, (बं०) रिटे गाछ, (म०) रिठा, (गु०) अरिठा । महान् वृक्ष, पत्र पतनशील । फल उत्क्लेशकारक, वामक, रेचक, गर्भपातक, कफनिष्कासक, अर्द्धावभेदक सर्पविषादि में उपयोगी ।

---

१. **जलशिरीष** जलासन्न स्थलों में मिलता है । वृक्ष शिरीष की अपेक्षा छोटा । हिन्दी नाम—ढांढोन ।

२. **अरिष्टक** उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण में अधिक मिलता है । **वृक्ष** निम्ब वा तुणी के तुल्य, परन्तु शाखाओं की विरलता । **पत्तियां** निम्ब के तुल्य कर्त्तित, २–३ जोड़े एक दण्डी पर । **फल** गुच्छों में लगते हैं । व्यवहार में प्राय: फलमांस (Pulp or Pericarp of Soap-nut) ही आता है, जो जल में मिलाने पर फेन देता है, जिसे वस्त्र, केशादि के धोने में काम लगाया जाता है । अरिष्टफल का घन विलयन (Thick Solution) बना कर प्रत्येक नासारन्ध्र में ४–५ बिन्दु छोड़ने से नासा से पुष्कल स्राव होता है (वा कभी २ नासा और मुख दोनों से); यह स्राव अर्धावभेदक (Hemicrania), श्वास, मूर्च्छा, योषापस्मार (Hysteria) आदि के वेगों को तुरन्त दूर कर के सुख पहुंचाता है । फलचूर्ण की नस्य भी दे सकते हैं । इस का धूप भी मूर्च्छा में कर सकते हैं । २–३ रक्ति की मात्रा खिला भी सकते हैं, जिस से वान्ति हो कर श्वासादि रोग दूर हो जाते हैं । यदि वान्ति न हो, तो इस से दस्त आ जाते हैं । यह पेट के कीड़ों को निकाल देता है । इस को वर्त्ती योनि में गर्भाशय के मुख पर रखने से गर्भपात हो जाता है । गर्भिणी स्त्री इस को खा ले, तो भी गर्भपात होने की सम्भावना है । इस को जल में घिस कर सर्प, वृश्चिक, शतपदी (Centipedes) आदि के दंश पर लेप करने से शूल नष्ट हो जाता है । इस का उपनाह (Poultice) भी कर सकते हैं । १–२ रक्ति गूदा शर्वत वा मद्य में देने से उदरशूल नष्ट हो जाता है । बीजमज्जा के निष्पीड़न से एक तैल निकलता है, जो बादाम रोगन के स्थान में व्यवहार हो सकता है । S. mukorossi (पं०—

रक्षाबीजः कुम्भबीजः पीतफेनोऽथ फेनिलः।
अरिष्टको गर्भपाती रक्तबीजोऽर्थसाधनः ॥८७०॥

पर्याय—रक्षाबीज (मंगलमय), कुम्भबीज (कुम्भाकार फल है जिसका), पीतफेन (पीली झाग वाला), फेनिल (फेनमय फल वाला—Foamy), अरिष्टक (रक्षाबीज, अच्छा बीज), अर्थसाधक (मंगलमय) ॥८७०॥

रक्तबीजः कटुः पाके तीक्ष्णोष्णो लेखनो लघुः।
दोषत्रयहरो गर्भपातनो ग्रहनाशनः ॥८७१॥

२५९. शमी[1]।

Prosopis spicigera. A small thorny tree. Pod astringent and edible as vegetable.	(हिं०) समी, छोंकर, (पं०) जंड, जंडी, (बं०) शाई गाछ, (म०) शमी, खैरी, (गु०) खिजड़ी। क्षुद्र कण्टकी वृक्ष। शिम्बी ग्राही, व्यञ्जनोपयोगी।

शमी लक्ष्मी शिवा शीता मंगल्या केशहृत्फला।
पवित्रपत्रा सवनी तुङ्गा सक्तुफलाऽपरा ॥८७२॥

पर्याय—शमी (शमनकारक), लक्ष्मी (शोभायुक्त), शिवा (मंगलकारी), शीता (सोमगुणात्मक), केशहृत्फला (केशनाशक फल है जिस का), पवित्रपत्रा (संस्कारों में पत्तों के व्यवहार के कारण), सवनी (यज्ञोपयोगी), तुंगा (ऊंची), सक्तुफला (सत्तु जैसे बीज होते हैं जिस के) ॥ ८७२ ॥

शमी तिक्ता कटुर्वनुष्णा कषाया रोचनी लघुः।
निहन्ति कफकुष्ठार्शःश्वासकासभ्रमकृमीन्।
तत्फलं स्वादु तीक्ष्णोष्णं मेध्यं केशघ्नं पित्तलम् ॥८७३॥

दार्दों) अरिष्ट का प्रकारान्तर है, जो पंजाब और उत्तर भारत में बहुत मिलता है।

१. **शमी** पंजाब, सिन्ध, गुजरातादि मरुदेशों में बहुत होती है। **पत्र** खदिर वा बब्बूल के पत्रों के तुल्य क्षुद्र। उस की मृदु फलियों का शाक पंजाब में बहुत व्यवहार होता है। यह ग्राही होने से अतिसार में लाभकारी है। फलियों का अचार भी पड़ता है। पक्व फली मधुर होने से कच्ची भी खाई जाती है। यह वृक्ष प्रजा को बड़ा प्रिय है। **शमीकाष्ठ** (जंड की लकड़ी) पंजाब में सर्वत्र ज्वलनार्थ काम आता है, परन्तु अब जंगलों के कट जाने से उस की उपलब्धि दिन प्रतिदिन कम हो रही है।

२६०. बब्बूलः[1] (किङ्किरातः)।

Acacia arabica.	(हिं०) बबूल, कीकर, (पं०) किक्कर, (बं०) बावला गाछ, (म०) बाभूल, (गु०) बावल।
A large spiny tree.	महान् कण्टकी तरु।
Bark, gum and leaves astringent.	वल्कल, निर्यास तथा पत्र ग्राही।

मालाफलोऽथ बब्बूलो युग्मकण्टो दृढारुहः।
कण्टकी सूक्ष्मपत्रश्च पीतपुष्पः कषायकः ॥८७४॥

पर्याय—मालाफल (इस के फलों की माला बना कर बच्चे क्रीड़ारूप पहनते हैं), युग्मकण्ट (दो काण्टे अधोभाग में एकत्र जुड़े रहते हैं), दृढारुह (दृढ तरु), कण्टकी (काँटेदार वृक्ष), सूक्ष्मपत्र (छोटे २ पत्रों वाला), पीतपुष्प (पीले फूलों वाला), कषायक (ग्राही) ॥८७४॥

बब्बूलस्तु कषायोष्णः कफकासामयापहः।

---

१. **बब्बूल** शमीप्रधान देशों में मिलता है। कहीं २ जलाशयों के इतस्ततः उस के झुंड के झुंड पाए जाते हैं। **पत्र** सूक्ष्म, शमी वा आमलकी के तुल्य, **फली** (Pod or Legume) लम्बी, ८–१० बीजों से युक्त। यह प्रसिद्ध Acacia जाती का वृक्ष है, जिस में खदिर (अंक २१४), शमी आदि सम्मिलित हैं। **बब्बूलवल्कल** स्थूल, तन्तुमय, और पिंगल वर्ण का होती है। कषाय रस (Tannic acid) के कारण यह प्रसिद्ध ग्राही द्रव्य है। इसे चमड़े के रंगने में बहुत व्यवहार किया जाता है। **पत्रकल्क** वा उस की ठंडाई अतिसार, ग्रहणी आदि में देते हैं। **बब्बूलनिर्यास** (कीकर का गोंद—Gum acacia) शुष्क कास (वात कास), पैत्तिक प्रतिश्याय, प्रवाहिकादि में देते हैं। यह ग्राही और स्रोतों की खरता को दूर करती है। बब्बूल की गोंद वर्ण में लाल होती है और अधिक काम नहीं आती। बाज़ार में जो श्वेत गोन्द (कीकर गोन्द के नाम से) मिलती है, वह वस्तुतः खदिरजातीय एक वृक्ष की गोंद है (देखो अंक २१५)। शीतकाल में लोग इस के लड्डू बना कर शुक्रवृद्धि तथा बलसन्धान के लिए खाते हैं। **वल्कलक्वाथ** से श्वेत प्रदर में योनि को पिचकारी द्वारा धो सकते हैं। यह क्वाथ गुदभ्रंश में भी गुदप्रक्षालन करने से लाभ करता है। व्रणों को भी इस से धो सकते हैं। आम फली को छायाशुष्क करके उस का चूर्ण द्विगुण शर्करा से मिश्रित (३–४ माषे) प्रातः गोदुग्ध के साथ खिलाने से शुक्रस्तंभन होता है। **श्वेत बब्बूल** (Acacia Leucophloea) बब्बूल का भेदविशेष है, जो पंजाब में बहुत मिलता है। **बब्बूलकाष्ठ** कठोरता एवं अल्पार्घता के कारण गृह, शकटादि के निर्माण में लगता है। बब्बूल की दातन दन्तदृढ़तार्थ सुप्रसिद्ध है।

आमरक्तातिसारघ्नः पित्तदाहार्शोनाशनः।
बब्बूलस्य फलं रूक्षं विशदं स्तम्भनं गुरु ॥८७५॥
इति वृक्षाः।

अथ सुरभिद्रव्याणि[1] (AROMATICS)

२६१. श्वेतचन्दनम्[2]।

Santalum album.	(हिं०) सफेद चन्दन, (पा०) सफेद सन्दल, (बं०) श्वेत चन्दन, (म०) चन्दन, (गु०) सुखड़।
Sandal-wood tree.	
A small evergreen tree.	क्षुद्र सदाहरित वृक्ष।
Bitter cooling, refrigerant, diuretic, astringent and sedative.	तिक्त, शीत, हृद्य, मूत्रल, ग्राही, सादक।

१. अन्य निघण्टुकारों ने सुगन्धित द्रव्यों को प्रायः **कर्पूरादि वर्ग** नाम देकर वर्णित किया है। **सुगन्ध** (Fragrance) ही उन का विशेष लक्षण है। इस सुगन्ध का कारण उन द्रव्यों में किसी न किसी प्रकार के उड्डनशील तैलविशेष (Volatile Oil) की विद्यमानता है, जो अधःपतन वा स्रवण (Distillation) द्वारा उन से पृथक् किया जा सकता है। यह वायुसम्पर्क से उड़ जाता है और उस के सूक्ष्म अदृश्य कणों से व्याप्त वायु हमारी नासिका में पहुंच कर सुगन्ध का कारण बनती है। इस तैल के अतिरिक्त जो द्रव्य शेष रहता है, वह प्रायः निर्वीर्य काष्ठ के समान होता है। यह सुरभि द्रव्य प्रायः रस में तिक्त, कटु, अग्निदीपन (Stomachic), पित्तस्रावि (Cholagogue) तथा वातानुलोमक (Carminative) होते हैं। वे आमाशय में पहुंच कर उस का अम्ल रस (Gastric Juice) निकालते हैं। मुख में उन से पुष्कल लालास्राव होता है। उन में से कुछ एक मूत्रल (Diuretic) और कुछ उत्तेजक (Stimulant), एवं कामदीपक (Aphrodisiac) होते हैं। वे प्रायः शरीर से मूत्र वा स्वेद द्वारा निकलते हैं। अन्त्रियों को उत्तेजना देकर उन का पाचनकार्य विधिपूर्वक कर देते हैं। ऐसे द्रव्यों का अधिक प्रयोग कोष्ठक्षोभ (Irritation) करता है, अतः उन्हें अल्प मात्रा में व्यवहार करना उचित है।

२. **श्वेत चन्दन** (वा रक्त चन्दन) के वृक्ष मलय देश के पर्वतों पर बहुत मिलते हैं। महीशूर (मैसूर) और बैंगलोर में श्वेत चन्दन की बड़ी मण्डियां और दुकानें हैं। महीशूर राज्य को इस से बहुत लाभ होता है। चन्दन वहां से बम्बे और बम्बे से भारत के अन्य भागों एवं फ्रांस, जर्मनी, अमरीका आदि को जाता है। वहां सड़कों पर प्रायः चन्दन ही लगा हुआ है। वृक्ष की आकृति शीशम के तुल्य

भद्रश्रियं मलयजं चन्दनं श्वेतचन्दनम् ।
भद्रश्रीर्मलयं गोशीर्षं शिशिरं हिमम् ।
श्वेतश्रेष्ठं गन्धसारं महार्हं तिलपत्रकम् ॥८७६॥

पर्याय—भद्रश्रिय (शुभ और सुन्दर), मलयज (मलय देश—Malabar-में होने वाला), शिशिर (शीतगुणप्रधान), श्वेतश्रेष्ठ (श्वेत चन्दन ही अन्य चन्दनों में श्रेष्ठ है), गन्धसार (मध्य दारु सुरभि होता है जिस का), महार्ह (बहु-मूल्य), तिलपत्रक (तिलक्षुप के पत्रों के समान पत्र हैं जिस के) ॥८७६॥

२६२. रक्तचन्दनम्[1] ।

Pterocarpus santalinus, Red Sandal wood.	(हिं०) लाल चन्दन, (बं०, म०) रक्त चन्दन, (गु०) रतांजली ।
A small smooth tree.	क्षुद्र हरित मसृण वृक्ष ।
Refrigerant, astringent, used in fever, headache bleeding etc.	हृद्य, ग्राही, ज्वर, शिरोऽर्त्ति, रक्तपित्तादि में उपयोगी ।

समझें, परन्तु **पत्र** लम्बे, नोकदार; **पुष्प** क्षुद्र, रक्ताभ; **फल** क्षुद्र, गोल, कृष्ण । चन्दन के पत्र, पुष्प, त्वक् वा काण्ड के बाह्य भाग से कोई सुगन्ध नहीं आता । जब वृक्ष को काट कर काण्ड का मध्यम भाग (Heart wood) प्राप्त किया जाता है, तब सुगन्ध आता है, अतः सड़कों पर लगे हुए चन्दन वृक्षों से सुगन्ध की कोई आशा नहीं रखनी चाहिए । दीर्घकालीन शुष्क वृक्षों के काण्ड नवीन वृक्षों की अपेक्षा अधिक सुगन्धित होते हैं । मूल में काण्ड की अपेक्षा अधिक तैल होता है । एक मन उत्तम चन्दन काष्ठ से ३ छटांक तैल निकलता है । **चन्दनतैल** (Sandal Oil) स्वच्छ, पीत वर्ण, और सुगन्धित होता है । यह उत्तम मूत्रल होने के कारण पूयमेह (Gonorrhoea) में बहुत दिया जाता है । मात्रा—५-१५ बिन्दु जल, शर्बत, खांड, मिश्री वा पतासा में मिला कर । विदेशी लोग इसे अन्य दो मूत्रल तैलों, (१) तैल कबाबा (Copaiba Oil), (२) तैल शीतल चीनी (Cub-eb Oil) से मिला कर काच की क्षुद्र शीशियों (Small bulbs) में भर कर रोगियों को सुज़ाक में देते हैं । एक शीशी में एक मात्रा होती है, जो शीशी का मुख तोड़ने पर निकल आती है । एवं लोग शर्बत बना कर एक बोतल में १०-१५ बिन्दु तैल (Sandal Scent) छोड़ने से चन्दन का शर्बत बना लेते हैं, परन्तु अच्छा शर्बत वह होगा, जो **चन्दनचूर्ण** (चन्दन का बूरा) उबाल कर बनाया जावे । चन्दनचूर्ण और गोक्षुर का क्वाथ सुज़ाक तथा अन्य प्रमेहों में लाभकारी है। **चन्दनलेप** शिरोऽर्त्ति, रक्तपित्त, पैत्तिक ज्वरादि में लाभकारी है । चन्दन के बीजों की पोटली स्त्रिएं योनि में रख कर गर्भपात कर लेती हैं । चन्दन की जातियों पर लेख आगे देखें ।

१. **रक्त चन्दन** का वृक्ष श्वेत चन्दन की अपेक्षा छोटा होता है । बहुधा

अन्यद्रक्तं रक्तसारं रञ्जनं हरिचन्दनम्।
ज्योतिः सोमं ताम्रसारं ताम्रद्रुः क्षुद्रचन्दनम् ॥८७७॥

पर्याय—रक्तसार (लाल काष्ठ वाला), रञ्जन (रंगने वाला), ज्योतिः (उज्ज्वल रक्त--Bright red), सोम (शीत), ताम्रसार (रक्तसार), क्षुद्र-चन्दन (छोटा चन्दन) ॥८७७॥

२६३. पीतचन्दनम्[1] (कालीयकं)।

कालीयकं पीतकाष्ठं पीतं नारायणप्रियम्।
मलयोत्थं पीतसारं तृतीयं वर्णकृद्धिमम् ॥८७८॥

पर्याय--कालीयक (कुछ काला वा श्याम), पीतकाष्ठ (पीली लकड़ी), नारायणप्रिय (विष्णु भगवान् वा तत्सम्प्रदाय को प्रिय), वर्णकृत् (कान्तिदायक), हिम (शीत) ॥८७८॥

२६४. कैरातचन्दनम्[2]।

नातिशीतं श्वेततमं कैरातं शिलोद्भवम् ॥८७९॥

शीशम से मिलता है। उस के पत्र भी शीशम की तरह गोल होते हैं। अन्तर्दारु रक्ताभ कृष्णवर्ण होता है जिसे बाज़ार में लाल चन्दन कहते हैं। यह शीतगुण प्रधान होने से ज्वर, रक्तातिसार, रक्तार्श, रक्तमेहादि में देते हैं। इस का क्वाथ अतिशीत दुग्ध से मिला कर पिलाने से यह रोग एवं रक्त प्रदर भी शान्त होता है। चन्दनादि लोहे पैत्तिक ज्वरों में, चन्दनासव पूयमेहादि में देते हैं। बाज़ार में रक्त चन्दन का चूर्ण (Scrapings or shavings) वा काष्ठ मिलता है। औषधों को यह प्रायः अपना रक्त वर्ण दे देता है।

२. **पीत चन्दन** (हिं०---पीला सन्दल, कलंबक, बं०—कलम्बा) श्वेत चन्दन की अपेक्षा कम सुगन्धित, अधिक पीत, परन्तु तनिक श्याम और खरस्पर्श। घिसने पर उस का लेप अच्छे पीत वर्ण का होता है। उड़ीसा में वैष्णव लोग इसी का लेप (तिलक) लगाते हैं, और इसी लिए इसे नारायणप्रिय वा हरिचन्दन कहा गया है। कुछ वैद्यों का अनुमान है कि यह चन्दन श्वेत चन्दन के वृक्ष का ही काष्ठ है, जो सुगन्धित भाग के बाहर होता है। इसे **'मलयोत्थ'** कहा गया है, परन्तु मलयदेश में रक्त और श्वेत चन्दन के अतिरिक्त पीत चन्दन का कोई वृक्ष नहीं मिलता। पीत चन्दन के लेप से व्यङ्गादि त्वग्दोष ठीक होजाते हैं। भावमिश्र ने इसे हरिचन्दन कहा है। परन्तु अन्य निघंटुकारों ने इसे पृथक् माना है।

१. **कैरातचन्दन** श्वेत चन्दन का ही भेद है, जो उस से कम श्वेत होता है। "(श्वेत) चन्दनं द्विविधं कैरातं शंबरं च"। एक **शम्बर** उसका एक और प्रकार है। और प्रमाण, "कैरातं बहलं गन्धं बल्यं शम्बरचन्दनम्"।

२६५. वर्वर चन्दनम्[1] ।

वर्वरोत्थं श्वेतवर्णं निर्गन्धं वर्वराह्वयम् ॥८८०॥

वर्वरचन्दन वर्वर नामक पर्वत पर होता है, उस का वर्णश्वेत और गन्ध नहीं होती ॥८८०॥

२६६. हरिचन्दनम्[2] ।

पीतकं पीतकाष्ठं च कृत्रिमं हरिचन्दनम् ॥८८१॥

हरिचन्दन पीली लकड़ी है, जो एककृत्रिम (Artificial) चन्दन है ॥८८१॥

सर्वचन्दनगुणाः ।

चन्दनं त्रिविधं[3] विद्याद्रक्तं पीतं पाण्डुरम् ।
आरक्तमुत्तमं चैव मध्यमं पीतकं तथा ॥८८२॥
पाण्डुरं तु त्वधरं प्रोक्तं गन्धयुक्तिविशारदैः ।
श्रेष्ठं मलयसम्भूतं यवनेषु च मध्यमम् ।
वर्वरेष्वधमं प्रोक्तं पाञ्चालयवनादिषु ॥८८३॥
सर्वाण्येतानि तुल्यानि रसतो वीर्यतस्तथा ।
स्वादने कटु शीतं च घर्षणे पीतमेव च ॥८८४॥

---

१. **वर्वरचन्दन** (वर्वरपर्वतज) श्वेत वर्ण, परन्तु गन्धरहित होता है । कहीं २ इसे 'सुरभि' कहा गया है ।

२. **हरिचन्दन** यहां कृत्रिम पीत चन्दन को कहा गया है, परन्तु अन्यत्र रक्त चन्दन का नाम भी हरिचन्दन लिखा है, और उसे दुर्लभ भी कहा है, "हरिचन्दनं तु दिव्यं तिक्तं हिमं तदिह दुर्लभं मनुजैः ॥" (राव० नि०) ॥

३. **चन्दनभेद**— चन्दन के ३ प्रसिद्ध भेद हैं (१) **श्वेतचन्दन**, (२) **रक्तचन्दन**, (३) **पीतचन्दन** (कालीयक) । इन के अतिरिक्त कैरात, शम्बर और वर्वर भेदों का भी उल्लेख है, जो श्वेत चन्दन के ही भेद समझने चाहिएं । पीत चन्दन भी श्वेत चन्दन का ही भेद है । **हरिचन्दन** कृत्रिम पीतचन्दन समझें । भावमिश्र ने **पत्रांग वा पतङ्ग** (हिं०—वकम काष्ठ) का उल्लेख करते हुए **"पतंगं रक्तरूपं च सुरंगं रंजनं तथा । पट्टरंजकमाख्यातं पत्तूरं च कुचन्दनम् ॥"** उसे रक्तसार, कुचन्दन (कुत्सित वा अधम चन्दन), पत्तूरादि नाम दिए हैं । पत्रांग चन्दन बकम काष्ठ नाम से मिल जाता है । यह आकृति में रक्त चन्दन के तुल्य होता है । दोनों को एकत्र रखने से पृथक् कर लेना कठिन है, परन्तु पतंग वर्ण में कुछ हलका और निर्गन्ध होता है और रक्त चन्दन जलाने पर गन्ध देता है । वस्तुतः **आरक्तमुत्तमं** लाल चन्दन को सर्वोत्तम कहने का कारण यही है, कि उसमें गन्ध आनी चाहिए, क्योंकि धन्वन्तरि निघण्टु में यह पाठ 'अन्यल्लोहितं महागन्धं' सिद्ध करता है, कि रक्त चन्दन महागन्धि होता है । सम्भव है कि बाज़ारी लाल चन्दन पतंग ही हो । पतंग से उज्ज्वल रक्तवर्ण प्राप्त होता है, जो पट्टादि रंगने के काम आता है । **वास्तविक रक्तचन्दन मिलता ही नहीं ।**

छेदने रक्तवर्णं च श्रेष्ठं चन्दनमुच्यते ।
अत्रापि चोत्तमं विद्याद्ग्रन्थिकोटरसंयुतम् ॥८८५॥

पाण्डुर—श्वेत । **अधमं**–निकृष्ट । **गन्धयुक्तिविशारदैः**–गन्ध और योजना (प्रयोग) में निपुण । **स्वादने**–स्वाद वा रस में । **शीतं**–वीर्य में शीत । **घर्षणे**–कषे, घिसने में । **छेदने**–काटने में । **ग्रन्थि०**–पुराना वृक्ष जो ग्रन्थियों और कोटरों (Holes) से युक्त हो, उसका चन्दन उत्तम होता है ॥८८५॥

आर्द्रशुष्कच्छिन्नचन्दनगुणाः[1] ।

आर्द्रच्छिन्नं पित्तहरं शुष्कच्छिन्नं तु वातनुत् ।
आर्द्रशुष्कं तु यच्छिन्नं तच्च श्लेष्महरं परम् ॥८८६॥

आर्द्रच्छिन्न—गीला वा जीवित वृक्ष कटा हुआ । **शुष्कच्छिन्न**—शुष्क वा मृत वृक्ष कटा हुआ । **आर्द्रशुष्कं**—गीला परन्तु शुष्कतुल्य, मध्यम अवस्था ॥८८६॥

चन्दनसामान्यगुणाः ।

सतिक्तं चन्दनं सर्वं रूक्षं स्वादु हिमं गुरु ।
तृष्णादाहास्रपित्तघ्नं क्लमशोषविषापहम् ॥८८७॥

विशिष्टगुणाः[2] ।

भद्रश्रियं हिमं तिक्तं हृद्यमाह्लादनं लघु ।

---

१. कहीं २ यह उल्लेख मिलता है, "**चन्दनं द्विविधं प्रोक्तं वेट्टसुकड़िसंज्ञकम् । 'वेट्ट' तु सार्द्रविच्छेदं स्वयं शुष्कं तु सुकड़ि ॥ १ ॥ मलयाद्रिसमीपस्थाः पर्वता वेट्टसंज्ञकाः । तज्जातं चन्दनं यत्तु वेट्टवाच्यं क्वचिन्मते ॥ २ ॥ 'वेट्ट' चन्दनमतीव शीतलं दाहपित्तशमनं ज्वरापहं । छर्दिमोहतृषाकाष्ठतिमिरोत्कासरक्तशमनं च तिक्तकम् ॥ ३ ॥ 'सुकडि' चन्दनं तिक्तं कृच्छ्रपित्तास्रदाहनुत् । शैत्यसुगन्धदं चार्द्रं शुष्कं लेपे तदन्यथा ॥ ४ ॥**" **वेट्ट** के दो अर्थ यहां दिए गए हैं, **(१) आर्द्रच्छिन्न चन्दन** को वेट्ट कहते हैं, **(२) वेट्टपर्वतज** चन्दन भी वेट्ट चन्दन कहलाता है । इन श्लोकों में वही भाव दर्शाया गया है, जो ऊपर श्लोक ८८६ में अभिप्रेत है । चन्दन वृक्ष की आयु प्रायः ५० वा ६० वर्ष होती है । तैलमात्रा आयु के अनुसार बढ़ती जाती है । सुपुष्ट और परिपक्व चन्दन में तैल अधिक होगा और क्षीण तथा आम चन्दन में कम ।

२. '**चन्दनं रक्तचन्दनं**' (भाव० निघंटु–भेषजसंकेत)—अर्थात् जहां ग्रन्थों में चन्दन शब्द आवे, वहां रक्त चन्दन ग्रहण करना चाहिए । यह मत ठीक प्रतीत नहीं होता । यदि वास्तविक सुगन्धित रक्त चन्दन मिल जावे, तब तो कोई हानि नहीं, परन्तु निर्गन्धि रक्त चन्दन, जो आज कल मिलता है, वह सब जगह डालना ठीक नहीं । चन्दनासवादि मूत्रल योगों में श्वेत चन्दन डालना अधिक लाभदायक होगा । ज्वरनिवारक वा रक्तस्तंभक योगों में रक्त चन्दन (पत्रांग ?) डाल सकते हैं ।

वर्ण्यं बलासपित्तघ्नं दाहतृष्णाविषप्रणुत् ॥८८८॥
रक्तसारं गुरु स्वादु चक्षुष्यं शुक्रलं हिमम्।
किञ्चित्तिक्तं ज्वरच्छर्द्दितृष्णापित्तास्रनाशनम् ॥८८९॥
भद्रश्रियं—श्वेत चन्दन। रक्तसारं—रक्त चन्दन ॥८८८-८९॥

२६७. अगुरुः[१] (अगरुः) ६

Aquilaria Agallocha.
Eagle wood.
A tall evergreen tree.
Wood and Oil stimulant, nervine tonic and Cholagogue.

(हिं०, म०, गु०) अगर, (बं०) अगुरु।
उच्च सदाहरित वृक्ष।
काष्ठ तथा तैल उष्ण, मेध्य रसायन, पित्तस्रावि, वा पित्तवर्धक।

कृष्णागुरुः श्रेष्ठवृक्षो जोङ्गकं विश्वरूपकम्।
अगुरु प्रवरं लोहं कृमिजग्धमनार्यकम्।
राजार्हं तच्च मलिनं कालेयं शीर्षकं लघु ॥८९०॥

पर्याय—कृष्णागुरु (काला अगर), श्रेष्ठवृक्ष (उत्तम वृक्ष), विश्वरूपक (नाना रूप), अगुरु (न गुरु, लघु, वा अतिशयेन गुरु "पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्" इति पा० सू०), प्रवर (श्रेष्ठ), लोह (लोहवत् गुरु वा श्याम), कृमिजग्ध (कृमियों से खाया हुआ), अनार्यक (अनार्य देशों में होने वाला), राजार्ह (राजाओं के योग्य), कालेय (काला) ॥८९०॥

कृष्णागुरुः कटुस्तिक्तस्तीक्ष्णोष्णः पित्तलो लघुः।
कर्णाक्षिरोगत्वग्दोषशीतवातकफप्रणुत्।
कृष्णं प्रधानमगरु लोहवन्मज्जते जले ॥८९१॥

अगरुपरीक्षा—कृष्णं प्र०—प्रधान वा गुणाढ्य अगरु वह होता है, जो लोह धातु की तरह जल में डूब जाय ॥८९१॥

---

१. अगरु के विशाल वृक्ष आसाम, भोटान, खासिया पर्वत, तथा शान्त महासागर (Pacific Ocean) के द्वीपों में बहुत होते हैं। मैंने दो तीन वृक्ष लंका में देखे हैं। **पत्र** कोमल, अण्डाकार, नोकदार; **पुष्प** श्वेत, क्षुद्र। **फल** अमरूदतुल्य, मृदु। जीर्ण वृक्षों के आभ्यन्तरिक भाग में श्याम वर्ण, गुरु, काष्ठ मिलता है, जिस के इतस्ततः निर्यासवत् पदार्थ रहता है। यह काष्ठ मधुगन्धि होता है। इसी का नाम ही **अगुरु** है। यह सब वृक्षों में नहीं मिलता। लोगों को पर्याप्त अन्वेषण करने के बाद यह प्राप्त होता है। इसे निकाल कर कोटर में पुनः मट्टी भर दी जाती है। कुछ वर्षों के पश्चात वहां अगुरु मिल जाता है। इसी कारण से अगरु को '**कृमिज**' वा '**कृमिजग्ध**' कहा गया है। नवीन वृक्षों से अगुरु नहीं मिलता। इस कठिनता से ही इसे **राजार्ह** कहा गया है। जो बाज़ार में भूरा सा काष्ठ मिलता

२६८. तगरम्[1] ।

तगरं कुटिलं जिह्मं नतं कालानुसार्यकम् ।
वर्हिष्ठं वर्हिणं वक्रं शठं च नहुषं नृपम् ॥८९२॥

अपरं दण्डमातङ्गं कुञ्चितं च महोरगम् ।
कटुकं पिण्डतगरं दीनं कालानुसारिवा ॥८९३॥

है, वह श्रेष्ठ अगुरु नहीं, प्रत्युत अगुरुकाष्ठ वा कुछ और । **अगरुभेद**–शास्त्रों में कृष्णागुरु, काष्ठागुरु, दाहागुरु और मंगलागुरु का वर्णन मिलता है, परन्तु इनके परस्पर भेद का उल्लेख नहीं दिया, तथापि कृष्णागुरु के विषय में यह लिखा है, "**कृष्णं गुणाधिकं तत्तु लोहवद्वारि मज्जति ।**" (भाव०) । यह वर्ण में काला और लोहवत् गुरु समझना चाहिये, यह ही सर्वोत्तम है, परन्तु इसका मिलना कठिन है । **उत्तमागुरुपरीक्षा**–जो काला हो, लोहवत् जल में डूब जावे, दांतों में चबाने से चपट जावे, जल्दी पीसा जावे, और जिसका चूर्ण जलाने के बिना वैसे भी सुगन्ध दे, वह उत्तम समझना चाहिए । अगुरु का लेप दद्रु, कुष्ठ, सन्धिशूलादि पर किया जाता है । सुगन्धार्थ इसे धूपों वा हवन सामग्री में डालते हैं । इस का चूर्ण (२–३ माषे) वा क्वाथ देने से वातकफात्मक रोग श्वास, शीतवातादि नष्ट हो जाते हैं । **अगरुस्नेह** (अगर का अत्तर–Scent) बहुत सुगन्धित होता है । त्वक् पर लगाने से दाह करता है । ४–५ बिन्दु पतासा में डाल कर खाने से श्वास का वेग दूर हो जाता है । यह उत्तम उत्तेजक है ।

१. **तगर** पंजाब में एक पिंगलवर्ण काष्ठ सा होता है, बंगदेश में निर्गन्ध तृणवत् पदार्थ, जिसे बंगाली वैद्य **तगरपादुका** कहते हैं और जो जलाशयों में उत्पन्न एक जलपादप की मूल है; मद्रास में एक सुगन्धि ग्रन्थिवत् द्रव्य मिलता है, जो किसी पादप की मूल है । कहीं २ श्वेत सुगन्धि पुष्पों वाले क्षुप को तगर कहते हैं, जिन के पुष्पों का नाम तगरपुष्प है । एवं स्थानभेद से तगर भिन्न २ मिलता है । शास्त्रों में तगर के दो भेद तगर और पिण्डतगर कहे गए हैं । पंजाबी तगर में कुछ गन्ध है, और मलयी तगर मुझे उत्तम प्रतीत होता है, परन्तु वह इधर मिलना कठिन है । बंगाली तगरपादुका निर्गन्ध और निःसार होने से व्यर्थ सा द्रव्य है । क० उमेशचन्द्र ने वैद्यक शब्दसिन्धु में तगरपादुका को Tabernaemontana coronaria नाम दिया है । यह जलपादुका नहीं, प्रत्युत एक क्षुद्र वृक्ष वा झाड़ी का नाम है, जो पीत करवीर के तुल्याकार और क्षीरी तरु है । उस के किसी भाग में लेशमात्र गन्ध नहीं । श्री शालिग्राम ने Valeriana Hardwickii नाम दिया है । यह जटामांसीतुल्य क्षुप है । इस की मूल तद्वत् सुगन्धित है । यह क्षुद्र मृदु क्षुप (Herb) काश्मीर देश में मिलता है । कुटिलादि लक्षण मलयी तगर में मिलते हैं ।

पर्याय—कुटिल (वक्र, टेढ़ा), जिह्म (कुटिल), नत (वक्र, कुटिल), कालानुसार्यक (कृष्ण सार वाला), कुञ्चित (वक्र, नत) ॥८६२-३॥

तगरं कटुकं तिक्तं कटुपाकरसं लघु।
स्निग्धोष्णं तुवरं भूतमदापस्मारनाशनम्।
विषचक्षुःशिरोरोगरक्तदोषत्रयापहम् ॥८६४॥

२६९. कर्पूरः[1]।

Camphor is obtained from Cinnamomum camphora, which is a big evergreen tree. Stimulant, anodyne, aphrodisiac, diaphoretic and local anaesthetic.

(हिं०, गु०) कपूर, (फा०) काफूर, (बं०) कप्पूर, (म०) कापूर। एक विशाल सदाहरित वृक्ष से प्राप्त श्वेत सुरभि द्रव्य। उत्तेजक, वेदनाहर, शुक्रल, स्वेदल, स्थानिक संज्ञाहर।

---

१. **कर्पूर** (Camphor) सुप्रसिद्ध स्वच्छ, सुगन्धित (Aromatic) द्रव्य है, जो आजकल चतुष्कोण स्फटिकों (Rectangular Crystals) वा स्थूल विषम खण्डों (Big irregular masses or Flowers of Camphor) के रूप में मिलता है। यह दोनों प्रायः ससते हैं और चीन वा जापान से आते हैं, इन्हें **'चीन कर्पूर'** संज्ञा दे सकते हैं। यह पक्व वा विशुद्ध (Purified) कर्पूर है। शोधन ऊर्ध्वपातन (Sublimation) विधि द्वारा किया जाता है। जापान में उस के अनेक कारखाने हैं। शोधन से पूर्वावस्था का नाम अपक्व वा अविशुद्ध कर्पूर (Impure Camphor) है, जो दानेदार वा पिण्डाकृति होता है। उसमें जल की मात्रा रहती है, जो शोधनकाल में निकल जाती है। रंग भी श्वेत नहीं होता। जापान का अपक्व कर्पूर चीन के अपक्व कर्पूर से अधिक शुष्क होता है। अपक्व कर्पूर यहां नहीं मिलता। दूसरा प्रसिद्ध कर्पूर जो इस समय मिलता है, वह बोर्नियो तथा सुमात्रा द्वीपों से आता है, अतः उसे **बोर्नियो कर्पूर** (Borneo Camphor) कहते हैं। यह क्षुद्र श्वेत स्फटिकों (Small white crystals) के रूप में मिलता है और जापानी कर्पूर से अधिक महंगा है, ॥।=) वा १) तोला। मद्रासी लोग इसे भीमसेनी कर्पूर कहते हैं। बंगाली वैद्य जापानी स्थूलखण्ड कर्पूर (दो आने तोले वाले) को भीमसेनी कर्पूर कहते हैं। वैद्य प्रायः इसी को औषधों में डालते हैं। जापानी वा चीनी कर्पूर Cinnamomum Camphora नामक वृक्ष (कर्पूर वृक्ष) से प्राप्त होता है। यह वृक्ष पर्याप्त विशाल होता है, दूर से शीशम के तुल्य नज़र आता है। इस के पत्रों को मसलने से कर्पूर का गन्ध आता है। यह भारत में कहीं २, परन्तु जापान वा चीन में बहुत होते हैं। लाहौर में भी कुछ वृक्ष हैं। बोर्नियो कर्पूर एक अन्य वृक्ष (Dryobalanops aromatica) से प्राप्त किया जाता है, जो सुमात्रादि द्वीपों में बहुत होता है। **कर्पूरप्राप्तिविधि**—कपूरानुवेषक गण पुरातन कर्पूरवृक्ष

कर्पूरो हिमश्चन्द्राख्यो भूतीको हिमबालुका।
शीताभ्रः शीतलरजो घनसारो हिमोपलः।
मुक्ताफलं तु राजार्हः स्फटिकः स्फटिकोपलः॥८९५॥

पर्याय—हिम (शीत वीर्य), चन्द्राख्य (श्वेतता के कारण चन्द्र संज्ञा वाला), शीताभ्र (ठण्डे बादल), शीतलरजः (शीत कण), घनसार (बादलों

के काण्ड में छेद कर देते हैं, यदि इसी छिद्र से एक तैलविशेष (कर्पूर तैल) निकल आवे, तो उस वृक्ष से कर्पूरप्राप्ति की सम्भावना हो सकती है। यह तैल भी काम आता है। पुनः वृक्षकाण्ड को खण्ड २ करके भीतर से कर्पूरखण्ड निकालते हैं। पुनः इसे शुद्ध किया जाता है। कर्पूरमात्रा—१ से ३ रक्ति तक। उचित मात्रा में कर्पूर भक्षण करने से हृदय, फुप्फसों और जननेन्द्रिय को उत्तेजना मिलती है, परन्तु कुछ काल के पश्चात् इस का प्रभाव सादक (Depressive) है। यह रजःकृच्छ्र को दूर करता है, और स्वेदल है। कभी २ इस के प्रभाव से मूत्रकृच्छ्र हो जाता है। यदि कर्पूर अधिक मात्रा (१–२ माषे) में खिला दिया जावे, तो वह कोष्ठक्षोभक विष (Gastro-intestinal Poison) की तरह काम करता है। गल रुद्ध हो जाता है। हृदय सन्न हो कर शीत स्वेद आने लगता है। हाथ पाओं ठण्डे हो जाते हैं, आक्षेप, मूर्च्छा और मृत्यु हो जाती है, अतः कर्पूर उचित मात्रा में व्यवहार करना चाहिए। चन्द्रोदय रस, चन्द्रप्रभा, चन्द्रकलारस आदि में कर्पूर (चन्द्रसंज्ञक) उत्तेजनार्थ डाला जाता है। यह ग्राही भी है, एतदर्थ कर्पूर रस, कर्पूरासवादि में डालते हैं। कर्पूर और अहिफेन दोनों मिलकर कास, श्वास, अतिसार, वमन, शूल, अनिद्रादि अनेक रोगों में दे सकते हैं। कृमिदन्त में कर्पूर भर देने से शूल दूर हो जाता है। कर्पूर मद्यसार (Alcohol) में शीघ्रता से घुल जाता है। यह विलयन ५–१० बिन्दु जल में डाल कर पिलाने से विषूचिका, अतिसार, शूलादि में लाभ पहुंचता है। कर्पूर तिलतैल में चतुर्थांश (¼ भाग) घुल सकता है। तैल को पूर्व गरम कर लेना चाहिए। कर्पूरमिश्रित तैल सन्धिशूल, पार्श्वशूलादि में अभ्यङ्गार्थ प्रयोग कर सकते हैं। तारपीन के तैल (Turpentine) में अर्द्धांश कर्पूर विलीन हो जाता है। एला वा लवंग तैल में इसे घोल कर रुमाल पर कुछ बिन्दु छिड़ककर सूंघने से प्रतिश्याय दूर हो जाता है। उसे अहिफेन से मिला कर शिरोऽर्त्ति में लेप कर सकते हैं। सद्योव्रण में कर्पूर भर सकते हैं। वटक्षीर में कर्पूररजः मिला कर नेत्र में लगाने से शुक्र नामक नेत्ररोग नष्ट होता है (वंगसेन)। कृष्णाञ्जन में घिसने से वह बड़ा शीतल हो जाता है। अश्रुस्राव हो कर नेत्र ठण्डा हो जाता है। कर्पूर कुचले के विष को दूर करता है। कर्पूर के गन्ध से वस्त्रादि पदार्थ कीटों से सुरक्षित रह सकते हैं। शुक्तपिष्ट कर्पूर सर्प, वृश्चिकादि के दंश पर लगाया जाता है। पाश्चात्य चिकित्सा में भी कर्पूर ने प्रधान स्थान लिया हुआ है। उसे टिंकचर (Tincture), अर्क (Aqua) आदि अनेक रूपों में बरता जाता है।

जैसा), हिमोपल (हिमतुल्य खण्डों वाला)। जो कर्पूर मोतियों के तुल्य श्वेत स्फटिकाकार (Crystalline) हो, वह राजार्ह (राजा के योग्य) है ॥८९५॥

कर्पूरो मधुरस्तिक्तः सुरभिः शीतलो लघुः।
चक्षुष्यो लेखनो वृष्यः कफमेदोविषापहः।
दाहतृष्णास्यवैरस्यमलदौर्गन्ध्यनाशनः ॥८९६॥

अपक्वकर्पूरजातयः[1]।

ईशावासो हिमसंज्ञः पोताश्रय इति त्रिधा।
अपक्वे कथ्यन्ते भेदाः कर्पूरे तु भिषग्वरैः ॥८९७॥

---

१. कर्पूरभेद—नव्यमतानुसार कर्पूर दो प्रकार के हैं, जापान कर्पूर तथा बोर्नियो कर्पूर, जिन के सम्बन्ध में ऊपर लिख चुके हैं। विलायत से अब कृत्रिम कर्पूर भी आ गया है, जो ऐन्द्रियक रसायन (Organic Chemistry) की सहायता से बनता है, जैसा कि कृत्रिम नील, मंजीठा रंग, शर्करा आदि अनेक द्रव्य। श्री भावमिश्र ने कर्पूर के दो प्रकार कहे हैं–पक्व और अपक्व, "**कर्पूरो द्विविधः प्रोक्तः पक्वापक्वभेदतः। पक्वात्कर्पूरतः प्राहुरपक्वं गुणवत्तरम्।**" (भा० नि०) राजवल्लभ ने भी यही दो प्रकार माने हैं। धन्वन्तरि निघंटु में भेदों का उल्लेख ही नहीं। भावमिश्र ने एक कृत्रिम कर्पूर **चीनसंज्ञक** माना है। श्री कैयदेव ने पक्वापक्व भेद मानकर उनके पुनः ईशावासादि भेद कहे हैं और उनका लक्षण भी थोड़ा बहुत कह दिया है (देखो ऊपर मूल पाठ)। राजनिघंटु ने १४ प्रकार कहे हैं। "पोतासो भीमसेनस्तदनु शितकरः शङ्करावास(ईशावास)संज्ञक। पांशुःपिञ्जोऽब्दसारस्तदनु हिमयुता बालुका (हिमबालुका) जूटिका च। पश्चादस्यास्तुषारस्तदुतरि सहिमः शीतलः पक्विका च। कर्पूरस्येति भेदा....."(राजनिघंटु) आगे चलकर पुनः उसके ३ भेद कहे हैं।"शिरो मध्यं तलश्चेति कर्पूरस्त्रिविधः स्मृतः।" (राजनिघंटु) । इनके लक्षण भी कहे हैं। प्रतीत होता है कि जो कर्पूर ऊपर वा पूर्व प्राप्त होता था, उसे उत्तम समझ कर **शिरः** (First Class) कहते थे, दूसरे को **मध्यम** (Second Class) और अधोगत वा निकृष्ट को **तल** (Third Class)। वा वृक्ष के शिखरभाग से जो प्राप्त हो, वह **शिरः** और स्तम्भमध्य से **मध्यम** और अधोभाग वा पर्णादि से प्राप्त **तल** (पर्णतले तलम्)। ईशावासादि संज्ञाओं का पूर्णवृत्तान्त न मिलने से और उनकी इस समय प्रसिद्धि न होने से उनको समझना कठिन है। प्राचीन काल में इतने भेदों का कारण मुझे यह प्रतीत होता है, कि उस समयकर्पूरनिर्माण की कोई निश्चित विधि न थी, जिससे कि एक जैसा कर्पूर आजकल की तरह प्राप्त हो सकता। भिन्न २ विधियों के अनुसार बनने से उनकी आकृति वर्णादि में भेद आ जाता था, जिससे उसके अनेक नाम लोगों ने रख दिए। श्री शालिग्रामजी ने लिखा है, "**उत्तम कर्पूर केले के अन्दर से निकलता है।**" न जाने कौन सा कर्पूर देने वाला केला आपको मिला था।

अपक्व कर्पूर की ३ जातियां हैं, (१) ईशावास, (२) हिमसंज्ञक, और (३) पोताश्रय(पोतास) ॥८६७॥

तल्लक्षणानि।

ईषावासो भृशश्वेतो हिमसंज्ञस्तु पाण्डुरः।
श्वेतः पोताश्रयः सर्वे रसवीर्यविपाकतः ॥८९८॥
प्रभावेनापि ते प्रोक्ता पूर्वं पूर्वं गुणाधिकाः।
तत्रापि यश्च क्षुद्रः स्यात्स्फटिकाभः स उत्तमः ॥८९९॥

ईशावास (उत्तम गन्धवाला) कर्पूर अत्यन्त श्वेत होता है, हिमसंज्ञक पाण्डु (धूसर), और पोताश्रय (पोतास) साधारण श्वेत। यह तीनों रस, वीर्य विपाक और प्रभाव से यथापूर्व गुणों में श्रेष्ठ हैं। उनमें भी जो सूक्ष्म स्फटिकाकार हो, उसे उत्तम जानना चाहिए ॥८९८-९९॥

ईसावासकर्पूरगुणाः।

ईसावासो मदोन्मादश्रमतृष्णाङ्गदाहनुत्।
कृमिकासक्षयस्वेदहरो भेदी वृषत्वकृत्।
तृड्दाहमोहशमनः स्वेदलः कटुको रसे ॥९००॥

हिमसंज्ञककर्पूरगुणाः।

वृष्यश्च धवलः शीतः कर्पूरो हिमसंज्ञकः ॥९०१॥

पोताश्रयकर्पूरगुणाः[1]।

पोताश्रयस्तु कर्पूरस्तृष्णादाहास्रपित्तनुत्।
श्लेष्मघ्नः शीतलो वृष्यः सस्वादुः कटुतिक्तकः ॥९०२॥

पोताश्रय—क्षुद्र आशयों वा स्फटिकों वाला (पोत—क्षुद्र, शिशु) ॥९०२॥

पक्वकर्पूरभेदाः।

पक्वस्तु द्विविधः प्रोक्तः सदलो निर्दलस्तथा ॥९०३॥

पक्वकर्पूर दो प्रकार का है, (१) सदल-स्फटिकाकार (Crystalline), (२) निर्दल चूर्ण वा विषमाकार (Irregular Masses or Flowers of Camphor) ॥९०३॥

---

१. **पोताश्रय कर्पूर** को श्री उमेशचन्द्र ने **भीमसेनी कर्पूर** माना है—अर्थात् बोर्नियो कर्पूर (Borneo Camphor) जो D. aromatica से सुमात्रादि में प्राप्त किया जाता है। प्रमाणरूप से उन्होंने "पोतासो भीमसेनस्तदनु सितकरः।" (राजनि०) लिखा है। वस्तुतः पोतास और भीमसेन कर्पूर एक नहीं। मद्रासी लोग भी बोर्नियो कर्पूर को भीमसेनी कर्पूर कहते हैं। भीमसेनी सुरमा, जो आजकल विज्ञापनशील लोग बेच रहे हैं, उस का भीमसेनी कर्पूर से कोई सम्बन्ध नहीं। वह कोई प्रसिद्ध शास्त्रोक्त योग नहीं। सम्भव है कि भीमसेनी कर्पूर वा साधारण कर्पूर उसमें डालने से यह नाम दिया गया हो। कर्पूर चक्षुष्य (नेत्रहित) है।

दृढश्च पीतवर्णश्च विशेषाल्लघुतां गतः ।
भास्करो विशदः श्लेष्मवातघ्नौष्ण्यश्रियावहः (?) ॥६०४॥
स कटुः कृमिकण्डूघ्नः सरो मेदोविषापहः ।
कासश्वासगलग्रहसुप्तजिह्वत्वनाशनः ।
जलस्रुतिं[1] कृमीन् हन्ति दीपनः पित्तकोपनः ॥६०५॥

विशेषाल्लघुतां गतः–विशेष करके लघुता को प्राप्त हुआ २, अत्यन्त लघु। भास्कर-उदयभास्कर कर्पूर (सूर्यवत् उष्ण तथा पीताभ) । श्लेष्मवात०–श्लेष्मवातघ्न औष्ण्य-श्रियावहश्चेति–वातकफनाशक तथा अग्निकर और श्रीद (सुखद) । जलस्रुति-जलस्राव, लालास्राव (Salivation) ॥ ६०४-५ ॥

पर्णकर्पूरगुणाः[2] ।

तिक्तः शुद्धिकरो मूत्रकरश्चोन्मादकारकः ।
पीनसं नाशयत्येव कर्पूरः पर्णसंज्ञकः[3] ॥९०६॥

पर्ण (पान) कर्पूर कोष्ठशोधक, मूत्रल, और उन्मादकारक है ॥ ६०६ ॥

चीनकर्पूरगुणाः[4] ।

चीनाकः कृत्रिमः सर्वव्याधिजन्मैककारणम् ।
कुष्ठकण्डूवमिहरः क्रिमिघ्नस्तिक्तः उच्यते ॥६०७॥

चीन कर्पूर कृत्रिम (बनावटी) और सर्वव्याध्युत्पादक है । वह कुष्ठ, कण्डू, वान्ति और कृमियों का नाशक तथा तिक्त है ॥६०७॥

२७०. कस्तूरी[5] (मृगनाभिः) ।

The Musk.	(हिं०, म०, गु०) कस्तूरी, (बं०) मृगनाभी ।
Stimulant and aphrodisiac.	उष्ण, उत्तेजक, शुक्रल ।

१. द–जलश्रुतिं । २. पर्णकर्पूर वही है, जिसे तलकर्पूर पीछे कहा गया है (देखो पृष्ठ २३६ का नोट) । संभव है कि यह कर्पूरवृक्ष के पत्रों से प्राप्त किया जाता हो, वा पर्णवत् तनु स्तरमय होने से पर्णकर्पूर कहलाता हो । ३. यु–कपूरो दाहदारुजः ।

४. आजकल जो कर्पूर चीन वा जापान से आता है, वह कृत्रिम नहीं, प्रत्युत विशुद्ध (Purified) और वास्तविक है । संभव है कि उस समय कोई कृत्रिम कर्पूर वहां बनता हो वा चीनी कर्पूर की स्वच्छता को देखकर भारती वैद्यों ने उसे कृत्रिम कह दिया हो ।

५. कस्तूरी एक विशेष मृग की नाभि से निकलती है । मृग को मार कर उसकी नाभि जो एक गोलप्राय रोमावृत्त कोष वा ग्रन्थि (Gland) सी होती है और जिसका तोल प्रायः २–४ तोले होता है, पृथक् कर ली जाती है । यह मृग प्रायः हिमालयपर्वत में मिलता है, और काश्मीरादि भागविशेष में उत्पन्न मृग की कस्तूरी

कस्तूरिका वेध्यमुख्या सुगन्धा मदनी मदा।
मार्गोदया मृगमया मृगनाभिर्मृगाण्डजा ॥६०८॥

पर्याय—वेध्यमुख्या (वेध्य कर्म—मृगनाभि को वेधन करना—मुख्य है जिस में), सुगन्धा (सुगन्धमय द्रव्य), मदनी (मदकर), मार्गोदया (मृग से उदय प्राप्ति होती है जिस की), मृगमया (मृगजा), मृगनाभि (मृगनाभि से प्राप्त होने वाली) ॥ ६०८ ॥

कस्तूरीगुणाः[1]।

कस्तूरी कटुका तिक्ता क्षारोष्णा शुक्रला गुरुः।
कफवातज्वरच्छर्दिशीतदौर्गन्ध्यशोषहा ॥६०६॥

का वर्ण भी भिन्न २ हो जाता है, जैसा कि ऊपर दर्शाया गया है, परन्तु निघंटुकारों में कुछ मतभेद है, यथा "कामरूपोद्भवा श्रेष्ठा नैपाली मध्यमा भवेत्। काश्मीरदेश-संभूता कस्तूरी ह्यधमा स्मृता।" (भाव० नि०)। श्री कैयदेव ने कामरूप और भाव-मिश्र ने काश्मीर की कस्तूरी को अधम माना है। इन मृगों के नितान्त हनन से इनका प्रायः वंशोच्छेद हो चुका है। क्या ही अच्छा हो, यदि कोई पुरुषार्थी मनुष्य उन वनों में, जहां यह मृग मिलते हैं, उन्हें एकत्रित करके उनका सावधानी से पोषण करे, और यथावश्यकता उनको मारकर वा क्लोरोफार्मादि सुंघा कर नाभि निकाल ली जावे। एवं मृगों की वंशवृद्धि से कस्तूरी अधिक प्राप्त होगी। अब उनकी न्यूनता का यह परिणाम है, कि वास्तविक कस्तूरी मिलना प्रायः असंभव हो रहा है। कस्तूरी की मांग अधिक है और उत्पत्ति के साधन विरल। इस कारण से लोगों ने **कृत्रिम कस्तूरी** बनाना आरम्भ कर दिया है। कुछ लोग तो मृगनाभि में सूचीद्वारा छिद्र करके कस्तूरी का अधिकांश निकाल कर तत्सदृश्य अन्य द्रव्य भर देते हैं और लोग उसकी बाह्य गन्ध से मुग्ध होकर उसे ले लेते हैं। अन्वेषण करने से यह छिद्र वा सीवन देखे जा सकते हैं। अमृतसरादि नगरों में अब गत्ते के कोष बनाकर उनमें कृत्रिम कस्तूरी भर कर मुख बन्द करके उसके ऊपर श्वेत रोम चपका देते हैं। इस कोष का बाह्य दर्शन मृगनाभि (नाफा) के सदृश होता है। यह कृत्रिम नाभि दो दो रुपये में मिल जाती है। ज़रा रोम उतारो, तो गत्ता स्पष्ट दीख पड़ता है। कृत्रिम कस्तूरी प्रायः जमा हुआ रक्त होता है, जिसमें कुछ गन्ध (Scent) मिला देते हैं। यह कस्तूरी सूंघने से रक्तवत् गन्ध देती है। पानी में डालने से वह रक्त वा पीत वर्ण हो जाता है। जलाने पर अग्नि इसे भस्मीभूत कर देती है। यह परीक्षा वास्तविक कस्तूरी के विरुद्ध है।

१. **कस्तूरी** वैद्यक चिकित्सा में बड़ी लाभकारी है। इसकी अल्प (मात्रा ½ से २ रत्ती तक) मधुमिश्रित चटाने से यह शीघ्र अपना हृदयोत्तेजक प्रभाव दिखाती है। मृतप्राय पुरुष भी उससे चौंक पड़ता है। शिथिल वा बन्द नाड़ी पुनः गति करने लग जाती है। कस्तूरी को एक दो रक्ति मकरध्वज वा रससिन्दूर वा हिंगुल (शिंगरफ)

कस्तूरीजातयः ।

काश्मीरे कपिलच्छाया नेपाले चैव लोहिता ।
कामरूपोद्भवा कृष्णा कस्तूरी ह्यधमा मता ॥६१०॥

काश्मीर देश की कस्तूरी कपिलवर्ण की होती है, नेपाल देश की रक्तवर्ण, और कामरूप देश (आसाम का पश्चिम भाग वा वंग का पूर्वभाग) की कस्तूरी कृष्ण वर्ण की होती है, जो अधम (निकृष्ट) समझनी चाहिए ॥६१०॥

कस्तूरीपरीक्षा[1] ।

या गन्धं केतकीनां वहति भृशतरं वर्णतः पिञ्जराभा[2] ।
स्वादे तिक्ता कटूष्णा लघुः परितुलिता मर्दिता चिक्कणा स्यात् ।
दग्धा नो याति भस्म चिमिचिमीकुरुते चर्मगन्धा हुताशे ।
सा शुद्धा शोभनीया वरमृगतनुजा राजयोग्या प्रदिष्टा ॥९११॥

जो कस्तूरी केतकी (केवड़े) के तुल्य भृश सुगन्ध दे, वर्ण में पिंगल (भूरी, red-brown), स्वाद में तिक्त और कटु, वीर्य में उष्ण, तोल में हलकी, मसलने पर चिकनी, हुताश (अग्नि) में जलाने पर जो भस्म न हो, प्रत्युत चिम चिम शब्द (Crackling Sound) करे, और चमड़े की गन्ध दे, वह शुद्ध

से मिलाकर भी दे सकते हैं। दोनों को लेहनार्थ मधु वा दुग्ध में मिलाकर देना चाहिए वा मधु से चटाकर ऊपर से दुग्ध पिला देना चाहिए। दीर्घ रोगों, मूर्च्छा, मैथुनक्षतादि से क्षीण पुरुषों में कस्तूरी बल फूंक देती है। यह उत्तम शुक्रोत्तेजक द्रव्य है, अतः उसे अनेक वाजिकर औषधों, यथा चन्द्रोदय रसादि में डाला जाता है। कस्तूरीभैरव और बृहत्कस्तूरीभैरव रस प्रसिद्ध हृदयोत्तेजक और बलकर योग हैं, जो प्रायः निमोनियादि बलहर सान्निपातिक ज्वरों के अन्त में दिए जा सकते हैं। कस्तूरी श्वास, कासादि में भी लाभकारी है। सुगन्धार्थ उसे तैलों वा साबुनों में भी डाला जाता है।

१. कस्तूरी का **प्रधान गुण** सुन्दर तीव्र गन्ध है, **"सौरभ्य एको गुणः"** जिसे अनुभवी नासिका दूर से पहचान जाती है। कस्तूरी स्निग्ध (चिक्कणी) धूम्रवर्णा, जल में रंग न देने वाली होनी चाहिए। उसे शरीर पर जहां लगा दो, वहां से गन्ध चिरकाल तक आनी चाहिए। जो परीक्षा ऊपर श्लोक में दी गई है, उसके अतिरिक्त एक परीक्षा यह भी है, कि कस्तूरी हथेली पर अल्प जल में मसल कर पुनः हाथ कार्बिलिक साबून से धो डालें। यदि गन्ध शेष रह जावे, तो समझें कि कस्तूरी प्रशस्त है। यदि गन्ध न रहे, तो वह अप्रशस्त है। कार्बलिक साबून की गन्ध कस्तूरी के अतिरिक्त अन्य सब गन्धों (Scents) को लीन कर देती है। एक पुरुष तेज़ दौड़ कर या चलकर आवे, उसे कस्तूरी खिलाने से यदि उसका श्वास तत्काल बन्द हो जावे, तो कस्तूरी प्रशस्त समझनी चाहिए, क्योंकि कस्तूरी आयासोत्पन्न वा अन्य श्वासों को शीघ्र रोक देती है। २. ब—पिङ्गलाभा।

और शुभ समझनी चाहिए। वह श्रेष्ठ मृग के शरीर से उत्पन्न कस्तूरी राजाओं के योग्य है ॥६११॥

कृत्रिमकस्तूरीपरीक्षा ।

करतलजलमध्ये स्थापनीया महद्भिः
पुनरपि तदवश्यं चिन्तनीयं मुहूर्त्तम् ।
यदि भवति च रक्तं तज्जलं पीतवर्णं
न भवति मृगनाभिः कृत्रिमोऽयं विकारः ॥९१२॥

हथेली पर जल में थोड़ी सी कस्तूरी रख कर कुछ देर प्रतीक्षा करने पर यदि वह जल रक्त वा पीत वर्ण हो जावे, तो वह कस्तूरी नहीं, प्रत्युत कोई कृत्रिम पदार्थ है ॥६१२॥

२७१. लताकस्तूरिका[1] ।

Hibiscus Abelmoschus.	(हिं०, फा०) मुष्कदाना, (गु० बं०) लता कस्तूरी, (म०) मुसकदाणा ।
An annual hispid herbaceous plant.	वार्षिक काण्टेदार मृदु क्षुप ।
Seeds aromatic, stomachic, stimulant, & antispasmodic.	बीज सुरभि, दीपन, पाचन, उष्ण, वातवेगशामक ।

लताकस्तूरिका ज्ञेया कटुर्दक्षिणदेशजा ।
लताकस्तूरिका तिक्ता स्वाद्वी वृष्या हिमा लघुः ।
चक्षुष्या छेदनी श्लेष्मतृष्णावस्त्यास्यरोगजित् ॥६१३॥

लताकस्तूरी कटु होती है। दक्षिण देश उसका उत्पत्ति स्थान है । **छेदनी**—कफनाशक, लेखन ॥६१३॥

२७२. मार्जारी[2] (गन्धमार्जारवीर्यम्)

The Semen of Civet cat.	(हिं०)गौरासार,मुष्क बिलाई,(बं०) खट्टाशी। बिडालविशेष का शुक्र ।
Stimulant, aromatic, aphrodisiac, and emetic.	उत्तेजक, सुरभि, शुक्रल, वामक ।

१. **लताकस्तूरी** का काण्टेदार क्षुप दक्षिण भारत एवं लंका में अधिक मिलता है। इसकी फली लंबी और कण्टकावृत्त होती है। भीतर से अनेक क्षुद्र कृष्ण, चपटे और वृक्काकार बीज निकलते हैं। यह मुष्कदाना (लताकस्तूरी) के नाम से बाजार में मिल जाते हैं। दक्षिण में मुझे उसकी फलियां तक्कोल के नाम से मिली थीं। यह बीज तिक्त,कटु और सुगन्धयुक्त होते हैं। उनसे ६%(6 per cent) तैल निकलता है। आध्मान श्वास, वायुरोग, अपस्मार,अजीर्णादि में यह बहुत गुणकारी है। मात्रा—१ माषे चूर्णरूप । मधुमिश्रित बीजचूर्ण काली खांसी में दे सकते हैं।

२. **गन्धमार्जारवीर्य** एक जंगली विडालजातीय पशु (Civet cat) के

मार्जारिका गन्धचेली पूतिः पूतिकवचस्तथा ।
मार्जारी कफवातघ्नी चक्षुष्या वामनी मता ॥९१४॥

मार्जारिका (मार्जाराण्डोत्पन्न), गन्धचेली (गन्धकोष), पूति (गन्धमय), वामनी (वामक) ॥९१४॥

मृगस्वेदकण्डूकिटिमहरणः कोठशमनः
सुगन्धो वातघ्नो रचयति तनोः कान्तिमधिकां ।
मनोज्ञो वश्यश्च क्षपयति कफं, शुक्रमधिकं
श्रियं कीर्त्ति तेजः प्रियमपि तनोत्याशु विषनुत् ॥९१५॥

गन्धमार्जारवीर्य पशुओं के स्वेदरोग, तथा कण्डू, किटिमादि त्वग्रोगों को हरता है, कोठशमक, सुगन्धित और वातनाशक है । शरीर की कान्ति को बढ़ाता है, मनोरम और वश में करने वाला है । कफ को नष्ट करता है, शुक्र (वीर्य), श्री (शोभा), कीर्त्ति (यशः), तेजः (ओजः), और प्रिय (प्रीति) को भी अधिक करता है, तथा आशु विषहर है ॥९१५॥

अण्डकोषों से प्राप्त होता है । यह पशु आकृति में विडालतुल्य, परन्तु उसकी अपेक्षा दीर्घ, शिर छोटा और पूंछ लम्बी । मलयदेश में यह (कस्तूरी बिल्ला) क्षेत्रों में कहीं २ मिल जाता है और कोप में आकर मनुष्य पर आक्रमण भी करता है । प्रायः मनुष्य को देखकर भाग जाता है । वहां कृषिक लोग क्षेत्रों में बांस गाड़ देते हैं । यह मार्जार उस पर अपना शिश्न (लिंग) संघर्षण करके वीर्य निकाल देता है, जो बांस पर लग जाता है । कृषिक लोग उसे संग्रह करके २५) वा ३०) प्रति तोला बेच देते हैं । एक मार्जार से १ तो० वीर्य प्रति मास प्राप्त हो सकता है । कोचीन राज्य की प्रदर्शनी (Museum) में यह विडाल पिंजरों में रखे रहते हैं । उन में बांस लगा रहता है और वीर्य संग्रह होता रहता है । यह वीर्य कोचीन और ट्रावनकोर में बहुत प्राप्त हो सकता है । कई लोग इस गन्धविडाल को मारकर उसका अण्डकोष (Testicle) उल्टा करके ग्रन्थियां फेंक देते हैं और उल्टे हुए कोष में तृण भर कर शुष्क करके बेचते हैं । कलकत्ता में यह शुष्क कोष **खट्टाशी** के नाम से दो रुपये में मिल जाते हैं । बंगाली वैद्य नारायण तैल वा अन्य तैलों को सुगन्धित करने के लिए खट्टाशी उस में छोड़कर मन्द २ अग्नि से पकाते हैं । उसका सुगन्धित भाग तैल में लीन हो जाता है । यह तैल शरीर पर मलने से वायुनाशक और कान्तिकर होता है । १ रत्ति मात्रा में यह शुष्क वीर्य शर्करादि से मिला कर शुक्रवृद्ध्यर्थ खिला भी सकते हैं । अधिक मात्रा से वान्ति हो जाती है । आजकल पाश्चात्य चिकित्सा में भी नपुंसकों को शुक्र का प्रयोग मुख वा सूची (Injection) द्वारा कराया जाता है । यह प्राचीन सिद्धान्त **"सर्वदा सर्वभावानां सामान्यं वृद्धिकारकम्"** (च० सू०) के अनुकूल है । इस द्रव्य के सम्बन्ध में भावमिश्र ने यह कहा है, **"गन्धमार्जारवीर्यं तु वीर्यकृत् कफवातनुत् ।"** १. ब—मृगस्वेदः कण्डू० ।

२७३. कुङ्कुमम्[1] ।

Crocus sativus.
The Saffron.
A perennial Kashmir herb. Stimulant, aromatic, stomachic, used in headache, neuralgic pains, etc. and as a colouring matter.

(सर्वभाषा)-केसर, केशर ।
काश्मीरदेशज बहुवार्षिक क्षुप ।
उत्तेजक, सुरभि, दीपकपाचक, शिरोऽर्त्ति, वायुशूलादि में उपयोगी, रंजक द्रव्य ।

---

१. कुङ्कुम काश्मीर पर्वत को छोड़कर बाह्लीक (बलख, बुखारा), पारस (ईरान), स्पेन (Spain), फ्रांस, सिसिली आदि देशों में भी होता है। समुद्रतल से ५२०० फुट की ऊंचाई पर काश्मीर पर्वत पर कुंकुम विशेष क्षेत्रों में उत्पन्न किया जाता है। प्रस्तुत भूमि में ग्रन्थिवत् (Bulb-like) कन्द लगाने से कुंकुमक्षुप प्राप्त होता है। ज्येष्ठ मास में ग्रन्थियां लगाई जाती हैं और कार्त्तिक (October) में कुंकुम तय्यार हो जाता है। पुष्प नीललोहितवर्ण (Violet), परागकेसर (पुल्लिंग–Male organ) पीतवर्ण। स्त्रीलिङ्ग (Female organ) के तीन भाग होते हैं, (१) पहिला निचला गोल भाग–गर्भाशय (Ovary), (२) गर्भसूत्र (Style)–तन्तुमय भाग जो गर्भाशय के ऊपर होता है। यह सूत्र ३ तन्तुओं में विभक्त हो जाता है, (३) गर्भाग्र (Stigma)–गर्भसूत्र के तीन तन्तुओं में से प्रत्येक पर एक एक रक्तश्याम सूत्राकार अग्र वा अन्तिम भाग होता है। यही गर्भाग्र कुंकुम है, अर्थात् एक पुष्प से केवल ३ छोटे तन्तु केसर के प्राप्त होते हैं। १ रत्ति कुंकुम २० पुष्पों से प्राप्त होता है और ३ छटांक ४७०० पुष्पों से। काश्मीर में प्रायः १ टन (२८ मन) कुंकुम प्रतिवर्ष उत्पन्न होता है, जिसमें से कुछ भारत में आता है, और शेष लद्दाखादि देशों को चला जाता है। बम्बे में केशर स्पेन से आता है। एवं भारत में केवल काश्मीर का केशर ही नहीं मिलता, प्रत्युत अन्य देशों का भी। उत्तम केशर वही है, जो सूक्ष्म आरक्त और पद्मगन्धि हो, जैसा कि ऊपर मूलपाठ में कहा गया है। कुंकुम में पीत तृण (पराग के) नहीं होने चाहिएं, स्वाद में तिक्त और सुरभि हो। उत्तम केशर प्रायः ३) तोला मिलता है। आजकल अनेक रञ्जित तृण अथवा कुसुंभ, पलाशादि के परागकेसर रंगकर केशर के नाम से बहुत सस्ते बेचे जाते हैं। अनुभवी पुरुष उन्हें शीघ्र पहचान सकता है। केशरों में देशभेद से भिन्न वर्णादि आजाते हैं। विदेशी केशर में कुछ वसा (चर्बी) मिली रहती है, जिसके कारण वे स्निग्ध और भारी होते हैं। कुंकुमादि तैल, वसन्तकुसुमाकर रसादि अल्पसंख्यक औषधों को छोड़कर वैद्यक चिकित्सा में केशर का अधिक उपयोग नहीं मिलता। फारस में इसका प्रयोग बहुत होता है। वहां स्त्रिएं सुखप्रसवार्थ केशर की गोलियां बनाकर खाती हैं। यहां शीतलादि विकारों में बच्चों को केशर

कुङ्कुमं पीतकं रक्तं काश्मीरं पिशुनं वरम्।
सङ्कोचं चारु वाह्लीकं वर्ण्यमग्निशिखं शठम् ॥९१६॥
कुङ्कुमं कटुकं तिक्तं वर्ण्यं व्रणविशोधनम्।
हन्ति दोषत्रयं हिध्माशिरोरोगकृमीन् ॥९१७॥
कौङ्कुमं पुष्पमारक्तं गन्धवत्सूक्ष्मकेसरम्।
काश्मीरेषु च सञ्जातं पद्मगन्धि तदुत्तमम् ॥९१८॥
अतिस्थूलं लतारूपं मध्यमं कथयन्ति हि।
आपाण्डुरं खरं चैव स्थूलकेशरमेव च ॥९१९॥
मधुगन्धि च विज्ञेयं कुङ्कुमं पाण्डुवर्णकम्।
केतकीगन्धसंयुक्तं सूक्ष्मकेसरशोभितम् ॥९२०॥

बाह्लीक (बलख बुखारा में होने वाला केसर), अग्निशिख (अग्निज्वाला-तुल्य वर्णयुक्त), केतकी (केवड़ा) ॥९१६-२०॥

२७४. सिह्लकः[1] (शिलारसः)।

Liquid amber. A thick, grey, fragrant and stimulant liquid.	(हिं०, गु०, बं०, म०) शिलारस, (पं०) सिलारस। घन, कपिल, सुरभि, उष्ण,सरल।

तुरुष्कः सिह्लको धूम्रो धूम्रवर्णश्चलः पर्णः।
पण्डितः पिण्डितः कल्कः कपिशः कपिलः कपिः।

दिया जाता है, ताकि पिड़िका (Vesicles) शीघ्र उत्पन्न हों। केशर वीर्य में उष्ण है। अतः रजःकृच्छ्र, श्वास, कास, शूलादि में दे सकते हैं। यह मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात में भी दिया जाता है (सु०उ०)। चक्रदत्त में अर्धशिरःशूलादि शूलों में केशर की नस्यादि का प्रयोग बताया गया है। यह दीपक, पाचक, त्वग्दोषशमक और सुरभि रञ्जक द्रव्य है। ब्राह्मण लोग तिलक, पूजापाठ तथा संस्कारों में व्यवहार करते हैं। मुल्लां लोग इसकी मसी बनाकर तावीज़, जन्तर तन्तर आदि लिखते हैं। पायस, हलवादि में लोग सुगन्धित और रञ्जक द्रव्य के भाव से डालते हैं। केशर की मात्रा २ से ४ रत्ति तक है, जो जल वा दुग्ध में घिसकर दे सकते हैं।

१. सिह्लक (शिलारस) एक घन तरल सा द्रव्य (Semi-liquid) है, जो कलकत्ते में बहुत मिलता है। यह साधारणावस्था में तो गन्ध नहीं देता, परन्तु गरम करने पर पिच्छल होजाता है और जलाने से जलता है, तब उससे अम्बरतुल्य गन्ध आता है। यह सुरभि द्रव्य शुष्क पर्वतों के छिद्रों से ग्रीष्मकाल में निकलता है। यह बड़ा स्निग्ध और चिक्कण होता है। बंगाली वैद्य उसे तैलों में सुगन्धार्थ डालते हैं। तैलों में यह लीन हो जाता है। कई वैद्य उसे किसी वृक्ष का निर्यास समझते हैं, जैसे श्रीवास (गन्ध वेरोजा)। इसके धूम्र से पीनस, श्वास, गलरोगादि नष्ट होते हैं। तिलतैल से इसे मिलाकर लगाने से कण्डू, यूकादि का नाश होता है।

पिण्याको पावकस्तैलसुगन्धः कृमिपीडितः ॥९२१॥

पर्याय—धूम्र (धूम्र वर्ण वाला), चल (तरल), पिण्डित (घन तरल), कल्क (कल्कवत् घन), कपिश (कपिवर्ण) ॥९२१॥

सिह्लकः कटुकः स्वादुः स्निग्धोष्णः कान्तिवर्णदः ।
वृष्यो हन्याद्दोषकण्डूस्वेदकुष्ठग्रहज्वरान् ॥९२२॥

२७५. देवदारुः[1] ।

Pinus Deodara or Cedrus Libani.	(हिं०) देवदार, (पं०) दयार, (गु०) देवदार, (म०, बं०) देवदारु ।
A huge mountainous tree.	विशाल पार्वतीय वृक्ष ।
Carminative, diaphoretic, and diuretic, useful in leprosy.	वातानुलोमक, स्वेदल, मूत्रल, तथा कुष्ठ में लाभकारी ।

देवकाष्ठं भद्रकाष्ठं देवदारुः सुरद्रुमः ।
शाणद्रुः किलिमं दारुर्भद्रदारुः सुराह्वयः ॥९२३॥

पर्याय—देवकाष्ठ (देवताओं की लकड़ी), भद्रकाष्ठ (श्रेष्ठ लकड़ी), देवदारु (देवताओं की वा शुभ लकड़ी), सुरद्रुम (देववृक्ष), सुराह्वय (देव नाम वाला) ॥९२३॥

देवकाष्ठं लघु स्निग्धं तिक्तोष्णं कटुकं रसे ।
विपाके, हन्ति कासामश्वासहिध्माकफानिलान् ।

---

[1] १. देवदारु (Deodar) के महान् वृक्ष पश्चिमोत्तर हिमालय में होते हैं । शिमला, चम्बादि में उनका बाहुल्य है। उनका काष्ठ नदियों के रास्ते पञ्जाब में बहुत आता है । वृक्ष की आकृति, पत्र, कोणादि का वर्णन निकोचक (अंक १०४) के तुल्य समझें। पत्र सूच्याकार। फल कोणाकार। अतः यह कोणजाति (Coniferae) में सम्मिलित है । पञ्जाब में गृहनिर्माण तथा अन्य काष्ठसामग्री में प्रायः देवदारु का ही व्यवहार होता है । यह काष्ठ स्निग्ध, दृढ़ लघु होता है । कृमि का प्रभाव इस पर बहुत कम पड़ता है । शास्त्रों में दो प्रकार का देवदारु वर्णित है, स्निग्धदारु तथा काष्ठदारु । "देवदारु द्विधा ज्ञेयं तत्राद्यं स्निग्धदारुकम् । द्वितीयं काष्ठदारु स्यात्...... ।" स्निग्ध देवदारु से तारपीन (Turpentine) के तुल्य एक तनु गन्धमय तैल निकलता है, जो त्वग्दोषों में बहुत लाभकारी है । डा० जोह्स्टन ने कुष्ठोपचार में देवदारुतैल (Deodar Oil) को बहुत प्रयोग किया है । ३ माषे तैल प्रतिदिन एक वा दो वार दुग्ध में मिलाकर पिलाने से तथा व्रणों पर लगाने से कुष्ठ बहुत शीघ्र अच्छे हो जाते हैं । यह तैल कुछ उत्क्लेश करता है, परन्तु कहीं नहीं भी करता । औषधों में स्निग्ध देवदारु का चूर्ण डाला जाता है । कायल भी देवदारु का भेद समझना चाहिए । यह जल में शीघ्र खराब हो जाता है । काष्ठ देवदारुवत् उत्तम नहीं होता । देवदारु का काण्ड व्यास (परिधि) में २५-३० फुट वा इस से भी अधिक होता है ।

ज्वरमेहविबन्धाध्माकण्डूशोफास्रपीनसान् ॥९२४॥

२७६. रालः[1] (शालनिर्यासः) ।

Sal or Shorea resin. Astringent, used as incense & in dysentry, ointments, etc.

(हिं०, गु०, म०) राल, (बं०) धूनो, धूना । ग्राही. धूप तथा मल्लमों में लाभकारी ।

राला सर्जरसः सर्जो बहुरूपोऽग्निवल्लभः ।
देवधूपो यज्ञधूपः सुधूपो ललितो रवः ।
सुराला शालनिर्यासः शालः कलकलः त्तणः ॥९२५॥

पर्याय—सर्जरस (शाल का निर्यास), बहुरूप (बहुत प्रकारों वाला), अग्निवल्लभ (अग्नि को प्रिय), देवधूप (देवताओं के योग्य धूपद्रव्य), यज्ञधूप (यज्ञोपयोगी धूपद्रव्य), ललित (प्रिय), रव (शब्द) ॥ ९२५ ॥

सुराला मधुरा तिक्ता कषाया ग्राहिणी गुरुः ।
अनुष्णा हन्ति दोषास्रशूलस्वेदज्वरव्रणान् ।
विसर्पग्रहभङ्गाग्निदग्धालक्ष्मीविपादिकाः ॥९२६॥

२७७. सरलः[2] (धूपवृक्षः)

Pinus longifolia. A large gregarious tree. Wood stimulant, diaphoretic, useful in cough, fainting, etc.

(हिं०) चीड़, चील, सल्ल, धूपसरल, (बं०) सरलगाछ, गु०, म०) सरल देवदारु । बृहत् समूहवर्ती वृक्ष । काष्ठ उष्ण, स्वेदल, कासमूर्छादि में उपयोगी ।

---

१. राल की प्राप्ति शाल, सर्जक और अश्वकर्ण (अंक २०७, २२१, २२२,) से होती है । इन वृक्षों की त्वचा में छेद करने से पाण्डु, घन निर्यास निकल आता है, जो जमकर राल बन जाता है । राल बहुधा धूपों में पड़ता है । यह जलने पर सुगन्धित कृमिघ्न धूम्र देता है, अतः उसे रोगियों के कमरे में जला सकते हैं । राल सुतप्त तैल में छोड़ने से विलीन हो जाता है, जिस में अन्य शोधनरोपण द्रव्य छोड़कर मल्लमें बना सकते हैं । शर्करामिश्रित राल अतिसार, रक्तप्रदर, प्रवाहिका, मूत्रकृच्छ्रादि में देते हैं । यह शुक्रस्तम्भक भी है । मात्रा—१ माषा दुग्ध वा जल से । रालसे तारपीन के तुल्य एक तनु गन्धाढ्य तैल निकलता है ।

२. सरल की आकृति, जाति (Coniferae), उत्पत्तिस्थानादि देवदारु (अंक २७५) तथा निकोचक (अंक १०४) के तुल्य जानें । सरलवृक्षों के झुण्डों के झुण्ड शिमलादि पर्वतों पर देखे जाते हैं । इसका काण्ड प्रायः नम्र (त्वग्रहित) होता है, और व्यास में १२ फुट पर्यन्त । सरलकाष्ठ (चील की लकड़ी) देवदारु की अपेक्षा अधिक कठोर (चीढ़ी) और स्निग्ध, परन्तु जल में शीघ्र गल जाने

उच्छ्रितः सरलश्चीड़ा खली मारीचपत्रकः ।
पीतवृक्षो धूपवृक्षः पूतिदारुः कलिद्रुमः ।
नमेरुर्नन्दिनी दारुः सुदारुः सुरदारुश्च ॥९२७॥

पर्याय—उच्छ्रित (उच्च), सरल (सीधा), चीड़ा (चीढ़ा वा कठोर काष्ठ होता है जिसका), धूपवृक्ष (धूप निकलता है जिससे), पूतिदारु (दुर्गन्धि वृक्ष)॥९२७॥

सरलो मधुरस्तिक्तः कटुपाकरसो लघुः ।
स्निग्धोष्णः कर्णकण्ठाक्षिरोगघ्नो विनियच्छति ।
रक्षोऽलक्ष्मीव्रणस्वेदयूकाकासकफानिलान् ॥९२८॥

रक्षोऽलक्ष्मी—रोगोत्पादक राक्षस वा कीटाणु,तथा कीटोत्पन्न दुर्भाग्य (क्योंकि जहां रोग होगा, वहां लक्ष्मी का निवास नहीं होसकता) ॥९२८॥

२७८. श्रीवासः[1] (सरलस्रावः) ।

Oleo-resin of Pinus longifolia Good suppurative for buboes, used as an incense and in gonorrhea.	(हिं०) गन्धविरोजा, सुन्दरस, चन्द्रुस, (बं०) नवनीत खोटी, गन्धविरजा । व्रणपाचक,धूपद्रव्य,पूयमेहनाशक ।

वाला होता है, अतः यह छत्तों के बत्तों में वा अन्य जलरक्षित स्थानों में प्रयोग होता है। काष्ठ के गुण ऊपर दिए गए हैं। इसे जलाने से एक गन्धविशेष आता है, जो धूपतुल्य होता है। सरलकाष्ठ के निर्वात स्रवण (Destructive Distillation) से तारपीन (Turpentine) नामक प्रसिद्ध तनु तैल और लुक (Tar) निकलते हैं। कुछ डाक्टरों का मत है, कि यह तारपीन विलायती तारपीन से अधिक उपयोगी है, परन्तु इसका शोधन ठीक होना चाहिए। तारपीन प्रायः श्रीवास (अंक २७८) वा अन्य कोणजातीय वृक्षों (Pinus trees) के गोंदों से निकाला जाता है। यह एक लघु, तीक्ष्णगन्ध, उड्डनशील (Volatile) तैल है। यह २-१०बिन्दु की मात्रा में पिलाने से उत्तम अग्निदीपक और वातानुलोमक है, परन्तु यह विषैला होने से कभी २ कष्टदायक सिद्ध होता है, अतः इसका अन्तःप्रयोग प्रायः निषिद्ध है। इस में कर्पूर, गन्धक, रालादि अनेक द्रव्य घुल जाते हैं। कर्पूर मिश्रित तारपीन तैल सन्धिशोथ, शूल, कास, श्वास, निमोनियादि में अभ्यंगार्थ प्रयोग होता है। यह रोगनादि में बहुत काम आता है। यह ज्वलनशील है। लुक (Tar) प्रायः सड़कों पर वा काष्ठादि पर लेप तथा रक्षा के लिए प्रयुक्त होती है। औषध में इसका प्रयोग नहीं होता। पश्चिमी डाक्टरों का अनुभव है कि सरल वृक्ष वायुशोधक होने से यक्ष्मारोग में लाभकारी है, और इसी विचार से धर्मपूर (शिमला) में यक्ष्मियों के लिए आरोग्यभवन (Sanitorium) बनाया गया है। श्री शालिग्राम ने चीड़ा और सरल को पृथक् २ माना है, जो अशुद्ध है। दोनों एक ही हैं।

१. श्रीवास सरलवृक्ष का गोंद है। वृक्ष पर जहां क्षत हो, वहां यह गोंद

श्रीवेष्टको दधिस्राव:[1] श्रीवासः श्रीनिवासकः ।
चीड़ास्रावः क्षीरशीर्षः पायसो रक्तशीर्षकः ।
वेष्टको निटको दासी कलिद्रुस्तड़ितस्तड़िः ॥६२६॥

पर्याय--श्रीवेष्टक (सरल वृक्ष का निर्यास), दधिस्राव (दधितुल्य स्राव वाला), श्रीवास (सुन्दर गन्धयुक्त, वा लक्ष्मी का निवास है जिसमें), चीड़ास्राव (सरल वृक्ष का गोंद), पायस (पायसतुल्य स्राव वाला), वेष्टक (वेष्टनशील, चपकने वाला) ॥६२६॥

श्रीवासो मधुरस्तिक्तः स्निग्धोष्णस्तुवरः सरः ।
पित्तलो वातमूर्धाक्षिस्वररुक्कफपीनसान् ।
रक्षोऽश्रीस्वेददौर्गन्ध्ययूकाकण्डूव्रणान् जयेत् ॥६३०॥

२७९. कुष्ठम्[2] ।

Saussurea Lappa.	(हिं०) कुठ, कूट, (बं०) कुड़, (म०)
The Costus root.	कोष्ठ, (गु०) कुठ, उपलेट ।
A tall stout herb.	दीर्घ दृढ़ क्षुप ।
Stomachic, stimulant, used in cough, asthma & rheaumatism.	पाचक, उष्ण, कासश्वासामघात-नाशक ।

निकल आता है। यह दुर्गन्धि, श्वेताभ, घृततुल्य और चिक्कण द्रव्य है। उष्ण करने पर तैलवत् तरल हो जाता है। यह तिलतैल से शीघ्र मिल जाता है। इसमें मोम, राल, गन्धकादि द्रव्य घुल जाते हैं। इसकी मल्लमें अच्छी चिक्कणता होती हैं और व्रणों पर आवेष्टित रहती हैं। यह व्रणों को शुद्ध करके भर देती हैं। कहीं २ व्रणशोथ इस से दब भी जाती है। नापितों की **नीली मर्हम** गन्धविरोजा में तुत्थ (Copper Sulphate) वा जंगाल (Copper sub-acetate) मिलाने से बनती है। उसमें कुछ तैल और मोम भी डाला जाता है। श्रीवास को स्रवण करने से तारपीन (Turpentine) निकल आता है। शेष एक शुष्क श्वेताभ द्रव्य रह जाता है, जो **सतबिरोजा** (श्रीवाससत्त्व–Purified Oleo-resin) वा सुन्दरस वा चन्द्रस के नाम से प्रसिद्ध है। यदि यह तारपीन तैल में मिलादें, तो गन्धबिरोज़ा बन जावेगा। यह पूयमेह (सुज़ाक) में बहुत लाभकारी है। मात्रा १–४ माषे सन्दल शर्वत के साथ। १. यू–दधिश्राद्धः।

२. **कुष्ठ** का क्षुप ६–७ फुट ऊंचा, दृढ़ और स्थूल होता है। **पत्र** लम्बा और कई भागों में कटा हुआ। **पुष्प** कठोर, गोल, गेन्दे के आकार का, परन्तु रक्त। कुष्ठ केवल काश्मीर में ही उत्पन्न होता है, अतः भावप्रकाश ने उसे 'काश्मीर' नाम दिया है। यह क्षुप जलप्रिय होने से वाप्य, उत्पलादि कहलाता है। इसकी केवल मूल ही काम आती है। काश्मीर में कुष्ठ के ठेके से लाखों रुपये राज्य को प्राप्त होते हैं। समस्त कुष्ठ प्रायः चीन को जाता है, जहां इसे मन्दिरों में धूपवत् जलाते हैं।

कपालं पावकं[1] कुष्ठं त्वग्दोषो वाप्यमुत्पलम् ।
आमयं रुग्गदो रोगो रामं वाणी रुजं रुजा[2] ॥६३१॥
परिहार्यं पारिभद्रं कौवेरं हरिभद्रकम् ।
मांसं[3] जाप्यं पारिभाव्यमाममुत्पलकुष्ठकम् ॥६३२॥

पर्याय—कपाल (कपालाकार), पावक (अग्निवदुष्ण), कुष्ठ (कुत्सितं तिष्ठतीति कुष्ठं, बाहर से कुष्ठवत् कुत्सित नज़र आने वाली), त्वग्दोष (कुष्ठ का पर्याय), वाप्य ('वापी बावली वा क्षुद्र जलाशयों में होने वाला), उत्पल (कमलवत् जलाढ्य देशोत्पन्न), आमय (त्वग्रोग वा कुष्ठ नाम वाला), रुक्, गद, रोग, रुजा (रोग नाम वाला) ॥६३१–३२॥

कुष्ठं तिक्तं कटु स्वादु लघूष्णं शुक्रलं जयेत् ।
वातास्रविषवीसर्पकुष्ठकाष्ठकफानिलान् ॥६३३॥

भारत में इसके जलाने की रीति नहीं । प्राचीन काल में अहिफेन के आने से पूर्व कुष्ठ का धूम्रपान किया जाता था, चरकादि में अन्य द्रव्यों से मिलाकर श्वास, कासादि में धूम्रवर्त्ती का विधान है। राज्याज्ञानुसार कुष्ठ का प्रवेश भारत में बन्द है, परन्तु लोग चुराकर लाते हैं । खराब कुष्ठ जिसे टुट्ठ कहते हैं, भारत में बिकने के लिए आ जाता है । उत्तम कुष्ठ यहां मिलना कठिन है । कभी २ दुकानदार कुष्ठ के स्थान पर **चोक** (हेमक्षीरी) दे देते हैं, अतः उसे सावधानी से लेना चाहिए । कुष्ठमूल बहुत सुगन्धित होती है । कीटों से रक्षार्थ उसे वस्त्रों में रखा जाता है, कुष्ठ को चबाने से जिह्वा चिन् चिन् करती है । चक्रपाणि के 'मृगश्रृंगोपम' लक्षण ने कुष्ठ की आकृति स्पष्ट करदी है, परन्तु अब कुष्ठ के टुकड़े २ मिलते हैं । यूनानी हकीम कुष्ठ के दो प्रकार बताते हैं, (१) **तिक्त वा कटु कुष्ठ** (कुस्त-ए-तलख़), (२) **मधुर कुष्ठ** (कुस्त-ए-शीरीं) । हमारे ग्रन्थों में मधुर कुष्ठ का वर्णन नहीं मिलता । मधुर कुष्ठ, जो बाज़ार में मिलता है, अरब से आता है । वा काश्मीरी कुष्ठ की तरुण मूल मधुर होती है, और पक्व मूल तिक्त वा कटु । हमें सदा तिक्त वा कटु कुष्ठ व्यवहार करना चाहिए । कुष्ठ श्वास, कास, अपस्मार, वातरोग, चर्मरोग, मन्दाग्नि आदि में लाभकारी है । मात्रा १–६ माषा । उसे शर्करादि अन्य द्रव्यों से मिलाकर वा क्वाथ के रूप में दे सकते हैं । त्वग्रोगान्तक तैलों तथा लेपों में उसे डाला जाता है । कुष्ठ तैल आमवात, वातरोगादि में बहुत लाभकारी है । यह बाज़ारों में भी मिल जाता है । जर्मनी में कुष्ठसुगन्ध (Costus Scent) तयार हुआ है, जो अन्य गन्धों से मिलकर उन्हें तीव्र कर देता है । कुष्ठचूर्ण व्रणों पर छिड़का जाता है, पान में रखकर ... मधु में मिलाकर श्वासकास में दे सकते हैं । १. ब–पालकं पाकलं । २. ब–वा नीरजो रुजा । ३. यू–भासुरं ।

२८०. पुष्करमूलम्[1]?

पौष्करं पुष्करजटा काश्मीरं पुण्यसागरम्।
पद्मपर्णं वृत्तरुहं वाताह्वं पुष्करह्वयम्।
ब्रह्मतीर्थं पुष्कराङ्घ्रिमूलं धीरं सुगन्धिकम् ॥९३४॥

पर्याय—पौष्कर (पुष्करों जलाशयों में होने वाला), काश्मीर (काश्मीर देशोद्भव), पद्मपर्ण (पत्रादि पद्माकार), पुष्कराह्वय (पुष्कर नाम वाला) ॥९३४॥

पौष्करं कटु तिक्तोष्णं कासश्लेष्मानिलापहम्।
ज्वरशोफारुचिश्वासहिध्मापार्श्वरुजो जयेत् ॥९३५॥

२८१. एलावालुकम्[2] ?

एलावालुकमालूकमैलेयं हरिवालुकम्।
एल्वालुकं कपित्थत्वक् गन्धत्वचं च बालुकम्।
कुष्ठगन्धि सुगन्धि स्यात्सुवर्णप्रसरं दृढम् ॥९३६॥

पर्याय—एलावालुक (एलागन्धि वालुरूप द्रव्यविशेष), बालुक (बालुरूप), कुष्ठगन्धि (कुष्ठतुल्य सुगन्धित द्रव्य) ॥९३६॥

एलालु कटुकं पाके कषायं शीतलं लघु।
हन्ति कण्डूव्रणच्छर्दितृट्कासारुचिहृद्रुजः।
बलासविषपित्तास्रकुष्ठमूत्रगुदकृमीन् ॥९३७॥

---

१. **पुष्करमूल** (पौहक्कर मूल ; नानादेशों में भिन्न २ मिलता है। किसी ने उसे Costus Speciosus नाम दिया है, जो आर्द्रकाकार क्षुप है। उस की मूल के गुण बहुत कुछ आर्द्रकतुल्य हैं, परन्तु '**पद्मपत्रं च काश्मीरं कुष्ठभेदमिमं जगुः।**' (भावप्रकाश) अर्थात् पुष्करमूल के पत्र पद्मतुल्य होते हैं, यह काश्मीर में होता है और कुष्ठ का भेद है। कुष्ठ और पुष्करमूल का वर्णन प्रायः एकत्र मिलता है, वह गुणों में सम है। प्रतीत होता है, कि यह काश्मीरज कुष्ठ का भेद है, न कि उपरोक्त क्षुप। कुछ लोग उसे Orris root (Iris Germanica) समझते हैं। यह क्षुप काश्मीर में होता है और इस की मूल के गुण कुष्ठतुल्य हैं। सम्भव है यही पुष्करमूल हो। पुष्करमूल कासश्वासादि में लाभकारी है। उस का लेप पार्श्वशूल में करते हैं।

२. **एलावालुक** (एलागन्धि वालुरूप द्रव्यविशेष) कहीं २ रक्त चूर्ण सा सुगन्धित द्रव्य 'आलू बालू' नाम से मिल जाता है। यह कोई बीजविशेष है, परन्तु यह क्या है वा यह वास्तविक एलावालुक है ? निश्चयरूप से कहना कठिन है। किसी ने आलु-बालु को Prunus Cerasus नाम दिया है, जो एक प्रकार आड़ूजातीय (अंक ७०) का वृक्ष है।

२८२. जातिफलम्[1] ।

Myristica fragrans.	(हिं०, बं० गु०, म०) जायफल ।
The Nutmeg.	
A large glabrous tree.	बृहत् मृदुहरित वृक्ष ।
Aromatic, stomachic, carminative and stimulant.	सुरभि, पाचक, वातानुलोमक, उत्तेजक ।

जातिफलं जातिशस्यं शालूकं मालतीसुतम् ।
मदशौण्डं जातिसुतं पुटं सौमनसं फलम् ॥६३८॥

पर्याय—जातिफल (जाति वा मालती के तुल्य गन्ध वाला फल), मालतीसुत (जातिफल, मालती-जाति, चम्बेली), मदशौण्ड (मदकारी), सौमनस (मनोरंजक गन्धमय) ॥६३८॥

जातिफलं रसे तिक्तं तीक्ष्णोष्णं रोचनं लघु ।
कटुकं दीपनं हृद्यं स्वर्यं श्लेष्मानिलापहम् ॥६३९॥
निहन्ति मुखवैरस्यमलदौर्गन्ध्यकृष्णताः ।
कृमिकासवमिश्वासशोषपीनसहृद्रुजः ॥६४०॥

---

१. जातिफल के वृक्ष सुमात्रा, जावा, पीनांग, मलक्कादि उष्ण द्वीपों में बहुत होते हैं। **पत्र** जामुनतुल्य परन्तु छोटे तथा सुरभि । शाखाएं भूमि की ओर झुकी हुई। **फल** छोटे अमरूद वा कुक्कुटाण्ड के तुल्य । इस के तीन भाग होते हैं, (१) **फलमांस** (गूदा–Pericarp), जो स्थूल, पीतवर्ण, मांसल और कटुगन्धि-तथा खरानी की तरह एक व्यासव्यापी रेखा से युक्त होता है। यह भाग लोग कच्चा खाते हैं वा इस से अचार, चटनी आदि बनाते हैं, (२) **बीजकोश** (Aril) रक्तपीत बहुधा भिन्न पत्रिका–यही जातीपत्री (Mace) है, (३) **बीज** (Seed) वा **अस्थि** (Hard stone or nut)–यह **जातिफल** है, जो यहां मिल जाता है। जातिफल वस्तुतः बीज है और उस का आवरण जातिपत्री, जो आर्द्रावस्था में बीज से चपटा रहता है और सूखने पर पृथक् हो जाता है। मलयदेश तथा लंका में भी जातिफल के वृक्ष मिलते हैं, जिस का बीज और पत्रिका जावादि द्वीपों के जातिफल और जातिपत्री से अधिक स्थूल और गुणों में अधम होते हैं। मलयदेश तथा लंका में मैं ने यह वृक्ष (Myristica malabarica) अनेक देखे हैं और फल तथा अचार खाया है। मलय के जातिफल में गन्ध अत्यल्प होता है । **जातिफल** प्रायः दीपन, पाचन, शूल महाकासादिघातक योगों में पड़ता है। यह हृदयोत्तेजनार्थ मृतप्राय रोगियों को मधु से चटाते हैं, तथा हाथ पाओं पर मला जाता है। वीर्योत्तेजक (Aphrodisiac) योगों में यह बहुत पड़ता है । मात्रा ४–८ रत्ति । इस का लेप शिरोऽर्त्ति, सन्धिशोथादि में किया जाता है।

२८३. जातिपत्री[1] ।

Aril or outer covering of Nutmeg. The mace (English Name). Uses as above (No. 282).	(हिं०) जावित्री, (बं०) जैत्री, (म०) जायपत्र, (गु०) जावंत्री । बीजकोष वा बीजावरण । गुण ऊपरोक्त (अंक २८२)

मालती पत्रिका ज्ञेया सुमनःपत्रिकापि च ।
जातिपत्री जातिकोशस्तथा सौमनसायनी ॥९४१॥

पर्याय—मालती (चम्बेली के तुल्य गन्धयुक्त), पत्रिका (पत्रमय) सुमनःपत्रिका (सुगन्धित पत्ररूप), जातिपत्री (जायफल का पत्ररूप कोश), जातिकोश (जायफल का बाह्यावरण), सौ० (मनोरम गन्ध वाली) ॥९४१॥

जातिपत्री कटुस्तिक्ता लघूष्णारुचिवर्णकृत् ।
कफकासवमिश्वासतृष्णाकृमिविषापहा ॥९४२॥

२८४. कङ्कोलम्[2] ।

कङ्कोलकं कटुफलं मारीचं माधवोषितम् ।
कूलं बहुफलं कोलं कटुकं कटुकाफलम् ॥९४३॥
कङ्कोलं लघु तिक्तोष्णं तीक्ष्णं हृद्यं रुचिप्रदम् ।
कफानिलास्यदौर्गन्ध्यहृद्रोगकृमिमान्द्यजित् ॥९४४॥

---

१. जातिपत्री क्या है ? यह ऊपर बता चुके हैं । इस का प्रयोग और गुण जातिफल के तुल्य समझें । जातिफल और जातिपत्री से एक तैल प्राप्त होता है, जो तीव्र, उत्तेजक, और गन्धाढ्य है । उसे ऊपरोक्त रोगों में दे सकते हैं । मात्रा ५-१० बिन्दु जल वा दुग्ध से । तिलतैल से मिला कर उसे सन्धिशोथादि पर मल सकते हैं । "तैलं जातिफलोद्भूतं समुत्तेजनमग्निदम् । जीर्णातिसारशमनमाध्मानाक्षेपशूलहृत् । आमवातहरं बल्यं दन्तवेष्टव्रणार्त्तिनुत् ॥" (आत्रेयसंहिता) ।

२. कङ्कोल दक्षिण के भिन्न २ भागों में भिन्न २ द्रव्य मिलता है, परन्तु उत्तर भारत में वैद्यगण प्रायः शीतलचीनी (सरदचीनी, कबाबचीनी— Piper cubea, Cubeb Pepper) को ही कंकोल कहते हैं । यह द्रव्य जावादि द्वीपों से आता है, और आकार में मरिचतुल्य परन्तु कुछ बड़ा । इस पर वृन्त वा तनु डण्डी सी लगी रहती है । आज कल इस का व्यवहार प्रायः पूयमेह (सुज़ाक) में होता है । मात्रा २-३ माषे जल वा शर्बत चन्दन के साथ । इस का तैल (Cubeb Oil) भी इसी रोग में व्यवहार होता है (देखो अंक २६१) । यह उत्तम मूत्रल (Diuretic) और मूत्रमार्गशोधक है । अन्य सुरभि द्रव्यों की तरह यह भी अग्निदीपक है ।

२८९. लवङ्गम्[1] (देवकुसुमम्) ।

Caryophyllus aromaticus.
The cloves.
A small evergreen tree
Stomachic, carminative, aromatic, anti-emetic and antispasmodic.

(हिं०) लौंग, लौंग, (म०, बं०) लवंग, (गु०) लवींग ।
क्षुद्र सदाहरित वृक्ष ।
दीपन, वातानुलोमक, सुरभि, वान्तिहर, तथा शूलघ्न वा आक्षेप-निवारक ।

लवङ्गं देवकुसुमं भृङ्गारं शिखिरं लवम् ।
श्रीपुष्पं वारिजं श्र्याह्वं दिव्यं चन्दनपुष्पकम् ॥९४५॥

पर्याय—देवकुसुम (देवताओं का फूल), शिखिर (चोटीदार), लव (क्षुद्र पुष्प), श्रीपुष्प (सुन्दर गन्धाढ्य पुष्प), वारिज (जलज, समुद्रतटज), श्र्याह्व (श्री नाम वाला), दिव्य (दिव्यगुणात्मक), चन्दनपुष्पक (चन्दनतुल्य वा चन्दनगन्धि पुष्प हैं जिस के) ॥९४५॥

लवङ्गं कटुकं तिक्तं रूक्षं हृद्यं हिमं लघु ।
चक्षुष्यं पाचनं हन्ति शूलानाहक्षतक्षयान् ।
कफपित्तास्रतृट्कासश्वासाध्मानविषपीनसान् ॥९४६॥

---

१. लवङ्ग के वृक्ष मलाका, ज़ंज़िबार आदि द्वीपों में होते हैं । पत्र दीर्घ, नोकदार और सुरभि । ६ वर्षों में लवंगवृक्ष को पुष्प आते हैं । जो लवंग बाज़ार में मिलता है, वह लवंगवृक्ष का शुष्क पुष्प है । लवंग के ऊपर जो चार छोटे २ भाग नज़र आते हैं, वह दलपत्रों (Petals) वा पंखड़ियों का अग्र भाग समझना चाहिए । यह चारों मिल कर नीचे एक नली (Calyx tube) से जुड़े रहते हैं । इस नली के भीतर अनेक पुंकेसर (Stamens or Male threads) तथा एक गर्भतन्तु (Style or Female part) होता है । यह शुष्क और सूक्ष्म होने से कुछ झड़ जाते हैं और कुछ नली के भीतर रहते हैं । अत एव लवंग को देवकुसुम वा पुष्प कहना यथार्थ है । लवंग के गुण तथा प्रयोग जातिफल के तुल्य समझें । लवंग के निष्पीड़न वा स्रवण से एक रक्तपीत तनु लवंग तैल (Oil of cloves or Oleum Caryophylli) निकलता है । यह जातिफलतैल-वत् प्रयोग करें । दन्तशूल में यह तैल २–३ बिन्दु रुई से लगा कर लाभ उठा सकते हैं । "देवपुष्पोद्भवं तैलमग्निकृद्वातनाशनम् । दन्तवेष्टकफार्तिघ्नं गर्भिण्या वमनापहम् ।" (आत्रेयसंहिता) । मात्रा ३–५ बिन्दु । शिश्न पर यह तैल मलने से उत्तेजना देता है । त्वचा पर लवंग वा उस के तैल के प्रयोग से स्थान रक्त हो जाता है । अनेक विदेशी रेचक औषधों में लवंग शूलनिवृत्त्यर्थ पड़ता है । वातवेदनाओं में लवंगतैल का अभ्यंग लाभ करता है । लवंगचूर्णमात्रा १–२ माशे उष्ण जल से ।

२८६. त्वक्[1] (गुड़त्वक्, दारुसिता)।

Cinnamomum Zeylanicum.
Cinnamon bark.
A large evergreen tree.
Used as cloves (No. 285).

(हिं०, म०, गु०) दालचीनी, तज,
(बं०) दारुचिनी।
बृहत् सदाहरित वृक्ष।
गुण लवंग (अंक २८५) के तुल्य।

गुड़त्वगुत्कटं हृद्यं तनुकं स्वर्णभूमिकम्।
लाटपर्णं च सकलं त्वक् चोचं वल्कलं त्वचम्।
घनं श्यामप्रियं भृङ्गं वराङ्गं सुरसंवरम् ॥९४७॥

पर्याय—गुड़त्वक् (मधुर त्वचा), उत्कट (तीव्र वीर्यवान्), तनुक (पतली), लाटपर्ण (लाटदेशज), वल्कल (त्वचा) ॥९४७॥

वराङ्गं कटुकं तिक्तं तीक्ष्णोष्णं मधुरं लघु।
पित्तलं कफवातघ्नं हृद्बस्तिगदजन्तुजित्।
पीनसारुचिकण्डूामवातदुर्नामशुक्रहृत् ॥९४८॥

---

१. **त्वक्** को त्वक् (त्वचा–Bark) इस लिए कहा जाता है, कि यह एक वृक्षविशेष की त्वचा वा वल्कल है। यह ३ प्रकार की है, (१) **भारतीय**—Indian cinnamon (C. iners); (२) **सैंहल** वा **लङ्कीय**—Ceylon Cinnamon (C. Zeylanicum), (३) **चीनदेशीय**—Chinese Cinnamon। त्वक् सं० २ और ३ उत्तम समझें। उन में भी चीनी त्वक् अधिक पतली, छोटी, सुगन्धित और मधुर होती है, "**त्वक् स्वाद्वी तनुत्वक् सा स्यात्तथा दारुसिता मता**" (भाव०)। यह वचन चीनी त्वक् के सम्बन्ध में कहा गया है (दारुसिता-मीठी दारु वा दालचीनी—दाल दारु का अपभ्रंश)। सैंहल त्वक् लंका से आती है, वहां इन वृक्षों के जंगल हैं। पतली शाखाओं को काट कर उनकी आभ्यन्तरिक त्वचा पृथक् की जाती है, यही दालचीनी है। वृक्ष का प्रत्येक भाग सुगन्धित है। भारतीय त्वक् अधम समझें। बाज़ार में जो **तज** मिलती है, वह भारतीय त्वक् है। दक्षिण में लाट नामक प्रदेश में उत्पन्न होने से इसे **लाटपर्ण** भी कहा गया है। यह अधिक स्थूल, मधुर, पिच्छल और कम कटु तथा सुरभि होती है। मधुरता के कारण गुड़त्वक् भी इसे कहा गया है। गुण और प्रयोग जातिफल वा लवङ्ग के समान। **त्वक्तैल** घन, मधुर, गुरु और रक्ताभ होता है, गुण—"**वह्निमान्द्यानिलहरमाध्मानाक्षेपनाशनम्। वान्त्युत्क्लेशप्रशमनं संग्राहि दशनार्त्तिहृत्। त्वाचं तैलं रजःस्रावि तोये क्षिप्तं निमज्जति।**" (आत्रेयसंहिता)। जातिफल, लवंग, त्वक् आदि के तैल विदेशी चिकित्सा में व्यवहार होते हैं और डाक्टरी दुकानों से मिल जाते हैं। आत्रेयसंहिता के प्रमाण से हमें इन तैलों के व्यवहार में संकोच नहीं करना चाहिए। त्वक् का लेप शिरोऽर्त्ति में किया जाता है।

२८७. तमालपत्रम्[1] ।

Cinnamomum Tamala.	(हिं०) तेजपात, (बं०) तेजपाता,
Cinnamon Leaves.	तेजपत्र, (गु०, म०) तमालपत्र ।
Aromatic and stomachic.	सुरभि, दीपन पाचन ।

तमालपत्रकं पत्रं तामसं वस्त्रमशुंकम् ।
पलाशं रोमशं रोमतमालच्छदनं दलम् ॥६४६॥

पर्याय—तमालपत्रक (तमालवृक्ष के पत्र), तामस (कृष्ण—तमाल वृक्ष की त्वचा कृष्ण होने से), पलाश (पत्र), दल (पत्र) ॥६४६॥

पत्रकं मधुरं किञ्चित्तीक्ष्णोष्णं पिच्छलं लघु ।
निहन्ति कफवातार्शोहृल्लासारुचिपीनसान् ॥६५०॥

२८८. सूक्ष्मैला[2] ।

Elettaria Cardamomum.	(हिं०) छोटी एलाची, (बं०) छोट
Small Cardamom.	एलाच, (म०) वेलची, (गु०) एलची
A perennial herb.	कागदी । बहुवार्षिक क्षुप ।
Aromatic, stomachic, etc.	सुरभि पाचकादि गुणयुक्त ।

एला चन्द्रा चन्द्रबला बालैला बहुला त्रुटि ।
सूक्ष्मैला द्राविड़ी बाला क्षुद्रैला निष्कुटिर्द्विषा ॥९५१॥
कपोतवर्णा कोरङ्गी त्रिदिवा निस्त्रुटिर्मिषी ।
सूक्ष्मैला मूत्रकृच्छ्रार्शःश्वासकासकफापहा ॥६५२॥

---

१. **तमालपत्र** त्वग्जातीय वृक्षविशेष के पत्र हैं । त्वग्जाती (Cinnamon Family) के जितने भी वृक्ष हैं, उन सब के पत्र सुगन्धित और स्वाद में कुछ २ दालचीनी के तुल्य होते हैं, परन्तु जो बाज़ार में तेजपात (वस्तुतः तजपत्र) मिलते हैं, वे तमाल वृक्ष के पत्र हैं वा तज्जातीय (C. obtusifolium–Obtuse-leaved Cinnamon tree) के पत्र हैं । यह वृक्ष दक्षिण भारत में होते हैं, भारतीय त्वक् (तज) कभी २ उनकी छाल को ही कह देते हैं । तेजपत्र के गुण दालचीनी के समान जानें, परन्तु कुछ न्यून । बंगाली लोग जलीय व्यञ्जनों (तरिदार भाजियों) में तेजपत्र सम्पूर्ण छोड़ देते हैं । उनका सत्त्व व्यञ्जन में घुलकर उसे सुगन्धित कर देता है ।

२. **सूक्ष्मैला** मलयदेश में बहुत होती है, अतएव उसे **द्राविड़ी** कहा गया है । उस का क्षुप हरिद्रा वा आर्द्रक के तुल्य जानें । सुरभि द्रव्यों के सदृश यह भी पाचक, दीपक, शूलहर, कासश्वासघ्न, कृच्छ्रहरादि गुणों से युक्त है । इसके चूसने से लालास्राव अधिक होकर भोजन पचता है और वान्ति तथा गलरोग दूर होते हैं । एला के बीजों में एक उड़नशील तैल (Volatile oil) होता है ।

२८९. बृहदेला[1] ।

Amomum subulatum.

A perennial herb.

Aromatic, stomachic, etc.

(हिं०) बड़ी एलाची, (बं०) बड़ एलाच, (म०) थोरवेला, (गु०) मोटी एलाची । बहुवार्षिक क्षुप । सुरभि दीपकपाचकादिगुणयुक्त ।

वृद्धैला बृहदेला स्यात्पत्रैला त्वक्सुगन्धिका ।
त्रिपुटा त्रिदिवोद्भूता भद्रैला कन्यका पुरा ॥९५३॥

पर्याय—वृद्धैला (वृद्धा एला, बड़ी इलाची), बृहदेला (बड़ी एला), त्रिपुटा (त्रिपुटयुक्त फल हैं जिसके), पुट (फलकोष के तीन भाग), भद्रैला (श्रेष्ठ एला) ॥९५३॥

भद्रैला कटुका पाके रसे पित्ताग्निकृल्लघुः ।
सूक्ष्मोष्णा रोचनी श्वासकासवातास्रकासहा ।
हन्ति हृल्लासतृट्कण्डूशिरोवस्त्यास्यरुग्वमीः ॥९५४॥

२९०. नागकेशरः[2] ।

Mesua ferrea.

A large evergreen tree.

Astringent, stomachic, carminative and styptic.

(हिं०, गु०, म०, नागकेसर, (बं०) नागेश्वर । बृहत् सदाहरित वृक्ष । ग्राहि, दीपकपाचक, वातानुलोमक, रक्तस्तम्भक ।

नागाह्वं नागकिञ्जल्कं केसरं नागकेसरम् ।
अहिपुष्पं हेमपुष्पं चाम्पेयं नागपुष्पकम् ।
हेमाभं कनकं चेभं दुरोहं नागरेणुकम् ॥९५५॥

---

१. बृहदेला का आर्द्रकाकार क्षुप भारत में सब जगह होता है, परन्तु उष्ण तथा आर्द्र स्थल इसे अधिक प्रिय हैं । क्षुद्रैला का क्षुप बृहदेला की अपेक्षा छोटा होता है । इन दोनों का मूल सर्पणशील कन्दरूप होता है, जो भूमि में इतस्ततः फैलता हुआ पत्रमय शाखाएं देता जाता है । बृहदेला खर्बूज़े के बीजों के साथ घोटकर ठण्डाई पिलाने से मूत्रकृच्छ्र दूर हो जाता है । क्षुद्रैला बृहदेला की अपेक्षा अधिक उष्ण है । बाज़ार में जो एलातैल मिलता है, वह कृत्रिम (Synthetical) है ।

२. नागकेशर के वृक्ष कूचविहार, हज़ारीबाग, पूर्व बंगाल तथा मलय में मिलते हैं । **पत्र** जामुन के तुल्य, परन्तु नोकदार अधिक लम्बे और मृदु । **पुष्प** श्वेत, सुगन्धित, चतुर्दल (4-petalled) । पुष्पों में **परागकेसर** (Stamens) के सूत्रों का समूह होता है । यह पीत और सुरभि होते हैं । इन के मध्य में एक गर्भाशय होता है, जो पक कर फल में परिवर्तित हो जाता है । इस फल से छोटे २ रक्ताभ मेंहदी के बीजों के तुल्य बीज निकलते हैं । यह रक्त, तनु, गोल, मृदु भंगुर बीज प्रायः बाज़ार में नागकेसर के नाम से मिलते हैं । वास्तविक नागकेसर इसी वृक्ष के केसररूप सूत्र हैं, परन्तु वह संग्रह नहीं किए जाते हैं या अल्पता के

पर्याय—नागाह्व (नाग नाम वाला), नागकिञ्जल्क (नागकेसर), केसर (पुष्प के पुंसूत्र-Stamens), अहिपुष्प (नागपुष्प), हेमाभ (पीताभ), कनक (हेमाभ), चेभ (च इभ, इभ—हस्ति) ॥६५५॥

नागपुष्पं कषायोष्णं तीक्ष्णं लघ्वामपाचनम्।
रूक्षं पित्तकफकृच्छर्दिखुडकण्डूविसर्पनुत्।
हृल्लासस्वेददौर्गन्ध्यकुष्ठतृष्णाविषापहम् ॥९५६॥

त्रिचतुर्जातकौ।

वराङ्गपत्रकैलाभिस्त्रिसुगन्धि त्रिजातकम्।
त्रिगन्धकं चतुर्जातं चातुर्जातं सकेसरम् ॥६५७॥

वरांग (दालचीनी), पत्रक (तेज पत्र) और एला (प्रायः क्षुद्र)–यह तीनों (सम चूर्ण) मिलाने से त्रिसुगन्धि वा त्रिजातक (तीन सुगन्धित द्रव्यों का समूह) बन जाता है। त्रिगन्धक (त्रिसुगन्धि) के साथ नागकेसर मिलाने से चतुर्जात वा चातुर्जात बन जाता है ॥६५७॥

त्रिगंन्धकं चतुर्जातं तीक्ष्णोष्णं रोचनं लघु।
रूक्षं पित्ताग्निकृद्वर्ण्यं कफवातविषापहम् ॥६५८॥

२६१. रेणुका[1]।

महिला नन्दिनी कौन्ती रेणुका कपिला द्विजा।
कपितैला पाण्डुपत्री राजपुत्री हरेणुका ॥६५६॥

कारण नहीं मिलते। इसी फूल को नागपुष्प कहते हैं। नागकेसर और नागपुष्प दोनों गुणों में तुल्य होने से पर्यायरूप वर्णित हैं। केसर वस्तुतः पुष्प का पुल्लिंग भाग है, और फल परिपक्व गर्भाशय। बाज़ारी नागकेसर (बीज) भी रक्तारी, रक्तप्रदर, रक्तातिसारादि में लाभकारी हैं। चूर्णमात्रा–३ माषा शर्कराभिश्रित जल वा दुग्ध से। ऊपरोक्त वृक्ष के सदृश एक अन्य वृक्ष (Ochrocarpus longifolius) के पुष्प और केसर भी नागपुष्प और नागकेसर कहलाते हैं। यह वृक्ष प्रायः दक्षिण में मिलता है। मद्रास के बाजारों में एक लवंगाकार कृष्ण द्रव्य नागकेसर के नाम से मिलता है। उत्तर भारत का नागकेसर उस से अच्छा है, परन्तु यह नागबीज हैं, न कि नागकेसर। वास्तविक नागकेसर दीपक, पाचक और सुगन्धित है। बंगाल में नागपुष्प भी कहीं २ मिल जाते हैं। श्री शालिग्राम जी के वचन देखिए, "पुन्नाग वृक्ष की केसर को और नागचंपाकी कली को नागकेसर कहतेह, इस की दो जाति हैं, कोकण, गोवाकी ओर से आती है।"

१. **रेणुका** कहीं निर्गुण्डी (संभालु अंक २७) के बीजों को और कहीं मेंहदी के बीजों को समझा जाता है, परन्तु यह मत ठीक नहीं। वंगदेश से निर्गन्धि क्षुद्र बीज आते हैं। रेणुका किसी सुगन्धित सूक्ष्म बीजाकार द्रव्य का नाम है, जो अज्ञात है। कहीं २ लोग धोके से विडंग दे देते हैं।

रेणुका कटुका पाके तिक्तानुष्णा कटुर्लघुः ।
पित्तला दीपनी मेध्या पाचनी गर्भपातनी ।
बलासवातवैक्लव्यतृट्कण्डूविषदाहहा ॥९६०॥

२९२. प्रियङ्गुर्गन्धप्रियंगुश्च[1] ।

Aglaia Roxburghiana.
A large evergreen tree.
Cooling, astringent and tonic.

(हिं०) प्रियङ्गु, फूलप्रियंगु, फूलफिरंग, (बं०) प्रियंगु, (म०) गहुला, (गु०) घड़ला। वृहत् सदाहरित वृक्ष। शीत, ग्राही, रसायन।

प्रियङ्गुः फलिनी कान्ता प्रियाह्वा वनिता लता ।
श्यामा गोदन्तिनी वृत्ता काङ्गुणी प्रियवल्लिका ॥९६१॥
गन्धप्रियङ्गुर्महिलाकरं भावर्णभेदिनी ।
विष्वक्सेनाङ्गोलगिरिभङ्गुरा पर्णभेदिनी ॥९६२॥

पर्याय—प्रियंगु (प्रियं गच्छति नारीणामिति प्रियंगुः, स्त्रियों को प्रिय—गन्ध के कारण), कान्ता (प्रिय), प्रियाह्वा (प्रिय नाम वाला), वनितालता (स्त्रीप्रिय क्षुप), श्यामा (श्याम वर्ण फल वाला), गोंदन्तिनी (गोदन्तसदृश), वृत्ता (गोल), काङ्गुणी (दानेदार), प्रियवल्लिका (प्रिय लता), महिलाकर (स्त्रीप्रिय), भावर्णभेदिनी (प्रभा और रंग देने वाला), भंगुरा (शीघ्र टूटने वाला, मृदु) ॥ ९६१–२ ॥

फलिनी शीतला तिक्ता तुवरानिलपित्तहा ।
रक्तातियोगदौर्गन्ध्यस्वेददाहज्वरापहा ॥९६३॥
गुल्मतृड्विषमेहघ्नी तद्वद्गन्धप्रियंगुका ।
तत्फलं तुवरं रूक्षं कषायं शीतलं गुरु ।
विबन्धाध्मानबलकृत्संग्राहि कफपित्तजित् ॥९६४॥

---

१. प्रियंगु के वृक्ष दक्षिण एवं वंगदेश में मिलते हैं। उन्हें क्षुद्र, पीत, सुरभि पुष्प आते हैं। फल क्षुद्रैलाकार, नोकदार, परन्तु मांसल; इस के भीतर से कठोर बीज निकलता है, जिसे तोड़ने पर मृदु मज्जा प्राप्त होती है। जो बीज बाज़ार में मिलते हैं, उन में या उन की मज्जा में तनिक भी गन्ध नहीं। गन्धप्रियंगु अब कहीं नहीं मिलता। प्रियंगु प्राचीन काल में स्त्रियां लेपनार्थ व्यवहार करती थीं, क्योंकि उस समय सुगन्धित प्रियंगु मिल जाता था, परन्तु आज कल के प्रियंगु में गन्ध न होने से उस का ऐसा व्यवहार नहीं हो सकता। प्रियंगु शीतवीर्य होने से दाहादि में लाभकारी है। प्रियंगु आजकल प्रायः कलकत्ता से आता है।

२९३. मुस्तकः[1] (भद्रमुस्तकश्च)।

Cyperus Rotundus.
A perennial tuberous grass.
Astringent, cool, diaphoretic, diuretic, refrigerant, and galactogogue.

(हिं०) मोथा, भद्र मोथा, (पं०) मुथरां, डीला, मधारीं, (बं०) मुता, (म०) मोथे, (गु०) मोथा।
बहुवार्षिक कन्दज तृण।
ग्राही, शीत, सुरभि, स्वेदल, मूत्रल, तृष्णाशमक, स्तन्यवर्धक।

मुस्तोऽम्भोदो घनो मेघो गांगेयो कुरुविन्दकः।
भद्रमुस्तो वराहोऽब्दः पिवरं पिण्डमुस्तकम्।
पूर्णकोष्ठो भद्रहंसः प्राच्यो राजकसेरुकः ॥९६५॥

पर्याय—अम्भोद (जलद, बादल), घन (बादल, श्याम वर्ण के कारण), गांगेय (गांगप्रदेशज॰ वा सजलस्थलज), भद्रमुस्तक (श्रेष्ठ मुस्तक), अब्द (जलद, बादल) ॥९६५॥

मुस्तं तिक्तं हिमं ग्राहि दीपनं पाचनं कटु।
कषायं कफपित्तास्रतृड्ज्वरारुचिजन्तुजित् ॥९६६॥

२९४. कुटंनटम्[2] (कैवर्तमुस्तकः)।

कुटंनटं प्लवं वन्यं गोनर्दं गोपुटं पुटम्।

---

१. **मुस्तक** वर्षाकाल के पश्चात् आर्द्र अर्द्धबालुमयी भूमि में॰ इतस्ततः भारत में सर्वत्र मिल जाता है। **क्षुप** तृणाकार; **काण्ड** तनु, सरल, काण्ड के शिखर पर लम्बे, तनु, चक्र के आराओं की तरह जुड़े हुए **पत्र**। साधारण मुस्तक ½ हाथ ऊंचा होता है। मूल कृष्ण तथा रोमश कन्दरूप (Tuber), यह कन्द भूमि में फैलता हुआ तृणरूप काण्ड देता जाता है। वैद्यक चिकित्सा में मुस्तकमूल का व्यवहार अनेक रोगों, यथा ज्वर, अतिसार, प्रवाहिका, तृष्णा, रक्तपित्त, कृमि, विसर्प, अजीर्ण, मदात्यय, छर्दि, आदि में होता है। यह ग्राही, आमपाचक, अग्निदीपक और तृष्णाघ्न है। इसे प्रायः तद्रोगनाशक अन्य द्रव्यों, यथा गुडूची (ज्वरे), अतिविषाहीबेर (अतिसारे) आदि से मिला कर चूर्ण, क्वाथ, फाण्टादि रूपों में व्यवहार किया जाता है। मुस्तकमात्रा २–३ माषे। मुस्तक के भाव से अधिक लालास्राव (Excessive Salivation) बन्द हो जाता है। ज्वर में देने से स्वेद और मूत्र खुल कर आने से ज्वर शान्त हो जाता है। आर्द्र मुस्तक का लेप स्तनों पर करने स्तन्यवृद्धि होती है।

२. **कैवर्तमुस्तक** (Cyperus tenuiflorus—हिं॰—केवटी मोथा, बं॰—केवड़ी मोथा) मुस्तक का भेदान्तर है, जो प्रायः जल में वा जलाढय भूमि में होता है। इस के कन्द से केतकीतुल्य गन्ध आता है। अन्य गुण तथा प्रयोग पूर्ववत्। कुटंनट के पर्यायों में यद्यपि कैवर्त्तमुस्तक का शब्द मूलपाठ में नहीं, तथापि

सितपुष्पं सदापूरं वितुन्नं परिपेलवम् ।
जीर्णबुध्नं शीर्णपर्णं पहिपेलवं शुकाह्वयम् ॥६६७॥
परिपेलं हिमं तिक्तं कषायं कटु कान्तिदम् ।
कफपित्तास्रवीसर्पकुष्ठकण्डूविषप्रणुत् ॥९६८॥

२९५. मांसी[1] (जटामांसी) ।

Nardostachys Jatamansi. Indian Spikenard.	(हिं०) बालछड़, बिल्लीलोटन, (बं०, म०) जटामांसी, (गु०) बालछड़ ।
A perennial tuberous herb.	बहुवार्षिक कन्दमय क्षुप ।
Aromatic, stimulant, nervine tonic and antispasmodic.	सुरभि, उत्तेजक, मेध्यरसायन, आक्षेपनिवारक वा शूलघ्न ।

मांसी माता भूतकेशी नलदं जटिलं जटा ।
सुलोमशा मिषी हिंस्रा क्रव्यादा पिशिनी शिखा ॥ ९६९ ॥

अन्य ग्रन्थों में यह प्रधान नाम है । इस के अतिरिक्त **नागरमुस्तक** (नागर मोथा, बं०—नागरमुता—Cyperus pertenuis) एक अन्य प्रसिद्ध मुस्तक भेद है। यह २–३ हाथ ऊंचा और निम्न आर्द्र भूमि में होता है। शेष आकृति मुस्तकतुल्य । इस का कन्द अन्य सब मुस्तकों से बहुत दीर्घ तथा स्थूल होता है। औषधव्यवहार में नागरमुस्तक श्रेष्ठ माना है, "आनूपदेशे यज्जातं मुस्तकं तत्प्रशस्यते । तत्रापि मुनिभिः प्रोक्तं वरं नागरमुस्तकं ।" (भा० नि०) । यहां नागरमुस्तक का वर्णन नहीं किया गया । अन्य ग्रन्थों में मुस्तक और भद्रमुस्तक का पृथक् २ वर्णन मिलता है । भद्रमुस्तक मुस्तक का ही भेद है । कहीं वे दोनों एक समझे जाते हैं। **कान्तकामुक** (Cyperus tuberosus) एक अन्य दुर्लभ भेद है । भद्रमुस्तक, नागरमुस्तक, कैवर्तमुस्तक, और कान्तकामुक यह मुस्तक के चार भेद हैं।

1. **जटामांसी** काश्मीर, नेपाल, सिक्कमादि के जलाढ्य स्थानों में उत्पन्न होती है। **काण्ड** १–२ हाथ ऊंचा, मृदु; **पत्र** १ इंच चौड़े और ७–८ इंच लम्बे। **पुष्प** क्षुद्र वा वृहद् द्विप्रकार तथा रक्त। मांसी का **कन्द** (Valerian Rhizome) ही औषधों में काम आता है। यह पिंगल वर्ण, रोमावृत्त और सुगन्धित होता है। इस की गन्ध पर बिल्ली लट्टू हो कर लोटती है, (अतः बिल्लीलोटन) । बाज़ारी जटामांसी में कभी २ अन्य रोमावृत्त काष्ठ भी मिलाया जाता है। सुन्दर तीव्र गन्ध जटामांसी की परीक्षा है। जटामांसी में एक सुगन्धित तैल (Valerian Oil) है, जो पातालयन्त्र द्वारा निकाला जा सकता है । दक्षिण में जटामांसी तैल केशों के लिए व्यवहार किया जाता है। कन्दचूर्ण (२–३ माषे) कास, श्वास, अपस्मार, योषापस्मार (Hysteria), शूल, अजीर्ण, शिरोऽर्त्ति, आमदोष, हृदयस्पन्दनादि अनेक रोगों में व्यवहार किया जाता है। यह धूपों में भी पड़ती है।

किराततनी भूतजटा जननी च तपस्विनी ।
अन्या कृष्णजटा केशी पेशी भूतशिखाऽग्रणी ।
पिशाची पूतना गन्धमांसी भूतजटा शिफा ॥६७०॥

पर्याय—मांसी (मांसल कन्द वाली), भूतकेशी (भूतों जैसे केश हैं जिस पर वा कृमिनाशक केशमय द्रव्य), जटिल (जटाधारी, रोमश), सुलोमशा (लोमों वाली), हिंस्रा (भूतघ्न वा कृमिनाशक), क्रव्यादा (मांसादा, मांसभक्षक), शिखा (जटा), भूतजटा (भूतों जैसी जटाओं वाली), जननी (माता), तपस्विनी (तपस्वियों की तरह जटाधारी) । **कृष्णजटा**—भूतशिखा (भूतजटा), अग्रणी (श्रेष्ठ), पिशाची (राक्षसी), शिफा (मूल, कन्द) ॥६६९-७०॥

मांसी स्वाद्वी हिमा तिक्ता तुवरा बलकान्तिदा ।
त्रिदोषविषवीसर्पदाहलोहितकुष्ठनुत् ॥६७१॥

२९६. ह्रीवेरम्[1] (बालकम्) ।

Valeriana Wallichii.	(हिं०) सुगन्धवाला, नेत्रवाला, मुश्कवाला, (बं०) बाला, (गु०) वालो, (म०) वाळी ।
A pubescent perennial herb.	मृदु बहुवार्षिक क्षुप ।
Aromatic, refrigerant, diuretic, cooling and diaphoretic.	सुरभि, तृष्णाघ्न, मूत्रल, शीत, स्वेदल ।

ह्रीवेरं बालकं वारि वरिष्टं पिङ्गलं जलम् ।
उदीच्यमम्बु तिक्तांगं वज्रमाचमनं कचम् ॥६७२॥

पर्याय—वारि (जल नाम वाला), कच (केश नाम वाला, केश्य होनेसे) ॥६७२॥

बालकं मधुरं तिक्तं दीपनं पाचनं हिमम् ।

जटामांसी के तुल्य जातीय Valeriana Officinalis नामक काश्मीरज पादप से डाक्टरों ने एक प्रसिद्ध वैलिरियन (Valerian) संज्ञक तरल, सुरभि सत्त्व निकाला है, जो पाश्चात्य चिकित्सा में ज्वर, मूर्च्छा, अपस्मार, सन्धिशूलादि में तथा हृदय और मूर्धा के रोगों में बहुत व्यवहार किया जाता है ।

१. **ह्रीवेर** का मृदु हरित क्षुद्र क्षुप हिमालय (काश्मीरादि) एवं नीलगिरि (मलय) पर्वतों पर बहुत मिलता है । **पत्र** गोल वा पानाकार और मृदु तथा सुरभि । **कन्द** तनु तन्त्वावृत्त मृदु, भङ्गुर, सुरभि । बालक बाजार में बहुत मिलता है । यह तन्तुमय द्रव्य बड़ा सुगन्धित होता है । लोग इसे तैलों में पकाकर सुगन्धित तैल बनाया करते थे, जो केशों पर लगाया जाता था, अतः ललनाप्रिय (स्त्रीप्रिय), कान्तलोशीर (केशोशीर), कचामोद (केशामोद) आदि पर्याय इसे दिए गए थे । तृष्णा, दाह, मूर्च्छा, अपस्मार, रक्तपित्त, आमातिसार, ज्वरादि रोगों में अन्य द्रव्यों से मिलाकर उस का क्राथ दिया जाता है । यह मूर्द्धरोगों में उत्तेजनार्थ दिया जा सकता है । अहिफेन विष में भी यह लाभकारी है । शर्बतों में सुगन्धार्थ डालते हैं ।

सितपुष्पं सदापूरं वितुन्नं परिपेलवम् ।
जीर्णबुध्नं शीर्णपर्णं पहिपेलवं शुक्राह्वयम् ॥९६७॥
परिपेलं हिमं तिक्तं कषायं कटु कान्तिदम् ।
कफपित्तास्रवीसर्पकुष्ठकण्डूविषप्रणुत् ॥९६८॥

२९५. मांसी[1] (जटामांसी) ।

Nardostachys Jatamansi.	(हिं०) बालछड़, बिल्लीलोटन, (बं०, म०) जटामांसी, (गु०) बालछड़ ।
Indian Spikenard.	
A perennial tuberous herb.	बहुवार्षिक कन्दमय क्षुप ।
Aromatic, stimulant, nervine tonic and antispasmodic.	सुरभि, उत्तेजक, मेध्यरसायन, आक्षेपनिवारक वा शूलघ्न ।

मांसी माता भूतकेशी नलदं जटिलं जटा ।
सुलोमशा मिषी हिंस्रा क्रव्यादा पिशिनी शिखा ॥ ९६९ ॥

अन्य ग्रन्थों में यह प्रधान नाम है । इस के अतिरिक्त **नागरमुस्तक** (नागर मोथा, बं०—नागरमुता—Cyperus pertenuis) एक अन्य प्रसिद्ध मुस्तक भेद है । यह २–३ हाथ ऊंचा और निम्न आर्द्र भूमि में होता है । शेष आकृति मुस्तकतुल्य । इस का कन्द अन्य सब मुस्तकों से बहुत दीर्घ तथा स्थूल होता है । औषधव्यवहार में नागरमुस्तक श्रेष्ठ माना है, "आनूपदेशे यज्जातं मुस्तकं तत्प्रशस्यते । तत्रापि मुनिभिः प्रोक्तं वरं नागरमुस्तकं ।" (भा० नि०) । यहां नागरमुस्तक का वर्णन नहीं किया गया । अन्य ग्रन्थों में मुस्तक और भद्रमुस्तक का पृथक् २ वर्णन मिलता है । भद्रमुस्तक मुस्तक का ही भेद है । कहीं वे दोनों एक समझे जाते हैं । **कान्तक्रामुक** (Cyperus tuberosus) एक अन्य दुर्लभ भेद है । भद्रमुस्तक, नागरमुस्तक, कैवर्तमुस्तक, और कान्तक्रामुक यह मुस्तक के चार भेद हैं ।

१. **जटामांसी** काश्मीर, नेपाल, सिक्कमादि के जलाढ्य स्थानों में उत्पन्न होती है । **काण्ड** १–२ हाथ ऊंचा, मृदु; **पत्र** १ इंच चौड़े और ७–८ इंच लम्बे । **पुष्प** क्षुद्र वा वृहद् द्विप्रकार तथा रक्त । मांसी का **कन्द** (Valerian Rhizome) ही औषधों में काम आता है । यह पिंगल वर्ण, रोमावृत्त और सुगन्धित होता है । इस की गन्ध पर बिल्ली लट्टू हो कर लोटती है, (अतः बिल्लीलोटन) । बाज़ारी जटामांसी में कभी २ अन्य रोमावृत्त काष्ठ भी मिलाया जाता है । सुन्दर तीव्र गन्ध जटामांसी की परीक्षा है । जटामांसी में एक सुगन्धित तैल (Valerian Oil) है, जो पातालयन्त्र द्वारा निकाला जा सकता है । दक्षिण में जटामांसी तैल केशों के लिए व्यवहार किया जाता है । कन्दचूर्ण (२–३ माषे) कास, श्वास, अपस्मार, योषापस्मार (Hysteria), शूल, अजीर्ण, शिरोऽर्त्ति, आमदोष, हृदयस्पन्दनादि अनेक रोगों में व्यवहार किया जाता है । यह धूपों में भी पड़ती है ।

किराततनी भूतजटा जननी च तपस्विनी।
अन्या कृष्णजटा केशी पेशी भूतशिखाऽग्रणी।
पिशाची पूतना गन्धमांसी भूतजटा शिफा ॥६७०॥

पर्याय—मांसी (मांसल कन्द वाली), भूतकेशी (भूतों जैसे केश हैं जिस पर वा कृमिनाशक केशमय द्रव्य), जटिल (जटाधारी, रोमश), सुलोमशा (लोमों वाली), हिंस्रा (भूतघ्न वा कृमिनाशक), क्रव्यादा (मांसादा, मांसभक्षक), शिखा (जटा), भूतजटा (भूतों जैसी जटाओं वाली), जननी (माता), तपस्विनी (तपस्वियों की तरह जटाधारी) । **कृष्णजटा**—भूतशिखा (भूतजटा), अग्रणी (श्रेष्ठ), पिशाची (राक्षसी), शिफा (मूल, कन्द) ॥६६९–७०॥

मांसी स्वाद्वी हिमा तिक्ता तुवरा बलकान्तिदा।
त्रिदोषविषवीसर्पदाहलोहितकुष्ठनुत् ॥६७१॥

२६६. ह्रीवेरम्[1] (बालकम्)।

Valeriana Wallichii.	(हिं॰) सुगन्धवाला, नेत्रवाला, मुश्कवाला, (बं॰) बाला, (गु॰) वालो, (म॰) वाळी।
A pubescent perennial herb.	मृदु बहुवार्षिक क्षुप।
Aromatic, refrigerant, diuretic, cooling and diaphoretic.	सुरभि, तृष्णाघ्न, मूत्रल, शीत, स्वेदल।

ह्रीवेरं बालकं वारि वरिष्टं पिङ्गलं जलम्।
उदीच्यमम्बु तिक्तांगं वज्रमाचमनं कचम् ॥६७२॥

पर्याय—वारि (जल नाम वाला), कच (केश नाम वाला, केश्य होनेसे) ॥६७२॥

बालकं मधुरं तिक्तं दीपनं पाचनं हिमम्।

जटामांसी के तुल्य जातीय Valeriana Officinalis नामक काश्मीरज पादप से डाक्टरों ने एक प्रसिद्ध वैलिरियन (Valerian) संज्ञक तरल, सुरभि सत्त्व निकाला है, जो पाश्चात्य चिकित्सा में ज्वर, मूर्च्छा, अपस्मार, सन्धि-शूलादि में तथा हृदय और मूर्धा के रोगों में बहुत व्यवहार किया जाता है।

१. **ह्रीवेर** का मृदु हरित क्षुद्र क्षुप हिमालय (काश्मीरादि) एवं नीलगिरि (मलय) पर्वतों पर बहुत मिलता है। **पत्र** गोल वा पानाकार और मृदु तथा सुरभि। **कन्द** तनु तन्त्वावृत्त मृदु, भङ्गुर, सुरभि। बालक बाजार में बहुत मिलता है। यह तन्तुमय द्रव्य बड़ा सुगन्धित होता है। लोग इसे तैलों में पकाकर सुगन्धित तैल बनाया करते थे, जो केशों पर लगाया जाता था, अतः ललनाप्रिय (स्त्रीप्रिय), कान्तलोशीर (केशोशीर), कचामोद (केशामोद) आदि पर्याय इसे दिए गए थे। तृष्णा, दाह, मूर्च्छा, अपस्मार, रक्तपित्त, आमातिसार, ज्वरादि रोगों में अन्य द्रव्यों से मिलाकर उस का क्वाथ दिया जाता है। यह मूर्द्धरोगों में उत्तेजनार्थ दिया जा सकता है। अहिफेन विष में भी यह लाभकारी है। शर्बतों में सुगन्धार्थ डालते हैं।

लघु रूक्षं ज्वरं हन्ति रक्तपित्तकफव्रणान् ॥
दाहहृल्लासवीसर्पतृष्णातिसारहृद्ग्रदान् ॥६७३॥

२९७. उशीरम्[1] (वीरणमूलम्)।

Andropogon muricatus.	(हिं) खस, वीरन, (बं०) गन्धवेणा, खसखस, (गु०) कालो वालो, (म०) काला वाला। दीर्घ सुरभि तृणविशेष।
A tall fragrant grass.	
Cooling, refrigerant, diaphoretic, diuretic and tonic.	शीत, तृष्णाशमक, स्वेदल, मूत्रल, रसायन।

उशीरं वीरणं सेव्यमभयं समगन्धिकम्।
बहुमूलं वीरतरं वरं वीरणमूलिका।
रणप्रियं शीतमूलं मृणालं मृणालकम् ॥ ॥६७४॥
उशीरं शीतलं रूक्षं स्वादु तिक्तं हिमं लघु।
पाचनं स्तम्भनं हन्ति दोषदाहमदज्वरान्।
तृष्णास्रविषदौर्गन्ध्यकृच्छ्रकुष्ठवमिव्रणान् ॥६७५॥

२९८. लामज्जकम्[2] (उशीरभेदः)।

Andropogon Nardus.	(हिं०) लामज्जक, (बं०) गन्धवेणा, (म०) लावज, (गु०) जलवालो। दीर्घ बहुपर्ण तृण। प्रयोग पूर्ववत् (अंक२९७)
A tall leafy grass.	
Uses as above (No. 297)	

---

१. **उशीर** वीरण (गांडर, वेना) तृण की मूल है। यह घास बालुमयी भूमि में सब जगह मिलता है। आकार में बहुत लम्बा; **पत्र** मुञ्जवत् दीर्घ, तीक्ष्णाग्र। इसकी जड़ बड़ी लम्बी २ होती हैं, जिनके छोटे गट्ठे (Bundles) बनकर बाजार में विक्रयार्थ भेजे जाते हैं। इसी सुरभि तृणमूल का नाम **उशीर** (खस) है। इसका सुगन्ध (Otto, Scent) भी बाजार में मिलता है। यह तेलों तथा शर्बतों में सुगन्धार्थ मिलाया जाता है। २-५ बिन्दु जल में मिलाकर पिलाने से दाह, वान्ति रक्तपित्तादि की शान्ति होती है। ग्रीष्मकाल में द्वारों पर खस खस की **टट्टियों** का व्यवहार शीत सुगन्धित वायु की प्राप्ति के लिए किया जाता है। वैद्यक चिकित्सा में रक्तपित्त, दाह, ज्वरादि की शान्ति के लिए **उशीरफाण्ट** दिया जाता है। **षडङ्गपानीय** (मुस्तपर्पटकोशीरचन्दनोदीच्यनागरैः। शृतशीतं जलं दद्यात् पिपासाज्वरशान्तये) और **उशीरासव** (रक्तपित्ते) दो प्रसिद्ध योग हैं। उशीर का लेप भी दाहादि में किया जाता है।

२. **लामज्जक** वीरणतृण का भेद है, जो वंग और संयुक्त प्रान्त की जलासन्न भूमि में बहुत मिलता है। उशीर की अपेक्षा इस का **क्षुप** अधिक दीर्घ; **पत्र** अधिक लम्बे और पीतच्छवि, **मूल** अधिक लम्बी और सुरभि होती है। शेष गुण और प्रयोग उशीरवत् जानें। "लामज्जकमुशीरवत् पीतच्छवितृणविशेषः।" (भाव०)।

लामज्जकं दीर्घमूलममृणालं जलाशयम् ।
इष्टकं पृथुकं शीघ्रं तोयजं व्रतिजं लघु ।
बलप्रदं जलाधारं सुनालं शीतलं लयम् ॥९७६॥

पर्याय—दीर्घमूल (लम्बी जड़ों वाला), जलाशय (जलाशय उत्पत्ति-स्थान है जिसका), इष्टक (इष्टगन्धि), पृथुक (स्थूल काण्ड वाला), तोयज (जलज), लघु (हलकी जड़ों वाला), जलाधार (जलज तृण), सुनाल (सुन्दर दीर्घ काण्ड वाला तृण) ॥९७६॥

लामज्जकं हिमं तिक्तं लघु दोषत्रयापहम् ।
निहन्ति दाहपित्तास्रस्वेदकृच्छ्रत्वगामयान् ।९७७॥

२९९. तुम्बरुः[1] ।

Zanthoxylon alatum. A small prickly tree. Strongly aromatic, stomachic, used in tooth-ache, etc.

(हिं०) तुमरु, कबाबा, नेपाली धनियां, (बं० नेपालि धने, (गु०) तुंबरू, (म०) चिरफल। ह्रस्व कण्टकीय वृक्ष। अति तीक्ष्णगन्धि, दीपक, पाचक, दन्तशूलघ्न ।

तुम्बरुर्वनजः सौरः सौरभः सानुजोऽन्धकः ।
तीक्ष्णवल्कस्तीक्ष्णपत्रः सौरजः सारवोऽङ्ककः ॥९७८॥

पर्याय—वनज (जंगली वृक्ष), सौर (सूर्यसम्बन्धी), सौरभ (सुरभि),

---

१. **तुम्बरु** के ह्रस्व वृक्ष हिमालय के अधोभाग में जमू से नेपाल वा भोटान तक मिलते हैं । शाखाओं पर छोटे, दृढ़, स्थूल काण्टे होते हैं । **पत्र** ३–४ अंगुल लम्बे, नोकदार, सुरभि । **पुष्प** क्षुद्र, पीताभ । **फल** धान्यकतुल्य, परन्तु पिंगलवर्ण और अत्यन्त सुगन्धित, बाज़ार में कबाबे वा नेपाली धनियां के नाम से मिल जाते हैं। यह बीज दांतों के रोगों के लिए अत्यन्त उपयोगी होने से दन्तमंजनों में डाले जाते हैं । इन का चूर्ण मसूड़ों पर मलने से रक्तस्राव, शोफ, दन्तशूलादि की शान्ति होती है । व्रणित मुख में इन का चूर्ण मधुमिश्रित लगाने वा गण्डूष करने से लाभ पहुंचता है । यह बीज अग्निदीपक हैं । इन से एक सुगन्धित तैल निकलता है । इसी वृक्ष की दातन शिमलादि पर्वतों में बहुत प्रयुक्त होती है, जो **तेजबल** (तेजोवती) की दातन कहलाती है । यह दातन बड़ी सुगन्धित होती है, परन्तु जिह्वा और मसूड़ों पर उस के प्रयोग से चिरकाल तक जड़ता और लवणरसता रहती है । **तुम्बरुत्वक्** (तेजबल की छाल) भी दांतों के लिए लाभकारी है । तेजोवती के पादप वस्तुतः कई प्रकार के हैं, उन में से कोई वृक्ष, कोई झाड़ी, और कोई लता होती है । तुम्बरु प्रायः नेपाल से आता है, जो Z. acanthopodium नामक क्षुद्र वृक्ष से उत्पन्न होता है ।

सानुज (पर्वतज), तीक्ष्णवल्क (तीक्ष्ण त्वक् वाला), तीक्ष्णपत्र (तीक्ष्ण पत्रों वाला) ॥ ६७८ ॥

तुम्बुरुः कटुकस्तिक्तो रूक्षोष्णो दीपनो लघुः ।
तीक्ष्णो हृद्यः कटुः पाके विदाही रोचनो जयेत् ॥६७६॥
कफवातापतन्त्राक्षिकर्णकोष्ठशिरोरुजः ।
कुष्ठशूलवमिश्वासप्लीहकृच्छ्रोदरक्रमीन् ॥६८०॥

३००. कुन्दरुः[1] (शल्लकीनिर्यासः) ।

खपुरः कुन्दरुः कुन्दः सुकुन्दुर्भीषणी बली ।
नागः श्रीवल्लभः स्वाक्षो मेदुको मेचुकः पुरः ॥६८१॥
कुन्दरुर्मधुरस्तिक्तस्तीक्ष्णस्त्वच्यः कटुर्हरेत् ।
ज्वरस्वेदग्रहालक्ष्मीयूकागन्धकफानिलान् ॥६८२॥

३०१. ग्रन्थिपर्णः[2] ?

ग्रन्थिपर्णो नीलपुष्पो गुच्छको गुच्छकच्छदः ।
गोशाह्वलं क्षौमसाह्वं चारटी तैलपर्णकम् ।
ग्रन्थिका कुकुरं पुष्पं शुकपर्णं विपर्णकम् ॥६८३॥

पर्याय—ग्रन्थिका (ग्रन्थ्याकार पर्व हैं जिस के), नीलपुष्प (नीले फूलों वाला), गुच्छकच्छद (गुच्छाकार पत्रों वाला), तैलपर्णक (स्निग्ध पत्रों वाला), ग्रन्थिका (ग्रन्थ्याकार), शुकपर्ण (शुकवत् हरित पत्रों वाला) ॥६८३॥

ग्रन्थिपर्णः कटुस्तीक्ष्णस्तिक्तोष्णो दीपनो लघुः ।
कफवातविषश्वासकण्डूदौर्गन्ध्यनाशनः ॥६८४॥

---

१. **कुन्दरु** (कुन्द खोटी) शल्लकीवृक्ष (अंक २२६) का निर्यास (Gum-resin) है । इसे सलई वा **लोबान** कहते हैं (देखो पृष्ठ १६५) । लोबान-सत्त्व (Benzoic acid) पाश्चात्य चिकित्सा में आमवात तथा मूत्ररोगों में बहुत व्यवहार किया जाता है । मात्रा २–५ रत्ति । यह साधारण दुकानों से भी मिल जाता है । कुछ वैद्य कुन्दरु को मस्तकी (वा रूमी मस्तकी) समझते हैं, जो एक क्षुद्र, पीताभ, तिक्त, मुक्तातुल्य स्फटिकाकार द्रव्य है । यह हकीम लोग बहुधा वीर्य-स्तम्भनार्थ देते हैं । शल्लकी के पर्यायों में कुन्दरुकी शब्द मिलने से कुन्दरु को शल्लकी का गोन्द ही समझना चाहिए ।

२. **ग्रन्थिपर्ण** (हिं०—गठिवन) संदिग्ध द्रव्य है । वंगदेश में **गेंटेला** नाम से एक ग्रन्थिमय द्रव्य मिलता है, जिसे बंगाली वैद्य ग्रन्थिपर्ण समझते हैं । यही अन्य प्रान्तों में भी वहां से मंगाया जाता है । यह द्रव्य निर्गन्ध है । उसमें पर्यायोक्त लक्षण नहीं मिलते ।

३०२. स्थौणेयकम्[1] ?

स्थौणेयकं तैलपीतं शुकवर्णं विकीर्णकम् ।
वारटी शुकबर्हाह्वं शुकपुष्पं शुकच्छदम् ।
ग्रन्थिपर्णं बर्हिचूडं सौमित्रं शीर्णरोमकम् ॥६८५॥

पर्याय—स्थौणेयक (स्थूल ग्रन्थिरूप द्रव्य), शुकवर्ण (शुकतुल्य हरित), शुकबर्हाह्व (शुक और मयूर के नामों वाला), बर्हिचूड़ (मयूरशिखावत् नानावर्ण) ॥ ६८५ ॥

स्थौणेयं तिक्तं स्निग्धं गुरु स्वादु त्रिदोषनुत् ।
मेधाशुक्रकरं त्वच्यं रक्षोऽश्रीज्वरजन्तुजित् ।
हन्ति कुष्ठास्रतृड्दाहदौर्गन्ध्यतिलकालकान् ॥६८६॥

३०३. चोरकः[2] ?

चोरको गोपनः क्षेमो दुष्पत्रो दुष्कुलो रिपुः ।
विषंयाशुकरो धूर्त्तः शंकितो गणहासकः ॥६८७॥
फलचौरो दौःकुलेयस्तस्करः कितवोऽपरः ।
क्रोधना पिशुना चण्डा चौरी शांखिनी कासनी ॥६८८॥

पर्याय—चोरक (चोर नाम वाला), गोपन (चोर), दुष्पत्र (दुष्ट पत्रों वाला), दुष्कुल (दुष्ट कुल वाला, चोर होने के कारण), रिपु (शत्रु, चोर), धूर्त्त (ठग), शंकित (शंकामय), गणहासक (लोगों को हंसाने वाला), दौःकुलेय (दुष्कुल), तस्कर (चोर), कितव (ठग), क्रोधना (क्रोधशील), पिशुना (शठ), चण्डा (क्रोधी) ॥६८७–८॥

चोरको मधुरस्तिक्तः कटुपाकः कटुर्लघुः ।
तीक्ष्णो हृद्यो हिमो हन्ति कुष्ठकण्डूकफानिलान् ।
रूक्षोऽश्रीस्वेदमेदोऽस्रज्वरगन्धविषव्रणान् ॥६८९॥

३०४. मुरा ।

मुरा गन्धवती दैत्या हृद्या गन्धकुटी कुटिः ।
भूरिगन्धा च सुरभिर्गन्धाढ्या गन्धमादनी ॥६९०॥

---

१. **स्थौणेयक** (हिं०—थुनेर) ग्रन्थिपर्ण का ही भेद है, परन्तु यह द्रव्य इस समय नहीं मिलता । इसके स्थान में वंगीय ग्रन्थिपर्ण का ही प्रयोग किया जाता है ।

२. **चोरक** भी ग्रन्थिपर्ण का भेदविशेष है । कहीं २ चोरक नाम से शुष्क ग्रन्थिमय तृण सा मिल जाता है । "यह सुगन्धित द्रव्य गठिवनही का भेद है । इस को नेपाल देश में भटेउर और पार्वती देशादिकों में **चौरा** कहते हैं । मात्रा २ मासे की ।" (शालिग्रामनिघंटु) ॥

मुरा¹ तिक्ता हिमा स्वाद्वी लघ्वी पित्तानिलापहा।
ज्वरास्रभूतरक्षोघ्नी कुष्ठकासविनाशनी ॥९९१॥

३०५. कर्चूरः[2] (शठी)।

Curcuma Zedoaria.	(हिं०) कचूर, (बं०) एकांगी,
The zedoary.	(गु०) कचूरी, (म०) कचोरा।
A perennial tubrous plant.	बहुवार्षिक कन्दमय क्षुप।
Aromatic, stimulant and carminative.	सुरभि, उष्ण, वातानुलोमक।

जीमूतमूलं कर्चूरो द्राविड़ो वेधमुख्यकः।
कार्शः काप्यगन्धमूलः काल्पको दुर्बलः शठी ॥९९२॥
कर्चूरः कटुकस्तिक्तस्तीक्ष्णोष्णो दीपनो लघुः।
रोचनः कटुः पाकेऽस्रपित्तजित् कफवातेजित्।
श्वासकासकृमिप्लीहकुष्ठार्शोव्रणगुल्मनुत् ॥९९३॥

३०६. गन्धशठी[3]

Hedychium spicatum,	(हिं०) कपूर कचरी, गन्धपलाशी, (बं०) शठी, आदा, (गु०, म०) कपूर
The rest as above (No. 305)	काचरी। शेष पूर्ववत् (अं० ३०५)

गन्धालिका गन्धवधुर्बधूः पृथुपलाशिका।
शठी सुगन्धचूड़ा स्यात्सोमदा सोमसम्भवा।

---

१. **मुरा** (बं०—मुरामांसी, हिं०—एकांगी, म०, गु०—मुरा) जटामांसी (अंक २९५) का भेदविशेष है। इस के सुरभि खण्ड गन्धशठी (अंक ३०६) के तुल्याकार होते हैं। कई वैद्य इसे कर्चूरभेद समझते हैं और उस के अभाव में गन्धशठी (कर्पूरकचरी) प्रयोग करते हैं।

२. **कर्चूर** का क्षुप हरिद्रा वा आर्द्रक के तुल्य होता है। कन्दरूपी मूल को ही कर्च्चूर कहते हैं। आर्द्र कर्चूर शीत और मूत्रल है। शुष्क कर्च्चूर (जो बाज़ार में मिलता है) अग्निदीपक, उष्ण, रोचक और वातकफरोगनाशक है। शिरोरोगों में तैलमिश्रित कर्च्चूरचूर्ण की नस्य लाभकारी है। अन्य उष्ण द्रव्यों से मिला कर उस का क्काथ प्रतिश्याय, कासादि में दिया जाता है। कर्च्चूरलेप सन्धिशोथ और वायुशूल में किया जाता है। स्थूल और पीताभ कन्द (Curcuma caesia) **नर कर्चूर** कहलाता है। यह गुणों में कर्चूरतुल्य है। बंगाली लोग इसे आर्द्र हरिद्रा की तरह प्रयोग करते हैं।

३. **गन्धशठी** नेपाल, भोटानादि में बहुत होती है। क्षुप प्रायः कर्चूरतुल्य, परन्तु कन्द लम्बे, पतले, और अति सुगन्धित। बाज़ार में गोल २ सुगन्धित टुकड़े मिलते हैं। जिन का वर्ण मध्य से श्वेत और किनारे पर कृष्ण होता है। इसके प्रयोग और गुण कचूर के तुल्य जानें।

सुगन्धमूला षड्ग्रन्था सुव्रता सुगृहीतिका ॥६६४॥

पर्याय—गन्धालिका (गन्धाढ्या), गन्धबधु (गन्धमय, नवबधुतुल्य), पृथुपलाशिका (स्थूल पत्रों वाली), सोमदा (शीत), सोमसम्भव (शीत देशजा), षड्ग्रन्था (वचातुल्य ग्रन्थिमय द्रव्य) ॥ ६६४ ॥

शठी तिक्ता कटुस्तिक्ता तीक्ष्णा कषाया ग्राहिणी लघुः ।
अनुष्णा मुखवैरस्यमलदौर्गन्ध्यनाशनी ।
दोषकासव्रणश्वासशूलहिध्माज्वरापहा ॥९६५॥

३०७. स्पृक्का[1] ?

स्पृक्का देवी लता लङ्का मालाली कुटिला लघुः ।
निर्मल्या कोटी वर्षा स्पृक् ब्राह्मणी पिशुना शची ।
देवपत्री पङ्कमुष्टिर्मरुन्माला बधूः शुभा ॥६६६॥
स्पृक्का तिक्ता हिमा स्वाद्वी वृष्या दोषत्रयापहा ।
कुष्ठकण्डूविषस्वेददाहघ्नी ज्वरनाशनी ॥६६७॥

३०८. नलिका[2] ।

नलिका सुषिरा शून्या निर्मध्या नर्तकी नटी ।
धमनी विद्रुमलता कपोतचरणा नली ॥६६८॥

पर्याय—नलिका (नलाकार त्वचा), सुषिरा (नली, छिद्रमय), शून्या (शून्यमध्या), निर्मध्या (मध्य नहीं है जिसका), नर्तकी (नाचने वाली), विद्रुमलता (प्रवालाकार), कपोतचरणा (कबूतर के तुल्य पत्र हैं जिसके), नली (नलाकार) ॥६६८॥

नलिका शीतला लघ्वी चक्षुष्या कफपित्तहा ।
कृच्छ्राश्मवाततृष्णास्रकुष्ठकण्डूज्वरान् जयेत् ॥९९६॥

---

१. स्पृक्का एक सुगन्धित शाकविशेष है । यह पंजाब में नहीं मिलता । इस के नाम यह हैं:—(हिं०) असवरग, (बं०) पिंडिङ् शाक, (म०) गगौना कापुरी । यह कोई प्रसिद्ध द्रव्य नहीं ।

२. नलिका (हिं०-नली, पवारी, प्रवाली, बं०—नालुका),त्वक् (अकं० २८६) की अपेक्षा अधिक स्थूल, और लम्बी और फीके रंग की त्वचा सी होती है । कलकत्ते में बहुत मिल जाती है । वहां वैद्य उसका चूर्ण जल में मिलाकर व्रणशोथ पर ईसबगोल की तरह लेप कर देते हैं । व्रण का मुख नग्न छोड़ देना चाहिए । यह पिच्छिल लेप शुष्क होकर व्रण पर दबाओ डालने से उसे फाड़ देता है । कभी २ व्रण इस से दब भी जाता है । यह मधुर, कषाय और पिच्छिल है ।

३०९. पद्मकाष्ठम्[1] ।

Prunus puddum.
A large deciduous tree.
Cooling, uterine tonic, used to prevent abortion.

(हिं०) पद्माक, (बं० म०) पद्मकाष्ठ, (गु०) पद्मकाठी। विशाल वृक्ष, पत्र पतनशील। शीत, गर्भस्थापक, गर्भपातरोधक।

पद्मकाष्ठं पद्मवर्णं पद्मकं हेमपद्मकम् ।
सुप्रभो विमलश्चारुः शीतवीर्यो मरुस्थितः ।
पीतरक्तः पद्मगन्धिः पाटलापुष्पवर्णकः ॥१०००॥

पर्याय— पद्मकाष्ठ (पद्मगन्धि काष्ठ), पद्मवर्ण (पद्मतुल्य), हेमपद्मक (पीला पद्म), सुप्रभ (सुन्दर प्रभा वाला), विमल (स्वच्छ काष्ठ), चारु (सुन्दर) ॥१०००॥

पद्मकं तुवरं तिक्तं शीतलं वातलं लघु ।
गर्भसंस्थापनं दाहविषपित्तकफास्रजित् ॥
विस्फोटव्रणवीसर्पवमिकुष्ठतृषापहम् ॥१००१॥

३१०. प्रपौण्डरीकम्[2] ।

प्रपौण्डरीकं पौण्ड्राह्वं पुण्डर्यं पुण्डरीयकम् ।

---

१. **पद्मकाष्ठ** के उच्च वृक्ष शिमला, गढ़वाल, सिक्कम, नेपाल, भोटान आदि में बहुत होते हैं। उसे श्वेत वा रक्ताभ पुष्प आते हैं। काण्ड पर कृष्णारक्त वा श्याम वर्ण की त्वचा होती है, जो शीघ्रता से उतर जाती है। पद्मकाष्ठ को खण्डित करके यत्नपूर्वक सूंघने से कमलपुष्प जैसी धीमी २ मधुर गन्ध आती है। यह काष्ठ शीतवीर्य होने से रक्तपित्त, रक्तार्श, रक्तप्रदर, दाहादि पैत्तिक विकारों में लाभकारी है। काष्ठचूर्ण की मात्रा ३–६ माषे, क्वाथ ५–१० तो०। गर्भपात की पूर्वावस्था में पद्मकाष्ठ, उत्पल, कसेरुक, बला, शृङ्गाटक, वटशुंगादि का शीत क्वाथ दुग्धमिश्रित पिलाने से गर्भपात रुक जाता है। जिन स्त्रियों को गर्भपात प्रायः हो जाता हो; उन्हें गर्भस्थिति से लेकर कई मास तक निरन्तर यह क्वाथ पिलाना चाहिए। पद्मकाष्ठ को घोटकर पिलाना भी लाभ करता है। वस्तुतः दुर्बल गर्भाशय के लिए यह एक सुन्दर बलकर और गर्भस्थापक द्रव्य है। ग्रीष्मकाल में इसका वा उक्त द्रव्यों का शर्बत भी दे सकते हैं। यह हृदय-कम्प में लाभकारी है। पद्मकाष्ठ का फल (जो माड्डुतुल्य होता है) खाया जाता है। उसकी मज्जा अश्मरी और शर्करा (Gravel) में दी जाती है।

२. **प्रपौण्डरीक** (बं०–पुंडरिया, हिं०–पुंडेरी) अज्ञात द्रव्य है। श्री उमेशचन्द्र ने उसे कमलमूल (Rootstock of Nymphaea lotus) कहा है। पुण्डरीक शब्द प्रायः कमल के अर्थ में आता है। पंजाब में कई वैद्य उसे पौण्ड्रेक्षु (पौंडा गन्ना) की मूल समझते हैं, और औषधों में इक्षुमूल (गन्ने की जड़) डाल देते हैं। श्री शालिग्राम ने उसे सुगन्धित वृक्ष कहा है, "शिमला प्रान्तम कालका के समीप इस के वृक्ष होते हैं पंडयारा नाम से प्रसिद्ध है।" (शालिग्रामनिघण्टु)

पुण्ड्रं सुपुष्पं श्रीपुष्पं चक्षुष्यं सानुमानकम् ॥१००२॥
पुण्ड्राह्वं मधुरं तिक्तं कषायं शुक्रलं हिमम् ।
चक्षुष्यं मधुरं पाके वर्ण्यं पित्तकफास्रजित् ॥१००३॥

३११. गुग्गुलुः[1] (पुरः)।

Balsamodendron mukul or B. Roxburghii.
A dwarfed hilly tree.
Alterative, demulcent, stimulant, antirheumatic, emmenagogue, and nervine tonic.

(हिं०) गुगल, (बं०) गुग्गुल, (गु०, म०) गुगुल ।
लघु पार्वतीय वृक्ष ।
रसायन, पिच्छिल वा स्निग्ध, उष्ण, आमवातघ्न, रजःकृच्छ्रहर मेध्य ।

महिषाक्षो निशाशायी कौशिको गुग्गुलुः पुरः ।
जटायुः कालनिर्यासः शिवो दुर्गो निशाचरः ।
उलूखलः सर्वसहः शिवधूपः पलङ्कषः ॥१००४॥

---

[1] १. गुग्गुलु के शुष्क लघु वृक्ष मरुदेश (मारवाड़, राजपूताना), सिन्धु, महीशूर (मैसूर), आसाम, पूर्वी वंग, अरब, अफ्रीकादि के शुष्क, रूक्षोष्ण बालुमय शैल भागों में पाए जाते हैं, अतः उसे **मरुदेश्य** (Product of Deserts) यथार्थ नाम दिया गया है । उत्तम गुग्गुलु आबू पर्वत से आता है । **वृक्षकाण्ड** ग्रन्थियुक्त (Knotty), **त्वक्** पत्रवत् तनु (Paper-like thin) और पीत उज्ज्वल, यह त्वचा कभी २ बाज़ारी गुग्गुलु में मिली हुई देखी जाती है । छोटी शाखों पर लम्बे २ कांटे होते हैं । **पत्र** अण्डाकार वा लम्बा, कटा हुआ, पतला और शुष्क सा (जलाभाव से) । ग्रीष्म ऋतु में गुग्गुलु के पत्र और त्वचा झड़ कर काण्ड तथा शाखाएं नग्न रह जाती हैं । उन पर ग्रन्थियों से श्वेत, गन्धमय, घन तरल (श्रीवास वा शिलारसवत्) निर्यास निकल आता है, जो कुछ भूमि पर गिर जाता है और कुछ वृक्ष पर रह जाता है । शीतकाल में वा तब ही यह संग्रह कर मट्टी आदि से शुद्ध किया जाता है । परन्तु बाज़ार में कभी २ मट्टी, बालु, पत्र, केशादि अपद्रव्यों से मिला हुआ शुष्क कृष्ण गुगुल मिलता है । वह त्याज्य है । उसे मट्टी आदि से पृथक् कर के धूपों में प्रयोग कर सकते हैं । औषधार्थ सदैव स्वच्छ, स्फटिकाकार, पीताभ (कनक) और ताज़ा गुगुल प्रयोग करना चाहिए । **शोधनविधि**—उत्तम गुग्गुलु (जैसाकि आगे वर्णित है) लेकर गरम जल से २–३ बार धो लें, ताकि जो भी लेशमात्र मट्टी, बालु आदि लगे हैं, दूर हो जावें । पुनः गरम जल में डाल कर रखदें वा खरल में कूटें । यह शनैः २ घुल कर दुग्धतुल्य विलयन (Milk-like emulsion) बन जाता है । इसे घन वस्त्र में से छान लो । योगराजगुग्गुलु, चन्द्रप्रभादि के अन्य द्रव्य उस में छोड़ कर खरल करो । साधारणतया इतनी शुद्धि पर्याप्त है । वा कभी २ उसे दुग्ध, त्रिफला वा दशमूल के क्वाथ में डाल

पर्याय—महिषाक्ष (भैंस की आंख की तरह काला), निशाशायी (रात को सोने वाला वा निशाचरों को अपनी गन्ध से नष्ट करके सुलाने वाला), कालनिर्यास (कृष्ण निर्यास वाला), शिव (मंगलमय) ॥१००४॥

गुग्गुलूत्पत्तौ पौराणिकगाथा[1] ।

दानवेन्द्रविजितान् पुरा सुरान्नष्टकान्तिधृतिवीर्यतेजसः ।
वीक्ष्य विष्णुरमृतं किलासृजद्गुग्गुलुं बलवपुर्जयप्रदम् ॥१००५॥

विष्णु ने दानवेन्द्र (दैत्यविशेष) से पराजित देवताओं को, जिन की कान्ति, धैर्य, वीर्य और तेज नष्ट हो चुका था, देखकर बल, तरुणता और (शत्रुओं से युद्ध में) जय देने वाले गुग्गुलु को उत्पन्न किया ॥१००५॥

गुग्गुलूद्भवस्थानम् ।

मरुभूमिषु[2] जायन्ते प्रायशः पुरपादपाः ।
भानोर्मयूखैः सन्तप्ताः ग्रीष्मे मुञ्चन्ति गुग्गुलुम् ।
हिमान्विते हेमन्ते च विधिना तं समाहरेत् ॥१००६॥

पुरपादप (गुग्गुलु के वृक्ष) प्रायः मरुभूमि (राजपूताने) में उत्पन्न होते हैं। वे ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की किरणों से सन्तप्त हो कर गुग्गुलु (नामक निर्यास—Oleo-resin or Balsam) निकालते हैं। शिशिर (मार्गशीर्ष, पौष) और हेमन्त (माघ, फाल्गुन) ऋतुओं में (जब कि वह गुग्गुलु जमा हुआ होता है) विधिपूर्वक उस का संग्रह करना चाहिए ॥१००६॥

कर उबाला जाता है। दुग्धतुल्य विलयन को छानने के पश्चात् अग्नि पर वा आतप वा छाया में शुष्क करके रख लिया जाता है और आवश्यकतानुसार इस **शुद्ध गुग्गुलु** को व्यवहार किया जाता है। यह शुद्ध गुग्गुल ३-४ मास से अधिक रखना उचित नहीं। गुगुल वृक्ष को बदरी तुल्य गोल क्षुद्र फल आते हैं, जो पक कर लाल हो जाते हैं और उदरशूल में खाए जाते हैं। औषधार्थ निर्यास ही व्यवहार होता है। मात्रा ३ से ६ माषे तक। अत्यल्प मात्रा खाने से कोई लाभ नहीं होता।

१. भावमिश्रादि नवीन निघंटुकारों ने ऐसी अनेक पौराणिक उत्पत्तिगाथाएं दी हैं, जो अत्युपयोगी द्रव्यों के सम्बन्ध में लिखी गई हैं। इस गाथा से यह भाव निकलता है, कि रोगरूपी राक्षसों वा रोगोत्पादक कीटाणुओं (Germs) से जब प्राणीरूप देवताओं का संग्राम होता है, तो उन राक्षसों से बचने के लिए गुग्गुलुरूपी अमृत ईश्वर ने मनुष्यों के हाथ में दिया है, जिस के खाने से अनेक रोग दूर हो जाते हैं, और धूपवत् जलाने से अनेक राक्षस वा कीटाणु नष्ट हो कर संसार का कल्याण होता है।

२. मरुभूमि में अरब और अफरीका भी शामिल हो सकते हैं।

गुग्गुलुजातयः[1]।

हिरण्यः कुमुदः पद्मो महानीलस्तथापरः।
पञ्चमो महिषाक्षश्च नामतः परिकीर्त्तितः ॥१००७॥

गुग्गुलु के पांच प्रकार होते हैं, हिरण्य, कुमुद, पद्म, महानील और महिषाक्ष ॥१००७॥

तल्लक्षणानि।

सुवर्णवर्णः प्रथमः कुमुदः कुमुदद्युतिः।
पद्मरागनिभः पद्मो महानीलश्च नामधृक्।
भृङ्गाङ्गोऽञ्जनवर्णो यो महिषाक्ष इति स्मृतः ॥१००८॥

हिरण्य गुग्गुल पीले रंग का होता है, **कुमुद** श्वेत कमल के समान, **पद्म** पद्मराग (लाल–Ruby) के सदृश रक्तवर्ण, **महानील** यथानाम गुणयुक्त (अर्थात बहुत नील), और **महिषाक्ष** (प्रसिद्ध भैंसा गुग्गुलु), भृङ्ग (भ्रमर) के तुल्य अञ्जन (कृष्ण) वर्ण वाला ॥१००८॥

गुग्गुलुगुणाः।

आतपैस्ते विलीयन्ते क्षिप्ताश्चाग्नौ ज्वलन्ति हि[2]।
स्वभावविशदाः स्निग्धाः स्वामोदाः कण्ठशोधनाः ॥१००९॥
सर्वे समानवीर्यास्ते सर्वे रसगुणैः समाः।
आस्वादे तिक्तकटुकाः कषायाः स्वादवः परम् ॥१०१०॥

---

१. श्री भावमिश्र ने भी यही ५ प्रकार गुग्गुलु के माने हैं। उनके लक्षण और प्रयोग भी कैयदेवोक्त लक्षण से मिलते हैं। राजनिघंटु में गुग्गुलु, कणगुग्गुलु, और भूमिज गुग्गुलु का वर्णन मिलता है, न कि इन पांचों का। यत्न से यह पांचों गुग्गुलु अब भी मिल सकते हैं, परन्तु बाज़ार में अधिकतर महिषाक्ष (भैंसा गुग्गुलु) और कनक (पीत गुग्गुलु) मिल जाते हैं। सिन्ध और बिलोचिस्तान के शैल भागों में जो गुग्गुलु होता है और जो कराची से बहुत आता है, वह छोटे २ कणों के रूप में बिकता है, यह सिन्धी गुग्गुलु (B. pubescens) राजनिघंटु का कणगुग्गुलु प्रतीत होता है। इसे गन्धक, कत्था, साबुन और टङ्कण से मिलाकर एक उत्तम मल्हम बनाई जाती है, जो दुष्ट व्रणों के लिए बहुत उपयोगी है, यूनानी हकीमों ने भी यही हिरण्यादि पांच भेद माने हैं।

२. यह लक्षण नव गुग्गुलु में पाये जाते हैं। जहां यही लक्षण मिलें, वह गुग्गुलु श्रेष्ठ समझना चाहिए। अन्यत्र भी यही परीक्षा मिलती है, "वन्हौ ज्वलन्ति तपने विलयं प्रयान्ति क्लिद्यन्ति कोष्णसलिले पयसा समानाः। ग्राह्याः शुभाः परिहरेच्चिरकालजातानङ्गारवर्णसमपूयविगन्धवर्णान्।" (प्रयोगामृत)–अर्थात् वे अग्नि में जलते हैं, गरम करने पर पिगलते हैं, गरम जल में वे घुलकर दुग्ध के समान होजाते हैं। ऐसा शुभ गुग्गुलु ग्रहण करना चाहिये और चिरकालोत्पन्न, अंगारवर्ण, वा पूयतुल्य गन्ध और वर्ण वाले गुग्गुलु को त्याग देना चाहिए।

सब प्रकार के गुग्गुलु धूप से पिगल जाते हैं, अग्नि में जलते हैं, स्वभाव से विशद (अपिच्छल), चिकने, सुगन्धित और कण्ठशोधक हैं। वे सब वीर्य, रस और गुणों में समान हैं। स्वाद में तिक्त, कटु, कषाय और स्वादु होते हैं ॥१००६-१०॥

गुग्गुलुप्रयोगविशेषाः ।

महिषाक्षो गजेन्द्राणां महानीलश्च शस्यते ।
वाजिनां कुमुदः पद्मो नराणां कनकः स्मृतः ॥१०११॥

महिषाक्ष और महानील गुग्गुलु हाथियों के लिए, कुमुद और पद्म घोड़ों के लिए और कनक गुग्गुलु मनुष्यों के लिए हितकर है ॥१०११॥

नवपुराणगुग्गुलुगुणाः[1] ।

ते नवा बृंहणा वृष्या पुराणास्त्वपकर्षणाः ॥१०१२॥

नवीन गुग्गुलु बलवर्धक और शुक्ल होते हैं और पुराने बलहारक ॥१०१२॥

गुग्गुलुरसविमानम् ।

माधुर्याच्छमयेद्वातं कषायत्वाच्च पित्तजित् ।
तिक्तत्वाच्छ्लेष्मह्च्चैवं गुग्गुलुः सर्वदोषहा ॥१०१३॥

मधुरता के कारण गुग्गुलु वायु को शान्त करता है, कषायपन से पित्त को, और तिक्तता के कारण कफ को, अतएव गुग्गुलु त्रिदोषघ्न है ॥१०१३॥

वर्णभेदेन गुग्गुलुप्रयोगः ।

कृष्णः शोणितपित्ते च श्लेष्मपित्ते च पिङ्गलः ।
वातपित्ते तथा श्वेतो गुग्गुलुः शस्यते तरम् ॥१०१४॥

कृष्ण गुग्गुलु रक्तपित्त में, पिंगल कफपित्त में और श्वेत वातपित्त में प्रशस्त है ॥१०१४

गुग्गुलोर्विशिष्टगुणाः[2] ।

गुग्गुलुर्मधुरस्तिक्तः कषायकटुकः कटुः ।
पाके रूक्षो लघुर्मृत्घ्नो वीर्येणोष्णः सरस्तथा ॥१०१५॥
दीपनः कफवातघ्नो वृष्यः सूक्ष्मो रसायनम् ।
भग्नसन्धानकृत्स्वर्यो बृंहणो विनियच्छति ॥१०१६॥
मोहमेदोऽश्मरीसर्पग्रन्थिगण्डव्रणापचीः ।
पिड़िकाक्लेदशोफामकण्डूकुष्ठवमिकृमीन् ॥१०१७॥

---

१. नवीन और पुरातन गुग्गुलु के लक्षण भावमिश्र ने यों लिखे हैं, "स्निग्धः काञ्चनसंकाशः पक्वजम्बूफलोपमः । नूतनो गुग्गुलुः प्रोक्तः सुगन्धिर्यस्तु पिच्छिलः । शुष्को दुर्गन्धिकश्चैव त्यक्तप्रकृतिवर्णकः । पुराणः स तु विज्ञेयो गुग्गुलुर्वीर्यवर्जितः ।" (भाव० निघंटु)

२. आजकल केवल गुग्गुलु का प्रयोग नहीं होता। शुद्ध गुग्गुलु अन्य द्रव्यों से मिलाकर और अल्प घृत देकर पत्थर पर कूटा जाता है, जब वह मृदु पिण्ड (Soft

तच्छाकं मधुरं रूक्षं कटुकं शिशिरं गुरु।
विष्टम्भि सृष्टविण्मूत्रं कफमारुतकोपनम् ॥१०१८॥

मृत्स्न–मृदु। सर–रेचक। सूक्ष्म–शरीर की सूक्ष्म से सूक्ष्म रचनाओं में व्याप्त हो जाने वाला। शाक–गुग्गुलु के मृदु पत्रों का शाक ॥१०१५–१८॥

३१२. जतुका[1] (पर्पटी)?

जतु कृष्णा च संहर्षा जतुका चक्रवर्त्तिनी।
जम्बुका वापि संस्पर्शा रञ्जनी रजनी जनी।
जन्तुघ्नी पर्पटी कृष्णा जननी जतुकृत्तथा ॥१०१९॥

पर्याय—जतु (लाखतुल्य), कृष्णा (काली), जन्तुघ्नी (जन्तुनाशक), पर्पटी (पापड़ के तुल्य) ॥१०१९॥

---

mass) बन जावे, तब उसकी गोलियां बना ली जाती हैं वा स्निग्ध बर्तन में पिण्डवत् रख लिया जाता है। एवं निर्मित गुग्गुलु की मात्रा प्रायः ४ रत्ति से १ माषा तक है। अधिक भी दे सकते हैं। द्रव्यभेद से शास्त्रों में नाना गुग्गुलु वर्णित हैं, यथा योगराज गुग्गुलु (आमवाते), महायोगराज गु० (रसायने), काञ्चनार गु० (गलगण्डे), कैशोर गु० (रक्तशोधने, वातरक्ते), पुनर्नवा गु० (शोथे), अमृता गु० (वातरक्ते), सिंहनाद गु० (आमवाते), गोक्षुरादि गु० (मूत्रकृच्छ्रे, पूयमेहे), सप्तांग गु०, त्रयोदशांग गु०, पंचतिक्तघृत गु० इत्यादि। इनके गुण अपने २ अधिकार में चक्रदत्तादि ग्रन्थों में देखलें। इन सब में योगराज गु० सुप्रसिद्ध है। गुग्गुलु प्रायः आमवातरोग (Rheumatism), गलगण्ड (Scrofula), मूत्ररोग (Urinary Diseases), और त्वग्रोगों (Skin diseases) में बहुत दिया जाता है। अनुपान रोगानुसार भिन्न २ होगा। आमवातदोष (Uric Acid) को, जहां भी वह हो, शनैः २ लीन करके मूत्र द्वारा निकाल देता है, और शोथ तथा शूल की शान्ति हो जाती है। यद्यपि पाश्चात्य औषधों की तरह इस का शीघ्र प्रभाव नहीं पड़ता, तथापि यह शनैः २ और स्थिर रूप से रोग की शान्ति करता है। यह जीर्ण तन्तुओं (Rotten tissues) को दूर कर के शरीर में नवीन धातु उत्पन्न करके रसायनरूप बन जाता है। गुग्गुलु रसायनार्थ प्रायः शीतकाल में सेवन करना चाहिए, क्योंकि यह उष्णवीर्य है, परन्तु रोगों में सदैव दे सकते हैं। गुग्गुलुरसायन के सेवनकाल में निषिद्ध द्रव्य यह हैं, "अम्लं तीक्ष्णमजीर्णं च व्यवायं श्रममातपम्। मद्यं रोषं त्यजेत्सम्यक् गुणार्थी पुरसेवकः।" (भाव० नि०)। आमाशय पर गुग्गुलु का लेप करने से हिक्का बन्द हो जाती है। यह मल्लमों और धूपों में पड़ता है।

१. पर्पटी (हिं०—पपड़ी, पद्मावती) कोई सुगन्धित तनु पत्रवत् द्रव्य है, इस समय इस नाम से कोई द्रव्य नहीं मिलता। संभव है कि यह पत्रलाचा (अंक ३१४) हो वा सरेश, जो पर्पट्याकार द्रव्य है।

पर्पटी तुवरा तिक्ता शिशिरा वर्णकृल्लघुः ।
निहन्ति कफपित्तास्रकण्डूकुष्ठविषव्रणान् ॥१०२०॥

३१३. पतङ्गम्[1] ।

कुचन्दनं रक्तकाष्ठं पतङ्गं पट्टरञ्जनम् ।
जघन्यकं पट्टरङ्गं पत्तूरं वसुरङ्गकम् ॥१०२१॥

पर्याय—कुचन्दन (कुत्सित चन्दन), रक्तकाष्ठ (लाल लकड़ी), पट्टरंजन (पट्ट को रंगने योग्य रंग है जिसमें), जघन्यक (अधम) ॥१०२१॥

पत्तङ्गं मधुरं पाके व्रणपित्तकफापहम् ॥१०२२॥

३१४. लाक्षा[2] ।

Lac–a red resinous exudation on twigs of some tropical trees by the lac-insect, Coccus lac.	(हिं०) लाख, लाही, (बं०) लाहा, गाला, (म०, गु०) लाख । उष्णदेशजवृक्षविशेषशाखाश्रित-कीटजो रक्तनिर्यासः ।
Astringent, Cool, haemastatic and febrifuge.	ग्राही, शीत, रक्तस्तम्भक, ज्वरघ्न ।

---

१. पतङ्ग का वर्णन पीछे चन्दन के भेदों में (पृष्ठ २३० के नोट ३ में) कर चुके हैं, वहां देख लें ।

२. लाक्षा पिप्पल, पलाश, बदरी (बेर), आम्रादि अनेक वृक्षों की तनु शाखाओं पर एक रक्तवर्ण कृमिविशेष द्वारा, जिसे लाक्षाकृमि (Lac or Cochineal insect–Coccus lac) कहते हैं, उत्पन्न होती है । वह कृमि (केवल स्त्रीजाति) उस शाखा पर एकत्रित हो कर रक्त आवरण सा बना देते हैं । उन के अण्डे, लाला (थूक–Saliva), मल, तथा एक पिच्छिल द्रव्य (Viscous matter) मिल कर शाखा पर एक कोष सा बन जाता है । अण्डज नवोत्पन्न कीट निकल कर अन्यत्र अपना कार्य करते हैं । अण्डकोष, पुरातन कृमियों का मृत शरीर, तथा पिच्छिल द्रव्य का, रक्ताभ समूह जो शाखा पर देखा जाता है, लाक्षा (Lac) कहलाता है । इस आम अवस्था (Crude state) में इसे कच्ची लाख (Stick Lac) कहते हैं । मृत्तिका, काष्ठादि दूर करके इस अपक्व लाक्षा को वैद्यक चिकित्सा में व्यवहार किया जाता है । यह सदैव नूतन होनी चाहिए, "लाक्षा च नूतना ग्राह्या मृत्तिकादिविवर्जिता" (भैष० र०) । स्वच्छ लाक्षा का चूर्ण (३–४ माषे) समशर्करामिश्रित शृतशीत गोदुग्ध, जल, तण्डुलोदक, वा शर्बत नीलोफरादि से वा मधु से मिला कर सेवन कराने से रक्तातिसार, रक्तप्रदर, रक्तवमन, उरःक्षत (Lesion in lungs), सद्यःक्षत (Accidental wounds), रक्तपित्तादि में बहुत लाभकारी है । रक्त बन्द होकर क्षत भर जाता है और शक्ति आती है । लाक्षादि, महालाक्षादि, वासाचन्दनादि, किराततिक्तादि

लाक्षा जतु क्षतहरी द्रुमव्याधिश्च कार्पटः ।
निर्भर्त्सना रंगमाता जन्तुमाता गवाधिका ॥१०२३॥
रक्ताणु रक्तकृमिजा कृमिद्रव्यं पलङ्कषा ।
जतुका लोहिता दीप्तिर्यावकोऽलक्तको मतः ॥१०२४॥

पर्याय—जतु (निर्यास), क्षतहरी (उरःक्षतादिनाशक), द्रुमव्याधि (वृक्ष का रोग), रंगमाता (रञ्जकद्रव्य), जन्तुमाता (क्षुद्रकीट कारण है जिस का, produced by Cochineal insect), रक्ताणु (रक्तकण), रक्तकृमिज (रक्त कीट—Cochineal lac-insect—द्वारा उत्पन्न), कृमिद्रव्य (कृमिज द्रव्य), जतुका (निर्यास), लोहिता (रक्त द्रव्य), दीप्ति (अग्निवत् रक्त), यावक (यवसदृश कण हैं जिस के) ॥१०२३-४॥

लाक्षा स्निग्धा लघुस्तिक्ता कषाया बलवर्णदा ।
अनुष्णा हन्ति पित्तास्रकफकुष्ठव्रणज्वरान् ।
उरःक्षतपरीसर्पभग्नकासविषकृमीन् ॥१०२५॥

इति सुरभिवर्गः ।

तैलों में लाक्षा की प्रधानता है। यह तैल क्षय, उरःक्षत, जीर्णज्वरादि में वक्ष पर मलने से ज्वर को शान्त करते हैं। दुर्बल रोगियों को लाक्षादि तैल का अभ्यंग कराने से बल बढ़ता है। त्रिक वा कटी के शूलादि में पृष्ठ वा पृष्ठवंश पर यह तैल मला जाता है। अपक्व लाक्षा (Stick lac) को मृत्तिकादि से शुद्ध करके क्वाथ करने से एक रक्तवर्ण जल प्राप्त होता है। यही क्वाथ लाक्षादि वा अन्य तैलों में डाला जाता है। इसे घन करने से एक रक्त वर्ण प्राप्त होगा, जिसे **अलक्तक** (Red lac dye—बं॰ आलता) कहते हैं। यह आलता रंग हिन्दु बंगाली स्त्रिएं शैत्य, सौभाग्य तथा सौन्दर्य के लिए पाद तथा हस्त पर लगाती हैं। वहां मेंहदी का प्रयोग म्लेच्छप्रिय होने से निषिद्ध है। अपक्व लाक्षा को शुद्ध करने से **कणलाक्षा** (Seed-lac) प्राप्त होती है। यह दानेदार लाख बाज़ार में रंग वालों से मिलती है और काष्ठ को रंगने के काम आती है। इसे पिघला कर वस्त्रपूत करने और किसी सम स्थान पर उष्णावस्था में डालने से यह जम कर **पत्रलाक्षा** (Sheet lac—पत्र लाख) बन जाती है, जिसे स्वर्णकार व्यवहार करते हैं। इस के अधिक शोधन और विशेष नल्याकार सांचों में ढालने से **दण्डलाक्षा** (Sealing wax or Lac-sticks) प्राप्त होती है। यह मोहरों के लगाने में काम आती है। एवं नानारूप पक्व लाक्षा बहुत उपयोगी द्रव्य है। इस के भूषण (Lac Ornamemts) भी बनते हैं, जो निर्धन मारवाड़ी स्त्रिएं बहुत पहनती हैं।

अथ पुष्पाणि (FLOWERS) ।

३१५. कमलम्[२] (पद्मम्) ।

Nelumbium speciosum. The Lotus or Water-lily. A large aquatic herb. Cooling, refrigerant, astringent, diuretic and styptic.	(हिं०) कंवल, (बं०)पद्म, (म०, गु०) कमल, (सिं०) कंवि, पब्बन । विशाल जलीय क्षुप । शीत, तृष्णाघ्न, ग्राही, मूत्रल, रक्तस्तम्भक ।

१. **पुष्प** मानो वनस्पति की जननेन्द्रिय (Reproductory organ) है, क्योंकि पुष्पों में दो नर और नारी भाग होते हैं, जिन के मिलाप से फल की उत्पत्ति होती है, जैसा कि स्त्री और पुरुष के संग से बालक की । पुष्प फल का पूर्वरूप है, "पुष्पं यथा पूर्वरूपं फलस्येह भविष्यतः ।" (च० इ० अ० २) । पुष्प के ४ भाग हैं,(१) **पुटपत्र**(Sepals)–बाह्य हरितवर्ण, जैसे गुलाब में,(२)**दलपत्र**(Petals)–पुटपत्रों के भीतर नानावर्ण सुन्दर पत्तियां, जैसे गुलाब में, गुलाबी पंखड़ियां, (३) **लिंगसूत्र** (Stamens)–दलपत्रों के भीतर अनेक सूत्र लगे रहते हैं, जिन के सिर पर एक थैली (परागकोष-Anther) सी लगी रहती है, इसमें **पराग** वा धूलि (Pollen Dust) भरी रहती है । यही धूली क्षुद्र कणों का समूह है, जिन में प्रत्येक कण शुक्राणु (Spermatazoum)है, (४) **गर्भाशय** (Ovary) –यह भाग लिंगसूत्रों के मध्य में वा पुष्प के मध्य में होता है । इसके ऊपर एक नाली योनि (Vagina) के तुल्य होती है । पराग और गर्भाशयस्थ रजःकणों (Ovules) के संयोग से गर्भस्थिति होकर गर्भाशय शनैः २ बढ़ता है और अन्ततः इस पक्व गर्भाशय को **फल** कहते हैं, जैसे मटर, सेब, अनारादि । यह मनोरञ्जक विद्या एक हिन्दी वनस्पतिशास्त्र में छपाने का विचार है, वहां देखकर लाभ उठावें । चिकित्सा में पुष्प समग्र रूप में वा उसके कुछ भाग काम आते हैं, जैसे गुलाब, अशोक, नीलोत्पलादि में समग्र; नागकेशर में लिंगसूत्र; केशर में गर्भाशय के गर्भतन्तु (अंक २७१) आदि । दलपत्र पुष्प का दर्शनीय भाग है । इसका सुन्दर वर्ण (रक्त, पीत, नीलादि) और सुगन्ध (Scent) पुष्प को लोकप्रिय बनाते हैं । इन दलपत्रों के कारण ही पुष्पों की मालाएं सौन्दर्य तथा कामोत्तेजना के लिए पहनी जाती हैं । रोगियों को भी इन मालाओं के सुगन्ध और सौन्दर्य से शान्ति और आरोग्य प्राप्त होता है । दलपत्रों में सुगन्ध का कारण उड़नशील (Volatile) तैलों की विद्यमानता है । यह तैल पृथक् करके **अत्तर** (Scent or Otto) के रूप में बिकते हैं । यह प्रायः आह्लादक (Refreshing) और कामोत्तेजक, और अग्निदीपक होते हैं । भारत में आजकल नानावर्ण विदेशी पुष्पों का राज्य है । भारतीय सुगन्धित पुष्पों की रक्षा न होने से उनका लोप हो रहा है और इसी कारण से अनेक पुष्प, जो हमारे शास्त्रों में वर्णित हैं, अब नहीं मिलते, वा अज्ञात हैं ।

२. **कमल** स्थिर और गम्भीर जल वाले पुराने जलाशयों में जहां पङ्क की भी

पद्मं श्वेतं पुण्डरीकं सारसं सरसीरुहम् ।
शशिपुष्पं तामरसं शतपत्रं सरोरुहम् ॥१०२६॥
पंकेरुहं श्वेतपद्मं सरोजोऽम्बुजं पंकजम् ।
कैरवं चाब्जमम्भोजं प्रसूनं भद्रकं कुहम् ।
सहस्रपत्रं श्रीगेहं शिवपुष्पं कुशेशयम् ॥१०२७॥

पर्याय—सारस (जलाशयज), सरसीरुह (जलाशय में उगने वाला), शशिपुष्प (चन्द्रवत् श्वेत पुष्पों वाला), तामरस (ताम्रवत् रक्ताभ), शतपत्र (सैकड़ों पत्र हैं जिसके), सरोज (सरसि जायत इति सरोज, तालाब में होने वाला), अम्बुज (जलज), पंकज (पङ्के जायते इति), अब्ज (अम्बुज), अम्भोज (अम्भसि जले जायते इति), श्रीगेह (लक्ष्मी का गृह) ॥१०२६–२७॥

अधिकता होती है । भारत में सर्वत्र और आनूप देश में विशेषतः बहुत उत्पन्न होता है । **कमलपत्र** व्यास में २-३ फुट और ढालाकार (Peltate), जलस्तर से बहुत ऊपर, हरा और मसृण; अधःपृष्ठ श्वेताभ, कमलपत्र पर एक बिन्दुमात्र जल भी नहीं ठहर सकता । **पुष्प** बहुत बड़े, सुन्दर, गुलाबतुल्य रक्ताभ वा श्वेत, मधुरगन्धि (Sweet-scented) । **पुष्पदण्ड** (Peduncle) वा **पत्रदण्ड** (Petiole) २–४ हाथ लम्बे और कांटेदार; लम्बाई जल की गम्भीरता के अनुसार अधिक वा कम । इसी जलपूर्ण नल्याकार भाग को **मृणाल** कहा गया है । इसमें तन्तु और छिद्र होते हैं । **दलपत्र** (Petals) और **लिङ्गसूत्र** (Stamens) बहुत होते हैं । **गर्भाशय**(Ovary)स्पंजतुल्य और शंक्वाकार(Conical)कोष(Spongy torus) है, जिसे पब्बन की टिकी वा कलाली वा कौल वा चपणी पंजाब में कहते हैं । इस **पद्मकोष** में अनेक **बीज** (कमल गट्टे कौल डोडे) होते हैं । **कमलमूल** (भिस, भे, भसीडे, Root-Stock) जलाशय के तल पर पंक में फैलती जाती है । ग्रीष्म में जब जल कम होता है, तब उसे पंक से निकाल कर विक्रयार्थ बाजार में लाते हैं, कमल शास्त्रों में ३ प्रकार का कहा गया है, (१) **श्वेत कमल**(White Lotus)-पुण्डरीकं, श्वेतपद्मं सिताम्बुजं, (२) **रक्त कमल** (Pink or red lotus) कोकनदं, शोणपद्मं, अरविन्दं, रक्ताम्भोजं, (३) **नील कमल** (Blue Lotus)–इन्दीवरं नीलाम्बुजं, नीलपद्मं । रक्त और श्वेत कमल भारत में बहुत मिल जाता है, परन्तु नील कमल दुर्लभ है । यह जातियां पुष्पवर्ण के भेद पर निर्भर है, अन्य उनमें कोई भेद नहीं । कमल और पद्म शब्द पर्यायरूप हैं, **उत्पल** उनसे पृथक् है (देखो आगे श्लो० ३१६)। कमल के प्रायः सब भाग काम आते हैं, वह जलोद्भव होने से शैत्यगुणप्रधान है । पत्रों की शय्या पर ज्वरी को लिटाने से दाह तथा ऊष्मिमा कम होती है । सिर, हृदयादि अङ्गों पर भी इन पत्रों को आवरणार्थ प्रयोग किया जाता है । **मृणालस्वरस** शर्करामिश्रित शीत, हृद्य और दाहनाशक है । अन्य भागों के गुण आगे देखें ।

कमलं शीतलं तिक्तं कषायं स्वादु वर्णकृत् ।
कफपित्तास्रविस्फोटदाहतृष्णाविनाशनम् ॥१०२८॥

३१६. नीलोत्पलम्[1] ।

Nymphaea stellata.
Blue Lotus.
The rest as above (No. 315)

(हिं०) नीलोफ़र, (बं) नीलशुन्दि,
(म०, गु० काला कमल ।
शेष पूर्ववत् (अं० ३१५)

नीलोत्पलं कुवलयं नीलाब्जमसितोत्पलम् ।
इन्दीवरं च कालाह्वं कज्जलं काककुवलम् ॥१०२९॥

पर्याय—नीलोत्पल (नीलोफ़र), नीलाब्ज (नील कमल), असितोत्पल (कृष्ण वा नील कमल), कालाह्व (काल वा नील नाम वाला), कज्जल (कृष्ण), काककुवल (कृष्ण कमल) ॥१०२९॥

कन्दस्तूत्पलजः पित्तनाशनो गुरुर्बृंहणः ।
असृग्दरहरो गर्भे स्थापयेच्चापि तर्पणः ॥१०३०॥

---

१. **उत्पल** कमल का ही भेद है । कमल गम्भीर स्थिर वृहद् जलाशयों में मिलता है, और उत्पल क्षुद्र पंकाढ्य पल्वलों में । उत्पल के पत्र, पुष्प, नालादि भाग सब कमल की अपेक्षा छोटे होते हैं, अतः उत्पल को क्षुद्र कमल कह सकते हैं । उत्पलनाल पर कण्टक नहीं होते । वह मोड़ने पर शीघ्र टूटता और शब्द करता है । कमलनाल मृदु होने से मोड़ने पर लचक जाता है । कमलपत्र जल से ऊंचे रहते हैं, परन्तु उत्पलपत्र छोटे और जलपृष्ठ पर तैरते रहते हैं, अर्थात् उत्पलनाल जलनिमग्न रहता है, और प्रतीत होता है कि केवल पत्र ही जल पर तैर रहे हैं । **पत्र** ढालाकार और व्यास में ६ ७ इं० । **उत्पलपुष्प** कमल से प्रायः आधा होता है, दल-पत्रादि की संख्या भी अल्प । यह पुष्प रात्रिसमय विकसित होता है, और प्रातः सूर्योदय होने पर बन्द हो जाता है, अतः उत्पल को चन्द्रविकाशी कहा गया है, और कमल (पद्म) **सूर्यविकाशी**, क्योंकि यह दिन भर विकसित रहता है और रात्रि को बन्द हो जाता है । **कमलफल** (चपणी वा कलाली) का वर्णन पहले कर चुके हैं । उत्पलफल अण्डाकार कोषरूप हरितवर्ण । अपक्वफल से सूक्ष्म रक्तबीज निकलते हैं । यह फल कच्चा खाया जाता है और पकने पर उससे कृष्ण क्षुद्र गोल बीज निकलते हैं, जिन्हें सिन्ध में **नापा** कहते हैं । सिन्धी लोग उसे गुड़ के साथ भात की तरह बनाकर बड़ी रुचि से खाते हैं । बंगाल में इस फल को 'भांटे' और हिन्दी में 'घंघोल' कहते हैं । शुष्क पुष्प **नीलोफर** कहलाता है । यह शीतवीर्य होने के कारण रक्त-पित्त, ज्वर, दाहादि में लाभकारी है । **शर्बत नीलोफर** (नीलोत्पलपानक) प्रसिद्ध शीत पेय द्रव है । **मूल** (शालूक, हिं०—चाच, सालक) ग्राही और कषाय है । व्रत के दिन हिन्दु लोग उसे दुग्ध में उबाल कर खाते हैं । उसका चूर्ण अर्श, अतिसारादि में लाभकारी है ।

३१७. रक्तोत्पलम्[1]।

Nymphaea rubra.
The Red Lotus.
The rest as above (No. 316)

(हिं०) लाल कंवल, छोटा कंवल, (बं०) छोटा शुण्डि, (म० गु०) लाल कंवल। शेष पूर्ववत् (अंक ३१६)।

रक्तोत्पलं काकनदं हल्लकं रक्तसन्धिकम।
तस्मादल्पान्तरगुणो विद्यात्कुवलयोत्पले ॥१०३१॥
रक्तोत्पलस्य कन्दस्तु मधुरः पित्तनाशनः।
चक्षुष्यो रक्तविकृतिं हरेद्बलकरो गुरुः।
तथा कुवलयस्य स्यात् कुमुदस्य तथैव च ॥१०३२॥

३१८. कुमुदम्[2] (सितोत्पलम्)।

Nymphaea alba.
The White Lotus or Water-lily

(हिं०) कमोदनी, कोई, (बं०) श्वेत शुण्डि, (म०) पांढरें उत्पुल, (गु०) पोयणा।

कुमुदं श्वेतजलजं श्यामवृन्तं जलेरुहम्।
सोमप्रियं नीलवृन्तं चन्द्रकान्तं शशिप्रियम्।
सितोत्पलं गर्दभकं चन्द्रेष्टं कैरवं कुमुत् ॥१०३३॥

पर्याय—कुमुद (चन्द्रवत् श्वेत), श्वेतजलज (श्वेत कमल), श्यामवृन्त (कृष्ण वा नील वृन्त वा डण्डी वाला), सोमप्रिय (चन्द्रप्रिय), चन्द्रकान्त (चन्द्रप्रिय, वा चन्द्रतुल्य कान्ति वाला), शशिप्रिय (चन्द्रप्रिय), चन्द्रेष्ट (चन्द्रप्रिय) ॥१०३३॥

कुमुदं पिच्छलं स्निग्धं मधुरं ह्लादि शीतलम्।
कुमुदस्य च बीजं तु कुरुते मनसो मुदम्।
वातलं रक्तपित्तघ्नमतिसारविनाशनम् ॥१०३४॥

---

१. रक्तोत्पल नीलोत्पल के तुल्य समझें, केवल पुष्प के वर्ण में ही भेद है। यह दक्षिण की ओर अधिक मिलता है।

२. कुमुद रक्त और नील उत्पल की अपेक्षा कम मिलता है, परन्तु यह अत्यन्त दर्शनीय और मधुरगन्धि होता है। पीछे जो चन्द्रविकाशी संज्ञा का वर्णन किया गया है (अंक ३१६), वह वस्तुतः कुमुद के सम्बन्ध में ही शास्त्रों में कहा गया है। उस के चन्द्रप्रेम तथा श्वेतवर्ण के कारण ही उसे तदर्थक पर्याय दिए गए हैं। कुमुद काश्मीर और बम्बे में बहुत मिलता है। ऊपरोक्त वर्णन से सिद्ध हुआ, कि उत्पल वस्तुतः क्षुद्र पद्म है, और कमलवत् उस के तीन भेद हैं, (१) नीलोत्पल, (२) रक्तोत्पल, और (३) श्वेतोत्पल।

३१६. स्थलपद्मिनी[1] ।

पद्मपत्री पद्मवती पद्मा पुष्करपर्णिका ।
लक्ष्मी श्रेष्ठा गन्धमूला काश्मीरा पद्मचारिणी ।
रथावती व्यथा शीता चारटी पद्मनाड़िका ॥१०३५॥

पर्याय—पद्मपत्री (कमलतुल्य पत्र हैं जिसके), पद्मवती (पद्मतुल्य), पुष्करपर्णिका (पद्मपत्री), पद्मचारिणी (पद्मानुकारिणी), पद्मनाड़िका (पद्मतुल्य नाल है जिसकी) ॥१०३५॥

पद्मानुष्णा कटुस्तिक्ता कषाया कफवातजित् ।
मूत्रकृच्छ्राश्मशूलघ्नी श्वासकासविषापहा ॥१०३६॥

पद्मिनी कुमुदिनी च[2] ।

पलाशिनी पुटकिनी पद्मिनी नलिनी मता ।
विसनाभिः पद्मवती विसिनी लालकिन्यपि ।
कुमुद्वती कैरविणी कुमुदिन्युडुपत्रिका ॥१०३७॥

पर्याय—पलाशिनी (पत्रिणी, कमल के पत्रनालादि का समुच्चय), पुटकिनी (पलाशिनी), इत्यादि ॥१०३७॥

पद्मिनीद्वितयं शीतं मधुरं लवणं गुरु ।
बलासरक्तपित्तघ्नं रूक्षं विष्टंभि वातलम् ॥१०३८॥

पद्मिनीद्वितयं—कमल और उत्पल के सर्वांग क्षुप ॥१०३८॥

संवर्त्तिका बीजकोषश्च ।

संवर्त्तिका नवदलं बीजकोषो वराटकः ।
कर्णिका स्याद्बीजपेशी कर्कटी पद्मकर्णिका ॥१०३९॥

अर्थ—नवदल (नव मृदु पत्रों) को संवर्त्तिका कहते हैं, और बीजकोष को वराटक, कर्णिका (कर्णाकार), बीजपेशी, कर्कटी तथा पद्मकर्णिका नाम दिए हैं ॥१०३९॥

पद्मिनीच्छदनं तिक्तं कषायं मधुरं हिमम् ।
कटुपाकं लघु ग्राहि वातकृत्कफपित्तजित् ॥१०४०॥

---

१. **स्थलपद्मिनी** कमल वा उत्पल (Lotus or water-lily) जाती का ही क्षुप है, परन्तु यह पंकज वा जलाढय भूमि में उत्पन्न होता है । उसके पत्र, पुष्पादि सब कमल के तुल्य, परन्तु आकार में छोटे । गुण कमलतुल्य जानें ।

२. "**मूलनालदलोत्फुल्लफलैः समुदिता पुनः । पद्मिनी प्रोच्यते प्राज्ञैर्विसिन्यादिश्च सा स्मृता ।**" (भाव० नि०) अर्थात् कमल के मूल, नाल, पत्र, पुष्प और फल सब मिलकर पद्मिनी वा विसिनी (कमलिनी) कहलाते हैं । सर्वांग कमल का नाम ही कमलिनी है । पलाशिनी आद के भी यही अर्थ समझें ।

३२०. कह्लारम्[1] (ह्रस्वोत्पलम्)।

सुगन्धिविटपो गन्धहेमाढ्यः शीतरोहणः।
महागन्धो रक्तनालः शीतः शीतरुहस्तथा ॥१०४१॥
जात्युत्पलं रक्तनीलं ह्रस्वोत्पलवरोत्पले।
सौगन्धिकं कर्णपूरं कह्लारं सोमगन्धिकम्।
कह्लारं शीतलं ग्राहि विष्टम्भि गुरु रूक्षणम् ॥१०४२॥

कमलकेसरम्[2]।

पद्मरेणुः पद्मरजः किञ्जं कमलकेसरम् ॥१०४३॥

पर्याय—पद्मरेणु (कमल के परागकण—Stamens), पद्मरजः (कमल की धूलि) ॥१०४३॥

किञ्जल्कं शीतलं रूक्षं कषायं ग्राहि कान्तिदम्।
कफपित्ततृषादाहरक्तार्शोविषशोषजित् ॥१०४४॥

पद्मबीजम्[3]।

The Lotus Seeds.	(हिं०) कलम गट्टा, (पं०) कौल डोडे,
Astringent, cooling, refrigerant, and anti-emetic.	(बं०) पद्मबीचि, (म०) कमलाक्ष, (गु०) कमलकाकड़ी।
	ग्राहि, शीत, तृषाहर, छर्दिघ्न।

पद्मबीजं तु पद्माख्यं कोलाख्यं पद्मकर्कटी।

---

१. **कह्लार** उत्पल (अङ्क ३१६) का ही भेद है। यह साधारण उत्पल की अपेक्षा अधिक सुगन्धित होता है।

२. यह शीत और ग्राही है। इसे मधु में मिलाकर चटाने से दाह की निवृत्ति होती है। इस का लेप मस्तक पर करने से पैत्तिक शिरोऽर्त्ति में बहुत लाभ पहुंचता है। कहीं २ लोग इन को रंग कर केशर के स्थान पर बेच देते हैं। कमलपुष्प में जो मधुर रस होता है, उसे **मकरन्द** (कमलमधु—Lotus Honey) कहते हैं। "मकरन्दो रसः स्मृतः" (भाव०)। यह मधु नेत्ररोगों में बहुत प्रयोग किया जाता है, "**अरविन्दहृतः शीतो मकरन्दोऽतिबृंहणः। त्रिदोषशमनः सर्वनेत्रामयनिषूदनः।**" (आत्रेयसंहिता) ॥

३. **कमलबीज** का चूर्ण (६ माषे) शर्करामिश्रित दुग्ध के साथ खिलाने से गर्भस्थापक, और श्वेतप्रदरनाशक है, तथा स्तनों को दृढ़ करता है। कमलबीज का जल (शीत कषाय) शर्करामिश्रित पिलाने से बच्चों की वान्ति, अतिसार, दाहादि को दूर कर देता है। यह बीज जल में घिस कर और मधु के साथ मिला कर भी चटाए जा सकते हैं। आर्द्र बीज (Fresh Seeds) लोग कच्चे खाया करते हैं। ऊपरोक्त प्रयोगों के अतिरिक्त शुष्क बीज भून कर भी खाए जाते हैं।

भेदः कौञ्चनकः कौञ्चो नापाकं कन्दलं तथा ॥१०४५॥

पर्याय—पद्मबीज (कमलबीज), पद्माख्य (पद्म नाम वाला), कोलाख्य (कोल बेर के तुल्य गोल बीज) ॥१०४५॥

पद्मबीजं हिमं तिक्तं कषायं मधुरं गुरु ।
बल्यं संग्राहि पित्तास्रदाहजित् कफवातकृत् ।
विष्टम्भि लेखनं रूक्षं गर्भसंस्थापनं परम् ॥१०४६॥

कुमुदनालः[1] ।

कुमुदोत्पलनालास्तु सपुष्पाः सफलास्तथा ।
शीताः स्वादुकषायाश्च रक्तपित्तहरास्तथा ॥१०४७॥

कुमुद (श्वेतोत्पल) और उत्पल (रक्त वा नील) के नाल (Petiole or Peduncle), पुष्प वा फल सहित शीत, मधुर, कषाय, और रक्तपित्तनाशक होते हैं ॥ १०४७ ॥

मृणालम्[2] ।

मृणालकं पद्मनालं तन्तुलं नलिनीरुहम् ॥१०४८॥

पद्म (कमल) की नाल को मृणाल, तन्तुल (तन्तुमय—Fibrous), और नलिनीरुह (कमलज) कहते हैं ॥१०४८॥

पद्मकन्दम्[3] ।

पद्मादिमूलं शालूकं करहाटः कुरण्टकम्[4] ।
पद्ममूलं जालालूकं शालीनं[5] शकलं शिफा ॥१०४९॥
बिसकन्दनालस्तिकाः कषाया मधुरा हिमाः ।
ग्राहिणो गुरवो रूक्षाः स्वादुपाकाश्च दुर्जराः ॥१०५०॥
वृष्याः पित्तास्रदाहघ्नाः स्तन्यानिलकफप्रदाः ।
पद्मकन्दः पित्तहरः कषायो मधुरो गुरुः ।

---

१. जहां कुमुद उत्पन्न होता है, वहां उसकी नाल सुलभ होने से लोग प्रायः उसे कच्चा खाया करते हैं । सिन्ध में इन का बहुत प्रचार है । कच्चे फल से रक्त बीज निकलते हैं और पक्व से काले ।

२. **मृणाल** कमल के नाल को कहते हैं । इस पर कांटे होते हैं । यह खाने में व्यवहार नहीं होते । कमल वा उत्पल की नाल वह भाग है, जिस से पत्र लगा रहता है । इसे पद्मकन्द (भिसाण्ड, भें) नहीं समझना चाहिए ।

३. **पद्मकन्द** से भिसाण्ड (भसींडा, भें) अभिप्रेत है । यह आर्द्र वा शुष्क दोनों अवस्थाओं में व्यञ्जनार्थ काम आता है । इसे दुग्ध में उबाल कर भी दे सकते हैं । उत्पलकन्द (मूल) को प्रायः शालूक कहते हैं । कहीं २ शालूक भिसाण्ड को भी कहते हैं । ४. ब—कराटम् । ५. ब—शालिनं ।

गुल्मवातकृमिहरो दुर्जरश्चक्षुष्यो हितः ॥१०५१॥

३२१. वारिपर्णी[1] (शैवालम्)।

Pistia stratiotes.	(हिं०) जलकुम्भी, काई, (बं०) पाना, टोका पाना, (म०) जलमण्डवी, (गु०) जलकुंभी।
A stemless water-floating herb.	काण्डरहित जलप्लावी क्षुप।
Cooling, demulcent and diuretic.	शीत, पिच्छल, मूत्रल।

वारिपर्णी तोयवृक्षो हठः पानीयपृष्ठजा।

कुली कुम्भी तोयकुम्भी ढिढाणो वृषधूमकः[2] ॥१०५२॥

पर्याय—वारिपर्णी (जल पर तैरने वाले सूक्ष्म पत्रों से युक्त), तोयवृक्ष (जलक्षुप वा वारिपर्णी), पानी० (जल के पृष्ठ पर होने वाली), तोयकुम्भी (जलपूर्ण कुंभतुल्य क्षुप) ॥१०५२॥

वारिपर्णी हिमा तिक्ता लघ्वी स्वाद्वी सरा पटुः।

दोषत्रयकरा रूक्षा पित्तास्रज्वरशोफहा ॥१०५३॥

३२२. मल्लिका[3] (मुक्तबन्धना)।

Jasminum Sambac.	(हिं०) मोतिया, वेल, (बं०) मल्लिका, बेलाफूल, (म०) मोगरी, (गु०) बेल्य।
The Jasmine flower.	
A scandent shrub.	प्रसिद्ध लतारूपी झाड़ी।

भूमण्डनी भूमिमण्डो भूमिदण्डा प्रबोधिका।

प्रमोदिनी विजयनी भूपदी मुक्तबन्धना ॥१०५४॥

---

१. **वारिपर्णी** आनूपस्थलों में मधुर स्थिर जल के ऊपर बहुत मिलती है। वंगदेश में इस का बाहुल्य है। यह दो प्रकार की हैं, (१) **बृहत्पत्री**—बड़ा पाना, (२) **क्षुद्रपत्री**—छोटा पाना (शैवाल, काई—The moss) यह कूपों की दीवार पर भी होती है। वारिपर्णी प्रायः वृहत्पत्री का ही नाम है। इन की उपस्थिति जल को दुष्ट और उष्ण होने से बचाती है। बंगाल में आज कल एक विदेशी जलकुम्भी जलाशयों में पाई जाती है। यह उत्पल के सदृश है, और बहुत शीघ्र फैल जाती है। वारिपर्णी मत्कुण (खटमल—Bugs) को नष्ट करने के लिए प्रयोग की जाती है। कमरे में दीवार के समीप इसे रखदो। उसकी गन्ध से मत्कुण आकर्षित होकर उसकी ओर दौड़ते हैं। निकट आते ही उन्हें ऐसा मद चढ़ता है, कि जिस से छूटना असम्भव है। जलकुंभी की भस्म दद्रू, पामादि पर लगाई जाती है। शैवाल-कल्क रक्तार्श पर बांधा जाता है। उस का स्वरस तण्डुलोदक के साथ मिला कर प्रवाहिका में दिया जाता है। २. ब-ढढणो वृकधूमकः।

३. **मल्लिका** (मोतिया) भारतवर्ष में सर्वत्र मिलती है। इस का क्षुप भूमि पर फैला रहता है। यदि कोई आश्रय मिल जावे, तो उस पर लतावत् चढ़ जाता

मल्लिका मदनीया स्याद्विपुटा शीतभीरुका ।
अष्टापदी सुरूपा च तृणशून्यं गवाक्षिका ।
मदयन्ती सुवर्षा स्यादन्या स्फीता वनोद्भवा ॥१०५५॥
मल्लिका कटुका तिक्ता लघूष्णा शुक्रला हरेत् ।
वातपित्तास्रहृद्रोगकुष्ठारुचिविषव्रणान् ॥१०५६॥

३२३. मालती[1] (जाती) ।

Jasminum grandiflorum.	(हिं०, गु०, म०) चम्बेली, चमेली,
The Jasmine creeper.	(बं०) जाती ।
A large glabrous climber.	बृहत् मृदु लता ।
Leaves used in skin-diseases.	पत्र त्वग्रोगनाशक ।

मालती सुमना जाती हृद्यगन्धा प्रियंवदा ।
राजपुत्री रात्रिपुष्पी चेतिका तैलभाविनी ॥१०५७॥
मालती तुवरा तिक्ता कटूष्णा दोषनाशिनी ।
शिरोऽक्षिमुखदन्तार्त्तिविषकुष्ठव्रणान् ॥१०५८॥

३२४. यूथिका[2] ।

Jasminum auriculatum.	(हिं०) जूही, पीली जूही, (बं०)
A white and yellow fragrant-	जुई, स्वर्णजुई, (म०, गु०) जुई ।
flowred creeping herb.	श्वेत तथा पीत सुगन्धपुष्प लता ।

यूथिका पीतिका बाला बालपुष्पा गुणोज्ज्वला ।

है । पुष्प मोतियों की तरह श्वेत तथा गोलप्राय और सुगन्धित । उन की माला प्रायः धारण की जाती है, पुष्पधारण के गुण, "पुष्पस्य धारणं कान्तिवर्द्धनं कामकारकम् । ओजःश्रीवर्द्धकं चैव पापग्रहविनाशनम् ॥" इस की सुगन्ध (Scent, Otto) कामदीपनार्थ बहुत प्रयोग की जाती है । **पुष्पकल्क** नवप्रसूता स्त्री के स्तनों पर लगाने से स्तन्यह्रास और ज्वरनिवृत्ति होती है । पुष्पों के सामान्य गुण पूर्व ही लिख चुके हैं, इस लिए अब ऊपर पुष्पों के गुण नहीं दिए जाएंगे । पुष्पों के अतिरिक्त यदि किसी अन्य भाग का विशेष गुण होगा, तो वह दे दिया जावेगा ।

१. **मालती** भी सुप्रसिद्ध क्षुप है, जो सब जगह मिलता है । इसका अत्तर (Otto Jasmine) बहुत व्यवहार होता है । जाती के पत्रों का स्वरस पूतिकर्ण, व्रणादि रोगों में काम आता है । मोतिया, जाती आदि पुष्पों को Oleaceae N. O. (तैलजाति) में सम्मिलित किया गया है, क्योंकि इन पुष्पों से सुरभि तैल निकलता है । कई वैद्य चंबेली को जाती कहते हैं और मालती को पृथक् लता समझते हैं ।

२. **यूथिका** जातीतुल्य क्षुप है, जो वंग तथा दक्षिण देश में अधिक मिलता है । यह पंजाब में कहीं २ मिल जाता है । **पुष्प** अत्यन्त सुगन्धित प्रायः जाती

काराडी शिखराडी चान्या युवती पीतयूथिका ॥१०५९॥
पुण्यगन्धा चारुमोदा हरिणी स्वर्णयूथिका।
हेमपुष्पी पीतपुष्पी त्वपरा शंखपुष्पिका।
शिखण्डिनी गणा काष्ठा जालमोदा च पाण्डुरा ॥१०६०॥

पर्याय—पीतिका (पीत पुष्पों वाली), गुणोज्ज्वला (उज्ज्वल गुणयुक्त), पुण्यगन्धा (सुन्दर गन्धमय), चारुमोदा (सुन्दर गन्धयुक्त), हेमपुष्पी (स्वर्णपुष्पी), शंखपुष्पिका (श्वेतपुष्पा), पाण्डुरा (श्वेतपुष्पा) ॥१०६०॥

यूथिका शीतला तिक्ता कटुपाका कटुर्लघुः।
तुवरा मधुरा हृद्या पित्तघ्नी कफवातला।
व्रणास्रमुखदन्ताक्षिशिरोरोगविषापहा ॥१०६१॥

३२५. कर्णिका[1] (शतपत्री, कुब्जकः)।

Rosa Centifolia. The Hundred-leaved or Cabbage Rose. Well-known plant. Fragrant and laxative.	(हिं०, म०, गु०) गुलाब, (बं०) गोलाप, (फा०) सदबर्ग। सुप्रसिद्ध क्षुप। सुरभि तथा मृदुरेचक।

कर्णिका रामतरुणी तरुणी चारुकेसरा।

अंक ३२३) के तुल्य। यूथिकापुष्प श्वेत और पीत दो प्रकार के होते हैं। मद्रास में पीत पुष्प अधिक मिलते हैं। वहां सायंकाल बाज़ार में यह बहुत बिकते हैं। मद्रासी स्त्रियें अपने नग्न सिरों को इन पुष्पों से सुशोभित करना सौभाग्य का चिह्न समझती हैं। इन में सुन्दर तीव्र गन्ध होता है।

१. कर्णिका (गुलाब—Rose) सुप्रसिद्ध झाड़ी है, जो प्रायः सर्व भूगोल पर मिलती है। दलपत्रों (Petals) की अधिकता के कारण उसे **शतपत्री** (सैंकड़ों दल हैं जिस के—Hundred-leaved or -petalled) कहा गया है। पारसीक (Persian) भाषा में भी उसे **सदबर्ग** (सद-शत, बर्ग-पत्र) कहा गया है। लेटिन नाम के भी यही अर्थ हैं। गुलाब ४ प्रकार का है, (१) Rose damascena—भारतीय सुगन्धित गुलाब, जो प्रायः उद्यानों में सर्वत्र लगता है। (२) R. Centifolia-शतपत्री (Centi-शत, folia-पत्र), इस में दलपत्र सं० १ की अपेक्षा अधिक होते हैं, परन्तु गन्ध कम। (३) R. Gallica—रक्त गुलाब, यह योरुप में अधिक होता है, अत्यन्त गन्धमय। (४) R. alba—कुब्जक, श्वेत वा सेवती गुलाब, सदा गुलाब, यह सदैव फूलता है, इस में गन्ध बहुत होती है। इन के परस्पर भेद किसी वनस्पतिशास्त्र में देखो। गुलाब का व्यवहार वैद्यक ग्रन्थों में कम मिलता है। हकीम इस से बहुत लाभ उठाते हैं। **गुलाब का अर्क** (Aqua Rosa or Rose-water) सुरभि, हृद्य, उष्णवीर्य और मृदुरेचक है। शिशुओं को यह अर्क २-३ चमचे पिलाने से उनकी बिबन्ध खोल

कण्टकप्रावृत्ता धीरा नीलाऽलिकुलसंकुला ॥१०६२॥
अपरा भद्रतरुणी बृहत्पुष्पाऽतिकेसरा ।
कुब्जकः कुब्जकी वल्ली कुमारी कर्णिकाऽपरा ।
महासहा कण्टकाढ्यापकारो[1] जलकुब्जकः ॥१०६३॥

पर्याय—कर्णिका (कर्णवत् पेचदार दल हैं जिसके), तरुणी (कुमारी, सदैव तरुण), चारुकेसरा (सुन्दर केसर दल हैं जिस के), कण्टकप्रावृत्ता (कण्टकाढ्या), धीरा (स्थिर, सदावर्ती), अलिकुलसंकुला (भ्रमरों से पूर्ण), बृहत्पुष्पा (बड़े फूलों वाला), अतिकेसरा (बहुत केसरों से युक्त) ॥१०६२-३॥

कर्णिका कटुका तिक्ता शीतला शुक्रला लघुः ।
ग्राहिणी दीपनी हृद्या वर्ण्या दोषत्रयापहा ॥१०६४॥
कुब्जकं सुरभि स्वादु कषायानुरसं च तत् ।
त्रिदोषशमनं वृष्यं शीतघ्नमित्तरं (?) तथा ॥१०६५॥

कुब्जक—सेवती गुलाब ॥१०६४-६५॥

३२६. केतकी स्वर्णकेतकी च[2] ।

Pandanus odoratissimus.
A dioecious gregarious much-branched perennial.
Stimulant; diaphoretic, fragrant and antispasmodic.

(हिं०) केवड़ा, केतकी, (बं०) केया, (म०) केतकी, (गु०) केवड़ा ।
उभयलिंगी समूहवर्ती बहुवार्षिक बहुशाख क्षुप ।
उत्तेजक, स्वेदल, सुरभि, आक्षेपहर ।

केतकी कुन्तको ज्ञेयः सूचीपुष्पो हलीमकः ।

देता है । ज्वरदाह में इसे रोगी की छाती वा मुख पर छड़कते हैं । गुलाब का अर्क और सिरके की पट्टी सिर पर रखने से ज्वरताप कम होता है । अर्क सौंफ के साथ मिलाने से इसका रेचक गुण बढ़ता है । १००० पुष्पों से १ बोतल अर्क निकल सकता है । **गुलाब का अत्तर**(Oleum Rosa or Otto of Rose)सर्वजगत्प्रिय सुगन्धित तैल है, जो कामदीपनार्थ व्यवहार होता है । उसे तैलों, साबुनों आदि में सुगन्धार्थ डाला जाता है । १००००० पुष्पों से १ तोला अत्तर निकलता है, परन्तु आज कल विदेशी कृत्रिम अत्तर अधिक मिलता है, जो निरर्थक और हानिकारक द्रव्य है, परन्तु यह सस्ता मिलने से वास्तविक अत्तर निकालने का कोई साहस नहीं करता । ताज़ा पुष्पों से **गुलकन्द** (गुलखण्ड, पुष्पसिता—भावप्रकाश) बनता है । पुष्पदल १ भाग, शर्करा २ वा ३ भाग । यह मृदुरेचक है, सुकुमार, वृद्ध, क्षीण रोगियों को दिया जाता है । कृष्ण मरिच और सौंफ से मिला कर इसे उदरशूल विबन्धादि में देते हैं । शुष्क पुष्पों को रेचक क्वाथों में डाला जाता है। इन में सुगन्ध नहीं रहता । १. ब-पंकाशः।

२. केतकी प्रायः समुद्रतट पर बम्बे, मद्रास, वंगदेश, लंकादि में बहुत मिलता है । उष्ण आनूप देश इसे प्रिय है । मलयदेश में क्षेत्रों के इतस्ततः बाधार्थ केतकी

तृणशून्यं करतृणं सुगन्धं क्रकचच्छदः ।
सुवर्णकेतकी त्वन्या लघुपुष्पा सुगन्धिनी ॥१०६६॥

पर्याय—केतकी (केतु वा झंडे की तरह ऊंचा, लम्बा और पतला तरु), कुन्तक (श्वेत), सूचीपुष्प (सूच्याकार पुष्प हैं जिस के), हलीमक (हरिताभ), क्रकच्छद (खरपत्र) ॥१०६६॥

केतकी मधुरा तिक्ता कफघ्नी कटुका लघुः ।
तत्फलं कटुकं तिक्तं लघूष्णं कफवातजित् ॥१०६७॥
पुष्पाणां प्रवरं हेमकेतकीपुष्पमुच्यते ।
ईषदुष्णं सुगन्धं च सुतिक्तं दृष्टिदायकम् ॥१०६८॥

पुष्पा०—सब पुष्पों में स्वर्णकेतकी का पुष्प सर्वोत्तम कहा जाता है॥१०६७-८॥

३२७. माधवी[1] (अतिमुक्ता)।

Hiptage Madablota.
A stout shrub or creeper.
Leaves used in cutaneous diseases. Flowers fragrant.

(हिं०) हाथी मोतिया माधवी, (बं०, म०) माधवी लता, (गु०) पीतवेल ।
विशाल दृढ़ झाड़ी वा लता ।
पत्र त्वग्रोगशामक, पुष्प सुगन्धित ।

पराश्रयो वयः कान्तो माधवी त्वतिमुक्तकः ।
शान्तो वियुक्तः पुष्पेन्द्रः सुगन्धः श्रेष्ठगन्धकः ।

के चुप लगाए जाते हैं। केतकी शनैः २ बढ़ कर २०–२५ फुट तक ऊँचा हो जाता है। यदि इसे प्रति वर्ष खजूर की तरह छांटा न जावे, तो यह ऊंचा नहीं होता। **काण्ड** बहुत पतला, अनेकशाखायुक्त, कांटेदार। शिखर पर पत्रसमूह। **पत्र** २–३ हाथ लम्बे, गोपुच्छाकार, तीक्ष्णाग्र, पीताभ, किनारे पर कांटे। शिखर पर ही पुष्प निकलते हैं, जिन के दल श्वेत, लम्बे और नोकदार, दल तथा पराग दोनों सुगन्धित। **सितकेतकी** (वा केतकः) पुल्लिंग (Male Plant) है, क्योंकि इसमें केवल पराग वा धूलि ही होती है, अतः उसे धूलिपुष्पिका कहा गया है। **स्वर्णकेतकी** (कनकप्रसवा, लघुपुष्पा) स्त्रीलिंगी (Female Plant) है, क्योंकि इस में पराग नहीं होता, प्रत्युत केवल **योनि** वा **गर्भाशय** होता है, जिस का सम्पर्क पराग के साथ होने पर गर्भस्थिति हो जाती है, और नारंगी के तुल्य **फल** उत्पन्न होता है। इस का पुष्प छोटा और दल स्वर्णवत् पीत और अत्यन्त सुगन्धित होते हैं। मद्रासी स्त्रिएं इन स्वर्ण वर्ण दलों को केशों में लगाती हैं। गुलाब की तरह इस का भी अर्क और अत्तर (Otto) प्रयोग होता है। अर्क केवड़ा मूर्च्छा, ज्वर, शिरोऽर्त्ति, प्रदरादि में व्यवहार किया जाता है। कृत्रिम विदेशी केतकीगन्ध से बचना चाहिए। उत्तम केतकीगन्ध मद्रास से मिल सकता है।

१. **माधवीलता** आनूप उष्ण देशों में बहुत मिलती है। कहीं २ झाड़ी के रूप में देखी जाती है। यह लता बहुत प्रियदर्शन होती है, न केवल सुन्दर सुगन्धित

कामुकः सुवसन्तः स्यान्मण्डपो भ्रमरोत्सवः ॥१०६९॥

पर्याय—त्राश्रय (वृक्षादि पर चढ़ने वाली लता), माधवी (वसन्त में पुष्पित होने वाली लता), अतिमुक्ता (बड़ा मोती, वा बड़ा मोतिया), पुष्पेन्द्र पुष्पों में उत्तम), कामुक (कामदीपक), भ्रमरोत्सव (भ्रमरप्रिय पुष्प) ॥ १०६९॥

अतिमुक्तो लघुः शीतः दोषत्रयनिबर्हणः ॥१०७०॥

३२८. वासन्ती[1] ।

Ixora Parviflora.	(हिं०) नेवारी, वासन्ती, (बं०) नेयो-आर, (गु०) नेवारी, (म०) नेवाली ।
A small evergreen tree.	सदाहरित क्षुद्र वृक्ष ।

वासन्ती प्रहसन्ती स्यात्सुवसन्ता वसन्तजा ।
शोभना शीतसंवासा सुशुक्ला रात्रिपुष्पिका ॥१०७१॥
दन्तोज्ज्वला कुन्दसाह्वा कुन्दा चमरबाधनी ।
शीतला शीतभीरुः स्यात्सरणी शोभनी स्मृता ॥१०७२॥
वासन्ती शीतला तिक्ता लघ्वी दोषत्रयापहा ।
अत्यन्तशीतलं कुन्दमीषत्कटुरसं स्मृतम् ॥१०७३॥

३२९. शङ्खिनी[2] (यवतिक्ता) ।

Andrographis paniculata.	(हिं०) महातिया, शंखनी, (बं०) कालमेघ, यवेची ।
An erect annual herb.	क्षुद्र सरल हरितक ।
All parts bitter, febrifuge, stomachic, and anthelmintic.	सर्वाङ्ग तिक्त, ज्वरघ्न, पाचक, कृमिघ्न ।

शंखिनी नाकुली विश्वा चोरपुष्पा सुकेशिनी ।
बहुफेना बहुरसा दृढपादा विसर्पिणी ।
यशस्करी वेत्रमूला यवतिक्ताक्षिपीडका ॥१०७४॥

मुक्तातुल्य पुष्पों के कारण, प्रत्युत इस के पत्र भी दर्शनीय हैं । पत्रों का स्वरस वा कल्क कृमिघ्न होने से दद्रू, पामा, कण्डू, पिड़िकादि पर लगाया जाता है । पुष्पों के गुण सामान्य समझें ।

१. वासन्ती के सुन्दर वृक्ष वंग, बिहार, मध्य प्रान्तादि स्थानों में अधिक होते हैं । पुष्प उज्ज्वल श्वेत वा गुलाबी और सुगन्धित । वसन्त ऋतु में होने से इन्हें वासन्ती कहा गया है । कहीं २ माधवी और वासन्ती पर्याय समझे जाते हैं ।

२. **यवतिक्ता** एक छोटी सी हरितक है, जो वंगदेश में बहुत मिलती है और वहां कालमेघ नाम से प्रसिद्ध है । इसे शंखवत् श्वेत **पुष्प** आते हैं और **फल** यवतुल्य, जो अति तिक्त होते हैं । यह क्षुप चिरायते की तरह सर्वांग तिक्त है और मृदुरेचक भी । मरिच, एला, सौंफ आदि से पत्रकल्क वा स्वरस मिला कर गोलियां

पर्याय—शंखिनी (शंखवत् श्वेत पुष्प हैं जिस के), नाकुली (गन्धमय), सुकेशिनी (सुन्दर केशों वा रोमों वाली), यवतिक्ता (यवाकार और तिक्त फल लगते हैं जिस को) ॥१०७४॥

शंखिनी कटुका तिक्ता तीक्ष्णा स्निग्धा सरा गुरुः।
वीर्योष्णा कटुका पाके दोषोदरविषापहा ॥१०७५॥

३३०. शंखपुष्पी[1]।

Canscora decussata.
A trailing annual herb.
Laxative, alterative and nervine tonic.

(हिं०) संखाहुली, (बं०) डानकुनी, (म०, गु०) शंखावली।
भूमिलग्न सर्पणशील वार्षिक हरितक।
मृदुरेचक, रसायन, मेध्य।

(१) शंखपुष्पी क्षीरपुष्पी कम्बुपुष्पी मनोरमा।
शिवब्राह्मी भूतलता किरीटी कम्बुमालिका ॥१०७६॥
(२) मंगल्यपुष्पी शंखोह्वा मेध्या वर्नविलासिनी।
मंगल्याऽन्या रक्तपुष्पी सुभद्रा सूक्ष्मपत्रिका।

बनाई जाती हैं, जो छायाशुष्क करके प्रयोग की जाती हैं। यह बच्चों के रोगों, यथा ज्वर, प्रवाहिका, आमातिसार, उदरकृमि (Worms) आदि में बहुत लाभकारी हैं। शंखिनी का तिक्त रस कुनीनवत् ज्वरघ्न सिद्ध हुआ है। शुष्क पत्रों का चूर्ण ५ रत्ति की मात्रा में दिन में ३–४ बार देने से ज्वर नष्ट हो जाता है। इस क्षुप से एक विशेष गन्ध आता है। यह पंजाब में नहीं मिलता। कुछ बंगाली विद्वानों का मत है, कि कालमेघ वह शंखिनी नहीं, जिस का वर्णन चरक कल्पस्थान अ० ११ में है। कालमेघ की स्वरसमात्रा १०–१५ बिन्दु बच्चों के लिए, १–२ माषे प्रौढ़ पुरुष के लिए।

१. **शंखपुष्पी** प्रायः ऊषर भूमि पर पंजाब वा अन्य प्रान्तों में मिलती है। यह हरितक (Herb) भूमि पर लेटी रहती है और शाखाएं इतस्ततः फैलती हैं। श्वेत वा रक्ताभ श्वेत घंटाकार पुष्प दूर से दीख पड़ते हैं, जिन के कारण वैद्य शंखपुष्पी को दूर से ही पहचान सकता है। पत्र लम्बे, शुष्क और अल्पहरित। यह लक्षण श्वेत शंखपुष्पी के कहे गए हैं। धन्वन्तरि निघंटु में यों लिखा है, "शुक्लपुष्पी भूमिलग्ना ह्रस्वा सा शंखपुष्पिका।" इस के अतिरिक्त रक्त और नील अन्य दो भेदों का वर्णन भी शास्त्रों में मिलता है, परन्तु यह दोनों दुर्लभ हैं। मलय देश में अपराजिता (अंक १६६) को ही शंखपुष्पी कह दिया जाता है। शंखपुष्पी के गुण ब्राह्मी (अंक १७८) के तुल्य समझें। चरक ने इसे मेध्य रसायन (Nervine tonic) माना है, "मेध्या विशेषेण च शंखपुष्पी।" (च० चि० अ० १), और उन्माद, अपस्मारादि में इसे व्यवहार किया जाता है। बाज़ार में यह शुष्कावस्था में 'संखाहुली' के नाम से मिलती है।

(३) सर्पाक्षी त्वपरा विष्णुक्रान्ताऽन्या नीलपुष्पिका ॥१०७७॥

पर्याय—शंखपुष्पी (शंखाकार और श्वेत फूलों वाली), क्षीरपुष्पी (शुक्ल पुष्पी), कम्बुपुष्पी (शंखपुष्पी), मनोरमा (सुन्दर पुष्पों वाली), शिवब्राह्मी (मंगलमय ब्राह्मी) । दूसरा भेद रक्तपुष्पी और तीसरा भेद विष्णुक्रान्ता (नीलपुष्पी) है ॥१०७६–७७॥

शंखपुष्पी सरा स्वर्या कटुतिक्ता रसायनी ।
अनुष्णा वर्णमेधाग्निबलायुःकान्तिदा हरेत् ।
दोषापस्मारलूताऽश्रीकुष्ठभूतविषक्रमीन् ॥१०७८॥

३३१. चम्पकः स्वर्णचम्पकश्च[1] ।

Michelia Champaca.	(हिं०) चम्पा, चम्बा, (बं०) चांपा,
A small evergreen tree.	(गु०) चंपो, (म०) चांफा ।
Flowers fragrant, stomachic.	सदाहरित क्षुद्र वृक्ष ।
Bark febrifuge.	पुष्प सुरभि, दीपक, वल्क, ज्वरघ्न ।

चांपेयश्चम्पको रम्पः शीतलः सुरभिश्चलः ।
सुकुमारो हेमपुष्पः कांचनः षट्पदातिथिः ।
वरलब्धोऽस्य कलिका फली गन्धफली तथा ॥१०७९॥
चम्पकं कटुकं तिक्तं कषायं मधुरं हिमम् ।
निहन्ति कफपित्तास्रमूत्रकृच्छ्रविषक्रमीन् ॥१०८०॥

३३२. पुन्नागः[2] ।

Callophyllum inophyllum.	(हिं०)पुन्नाग, सुलतान चम्पा, पुलाक,
An evergreen ornamental	(बं०, गु०) पुन्नाग, (म०) उंडणि ।
shady tree.	सदाहरित, शोभाप्रद छाया वृक्ष ।
Seeds and oil used externally	बीज तथा तैल आमवात, वात-
in Gout or Rheumatism.	रक्तादि में अभ्यंगार्थ उपयोगी ।

---

१. **चम्पक** के वृक्ष प्रायः सर्वत्र विशेषतः वंगदेश तथा हिमालय के अधस्तट पर बहुत होते हैं । **पत्र** ८–१० इंच लम्बे, ३–४ इंच चौड़े और नोकदार । **पुष्प** व्यास में ३–४ अंगुल, श्वेत वा पीत और सुगन्धित । कलकत्ते में यह पुष्प वसन्त काल में एक पैसे के २ वा ३ मिल जाते हैं । चम्पक दो प्रकार का है, (१) श्वेत, (२) स्वर्ण वा पीत । स्वर्णचम्पक अधिक सुगन्धित होता है । चम्पकत्वक् जीर्ण ज्वरों में लाभकारी है और मूल रेचक है । पुष्पों से अत्तर निकलता है, जो शिरोऽर्त्ति में सुगन्धार्थ सिर पर लगाया जाता है । चम्पक के बीजों का तैल आनाह में उदर पर मला जाता है ।

२. **पुन्नाग** के सदाहरित घन छायावान् बहुशाख सुन्दर वृक्ष उड़ीसा, बरोदा, मध्यप्रान्त और दक्षिण में बहुत मिलते हैं । **पत्र** अण्डाकार, बटवत स्थूल, मसृण;

पुन्नागः पुरुषस्तुंगो विबुद्धो देववल्लभः।
पुन्नागः पाटलीपुष्पः केसरो रक्तकेसरः ॥१०८१॥
पांशुर्नागो महानागः केशवः पाटलाच्छदः।
कांचनः सुरपर्णी स्यात्सुगन्धा षट्पदालयः ॥१०८२॥

पर्याय—पुन्नाग (पुरुष नाग), तुंग (ऊंचा वृक्ष), देववल्लभ (देवप्रिय), पाटलीपुष्प (कुम्भपुष्प), रक्तकेसर (लाल परागसूत्रों वाला), षट्पदालय (भ्रमरप्रिय पुष्पों वाला) ॥१०८१–८२॥

पुन्नागस्तुवरस्तिक्तः शीतः स्वादुः कफास्रजित् ॥१०८३॥

३३३. अशोकः[1]।

Saraca indica.
A large evergreen shady tree. Bark and flowers used in uterine affections, as Menorrhagia, etc.

(हिं०, अशोक, अशोगि, (बं०, म०) अशोक, (गु०) आंडपालो।
विशाल सदाहरित छायातरु। वल्कल तथा पुष्प प्रदरादियोनि-रोगनाशक।

गतशोको वीतशोको विशोकस्ताम्रपल्लवः।
पिण्डपुष्पो शोणपुष्पो सुभगः कर्णपूरकः ॥१०८४॥

और अतिहरित होते हैं। **पुष्प** श्वेत, वृहत् और सुरभि। इन पुष्पों वा इन के केसरों को शुष्क कर के कहीं २ नागकेशर (अंक २६०) के नाम से बेचा जाता है। **पत्रस्वरस** अभिष्यन्दरोग (Opthalmia) में नेत्र में छोड़ा जाता है। **फल** पीताभ, बदरीवत् गोल, मृदु और मांसल। बीज वा मज्जा से ५०% **पुन्नाग-तैल** प्राप्त होता है। उड़ीसादि में यह तैल मन्दिरों वा एवं साधारण रूप में भी जलाया जाता है। तैल पीत, तिक्त, और सुगन्धित होता है। आमवात, वातरक्त, सन्धिशोथादि पर लगाया जाता है। मज्जा वा बीजों का लेप भी इन रोगों में किया जाता है। यह खिलाया नहीं जाता, परन्तु कई डाक्टरों ने इसे खिला कर सुजाक में बहुत लाभकारी पाया है।

१. **अशोक** के सुन्दर हरित दर्शनीयभूम्यभिमुख छायातरु सर्वत्र परन्तु मलयदेश, वंग, मध्यप्रान्तादि में अधिक मिलते हैं। पंजाब में भी लगाने से लग जाता है। **पत्र** आम्रतुल्य परन्तु हरित और मृदु। **पुष्प** रक्त गुच्छाकार, अतः पिण्डपुष्प नाम। **काण्डत्वक्** बहिस्तः मटियाले रंग की, परन्तु भीतर से रक्त। प्राचीन काल में अशोक वृक्ष उद्यानों में लगा कर वाटिकाएं (Bowers) बनाई जाती थीं, यह सुन्दर छायास्थान **अशोकवाटिका** (देखो रामायण) कहलाता था। अशोक के पुष्प एवं त्वक् दोनों रक्तसंग्राहक हैं, अतः रक्तार्श, रक्तप्रदर, रक्तातिसारादि में दे सकते हैं, परन्तु अशोक का बहुधा प्रयोग आज कल **रक्तप्रदर** (Menorrhagia) में ही होता है। अशोकारिष्ट, अशोकघृत, अशोकक्वाथ (दुग्धमिश्रित), अशोकवटी

विचित्रो रक्तको रागी रामस्तवकमञ्जरी ।
चित्रशोकः शोकनाशः स्त्रीपाददहतिदोहदः[1] ॥१०८५॥

पर्याय—गतशोक, वीतशोक, विशोक, (शोकरहित), पिण्डपुष्प (गुच्छेदार फूलों वाला), शोणपुष्प (रक्तपुष्प), सुभग (सुपुष्प), रागी (रागवान्, रक्त), राम० (रामप्रशंसक पुष्प), स्त्री० (स्त्रीपाद से ताड़ना की इच्छा करने वाले पुष्प) ॥१०८४–८५॥

अशोकः शीतलस्तिक्तो वर्ण्यो ग्राही कषायकः ।
दोषापचीतृषादाहकृमिशोफविषास्रजित् ॥१०८६॥

३३४. तिलकः[2] ।

तिलकः क्षुद्रकः श्रीमान् पर्णको मुखमण्डनः ।

(रसक्रिया—Solid Extract) आदि अशोक के प्रसिद्ध योग हैं । अशोक न केवल रक्तप्रदर को दूर करता है, प्रत्युत गर्भाशय के समस्त विकारों को ठीक कर के उसे बल देता है । गर्भावस्था में अशोकघृत का प्रयोग करने से गर्भपात नहीं होता । इस के प्रयोग से मासिक धर्म ठीक समय पर आता है । अशोक वस्तुतः एक उत्तम गर्भाशय रसायन (Uterine tonic) है । ऊपरोक्त योग अशोकत्वक् से ही बनते हैं । उत्तम अशोकछाल मालाबार से मिलती है । जो छाल कलकत्ता से आती है, वह प्रायः विश्वस्त नहीं । वहां एक अन्य वृक्ष को अशोक मान कर उस को छाल संग्रह की जाती है । छाल का क्वाथ सुन्दर रक्त वर्ण का होता है । **अशोकपुष्प** का शाक वा स्वरस वा क्वाथ प्रदरादि में दिया जाता है ।

१. **दोहद** (दौहद) गर्भिणी स्त्री की इच्छा का नाम है, इस का सामान्य अर्थ इच्छा भी किया जाता है । यह गाथा प्रचलित है, कि वसन्त काल में जब अशोक को पुष्प आते हैं, तो अशोक वृक्ष की दोहद (इच्छा) होती है, कि युवती स्त्रिएं विशोक होकर उस के पुष्पों को अपने चरणों से (फुटबाल की तरह) मारें, "पादाघातादशोकं विकसति, वकुलं योषितामास्यमद्यैः ।" (साहित्यदर्पणे सप्तमः परिच्छेदः) । इस कारण से कवियों ने अशोक को कांताङ्घ्रिदोहद, कान्ताचरणदोहद, स्त्रीनिरीक्षणदोहद, स्मराधिवास, (स्त्री–) शोकहर्त्ता, अङ्गनाप्रिय, वामाङ्घ्रिघातकादि नाम दिए गए हैं । इस से प्राचीन आर्य युवतियों का व्यायामप्रेम प्रकट होता है और यह भी कि अशोक उस समय घर २ में होता था और स्त्रिएं उसे प्रयोग कर के योनिरोगों से मुक्त होकर गतशोक रहती थीं । अशोक प्रायः सर्व प्रदरनाशक है, और प्रदर ही स्त्रियों का प्रधान रोग है ।

२. **तिलक** 'स्त्रीनिरीक्षणदोहद' विशेषण से कोई-अशोकतुल्य वृक्ष प्रतीत होता है, परन्तु यह कोई प्रसिद्ध वृक्ष नहीं, और न हि चिकित्साग्रन्थों में कहीं इस का उपयोग मिलता है । "तिलक वृक्ष का फूल–तिल के फूल की समान होता है, और उस फूल में सुगन्धि आती है, फल–पीपल की समान तथा मधुर होता है ।" (शालिग्राम निघंटु) ।

मुचिलिन्दश्छिन्नपुष्पो वरचित्रो विचित्रकः ।

विशेषविरटो रेची स्त्रीनिरीक्षणदोहदः ॥१०८७॥

तिलकः कटुकः पाके रसेऽत्युष्णो रसायनम् ।

कफकुष्ठकृमीन् वस्तिमुखदन्तगदान् जयेत् ॥१०८८॥

३३५. किङ्किरातः[1] (बब्बूलः) ।

किंकिरातो हेमगौरः पीतकः पीतभद्रकः ॥१०८९॥

पर्याय–पीतक (पीले फूलों वाला), पीतभद्रक (पीत और सुन्दर पुष्प) ॥१०८९॥

किंकिरातो हिमस्तिक्तः कषायो विनियच्छति ।

कफपित्तपिपासास्रदाहशोषवमिज्वरान् ॥१०९०॥

३३६. कर्णिकारः[2] ।

कृगोरुका गणोरुः स्यान्निषीधो गणकारिका ।

कोकः स्मृतः कर्णिकारः कर्णी कनकपुष्पिका ॥१०९१॥

पर्याय—कर्णिकार (कर्णभूषण, स्वर्णवत् पीत पुष्पों की माला वा मञ्जरी के कारण), कर्णी (कर्णाभरण), कनकपुष्पिका (स्वर्ण पुष्पी) ॥१०९१॥

गणोरुका कटुस्तिक्ता कषाया शोधनी लघुः ।

रञ्जनी कफपित्तास्रकुष्ठव्रणविनाशनी ॥१०९२॥

---

१. **किङ्किरात** (Acacia arabica) का वर्णन पूर्व अंक २६० में कर चुके हैं । किङ्किरात के प्रायः सब भाग Tannic acid के कारण ग्राही हैं, और पुष्प भी तत्सम समझें। पुष्पों का कल्क, स्वरस, चूर्ण वा क्वाथ अतिसारादि में दे सकते हैं । इन का शाक भी ग्राही और रक्तस्तंभक होगा ।

२. **कर्णिकार** (Cassia Fistula) पीछे अंक २४६ में विस्तरशः वर्णित है । यहां उस के पीत रेचक पुष्पों के कारण पुष्पवर्ग में पुनः दे दिया गया है । किंकिरात की पुनरुक्ति का भी यही कारण है । कई लेखकों ने इसे आरग्वध का भेद (A variety of Cassia Fistula) कहकर यह (Pterospurmum acerifolium) लेटिन नाम दिया है, जो मुचकुन्द जाति का वृक्ष है वा चम्पक कनकचम्पक के तुल्य तरु है । इसे बड़े २ सुगन्धित पुष्प आते हैं । संभव है, यह कर्णिकार हो, परन्तु 'कर्णिकार' शब्द आरग्वध का ही पर्याय है । 'कनकपुष्पिका' और 'शोधनी' शब्द इसे और भी व्यक्त कर देते हैं । इस दूसरे वृक्ष को आरग्वध का भेद कहना भी सर्वथा अशुद्ध है ।

३३७. वकुलः ।

Mimusops Elengi.
An ornamental evergreen tree.
Astringent, used in dental and throat diseases.

(हिं०) मौलसिरी, बकुल, (बं०) बकुल गाछ, (म०) बकुल, (गु०) बोलसरी। शोभाप्रद सदाहरित वृक्ष। ग्राही, दन्त तथा गल के रोगों में लाभकारी।

वकुलः केसरः सिंहकेसरः मद्यदोहदः ।
मधुगन्धो मद्यगन्धः सीधुगन्धो विशारदः ॥१०९३॥

पर्याय—मद्यदोहद (मद्येच्छुक, अशोक की तरह वकुल भी पुष्पित अवस्था में इच्छा करता है, कि उस पर युवतियों का आस्योच्छिष्ट मद्य सिंचन किया जावे), मधुगन्ध (मधुर गन्ध वाला), मद्यगन्ध (सुरावत् मधुर गन्ध वाला), सीधुगन्ध (सुरातुल्य गन्ध वाला) ॥१०९३॥

वकुलस्तुवरोऽनुष्णः कटुपाकरसो गुरुः ।
कफपित्तविषश्वित्रकृमिदन्तमदापहः ॥१०९४॥
तत्फलं मधुरं स्निग्धं कषायं विशदं हिमम् ।
कफपित्तहरं हृद्यं दन्त्यं ग्राहि वातलम् ॥१०९५॥

---

२. **वकुल** प्रायः सर्वत्र मिलता है। अपने श्वेत, मधुगन्धि पुष्पों तथा छाया के कारण यह उद्यानों वा सड़कों पर लगाया जाता है। वृक्ष बहुत ऊंचा नहीं होता। **पत्र** जामुन के तुल्य लम्बा, नोकदार, परन्तु किनारा लहरदार। **पुष्प** इसे शीत काल में आकर वसन्त तक रहते हैं, चिरकाल तक पुष्पों के रहने से इसे 'चिरपुष्प' वा 'स्थिरकुसुम' कहते हैं। पुष्पों से सुगन्ध वा अत्तर (Otto) प्राप्त होता है, जो तैलों में मिलाया जाता है वा केवल लगाया जाता है। मौलसिरी का अत्तर (Maulsiri Scent) और मौलसिरी का तैल दोनों पंजाब में सर्वत्र प्रसिद्ध हैं, परन्तु यह अत्तर भी प्रायः विदेशी कृत्रिम द्रव्य है। यह अत्तर बहुत तीव्रगन्धि और कामदीपक है। **वकुलत्वक्** का काढ़ा कण्ठरोगों में गण्डूषार्थ और उस का चूर्ण अन्य दन्त्य द्रव्यों से मिला कर मञ्जनों में पड़ता है। वकुलत्वक् उत्तम ग्राही और दन्तहित द्रव्य है। पूयदन्त (Pyorrhea), चलदन्त आदि में यह बहुत लाभ करता है। "दन्तचाले तु गण्डूषो वकुलत्वक्कृतो हितः।" (चक्रदत्तः)। चलदन्त में वकुल फल का चबाना भी लाभकारी है, "चलदन्तस्थिरकरं कुर्याद्वकुलचर्वणम्।" (चक्रदत्तः)। पक्व वकुलफल सिन्दूरी रंग का और मधुरकषाय होता है, और अपक्व पीतहरित और कषाय। पुष्प सूखने के पश्चात भी सुगन्धित रहते हैं। वकुल की तनु शाखाएं बब्बूल के समान दन्तकाष्ठवत् काम आती हैं।

३३८. वकः[1] ?

धूकः स्थूलः स्थूलवृक्षः वसुकः किंपियालकः ।
महापाशुपतिः किण्वमूलकः शिवमल्लिका ।
धूको वकः सुव्रताह्वो रुद्राकः शिवशेखरः ॥१०९६॥
धूकोऽनुष्णः कटुस्तिक्तः कफपित्तविषापहः ।
योनिशूलतृषादाहकुष्ठशोकाश्मनाशनः ॥१०९७॥

३३९. कुन्दः[2] ।

Jasminum multiflorum.	(हिं०, गु०, म०) कुन्द, (बं०) कुन्द
A scandant short shrub.	फूलेर गाछ । क्षुद्र वल्लीक्षुप ।

कुन्दो माघो महापुष्पः सदापुष्पो मनोरमः ।
कुन्दः कटुर्लघुः शीतः शिरोरोगविषापहः ॥१०९८॥

३४०. मुचकुन्दः[3] ।

Pterospermum suberfolium.	(सर्व भाषा) मुचकुन्द ।
A large evergreen tree.	वृहत् सदाहरित वृक्ष ।
Flowers used in headache.	पुष्प शिरोऽर्त्तिशमक ।

मुचकुन्दः क्षत्रवृक्षश्चिवुकः प्रतिविष्णुकः ।
मुचकुन्दोऽस्रपित्तघ्नः शिरोऽर्त्तिविषनाशनः ॥१०९९॥

---

१. वक को कई वैद्य वृद्धबकुल (बड़ी मौलसिरी) कहते हैं, परन्तु मूलपाठ से ऐसी कोई साक्षी नहीं मिलती । श्री उमेशचन्द्र ने इसे अगस्तिक (अंक २४५) माना है, क्योंकि वंग भाषा में अगस्तिक को 'वक फूलेर गाछ' कहा जाता है, परन्तु अगस्तिक के पर्यायों में 'वक' शब्द और 'वक' के पर्यायों में अगस्तिक शब्द नहीं मिलता, और गुणों में भी कोई सादृश्य नहीं, एवं वक सन्देहग्रस्त समझना चाहिए ।

२. कुन्द—मोत्तिया (अंक १२२) का रूपान्तर है । इस के पुष्प गोल होते हैं और सदैव मिलते हैं । पुष्पों में अधिक सुगन्धि नहीं होती ।

३. मुचकुन्द—प्रायः भारत में सर्वत्र मिलता है, इस के पत्र ढालाकार और बड़े २ होते हैं, इस कारण से इसे छत्रवृक्ष कहा गया है । पुष्प बसन्त काल में आते हैं । इन के स्वरस की नस्य शिरःपीड़ा (Headache) और विशेषतः अर्द्धशीर्षक (Hemicrania) में दी जाती है, "शिरोऽर्त्तिं नाशयत्याशु पुष्पं वा मुचकुन्दजम्" । पुष्पों के अतिरिक्त और कोई भाग व्यवहार नहीं होता । इस के फल गोल, लम्बे और भिण्डी तोरी की तरह चार उभारों से युक्त होते हैं । यह सूखने पर चार भागों में विभक्त हुए चिर काल तक वृक्ष पर लगे रहते हैं ।

३४१. जपा[1] (ओण्ड्रपुष्पः) ।

Hibiscus Rosa-Sinensis. The Shoe-flower. A shrubby perennial plant. Flowers cooling, refrigerant, used in menorrhagia.	(हिं०) जवा, उडहुल,गुडहर,(बं०) जवाफूलेर गाछ, (म०) जासबन्द, (गु०) जासुम । बहुवार्षिक झाड़ी । पुष्प शीत, तृष्णाशमक, प्रदरघ्न ।

जपापुष्पं जवापुष्पं मड्डूपुष्पं जवा जपा ।
पिण्डपुष्पं हेमपुष्पं त्रिसन्ध्या त्वरुणासिता ।
त्रिसन्ध्या शीतला तिक्ता विषपित्तकफापहा ॥११००॥

३४२. बन्धूकः[2] ।

Pentapetes phoenicea. An annual glabrous red-flowered plant.	(हिं०, पं०) गुल दुपहरिया, गजुनिआ, (बं०) बान्धुलि फूलेरगाछ, (म०) दुलारी, वार्षिक मृदु रक्त-पुष्प क्षुप ।

बन्धुजीवः शरत्पुष्पो रक्तो मध्याह्निको मतः ।
बन्धूकं श्लेष्मलं ग्राहि वातपित्तहरं लघु ॥११०१॥

३४३. सिन्दूरी ।

Bixa Orellana. The Arnatto (orange-red dye). A small evergreen tree. Seeds and Bark astringent, febrifuge, and diuretic.	(हिं०) सिन्दूरिया,जाफर, लटकन, (बं०) लटकन, (म०) शेंद्री, (गु०) सिन्दूरी । सदाहरित ह्रस्व वृक्ष । बीज तथा त्वक् ग्राही,ज्वरघ्न, मूत्रल।

सिन्दूरी रक्तबीजा स्याद्रक्तपुष्पा सुकोमला ॥११०२॥

---

१. **जपा** के झाड़ वा क्षुद्र वृक्ष भारत में सब जगह उद्यानों में रक्ताभ सुन्दर पुष्पों के कारण लगाए जाते हैं। पुष्पों के दलपत्र (Petals) प्रायः ३ होते हैं, जो मूल में जुड़े रहते हैं, अतः 'त्रिसन्ध्या' नाम । इन पुष्पों में गन्ध नहीं होती। यह १०-१२ प्रकार के हैं, जिन में थोड़ा २ अन्तर है । पुष्प शीतकाल से वसन्त तक रहते हैं। आर्तवरोगों में यह पुष्प (स्वरस वा शाक) प्रयोग कराए जाते हैं। घृतभृष्ट शाक रजोधर्म को सुखपूर्वक लाता है, "घृतेन भर्जितजपा स्त्र्यार्त्तवं कुरुते सुखम् ।" काञ्जी के साथ देने से भी यही लाभ होता है, "सकाञ्जिकं जपापुष्पं प्राश्य वनिता त्वार्त्तवं लभेत् ।" पुष्पस्वरस रजोरोधक है ।

२. **बन्धूक** भारत के उष्ण भागों में सब जगह मिलता है । क्षुप २-४ फुट ऊंचा । पत्रों का किनारा कटा हुआ । पुष्प प्रायः रक्त, परन्तु कहीं २ उसे "सोऽसित-

पर्याय—सिन्दूरी (सिन्दूर वर्ण बीजों वा पुष्पों वाला), रक्तबीजा (लाल बीजों वाला) ॥११०२॥

सिन्दूरी[1] शीतला हन्ति विषपित्ततृषावमीः ॥११०३॥

३४४. अम्लातकः[2] (बाणपुष्पः) ?

विम्लापनः परिम्लानोऽम्लातकश्च मलातकः।
अविम्लानोऽम्लानकोऽथ कामुको रक्तको मुरा ॥११०४॥
महासहो बाणपुष्पश्चारटश्चोरटस्तथा।
अम्लापनः कषायोष्णः स्वादुः स्निग्धः सतिक्तः ॥११०५॥

३४५. नैपाली[3] (वनमल्लिका) ?

नैपाली ग्रीष्मिका ग्रीष्मा सुगन्धा वनमल्लिका।

सितपीतलोहितपुष्पभेदाच्चतुर्विधिः" कहा गया है। इस के पुष्प मध्याह्न (दुपहर) के समय विकसित होने से उसे माध्याह्निक (गुलदुपहरिया) कहा गया है। यह पुष्प औषधरूप में कम व्यवहार होते हैं। कहीं २ इस के फल पिच्छिलता के कारण काम में आते हैं।

१. **सिन्दूरी** के क्षुद्र वृक्ष प्रायः भारत में सब जगह मिलते हैं, परन्तु वंगदेश और दक्षिण में अधिक होते हैं। **पत्र** बिल्वपत्र के तुल्य। **पुष्प** गुलाबी और २–३ अंगुल चौड़े। **फल** गोलाकार कोषरूप, तनुकण्टकावृत्त। इन में रक्तवर्ण **बीज** होते हैं, जिन्हें जल में डालने से सिन्दूरिया रंग प्राप्त होता है। साधु लोग एक फल के बीजों से ३-४ वस्त्र रंग लेते हैं। अमरीका के आदिनिवासी (Aborigines) अपना समग्र शरीर इन बीजों के रंग से लाल कर लेते हैं, इसी कारण से उन्हें रक्त भारती (Red Indians) कहा जाता है। वह यह रंग अपने आपको मच्छरों से बचाने के लिए मलते हैं। मूलत्वक् उत्तम विषमज्वरनाशक है, जो क्वाथरूप में चढ़े हुए वा उतरे हुए ज्वर में दे सकते हैं। यह क्वाथ प्रवाहिका और मूत्रकृच्छ्र में भी लाभकारी है। बीजों का क्वाथ भी इन रोगों में दे सकते हैं।

२. **अम्लातक** कोई अप्रसिद्ध द्रव्य है। वैद्यक शब्दसिन्धु में उसे सैरेय (झांटी, कटसरैया, पियाबांसा) का भेद कहा गया है और शोणझिण्टी नाम दिया है। मद्रास में **बाणपुष्प** एक पुष्पित झाड़ी को कहते हैं, जिसे बाणतुल्य रक्त पुष्प आते हैं। यह पौदा उत्तर भारत के उद्यानों में भी मिलता है, परन्तु सैरेयकतुल्य उस पर काण्टे नहीं होते।

३. **नैपाली** भी कोई प्रसिद्ध पुष्प नहीं। श्री उमेशचन्द्र ने उसे सोमलता वा मनःशिला कहा है। 'वनमल्लिका' पर्याय से यह मल्लिका (मोत्तिया) का भेद प्रतीत होता है। "नेवारी (नेपाली) के वन में बड़े २ वृक्ष होते हैं, पत्ते लम्बे, कुछ गोल होते हैं, फूल—आम के बेरकी समान गुच्छों में आते हैं।" (शालिग्राम)। वनमल्लिका को वृक्ष कहना कुछ आश्चर्यजनक है।

लूता मर्कटका कान्ता म्लायनी वनमालिनी ॥११०६॥
काकाहृता शिखरिणी मनोज्ञा शिशुगन्धिका ।
नेपाली कटुका तिक्ताऽनुष्णा लघ्वी त्रिदोषहा ।
नेत्रास्यकर्णरोगघ्नी तद्वद्‌ज्ञेया च वार्षिकी ॥११०७॥

३४६. वार्षिकी[1] ।

वार्षिकी राजपुष्पी स्यात्सुगन्धा सुभगा प्रिया ।
सुरूपा सुपुरा त्र्यस्रा श्रीमती मुक्तबन्धना ।
सुवर्णा तिक्तकटुका सोष्णा लघ्वी त्रिदोषजित् ॥११०८॥

३४७. अर्कः[2] ।

Calotropis gigantea.

A middle-sized milky shrub.

Emetic, purgative, rubefacient, alterative, digestive, and abortifacient.

(हिं०) आक, लाल आक, मंदार, (बं०) आकन्द, (म०) रूई, मन्दारा, (गु०) आकडो ।

प्रसिद्ध पयोमय मध्याकार क्षुप ।

वामक, रेचक, दाहस्फोटकारक, रसायन, दीपक, पाचक, गर्भपातक

---

१. वार्षिकी मल्लिका (अ० ३२१) का ही भेद है । आकृति, गुणादि उस के तुल्य जानें । मल्लिका, कुन्द और वार्षिकी वस्तुतः एक ही प्रकार के क्षुप हैं, परन्तु देशभेद से उन में भेद हो जाने से भिन्न २ नाम दिए गए हैं । इन्हें वेला, रवेल, मोत्तिया, घुघरू मोत्तिया, वनमोगरा, मोगरादि अनेक नामों से पुकारा जाता है ।

२. अर्क और अलर्क दोनों ही समान क्षुप हैं । अर्क प्रायः ऊषर भूमि में मिलता है और आकार में अलर्क से छोटा । अलर्क के पत्र, पुष्प, फलादि अर्क से बड़े होते हैं । यह दोनों ही सर्व भारत में मिलते हैं और सुप्रसिद्ध हैं । वा अर्क सब जगह मिलता है और अलर्क सिन्ध, पंजाब, यू० पी०, बिहारादि में अधिक होता है । कई लेखक इन दोनों में भेद करना व्यर्थ समझते हैं । हमारे ग्रन्थों में अलर्क प्रायः श्वेत पुष्पों वाले को कहते हैं और अर्क रक्तपुष्पों वाले को । धन्वन्तरि निघंटु में **राजार्क** अलर्क को ही कहा गया है, यह कोई तीसरा प्रकार नहीं समझना चाहिए । ग्रन्थों में 'अर्कद्वय' का ही वर्णन मिलता है । अर्क वा अलर्क के प्रायः सब भाग समस्त वा व्यस्त काम आते हैं । सर्वांग क्षुप जलाकर क्षारविधि से **अर्कक्षार** बनता है । यह क्षार दीपक, पाचक, और वातकफार्शः तथा गुल्म का नाशक है, मात्रा ४ रक्ति से १ माषा तक गरम जल से । अर्क के पत्रों को १/१६ भाग सैन्धव लवण से मिला कर पुट देने से वा एक घट में जिस का मुख शराव से बन्द हो जलाने से जो कृष्ण वर्ण भस्म मिले, उसे चूर्ण करके गरम जल वा मस्तु (Whey) से खिलाने से प्लीहा, यकृत, गुल्म, अर्श, उदर, मन्दाग्नि आदि रोगों को बहुत लाभ पहुंचता है, मात्रा १-२ माषा । यह योग **अर्कलवण** के नाम से प्रसिद्ध है, "अर्कपत्रं सलवणं

३४८. अलर्कः (श्वेतार्कः)।

Calotropis procera. | सफेद आक, सफेद मंदार।
The rest as above. | शेष पूर्ववत्।

(१) सूर्याह्वोऽर्कः सदापुष्पी रूपिका सूर्यपुष्पकः।
आस्फोता जम्भला क्षीरी क्षीरपर्णो विकीरणः॥११०६॥

पुटदग्धं सुचूर्णितं निहन्ति मस्तुना पीतं प्लीहानमतिदारुणम्।" (भाव० मध्यखण्डे प्लीहचि०)॥ तैलाक्त कोष्ण अर्कपत्र सन्धिशोथादि वा व्रणों पर आच्छादनार्थ प्रयुक्त होते हैं। मृदु अर्कपत्रों का **शाक** ऊरुस्तंभ, गुल्म, उदरादि में लाभकारी है। पत्र-स्वरस कोष्ण कर के वा तैल में पका कर कर्णशूल में डाला जाता है। छायाशुष्क मृदु अर्कपत्रों का चूर्ण नस्यरूप में देने से छिक्का और नासास्राव होकर शिरोवेदना, शिरोगौरव, प्रतिश्यायादि दूर हो जाते हैं। पत्रकल्क वा स्वरस व क्षीर विषैले व्रणों तथा कुत्ते, शृगाल, वृश्चिकादि के दंशो पर प्रयुक्त होता है। अर्कपत्रसिद्ध तैल कण्डू, वातरोग, व्रणादि में लाभकारी है। **अर्कपुष्प** उत्तम दीपक पाचक है। पुष्पों का मध्य भाग, कृष्णमरिच, लवंग, अहिफेनादि मिला कर चणकतुल्य गोलियां बना कर मन्दाग्नि, विषूचिका, उदरशूलादि में दी जाती हैं। अर्कपुष्प ऐसे अनेक दीपक पाचक योगों में पड़ते हैं, जो अपने अनुभव और बुद्धि से कल्पित किए जा सकते हैं। **अर्कमूल** की छाल का चूर्ण (मात्रा २-३ रक्ति) बहुधा उपदंश, विष, गुल्म, त्वग्रोग, कास, श्वास, कृमि, उदरादि में खिलाया जाता है। अर्कमूल उपदंश (Syphilis) में लाभकारी होने से उसे **वनस्पति पारद** (Vegetable mercury) की संज्ञा दी गई है। यह स्वेद लाकर गंभीर ज्वरों को उतार देता है, "अर्कमूलत्वचा स्वेदकरी श्वासनिबर्हणी। उष्णा च वामिका चैव फिरङ्गरोगनाशिनी।" अर्कमूल १५-२० रक्ति देने से वान्ति हो जाती है, जो श्वास, सर्पविषादि में दी जा सकती है। काञ्जिकपिष्ट अर्कमूल के लेप से श्लीपद (Elephantiasis) तथा मुष्कवृद्धि (Enlarged Scrotum) को लाभ पहुंचता है। लेप दद्रू, कण्ड्वादि पर भी किया जा सकता है। **अर्कक्षीर,** जो चिरकाल तक नहीं बिगड़ता, त्वग्रोगों पर लगाया है। व्रणों पर लगाने से व्रण फट जाता है। स्वस्थ त्वक् पर इस के लेप से पिड़िकाएं निकल आती हैं, गर्भपातार्थ स्त्रिएं अर्कक्षीरसिक्त वस्त्र वा रूई योनि में गर्भाशय के मुख पर रखती हैं। अर्शः के मस्सों पर भी इसे लगाया जाता है। यह २-३ रक्ति खिलाने से वमन और रेचन हो जाता है। "क्षीरमर्कस्य विज्ञेयं वमने सविरेचने" (चरक० सू० अ० १)। यदि मात्रा अधिक हो, तो मृत्यु भी हो सकती है। यह एक घोर विष है। नवजात शिशुओं को हननार्थ स्त्रिएं २-३ बिन्दु अर्कक्षीर दुग्ध में मिला कर दे देती हैं। प्लेग की ग्रन्थि पर पुनः २ अर्कक्षीर लगाने से वह एक दो दिन में फट जाती है, और रोगी बच जाता है। कृमिदन्त में अर्कक्षीर रूई से लगाने पर दन्तशूल बन्द हो जाता है। अर्कक्षीर प्रायः सुधाक्षीर (अ० २४०) के

क्षतक्षीरी दुग्धनिका पुष्पी तनुफला: ।

(२) मन्दारो वसुकोऽलर्कोऽर्घ्यर्कोऽध्यक्षः प्रतापनः ॥१११०॥

एकाष्ठीला श्वेतपुष्पी सदापुष्पी विकीर्णकः ।

राजार्कः फलदो दीर्घपुष्पको गणरूपकः ॥११११॥

पर्याय—(१) अर्क—सूर्याह्व (सूर्य नाम वाला), अर्क (सूर्य), रुपिका (श्वेत), क्षीरी (दुग्धमय क्षुप—Milky plant), क्षतक्षीरी (क्षते क्षीरस्रावी, कटने पर दुग्ध देने वाला), तनुफला (छोटे फलों वाला) । (२) अलर्कः (श्वेतार्कः), —अर्घ्यर्क (बड़ा आक), अध्यक्ष (बड़ा), राजार्क (बड़ा आक) ॥११०९–११॥

अर्कालर्कौ सरौ तिक्तावुष्णौ वातकफौ हतः ।

कृमिकुष्ठव्रणार्शोऽस्रप्लीहगुल्मविषग्रहान् ॥१११२॥

अर्कस्य पुष्पं मधुरं सतिक्तं कुष्ठकृमिघ्नं कफनाशनं च ।

आखोर्विषं हन्ति च रक्तपित्तं संग्राहि शोफे च हितं सगुल्मे ॥१११३॥

अलर्ककुसुमं वृष्यं लघुदीपनपाचनम् ।

अरोचकप्रसेकार्शःश्वासकासनिबर्हणम् ॥१११४॥

अर्कक्षीरं सरं स्निग्धं वातजित् कटुकं लघु ।

गुल्मिनां कुष्ठिनां वापि तथैवोदररोगिणाम् ।

श्रेष्ठमेतद्विरेकार्थे ये चान्ये दीर्घरोगिणः ॥१११५॥

अर्थ—अर्क और अलर्क दोनों रेचक, तिक्त, उष्ण और वातनाशक हैं । **गुल्मिनां......दीर्घरोगिणः**—अर्कक्षीर गुल्मी, कुष्ठी, उदररोगी, तथा अन्य दीर्घकालीन रोगियों के लिए रेचनार्थ श्रेष्ठ द्रव्य है ॥१११२–१५॥

साथ मिला कर वमनविरेचनार्थ प्रयोग किया जाता है । अर्कक्षीर अनेक धातुओं के शोधनमारण में काम आता है, (देखो कोई रसतन्त्र) । एवं अर्क बुद्धिमत्ता से बहुविध प्रयुक्त हो कर चिकित्सा में बहुत लाभकारी द्रव्य सिद्ध होता है । विस्तारभय से अर्क के अन्य अनेक प्रचलित योगों को छोड़ दिया गया है । **अर्कफल** शुकाकार होता है, शुष्क फल से क्षुद्र बीज निकलते हैं, जिन पर रूई लगी रहती है । इस रूई द्वारा यह बीज वायु में उड़ कर और देशदेशान्तर में जाकर अर्क की वंशवृद्धि करते हैं, अन्यथा लोग अर्क को क्षेत्रों से निकाल कर संसार से नष्ट कर देते । **अर्कतूल** (आक की रूई) उष्णवीर्य होने से सिरहानों वा कोटों में भरी जाती है, और पटतुल्य मृदु होने से उस के वस्त्र पाश्चात्य देशों में बनते हैं, और इस कारण से उस का व्योपार दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है । यह रूई वातशमक है ।

३४९. करवीरः[1] (श्वेतपुष्पः)।

Nerium odorum.
The sweet-scented oleander.
A short evergreen shrub.
Poisonous, emetic, cathartic, cardiac tonic, antiperiodic, and used in skin-diseases.

(हिं०) कनेर, सफेद कनेर, (बं०) श्वेत करवी, (म०) पांढरी कण्हेर, (गु०) धोला फूलनी कनेर।
स्थूलकाय सदाहरित क्षुप।
वामक, तीव्ररेचक, हृदयरसायन, ज्वरघ्न, त्वग्रोगनाशक।

करवीरो मीनाक्षः प्रतिहासोऽश्वरोधकः।
शतकुम्भः श्वेतपुष्पः शतप्राशोऽब्जबीजभृत्।
करवीरोऽश्वहाश्वघ्नौ हयमारोऽश्वमारकः ॥१११६॥

---

१. **करवीर** सुप्रसिद्ध झाड़ी है, जो उद्यानों में श्वेत, सुन्दर और सुरभि पुष्पों के कारण लगाई जाती है। इस की आकृति का परिचय देना अनावश्यक है। करवीर शास्त्रों में चार प्रकार का कहा गया है, श्वेत, रक्त, पीत तथा कृष्ण। 'करवीर' शब्द से प्रायः श्वेत करवीर अभिप्रेत हुआ करता है। गुणों में प्रायः सब समगुण और विषमय (Poisonous) हैं, परन्तु श्वेत करवीर सब से अधिक विषैला है। पत्र, पुष्प, दुग्ध, शाखादि सब भाग प्राणहारक हैं, परन्तु **मूल** वा **मूलत्वक्** एक घोर विष है। स्त्रिएं योनि में रख कर गर्भपात कर लेती हैं और आत्महत्या के लिए लोग उसे खा भी लेते हैं। करवीर में विषैले सत्त्व Oleanderine तथा Neriin हैं। यह तीव्रहृदयसादक (Heart-depressant) हैं। इस गुण के कारण कई डाक्टरों ने इन सत्त्वों को Digitalin (अंक २१३ का नोट) की तरह प्रयोग करने का आदेश किया है, परन्तु इस में बहुत सावधानी की आवश्यकता है। हृदय की गति को मन्द करने के लिए मूलत्वक् १–२ रक्ति वा उस का क्वाथ दे सकते हैं, परन्तु उस के अन्तःसम्मार्जन (Internal use) में हानि देख कर ऋषियों ने उस के खिलाने का निषेध उपविष कहकर कर दिया है। अर्क भी उपविष कहा गया है। करवीर अश्वादि पशुओं को मारने के लिए प्रयोग किया जाता था, अतः उस का नाम अश्वघ्न रखा गया। करवीर प्रायः बहिस्तः प्रयोग होता है। **मूलकल्क** उपदंश (Syphilis) में शिश्न पर, तथा व्रणदारणार्थ व्रणशोथ पर वा उस से तैल सिद्ध करके पामादि पर लगाया जाता है। करवीरादि और मरिचादि तैल प्रसिद्ध योग हैं। **करवीरपत्रस्वरस** अश्रुस्रावसहित नेत्राभिष्यन्द में छोड़ा जाता है। **करवीरक्षीर** का प्रयोग व्रणों पर अर्कक्षीरवत् (अंक ३४८) होता है। यह कुष्ठ में भी लाभकारी है। **करवीरपुष्प** का स्वरस नस्यरूप से नासागत रक्तपित्त में व्यवहार होता है। मूलत्वक् कुनीन की तरह ज्वरघ्न भी है और १ रक्ति की २–३ मात्राएं दिन में दी जा सकती हैं, परन्तु अधिक देने से वान्ति, रेचन, शूल, मूर्च्छादि होकर मृत्यु हो जाती है। ज्वरों में मूलत्वक् का टिंकचर (Tincture) बना कर १०–१५ बिन्दु की मात्रा में

पर्याय—करवीर (करे वीरः, चतुरहस्तः, असिवत् मारक), अश्वरोधक (अश्वघ्न), अब्जबीजभृत् (कमलबीजतुल्य बीजों वाला), अश्वहा (अश्वघ्न, घोड़ों को मारने वाला), हयमार (अश्वमारक) ॥१११६॥

करवीरः कटुस्तिक्तो वीर्योष्णप्रवरो लघुः ।
भक्षितो विषरूपोऽक्षिकोपकण्डूव्रणापहः ॥१११७॥

३५०. रक्तकरवीरः[1] ।

Red or pink variety of Nerium odorum (No. 349)	(हिं०) लाल कनेर, (बं०) लाल करवी, (म०) तांबडी कण्हेर, (गु०) रातां कणेर ।

अन्यो रक्तो रक्तपुष्पश्चण्डालो लगुडस्तथा ।
चण्डालो गुल्मकश्च चण्डा प्रचण्डाऽन्या विचण्डिका ॥१११८॥

पर्याय—रक्त (लाल फूलों वाली कनेर), चण्डाल (चण्डालवत् प्राणहारक), गुल्मक (झाड़ी), चण्डा (तीव्र विष), प्रचण्डा (अतितीव्र विष) ॥१११८॥

रक्ताश्वघ्नः कटुः पाके तिक्तश्चोष्णो विषापहः ।
चक्षुष्यः कृमिकण्डूघ्नः प्रलेपाद्विषमन्यथा ॥१११९॥

रक्ताश्वघ्नः—लाल कनेर । प्रलेपा०—प्रलेप से चक्षुष्यादि गुणयुक्त है, परन्तु अन्यथा प्रयोग अर्थात् खाने से विषवत् मारक है ॥१११९॥

३५१. पीतकरवीरः[2] ।

Thevatia Neriifolia. Yellow-flowered oleander. The rest as above.	(हिं०) पीली कणेर, (बं०) पीत करवी, (म०) पिंवली कण्हेर, (गु०) पीला कणेर । शेष यथापूर्व ।

अन्या पाद्या पाटलिका पीतपुष्पिकाऽल्पपुष्पिका ।

दिन में दो तीन वार दिया जा सकता है । शुष्क मूलत्वक् चूर्ण करके पञ्चगुण मद्यसार (Rectified Spirit) में ८ दिन तक रख कर टिंकचर बना सकते हैं । एवं उसकी रसक्रिया भी बना सकते हैं । करवीर की दातन (Toothpick) का भी प्रयोग दन्तरोगों में वा सदैव करने का विधान है।

१. **रक्तकरवीर** भी श्वेत करवीरतुल्य सर्वत्र मिलता है । इस का क्षुप उस की अपेक्षा अधिक ऊंचा है । गुणों में सर्वशः तत्सम समझें ।

२. **पीतकरवीर** की भी झाड़ी होती है, जो बहुशः आकार और गुणों में रक्तकरवीरतुल्य जानें । यह पंजाब में कम मिलती है । इन तीन प्रसिद्ध और सुलभ भेदों के अतिरिक्त चतुर्थ कृष्ण करवीर (Nerium Tirctorium ?) है, जो दुर्लभ है । उपरोक्त (देखो अगले पृष्ठ पर) चतुष्पुटादि वचन से प्रतीत होता है, कि कई अन्य भेद भी थे, जो अब नहीं मिलते ।

चतुष्पुटाद्यश्चान्ये वर्णतः सन्त्यनेकशः।
पाटलिकातिशीता स्याच्छ्लेष्मवातशिरोऽर्त्तिनुत् ॥११२०॥

३५२. धुस्तूरः[1] (कनकः)।

Datura alba.
The Thorn-apple.
An annual glabrous plant.
All parts narcotic and anodyne much like Belladona.

(हिं०) धत्तूर, धुतूरा, (बं०) धुतुरा, (म०) धोतरा, (गु०) धंतुरो।
वार्षिक मृदु क्षुप।
सर्वभाग निद्राजनक, वेदनाशमक, बैलाडोना के तुल्य गुणाढ्य।

धुस्तूरो मदनो धूर्त्तो देवताकितवः शिवः।
उन्मत्तस्तरलस्तूरी धत्तूरः कनकाह्वयः।
रालाठो मातुलस्तस्य फलं मातुलपुत्रकम् ॥११२१॥

---

१. **धुस्तूर** का क्षुप, जो २-३ हाथ ऊंचा जाता है, प्रायः भूगोल पर सर्वत्र
मिलता है, और सुप्रसिद्ध है। **पत्र** बहुत कुछ वासक (अंक २) से मिलते हैं और
लोग भूल कर कहीं २ वासक के स्थान पर धुस्तूरपत्र प्रयोग कर लेते हैं। धुस्तूर के
प्रायः २ प्रकार प्रसिद्ध हैं, (१) **श्वेतधुस्तूर** (सफेद धत्तूर), जिस का लेटिन नाम
ऊपर दिया गया है। इस के पुष्प श्वेत और पत्रशाखादि हरित होते हैं, (२)
कृष्णधुस्तूर (काला धत्तूरा)-D. fastuosa, इस का पुष्प रक्तकृष्ण (Pur-
ple) वर्ण का होता है और शाखाएं एवं पत्र का अधोभाग भी कृष्णाभ देखा जाता
है। इन के अतिरिक्त एक और प्रकार Stramoniun हैं, जो ऊषर शैल भूमि
पर बहुत मिलता है। यह श्वेत धुस्तूर का प्रकारान्तर है। चतुर्थ प्रकार D. Metel
है, जो दक्षिण के पर्वतों पर मिलता है। इन सब में कृष्ण धुस्तूर सर्वोत्तम गिना जाता
है परन्तु गुणों में सब समान ही हैं। इन का फल कांटेदार और गोल सा होता है।
बीज चपटे। धुस्तूर के सब भागों में एक सत्त्व Daturine मिलता है, जो बहुत
विषैला है। यह वातनन्तुओं को मूढ़ कर के स्पर्शाज्ञान (Anaesthesia) उत्पन्न करता
है, अतः जहां वेदना हो, वहां धुस्तूरलेप (बीज वा पत्रकल्क वा मूल वा रसक्रिया का)
बहुत लाभ करता है। उस में अहिफेन (Opium) मिला कर गुणोत्कर्ष हो सकता
है। सन्धिशोथ, गलशोथ, ग्रन्थिशोथ, वातरोग, शिरःशूलादि में धुस्तूर का बहिःप्रयोग
बहुत लाभकारी है। पत्रस्वरस वा बीजक्काथ से सिद्ध तैल वा घृत भी अभ्यंग द्वारा शमन
करता है। घृत ½ माषा की मात्रा में खिलाया जाता है। पत्रों को गरम करके आमवा-
तादि में बांध भी सकते हैं। कोष्ण धुस्तूरस्वरस कर्णशूल में वा अभिष्यन्द में २-३ विन्दु
कर्ण वा नेत्र में छोड़ सकते हैं। वर्धमान पिप्पलीवत् शनैः २ बीजों की संख्या बढ़ाकर
खिलाने से श्लीपद दूर हो जाता है। शिरःशूल, मन्दाग्नि, उन्माद, कामहानि आदि में भी
दे सकते हैं। **लक्ष्मीविलास रस** में धुस्तूरबीजों की विद्यमानता ही उसे प्रतिश्याय, शिरः-
शूलादि में लाभकारी सिद्ध करती है। यदि इस रस की मात्रा अधिक दे दी जावे, वा

पर्याय—मदन (मादक, मोहकारक), धूर्त्त (ठग, वा ठगने वाला), कितव (ठग). शिव (शीत, कल्याणकारी वा शिवप्रिय), उन्मत्त (पागल वा पागल करने वाला), कनकाह्वय (कनक नाम वाला), मातुल (मामा) । उस का फल मातुलपुत्रक (मामे का पुत्र) कहलाता है ॥११२१॥

धत्तूरो मधुरस्तिक्तस्तीक्ष्णस्तुवरो गुरुः ।
उन्मादवातवर्णाग्निकान्तिदो ज्वरकुष्ठनुत् ।
यूकालिक्षाव्रणश्लेष्मकृमिकण्डूविषापहा ॥११२२॥

बीज, पत्रादि का अन्त:प्रयोग असावधानी से कराया जावे, तो चित्तवैकल्य, शिरोभ्रम, संज्ञानाश, मूर्च्छादि होकर हृदयगति स्थगित होने से मृत्यु हो जाती है । इस मूर्च्छाजनक (Anaesthetic) गुण के कारण धूर्त लोग धुस्तूरबीज खिलाने से वा उन्हें हुक्का में पिलाने से पथिकों को मूर्च्छित करके उन्हें ठग लेते हैं वा स्त्रियों से कुव्यवहार कर लेते हैं । सुश्रुत ने कल्पस्थान में धुस्तूर को अलर्कविष (Hydrophobia) के लिए प्रयोग करने का विधान किया है, परन्तु यह कुत्ते के काटने के पश्चात् शीघ्र ही प्रयोग कराना उचित है । मलयदेश में अब तक वहां कोचीन का एक राजकुमार त्रिचूर (Trichur, Cochine State) में रहता है, कुत्ते से दंशित सहस्रों रोगियों की चिकित्सा करता है । कृष्ण धुस्तूर का पत्रस्वरस (२ तो०) प्रातः पिलाकर ऊपर से मधु वा गुड खिला दिया जाता है । रोगी उन्मत्त होकर उन्मत्त कुत्ते की तरह चेष्टा करता है । उसे किसी स्तम्भ से धूप में बांध दिया जाता है, ताकि इतस्ततः भाग न सके । पुनः उत्तराह्न उस पर १०, १५ घड़े शीत जल डाला जाता है, यद्यपि वह उससे बचने की चेष्टा करता है, तथापि कुछ उसे शान्ति आती है और सायंकाल स्निग्धोष्ण, मधुर भोजन वा मांसरसादि दिया जाता है। ऐसा होने पर वह जलत्रास (Hydrophobia) से बच जाता है। बीजों की गोलियां बनाकर दान्तों के खोल में रखने से दन्त शूल की शान्ति होती है । बीजसिद्ध घृत शिश्न पर मलने से और ½ माषा खिलाने से ध्वजभंग दूर होता है । पत्रस्वरस वा बीज चूर्ण वा तत्सिद्ध तैल के लेप से यूका, लिक्षा, कण्डू, इन्द्रलुप्त आदि को लाभ पहुंचता है । हुक्का वा धूम्रवर्त्ती (Cigarettes) के रूप में शुष्क पत्र, मूल वा बीजों का प्रयोग श्वास में तुरन्त लाभ करता है, परन्तु जब रोगी को भ्रम होने लगे, तो धूम्रपान (Smoking the fumes) बन्द करादें । पाश्चात्य चिकित्सा में जो काम (Belladona) से होता है, वह सब हम धुस्तूर से कर सकते हैं। परन्तु सावधानी आवश्यक है। धुस्तूर पुष्प, धु० मूल, वा सर्वांग क्षुप का व्यवहार भी ऊपरोक्त रूपों में हो सकता है। कनकासव प्रसिद्ध श्वासान्तक योग है ।

३५३. मयूरशिखा[1] ।

Celosia cristata. | (हिं०) मोरशिखा, लालमुर्गा, (बं०) मयूरशिखा, (म०, गु०) मोरशिखा ।
An annual glabrous herb. | वार्षिक मृदु क्षुप ।
Flowers and seeds cooling and astringent. | पुष्प तथा बीज शीत, ग्राही ।

बर्हिचूड़ा तु शिखिनी मयूराह्वा शिखा स्मृता ।
मयूराह्वा शिखा शीता कषायाऽम्लाऽम्लपाकिनी ।
लघ्वी पित्तकफौ पक्वापक्वातिसारं नाशयेत् ॥११२३॥

३५४. तुलसीत्रयम्[2] ।

Ocimum sanctum. | (सर्व भाषा) तुलसी ।
The Holy Basil.
A wellknown strongly-scented herbaceous perennial plant. | प्रसिद्ध अतिसुगन्धित मृदु बहुवार्षिक हरितक ।
Fragrant, stimulant, expectorant and antiperiodic. | सुरभि, उत्तेजक, कफहर, ज्वरघ्न ।

(१) तुलसी सुरसा गौरी पापघ्नी विष्णुवल्लभा ।
मयूरा सरला कृष्णा भूतेष्टा देवदुन्दुभिः ॥ ११२४ ॥

---

१. मयूरशिखा के क्षुद्र मृदु हरित क्षुप भारत में सर्वत्र मिलते हैं । पत्र लंबे और कटे हुए । क्षुप के शिखर पर एक गोल नीलवर्ण मुण्डाकार पुष्प होता है, जो मयूर (मोर) की शिखा के समान होता है, और इसी कारण से इस क्षुप को मयूरशिखा कहा गया है । पुष्प शीत, ग्राही और रक्तस्तंभक होते हैं, जिन्हें अतिसार, प्रवाहिका, रक्तप्रदरादि में प्रयोग किया जाता है । बीज पिच्छिल होने से कास, मूत्रकृच्छ्रादि में काम आते हैं ।

२. तुलसी सुप्रसिद्ध क्षुप है, जो उद्यानों एवं हिन्दु घरों में पूजार्थ लगाया जाता है । इस के शिखर पर पुष्पमञ्जरी लगती है । यह हरितक सर्वांग सुगन्धित है । इस की सुगन्ध रोचक और आह्लादक है । प्रतिदिन भोजन के पश्चात् वा किसी अन्य समय तुलसी के ४-५ पत्र चबा लेना मन्दाग्नि, आमवात, वान्ति, कृमि, श्वास, कासादि में लाभकारी है । इन रोगों तथा विषूचिका (Cholera) और विषमज्वर (Malaria) में वा उस से बचने के लिए तुलसीपत्र का स्वरस, क्वाथ, वा एवं गोलियां, जो तुलसीस्वरस, मरिच, लवंगादि के परस्पर मिश्रण से बनाई जा सकती हैं, बहुत लाभकारी हैं । तुलसीस्वरसभावित मरिचचूर्ण की गोलियां विषम ज्वर में गरम जल से देने पर स्वेद आकर ज्वर शनैः २ उतर जाता है और शान्त ज्वर में

भूतप्रिया नागमाता चक्रपर्णी सुमञ्जरी ।
स्वादुगन्धच्छदा भूतपतिश्चापेतराक्षसी ॥ ११२५ ॥
(२) अपरा राजसी गौरी श्वेता सुरभिमञ्जरी ।
श्रीमञ्जरी यसाग्रस्या[1] (?) भूतघ्नी भूरिमञ्जरी ॥ ११२६ ॥
शक्रपत्नी नागनामा कायस्था दलसाग्रसी (?)[2] ।
(३) भूतवेश्या लता चान्या कर्पूरतुलसी स्मृता ॥ ११२७ ॥

पर्याय—(१) **कृष्णतुलसी**-सुरसा (रसमय—Juicy, Succulent), गौरी (श्वेत), पापघ्नी (रोगरूपपापनाशक), विष्णुवल्लभा (विष्णुप्रिया), ज्येष्ठा (प्राणिप्रिया), देवदुन्दुभि (देवताओं का नकारा, जहां तुलसी है, वहां देवता निवास करते हैं), सुमंजरी (सुन्दर पुष्पमञ्जरी वाली), अपेतराक्षसी (राक्षस रूपज्वरादिरोगजनक कीटों को भगा देने वाली)। (२) **श्वेततुलसी**—राजसी (रजोगुणप्रधान), श्रीमञ्जरी (सुन्दर फूलों वाली), शक्रपत्नी (इन्द्रपत्नी), कायस्था (आयुष्या),(३) **कर्पूरतुलसी**—कर्पूरतुल्य सुगन्धित तुलसी ॥११२४-२७॥

तुलसी तुवरा तिक्ता तीक्ष्णोष्णा कटुपाकिनी ।
रूक्षा हृद्या लघुः कट्वी दाहपित्ताग्निवर्द्धनी ॥११२८॥
जयेद्वातकफश्वासकासहिध्मावमिकृमीन् ।
दौर्गन्ध्यपार्श्वरुक्कुष्ठविषकृच्छ्रास्रदृग्गदान् ॥११२९॥

३५५. फणिज्झकः[3] (खरपत्रः) ।

Ocimum gratissimum.	(सर्वभाषा) रामतुलसी ।
The Shrubby Basil.	तीक्ष्णगन्धि गुल्म (झाड़ी) ।
A strongly-scented shrub.	उष्ण, वातानुलोमक ।
Stimulant and carminative.	

देने से ज्वर के पुनः प्रादुर्भाव की सम्भावना नहीं रहती । एवं जिन घरों में तुलसी लगी हो, वहां मशक (Mosquitoes) नहीं रह सकते और तुलसीपत्र शय्या पर छोड़ने से मशक निकट नहीं आते, एवं तुलसी विषमज्वर (Malaria) से बचाने में परम सहायक है । इस भाव से घर में रखना और सत्कार की दृष्टि से उसे देखना सर्वमान्य होना चाहिए, परन्तु तुलसी की पूजा तथा विवाह करना वेदविरुद्ध और व्यर्थ है । कोष्ण तुलसीस्वरस को कर्णशूल में कान में छोड़ सकते हैं । तुलसी के बीज मधुर और पिच्छल होने से वीर्यरोगों में दिए जाते हैं । तुलसी के दो भेद, श्वेत और कृष्ण, तो प्रसिद्ध हैं, परन्तु कर्पूरतुलसी की लता दुर्लभ है । कृष्ण तुलसी के पुष्प, शाखा वा पत्र श्यामवर्ण होते हैं । गुणों में शुक्ल और कृष्ण दोनों तुल्य हैं ।

१. द—ग्रसाग्रस्था । २. दलसा ग्रसा ।

३. **फणिज्झक** की झाड़ी वंग, नेपाल, दक्षिण और लंका में बहुत मिलती है, पंजाब में विरल। झाड़ी ५-६ हाथ ऊंची होती है। **पत्र** खर, बड़े २ और अति

फणिज्झकस्तीक्ष्णगन्धो मञ्जरीको दलाढ़कः।
गम्भीरको बीजपुष्पः खरपत्रः सुगन्धिकः ॥११३०॥
फणिज्झको लघुस्तिक्तो रूक्षो हृद्योऽग्निपित्तदः।
कटुपाकरसो रुच्यस्तीक्ष्णोष्णः कफवातजित्।
निहन्ति कृमिकुष्ठास्रवृश्चिकाहिविषं विषम् ॥११३१॥

३२६. अर्जकः[1] (कुठेरकः, क्षुद्रतुलसी)।

Ocimum canum.
Rosary Tulsi or Basil.

A small strongly-scented erect herb.

Used as above.

(हिं०) छोटी तुलसी, (बं०) बाबूई तुलसी।
क्षुद्र सरल तीव्रगन्धि हरितक।
प्रयोग पूर्ववत्।

(१) क्षुद्रपत्रोऽर्जकः कुण्ठो वैकुण्ठस्तु कुठेरकः।
(२) पर्णशून्यो बिल्वगन्धः श्वेतपर्णः कठिञ्जरः ॥११३२॥
(३) वटपत्रो गन्धपत्रः कपित्थोऽर्जक इत्यपि।
अर्जकाः कटुका रूक्षाः कटुपाका विदाहिनः ॥११३३॥
तीक्ष्णा रुचिकरा हृद्या दीपना लघवो हिमाः।
पित्तलाः कफवातघ्ना घ्नन्ति कण्डूविषकृमीन् ॥११३४॥

३२७. कृष्णार्जकः[2]।

कृष्णार्जकः कालमाला मालुकः कृष्णमालुकः।
काकमल्ली करालः स्यात्कपिशः कालमल्लिका ॥११३५॥

सुगन्धित। यह वहां तुलसी की तरह प्रयुक्त होते हैं। आमवात में इस के पत्रों के क्वाथ से स्वेद कराया जाता है। मन्दाग्नि, कासादि में बहुत व्यवहार होता है। यह वस्तुतः जंगली तुलसी है और वन में रामाश्रय होने से 'रामतुलसी' कहलाती है। इस के भी दो भेद हैं, फणिज्झक और महाफणिज्झक। इन के अभाव में हम तुलसी व्यवहार कर सकते हैं।

१. अर्जक छोटी तुलसी का नाम है, जो घरों में मिलती है, "अर्जकः क्षुद्रतुलसी क्षुद्रपर्णः।" (नरहरि निघंटु)। इसे कुठेरक भी कहते हैं। किसी ग्रन्थ में कुठेरक और किसी में अर्जक का पाठ मिलता है, परन्तु उन के तीन भेदों के वर्णन में सादृश्य देखने से अर्जकत्रय वा कुठेरकत्रय एक ही हैं। अर्जक वा कुठेर के ३ भेद ऊपर अर्द्धश्लोकों में कहे गए हैं,(१) क्षुद्रपत्र अर्जक,(२) श्वेतपर्ण बिल्वगन्धि अर्जक, (३) वटपत्र (स्थूलपत्र) अर्जक, यह अन्यत्र **पर्णास** कहा गया है। यह तीनों ही तीक्ष्णगन्धयुक्त, दीपक, पाचक और वातानुलोमक हैं।

२. **कृष्णार्जक** अर्जक का ही भेद है। यहां यह अर्जक का चतुर्थ भेद प्रतीत होता है, परन्तु अन्य ग्रन्थों में तृतीय भेद है, "कुठेरकस्तृतीयोऽन्यः शालूको वृक्ष-

भूतप्रिया नागमाता चक्रपर्णी सुमञ्जरी ।
स्वादुगन्धच्छदा भूतपतिश्चापेतराक्षसी ॥ ११२५ ॥

(२) अपरा राजसी गौरी श्वेता सुरभिमञ्जरी ।
श्रीमञ्जरी यसाग्रस्या[1] (?) भूतघ्नी भूरिमञ्जरी ॥ ११२६ ॥
शक्रपत्नी नागनामा कायस्था दलसाग्रसी (?)[2] ।

(३) भूतवेश्या लता चान्या कर्पूरतुलसी स्मृता ॥ ११२७ ॥

पर्याय—(१) कृष्णतुलसी-सुरसा (रसमय—Juicy, Succulent), गौरी (श्वेत), पापघ्नी (रोगरूपपापनाशक), विष्णुवल्लभा (विष्णुप्रिया), भूतेष्टा (प्राणिप्रिया), देवदुन्दुभि (देवताओं का नकारा, जहां तुलसी है, वहां देवता निवास करते हैं), सुमंजरी (सुन्दर पुष्पमञ्जरी वाली), अपेतराक्षसी (राक्षस रूपज्वरादिरोगजनक कीटों को भगा देने वाली)। **(२) श्वेततुलसी**—राजसी (रजोगुणप्रधान), श्रीमञ्जरी (सुन्दर फूलों वाली), शक्रपत्नी (इन्द्रपत्नी), कायस्था (आयुष्या),**(३) कर्पूरतुलसी**—कर्पूरतुल्य सुगन्धित तुलसी ॥११२४–२७॥

तुलसी तुवरा तिक्ता तीक्ष्णोष्णा कटुपाकिनी ।
रूक्षा हृद्या लघुः कट्वी दाहपित्ताग्निवर्द्धनी ॥११२८॥
जयेद्वातकफश्वासकासहिध्मावमिकृमीन् ।
दौर्गन्ध्यपार्श्वरुक्कुष्ठविषकृच्छ्रास्रदृग्गदान् ॥११२९॥

३५५. फणिज्झकः[3] (खरपत्रः) ।

Ocimum gratissimum.	(सर्वभाषा) रामतुलसी ।
The Shrubby Basil.	तीक्ष्णगन्धि गुल्म (झाड़ी) ।
A strongly-scented shrub.	
Stimulant and carminative.	उष्ण, वातानुलोमक ।

देने से ज्वर के पुनः प्रादुर्भाव की सम्भावना नहीं रहती । एवं जिन घरों में तुलसी लगी हो, वहां मशक (Mosquitoes) नहीं रह सकते और तुलसीपत्र शय्या पर छोड़ने से मशक निकट नहीं आते, एवं तुलसी विषमज्वर (Malaria) से बचाने में परम सहायक है । इस भाव से घर में रखना और सत्कार की दृष्टि से उसे देखना सर्वमान्य होना चाहिए, परन्तु तुलती की पूजा तथा विवाह करना वेदविरुद्ध और व्यर्थ है । कोष्ण तुलसीस्वरस को कर्णशूल में कान में छोड़ सकते हैं । तुलसी के बीज मधुर और पिच्छल होने से वीर्यरोगों में दिए जाते हैं । तुलसी के दो भेद, श्वेत और कृष्ण, तो प्रसिद्ध हैं, परन्तु कर्पूरतुलसी की लता दुर्लभ है । कृष्ण तुलसी के पुष्प, शाखा वा पत्र श्यामवर्ण होते हैं । गुणों में शुक्ल और कृष्ण दोनों तुल्य हैं ।

१. द—ग्रसाग्रस्था । २. दलसा ग्रसा ।

३. फणिज्झक की झाड़ी वंग, नेपाल, दक्षिण और लंका में बहुत मिलती है, पंजाब में विरल । झाड़ी ५–६ हाथ ऊंची होती है । पत्र खर, बड़े २ और अति

फणिज्झकस्तीक्ष्णगन्धो मञ्जरीको दलाढ्कः।

गम्भीरको बीजपुष्पः खरपत्रः सुगन्धिकः ॥११३०॥

फणिज्झको लघुस्तिक्तो रूक्षो हृद्योऽग्निपित्तदः।

कटुपाकरसो रुच्यस्तीक्ष्णोष्णः कफवातजित्।

निहन्ति कृमिकुष्ठास्रवृश्चिकाहिविषं विषम् ॥११३१॥

३२६. अर्जकः[1] (कुठेरकः, क्षुद्रतुलसी)।

Ocimum canum.
Rosary Tulsi or Basil.

A small strongly-scented erect herb.

Used as above.

(हिं०) छोटी तुलसी, (बं०) बाबूई तुलसी।

क्षुद्र सरल तीव्रगन्धि हरितक।

प्रयोग पूर्ववत्।

(१) क्षुद्रपत्रोऽर्जकः कुण्ठो वैकुण्ठस्तु कुठेरकः।

(२) पर्णशून्यो बिल्वगन्धः श्वेतपर्णः कठिञ्जरः ॥११३२॥

(३) वटपत्रो गन्धपत्रः कपित्थोऽर्जक इत्यपि।

अर्जकाः कटुका रूक्षाः कटुपाका विदाहिनः ॥११३३॥

तीक्ष्णा रुचिकरा हृद्या दीपना लघवो हिमाः।

पित्तलाः कफवातघ्ना घ्नन्ति कण्डूविषकृमीन् ॥११३४॥

३२७. कृष्णार्जकः[2]।

कृष्णार्जकः कालमाला मालुकः कृष्णमालुकः।

काकमल्ली करालः स्यात्कपिशः कालमल्लिका ॥११३५॥

सुगन्धित। यह वहां तुलसी की तरह प्रयुक्त होते हैं। आमवात में इस के पत्रों के क्वाथ से स्वेद कराया जाता है। मन्दाग्नि, कासादि में बहुत व्यवहार होता है। यह वस्तुतः जंगली तुलसी है और वन में रामाश्रय होने से 'रामतुलसी' कहलाती है। इस के भी दो भेद हैं, फणिज्झक और महाफणिज्झक। इन के अभाव में हम तुलसी व्यवहार कर सकते हैं।

१. **अर्जक** छोटी तुलसी का नाम है, जो घरों में मिलती है, "अर्जकः क्षुद्रतुलसी क्षुद्रपर्णः।" (नरहरि निघंटु)। इसे कुठेरक भी कहते हैं। किसी ग्रन्थ में कुठेरक और किसी में अर्जक का पाठ मिलता है, परन्तु उन के तीन भेदों के वर्णन में सादृश्य देखने से अर्जकत्रय वा कुठेरकत्रय एक ही हैं। अर्जक वा कुठेर के ३ भेद ऊपर अर्द्धश्लोकों में कहे गए हैं, (१) क्षुद्रपत्र अर्जक, (२) श्वेतपर्ण बिल्वगन्धि अर्जक, (३) वटपत्र (स्थूलपत्र) अर्जक, यह अन्यत्र **पर्णास** कहा गया है। यह तीनों ही तीक्ष्णगन्धयुक्त, दीपक, पाचक और वातानुलोमक हैं।

२. **कृष्णार्जक** अर्जक का ही भेद है। यहां यह अर्जक का चतुर्थ भेद प्रतीत होता है, परन्तु अन्य ग्रन्थों में तृतीय भेद है, "कुठेरकस्तृतीयोऽन्यः शालूको वृन्दे-

सुमुखो[1] दाहनः स्वास्यो दोषोत्क्लेशी कटुच्छदः ।
निद्राकरः सुप्रसन्नो गरघ्नः शोभनाननः ॥११३६॥
सुमुखो मधुरः पाके रूक्षोष्णो रोचनो लघुः ।
कटुको दीपनो हृद्यो विदाही पित्तलो जयेत् ।
कफानिलविषश्वासकासहृत्पार्श्वजा रुजः ॥११३७॥

३५८. वर्व्वरी[2] ।

Ocimum Basilicum.
A strongly-scented common plant.
Leaves and flowers aromatic.
Seeds demulcent and cooling.

(हिं०) बबरी, नियाज़ बो, वनतुलसी, (बं०) बाबुई तुलसी, (गु०, म०) सबज़ा ।
अतिसुरभि साधारण क्षुप ।
पत्र तथा पुष्प सुगन्धित ।
बीज पिच्छिल तथा शीत ।

वर्व्वरी कबरी तुङ्गी खरपुष्पाऽजगन्धिका ।
वनवर्व्वरिकाऽन्या तु सुगन्धः सुप्रसूनकः ॥११३८॥
वनवर्व्वरिका चोष्णा सुगन्धा कटुका च सा ।
पिशाचवान्तिभूतघ्नी घ्राणसन्तर्पणी परा ।
वीजं चास्या दाहशोषनाशकं परिकीर्त्तितम् ॥११३९॥

शालुकः ।" (धन्वन्तरि निघंटु) । तथा "कृष्णार्जकः कृतमालः शालूको वृत्तशालुकः ।" (नरहरि) । अन्य ग्रन्थों में श्वेतार्जक और वटपत्र एक ही है, यथा "सितार्जकस्तु वैकुण्ठो वटपत्रः कुठेरकः ।" ग्रन्थों में जहां अर्जक, कुठेरक, सुरसा, पर्णास, सुमुख, फणिज्झकादि शब्द मिलें, वहां साधारण तुलसी ही प्रयोग हो सकती है । यह सब उस के रूपान्तर हैं ।

१. **सुमुख** अन्यत्र वनवर्व्वरिका का नाम है । सुमुख, स्वास्य (सु+आस्यः) आदि शब्दों से प्रतीत होता है, कि इस के पत्र चबाए जाते हैं । यह बंगाल, कूचविहारादि में मिलता है, वहां लोग इस के शुष्क पत्रों को तमाकू में मिला कर धूम्रपान करते हैं ।

२. **वर्व्वरी** पंजाब में पबरी वा नियाज़बो के नाम से प्रसिद्ध है । उद्यानों में सर्वत्र लगती है । पुष्प बहुत सुगन्धित होते हैं । **पुष्प** रक्तकृष्ण (Purple) और गुच्छेदार । पत्रों और पुष्पों के स्वरस की नस्य पंजाब में बच्चों को दी जाती है, जिस से नासा और शिर के रोग नहीं होते । इस के काले २ क्षुद्र बीज (पबरी के बीज, तुख्मे रेहां) जलसम्पर्क से पिच्छल हो जाते हैं । उन को रेचन के पश्चात् लोग ईसबगोल की तरह शर्बत के साथ खाते हैं । उन का लेप नलिकावत् (अंक ३०८) व्रणों पर किया जाता है । बंगाली लोग उन्हें **तोकमारी** कहते हैं, जो तुख्मेरेहां का अपभ्रंश है । यह बीज दाहनिवारक, मूत्रकृच्छ्रशमक, तथा रक्तार्शोनाशक हैं ।

३५९. दमनकः[1]।

Artemesia scoparia.
A faintly-scented glabrous annual herb.
All parts bitter & laxative.

(हिं०) दौना, दवणा, दोना, (बं०) दना गाछ, (म०) दवणा, (गु०) डमरो।
अल्पगन्धि मृदुहरित वार्षिक क्षुप।
सर्वांग तिक्त तथा रेचक।

ऋषिपुत्रो ब्रह्मवटी दमो गन्धोत्कटो मुनिः।
पाण्डुरोगो दमनको विनीतः कुलपुत्रकः।
पुण्ड्रीको मुनिसुतो दान्तः साधुस्तपोधनः ॥११४०॥
दमनस्तुवरस्तिक्तो हृद्यो वृष्यस्त्रिदोषनुत्।
निहन्ति कफजकण्डूं कुष्ठोत्क्लेशविषग्रहान् ॥११४१॥

३६०. मरुबकः[2]।

Origanum marjorana.
Sweet Marjorum.
An aromatic short herb.
Aromatic, carminative and stimulant.

(हिं०) मर्वा, मरुवा, (बं०) गन्धतुलसी, मरुया, (म०) सबज़ा, मर्वा, (गु०) मरवा।
सुरभि क्षुद्र हरितक।
सुरभि, वातानुलोमक, उत्तेजक।

मरुबकः खरमुखः खरपत्रः सुखात्मकः।
सूक्ष्महीनः सुगन्धोऽन्यः प्रस्थपुष्पो मरुत्तकः ॥११४२॥

---

१. **दमनक** को तुलसी का प्रकार समझना सर्वथा अशुद्ध है। जो लोग वर्वरी (अंक ३५८) को दौना कह देते हैं, वह गलती करते हैं। दमनक का क्षुप नागदमनी (अंक १६२) के तुल्यजातीय समझें, परन्तु उस की अपेक्षा क्षुद्र, अल्पपत्र और अल्पशाख है। यह काश्मीरादि पर्वतों पर बहुत मिलता है। इस का स्वरस तिक्त, ज्वरघ्न, रेचक और रक्तशोधक है। पत्रों से तनु गन्ध आता है, परन्तु इस गन्ध और तुलसीगन्ध में बड़ा अन्तर है। दमनक को मूलपाठ में तिक्त कहा गया है, तुलसी तिक्त नहीं होती।

२. **मरुबक** का क्षुप प्रायः १–२ हाथ ऊंचा जाता है। पत्र तुलसी से छोटे, परन्तु अधिक लम्बे और तत्सम सुगन्धित। तुलसी में पुष्पमञ्जरी केवल क्षुप के शिखर पर लगती है और इस में प्रत्येक पत्र के कोण में एक पुष्प होता है, परन्तु पुष्पाकृति की समता के कारण मरुबक और तुलसी दोनों N. O. Labiatea में गिने जाते हैं। मरुबक श्वेत और कृष्ण दो प्रकार का है। उन का प्रयोग, "श्वेतो भेषजकार्ये स्यादपरः शिवपूजने" (नरहरि)। यह गुणों में तुलसीसम जानें। यह दन्तशूल और उदरार्त्ति में भी लाभकारी हैं। कई ग्रन्थकारों ने फणिज्झक और मरुबक को एक माना है।

सुखात्मकः कटुस्तिक्तो ग्रहजित्पाचनो हिमः ।
निहन्ति कफपित्तास्रकुष्ठकराडूविषज्वरान् ॥११४३॥

इति पुष्पाणि ।

अथ मिश्रितद्रव्यसमूहः ।

३६१. मञ्जिष्ठा[1] ।

Rubia Cordifolia or R. Munjista. Madder root.
A climbing perennial herb.
Used as colouring agent and blood-purifier.

(हिं०, गु०) मजीठ, (बं०) मंजिष्ठा, अरुणा, (म०) मञ्जिष्ठ ।
बहुवार्षिक आवेष्टनशील लता ।
रञ्जक तथा रक्तशोधक ।

मञ्जिष्ठा लोहिता रक्ताङ्गी रक्तयष्टिका ।
पद्मिका[2] मञ्जुला भण्डी भण्डीरा ताम्रवल्ल्यपि ॥११४४॥
समङ्गा विकसा ताम्रा विजया वस्त्रभूषणा ।
ताम्रमूला कालमेषी जिङ्गी योजनवल्ल्यपि ॥११४५॥

पर्याय—मंजिष्ठा (सुपुष्पित लता), लोहिता (रक्तवर्णा), रक्तांगी (रक्त मूलादि अङ्गों वाली), रक्तयष्टिका (रक्तकाष्ठा), पद्मिका (पद्मवत् प्रिय मृदु), मञ्जुला (सुन्दर लता), भण्डी (बहुत फलने वाली लता—Prosperous creeper),

---

१. **मञ्जिष्ठा** की सुन्दर, विशाल और दर्शनीय लता वृक्षों पर चढ़ी हुई नेपालादि हिमालय के भागों में बाहुल्य से देखी जाती है । लता की शाखाएं तथा जड़ें बहुत विशाल होती हैं और दूर २ तक फैल जाती हैं । चार चार पत्रों का एक चक्राकार समूह शाखाओं पर थोड़े २ अन्तर पर लगा रहता है । पत्र वृक्काकार परन्तु नोकदार । पत्रों के किनारों पर छोटे २ कांटे होते हैं । मूल गोल, पतली, मृदु और कई गज़ लम्बी होती है । यह भीतर से रक्तवर्ण होती है । मंजिष्ठा इसकी शुष्क मूल का नाम है । मंजिष्ठा चिरकाल से वस्त्ररञ्जनार्थ प्रयोग होती रही है, परन्तु अब जर्मनी ने 'मंजीठा रंग' कृत्रिमरूप से बना कर काष्ठिक मञ्जिष्ठा का व्यवहार नील (अं०२०२) की तरह बन्द करा दिया है । औषधों में यह तैलों के रञ्जन तथा शोधन के लिए व्यवहार होती है । यह रक्तशोधक भी है, एतदर्थ मञ्जिष्ठादि वा बृहन्मंजिष्ठादि क्वाथ (शार्ङ्गधरोक्त) सुप्रसिद्ध हैं । व्यङ्गों (Freckles) के नाश के लिए मञ्जिष्ठा को जल में घिस कर लेप किया जाता है । कुष्ठ, व्रण, शोथादि में मञ्जिष्ठा का क्वाथ दिया जाता है ।

२. ब, द—छद्मिका ।

ताम्रा (रक्त), वस्त्रभूषणा (वस्त्ररञ्जक), ताम्रमूला (रक्तमूला), योजनवल्ली (पर्वतों पर जोजनों तक फैलने वाली लता) ॥११४४-४५॥

मञ्जिष्ठा तुवरा तिक्ता वीर्योष्णा मधुरा गुरुः।
कर्णाक्षियोनिरोगघ्नी कफशोषविषापहा ॥११४६॥
विसर्पमेहकुष्ठार्शोव्रणरक्तातिसारजित्।
शाकं स्वादु लघु स्निग्धं दीपनं वातपित्तजित् ॥११४७॥

मञ्जिष्ठा--मंजिष्ठामूलं। **शाकं**-मृदुपल्लवानां पुष्पाणां वा शाकं व्यञ्जनं॥११४६-४७॥

३६२. वृक्षादनी[1] (वन्दा, वन्दाकः)।

Viscum album.
A large green parasitic leafy shrub.
Used in enlarged spleen, tumours, ear-diseases, etc.

(हिं०) वन्दा, बान्दा, न्दाल, (बं०) परगाछा, (म०) बांदागुल, कामरुख, (गु०) बांदो।
बृहत् हरित पराश्रय पर्णमय क्षुप।
प्लीहगुल्मार्बुदकर्णरोगघ्न।

वृक्षादनी वृक्षरुहा कामना कामवृक्षकः।
नीलपर्णी नीलवल्ली जीवन्ती च जयद्रुमः ॥११४८॥

---

१. **वृक्षादनी** वा **बन्दा** ३-४ प्रकार की है, जो भारत के भिन्न २ भागों में आम्र, वट, पिप्पलादि अनेक वृक्षों पर चढ़ी हुई मिलती है। अन्याश्रय होने से ही उसे पराश्रया, वृक्षादनी, परपुष्टादि नाम दिए हैं। ऐसे क्षुप भूमि पर नहीं लगते और न हीं उन की मूल भूमि में प्रवेश करके अपना भोजन प्राप्त कर सकती है, प्रत्युत वह अन्य वृक्षों के काण्ड (Trunk) में अपनी मूल को घुसेर कर उन के रस से ही अपना पोषण करते हैं, और इस कारण से निजाश्रय के गुणानुसार उन के गुणों में भी परिवर्तन हो जाता है। वृक्षादनी का एक प्रकार Viscum monoicum है, जो विषमुष्टी (कुचला, Nux-vomica, अंक ७६) के वृक्ष पर होता है। यह अतितिक्त और तत्सम विषैला है। इस के पत्र कुचले के स्थान में प्रयोग हो सकते हैं। यह कटक के वनों में बहुत मिलता है, जहां कुचले के घन जंगल हैं। ऊपरोक्त प्रकार (V. album) हिमालय में अधिक मिलता है। V. orientale बंग, विहार और ट्रावनकोर में मिलता है। V. articulatum चम्बा, सिक्कम, विन्ध्यादि में पाया जाता है। इन के परस्पर भेद उन्हें देखने से ही प्रतीत होते हैं। वनस्पतिशास्त्रानुसार ऐसे क्षुप **पराशी**) Parasites or Parasitic plants. Para-पर, अन्य,-site भक्षणे, अशने) कहलाते हैं। हम उन को **चोर क्षुप** वा **चोर लता** भी कह सकते हैं, क्योंकि यह स्वयं भूमि से रसोपार्जन न करके परसञ्चित रसरूपी धन चोरों की तरह हरते हैं। इन पर पुष्प और फल भी आते हैं। V. album के शुष्क फल बम्बे में 'किश्मिश कवली' के नाम से मिल जाते हैं। यह मृदु, मधुर, पिच्छिल और रेचक हैं, श्वास, प्लीहादि रोगों में दिए जाते हैं। वृक्षादनी के सब

कामिनी पादपरुहा शैषर्यपदारोहिणी[1] (?) ।
वन्दा वृक्षादनी सेव्या परपुष्टा पराश्रया ॥११४६॥

पर्याय—वृक्षादनी (वृक्षभक्षक, वृक्ष को खा जाने वाली), वृक्षरुहा (वृक्ष पर चढ़ने वाली), जयद्रुम (अन्य वृक्षों को जीतने वाली), परपुष्टा (दूसरे वृक्षों पर पली हुई), पराश्रया (दूसरे वृक्षों पर आश्रित रहने वाली) ॥११४८-६॥

वृक्षादनी हिमा तिक्ता कषाया मधुरा रसे ।
मंगल्या कफवातास्रव्रणरक्षोग्रहापहा ॥११५०॥

३६३. गुन्थः[2] (गुच्छकन्दः) ?

गुन्थो वृन्ततृणः शुंगो गुलङ्कः पृथुकन्दकः ।
गुच्छः कन्दतृणो गुरुः शृंगवेराभमूलकः ॥११५१॥
गुच्छः कषायः शिशिरो मधुरो रक्तपित्तजित् ।
स्तन्यशुक्ररजोमूत्रशोधनो मूत्रकृच्छ्रनुत् ॥११५२॥

३६४. किरातः[3] (चिरतिक्तः, भूनिम्बः) ।

Swertia Chirata.
The Chiretta.

A perennial hilly herb.
Bitter, tonic, laxative, febrifuge and anthelmintic.

(हिं०) चिरायता, किराता, (बं०) चिरेता, चिरता, (म०) किरायत, (गु०) करियातु ।
बहुवार्षिक शैल क्षुप ।
तिक्त, रसायन, मृदुरेचक, ज्वरघ्न, कृमिघ्न ।

किराततिक्तो भूनिम्बो रामसेनः किरातकः ।

प्रकार Loranthaceae N.O. में सम्मिलित हैं, अतः वृक्षादनी को कई विद्वान् Loranthus longifolius भी कह देते हैं। मैं ने देखा है, कि बहुत से वैद्य लंका, मलयदेशादि में प्रत्येक लता को, जो वृक्ष पर चढ़ी हो, वृक्षादनी कह देते हैं। यह अशुद्ध है। वृक्षादनी केवल पराशी (Parasite) क्षुप को ही कहना उचित है।

१. ब, यु—चापदरुहा सैषर्यपदरोहणी । द–पुस्तक में वृक्षादनी का पाठ ही नहीं मिलता । अन्य निघंटुओं में 'शेखरी' शब्द मिलता है ।

२. गुन्थ कोई अज्ञात और अप्रसिद्ध द्रव्य है । "गुच्छा व्यकन्दः स्तदकाङ्ककन्दो गुलच्छकन्दश्च विघरिटकाभिधः ।" यह पर्याय अन्यत्र मिलते हैं । यह कोई कन्द विशेष है, जो आकार में शृंगवेर (आर्द्रक) के तुल्य है । यह पंजाबी 'गुच्छियाँ' मत समझें ।

३. किराततिक्त, जो बाज़ार में गुच्छीकृत मिलता है, प्रायः नेपाल से आता है, अतः संस्कृत में इसे 'नैपालः' भी कहा गया है । निम्बवत् तिक्त, परन्तु क्षुप छोटा होने से इसे भूनिम्ब कहा गया है, जैसे भूकदम्ब कदम्ब (अं० ६६) की अपेक्षा, भूम्यामलकी (अंक ४५) आमलकी वृक्ष की अपेक्षा, इत्यादि संस्कृत

अन्यस्तु कट्टतृणं हैमस्तिक्तः कैरातकः स्मृतः।
नार्यतिक्तः काण्डतिक्तो नाडीतिक्तोऽर्द्धतिक्तकः ॥११५३॥

पर्याय—किरात (किरात उत्तर भारत की एक प्राचीन आदिजाति का नाम है, जो चिरायते को बहुत प्रयोग करती थी, 'किरात' शब्द उसी जाति के नाम पर आर्यों ने प्रसिद्ध कर दिया), तिक्त (कड़वा), भूनिम्ब (छोटी नीम), रामसेन (भील, किरातादि जातिएं राम की सेना में थीं), हैम (हिमालयज), नार्यतिक्त (अनार्यतिक्त, अनार्य-किरात, क्योंकि किरात अनार्य जाति थी), काण्डतिक्त (काण्डे तिक्तः, कड़वे काण्ड वाला क्षुप), नाड़ीतिक्त: (नाड्यां तिक्तः, नाड़ी काण्डार्थे) ॥ ११५३ ॥

शैली के अनुसार। चिरकाल तक मुख तिक्त रहने से इसे 'चिरतिक्तः' (अपभ्रंश चिरायता) भी कहते हैं। क्षुप ३-४ फुट ऊंचा होता है। **पत्र** क्षुप के अधोभाग में बड़े और शिखर की ओर छोटे होते जाते हैं। उन पर ५-७ रेखाएं वा शिराएं होती हैं। चिरायते का संग्रह उस समय किया जाता है, जब क्षुप पुष्पित हो और फल न लगे हों। नेपाली चिरायते के काण्ड पर पर्व होते हैं, और मूल पर केश, रंग भूरा वा रक्ताभ। किराततिक्त के ५-६ अन्य भेद हैं, जो मद्रास, बम्बे, मध्यप्रान्तादि में मिलते हैं। उन २ स्थानों में लोग उन को देसी चिरायता कहते हैं। पंजाब के पर्वतों पर S. angustifolia उत्पन्न होता है, जिसे लोग पहाड़ी चिरायता कहते हैं। यह तथा अन्य भेद कभी २ नेपाली चिरायते से मिला दिए गए जाते हैं, परन्तु नेपाली चिरायता ही सर्वोत्तम है। S. affinis दक्षिण की ओर मिलता है, जिसे दक्षिणी चिरायता कहा जाता है। यह क्षुप सर्वांगतिक्त है, परन्तु मूल सर्वोत्तम भाग है। तिक्त रस के कारण यह ज्वरघ्न योगों, यथा सुदर्शनचूर्ण, में पड़ता है और रक्त-शोधनार्थ तथा यकृत् वा प्लीहा के रोगों में काम आता है। अल्प मात्रा में सदैव प्रयोग करने से अग्नि बढ़ती है, मन्दाग्नि, वातरक्त, यकृद्वृद्धि आदि रोग दूर हो जाते हैं। अन्य तिक्त द्रव्य, यथा कुनीन, कुटजादि प्रायः स्तम्भक (Constipative) होते हैं, परन्तु किराता रेचक है, यकृत् से पित्त निकाल कर उसे शुद्ध कर देता है। अतः यह ज्वरों में अधिक लाभकारी है, यद्यपि क्रिया शनैः २ करता है। किरायते का क्वाथ नहीं देना चाहिए, क्योंकि क्वाथ करने से इस का सत्त्व नष्ट हो जाता है। शीत कषाय (जो ½ छटांग किरायते को ½ सेर जल में रात्रिसमय भिगो कर प्रातः छानने वा निथारने से प्राप्त होगा) वा फाण्ठ (Infusion), जो चाय की तरह बनेगा वा टिंकचर (जो दशगुण सुरा alcohol में डालने से प्राप्त होगा) वा चूर्ण के रूप में उसे प्रयोग करना उत्तम है। मात्रा—चूर्ण ३ माषे, क्वाथ ५-१० तो०, फाण्ठ १०-२० तो०, शीत कषाय १५-३० तो०, टिंकचर ३०-६० बिन्दु। सुदर्शन चूर्ण, जिसमें ½ भाग चिरायता पड़ता है, सर्वोत्तम योग है। उसे गरम जल के साथ वा उसमें घोलकर वा फाण्ट बनाकर दे सकते हैं। किराततिक्त उदरकृमि में भी

भूनिम्बः शीतलो रूक्षो रसे तिक्तो लघुः सरः ।
वातलः कफपित्तास्रकुष्ठमेहापहो हरेत् ।
श्वासकासतृषादाहारुचिशोषज्वरक्रमीन् ॥११५४॥

३६५. छिक्किका[1] (छिक्किनी) ।

Centipeda orbicularis.
The Sneeze-weed.
An annual prostrate glabrous or woolly herb.
Used as a sternutatory in ozoena, cold and headache.

(हिं०) नाकछिकनी, (बं०) हांचुटी, हेंचेता गाछ, छिक्नी, (म०) नाकशिकणी, (गु०) नाकछीकणी ।
वार्षिक भूमिलग्न मृदु वा ऊर्णाभ हरितक। पूतिनस्य, प्रतिश्याय तथा शिरोऽर्त्ति में क्षवजननार्थ उपयोगी

छिक्किका छिक्कपत्रा च नासासंवेदनस्तथा ।
क्षवकः क्षुरकस्तीक्ष्णः क्रूर उद्वेजनस्तथा ।
क्षुधातिजननो राजक्षवकः क्षुद्विबोधनः ॥११५५॥

पर्याय—छिक्किका (छिक्काजनक, छींकें लाने वाली—Sternutatory), छिक्कपत्रा (छिक्काजनक पत्रों वाली), नासासंवेदन (नासा को दुःख देने वाली वा संबोधन कराने वाली), क्षवक (छिक्काजनक), क्षुरक (नाक को खुरचने वाली), उद्वेजन (उत्तेजक—Stimulant), क्षुधा० (भूक लगने वाली) ॥११५५॥

लाभकारी है। इसमें Chiratin और Ophelic acid दो तिक्त सत्त्व हैं। विलायती चिरायते का नाम Gentian (Gentiana lutea) है, जो हरिवर्ष (Europe) में बहुत उगता है और उस का व्यवहार पाश्चात्य चिकित्सा में अधिक होता है, यथा Extractum Gentianae, Infusum Gentianae आदि प्रसिद्ध योग हैं। यह किराततिक्त की अपेक्षा कम कड़वा और हीनगुण है। डाक्टर लोग टिंक्चर चिरायता (Tinctura chiratae) भी व्यवहार करते हैं। किराता अन्य तिक्त द्रव्यों से मिला कर अनेक क्राथों में काम आता है। स्तन्यशुद्धि में तथा गर्भोपद्रवभूत वमन को दूर करने के लिए किराता लाभकारी है।

१. **छिक्किनी** प्रायः आर्द्र भूमि पर नदियों के निकट मिल जाती है। यह मृदु हरितक भूमि पर फैली रहती है; **पत्र** बहुत छोटे, कटे हुए, और नोकदार; **पुष्प** गोल और छोटे २, **बीज** चपटे और क्षुद्र। शुष्क पत्ररूपी हरितक बाज़ार में मिल जाती है। इस का चूर्ण वा बीजचूर्ण की नस्य (Snuff) देने से छींकें आती हैं और नासास्राव होता है, जिस से शिरोगौरव, अर्द्धशीर्षक (Hemicrania), शिरोऽर्त्ति (Headache), प्रतिश्यायादि शिरोरोग और नासारोग दूर हो जाते हैं। यह दीपन, पाचन और वातरोगनाशक भी है। कई डाक्टरों ने इसका फाण्ट (२–४ बिन्दु) नेत्र में छोड़ने से अति घोर अभिष्यन्द (Opthalmia) को ठीक करने में सफलता प्राप्त की है।

क्षवकः कटुकः पाके रसे रुच्यग्निपित्तकृत् ।
तीक्ष्णोष्णः कफवातास्रहृत्कुष्ठकृमिजिल्लघुः ॥११५६॥

३६६. अश्मन्तकः[1] (कुद्दालकः, कोविदारभेदः)।

Bauhinia tomentosa. An erect large shrub. Used as No. 243-4.	(हिं०) सफेद छोटी कचनार, (बं०) आवुटा, (म०) आपटा, (गु०) आशोंदरा । सरल बड़ी झाड़ी । प्रयोग अंक २४३–४ के तुल्य ।

अश्मन्तको युग्मपत्रः कुद्दालश्चाम्लपत्रकः ।
अश्मयोनिः पापहरः श्लक्ष्णत्वग्मालुकाच्छदः[2] ॥११५७॥
अश्मन्तोऽम्लो हिमो ग्राही कषायः कफवातजित् ।
निहन्ति गण्डमालास्रगलगण्डव्रणामयान् ॥११५८॥
फलं स्वादु हिमं रूक्षं कषायं लेखनं गुरु ।
संग्राहि कफवातघ्नं विबन्धाध्मानकारकम् ॥११५९॥

३६७. कदम्बिका[3] ।

कदम्बिका स्थूलफला मध्यगन्धा कटम्भरा ।
कदम्बिर्मधुरा शीता कषाया लवणा गुरुः ॥११६०॥
सरा विष्टम्भिनी रूक्षा कफस्तन्यानिलप्रदा ।
फलं कषायमधुरं हिमं पित्तास्रजित्परम् ॥११६१॥

३६८. दुरालभा[4] (धन्वयासः)।

Alhagi Camelorum. Camel's thorn.	(हिं०, म०) धमासा, (पं०) धमांह, (बं०) दुरालभा, (गु०) धमासो, (फा०) ख़ोर-ए-शुतर ।

---

१. **अश्मन्तक** को पाषाणभेद नहीं समझना चाहिए। उस का वर्णन आगे होगा। यहां अश्मन्तक से एक काञ्चनारभेद अभिप्रेत है, यह छोटी सी झाड़ी होती है, जिस के पत्र, पुष्पादि काञ्चनार वा कोविदार (अं० २४३–४) के तुल्य होते हैं। इसकी त्वचा (वल्कल) बड़ी पतली होती है, और पुष्प श्वेत। यह प्रायः बागों में सर्वत्र मिलता है। इस के गुणादि काञ्चनारजाति (Bauhinia Family) के शेष अंगों के तुल्य जानें, जिन का वर्णन पीछे अंक २४३–४ (पृष्ठ २१२–३) में कर चुके हैं। वस्तुतः उस का उल्लेख वहां होना चाहिए था। २. ब—मायुकाच्छकः ।

३. **कदम्बिका** कदम्ब का भेद विशेष है, इस में साधारण कदम्ब की अपेक्षा फल अधिक बडे और मधुर होते हैं। वर्णन अंक ६६ और २५० में देखें।

४. **दुरालभा** और **यवासा** दोनों ही समानजातीय और प्रायः तुल्याकार क्षुप हैं। दुरालभा पारस, अरब, सीरिया, मिश्रादि समुद्रान्त (समुद्रतटवर्ती)

३६९. यवासः (यासः) ।

Alhagi maurorum.	(हिं०) जवासा, (पं०) जवांह ।
Both spiny desert shrubs.	उभय कण्टकीय मरुद्भव क्षुप ।
Laxative, expectorant, and diuretic.	मृदुरेचक, कफहर, मूत्रल ।

(१) दुरालभा दुरालम्भा धन्वयासो मरुद्भवः ।
दूरमूलो दीर्घमूलः समुद्रान्तो निकण्टकः ॥११६२॥

देशों में बहुत होता है, अतः 'समुद्रान्ता' नाम । भारत में यह दुर्लभ होने से ऋषियों ने उसे 'दुरालभा' संज्ञा दी है। अरबादि मरुभूमि में प्रायः मिलने से उसे धन्वयास (अपभ्रंश—धमासा, धमांह) कहा गया है। गंगा के तट पर वा पंजाब के रेतले भागों, यथा झंग, मुलतान, हिसारादि में, वा भारत में अन्य बालुमय देशों में जो कण्टकीय और अल्पपत्रक क्षुप मिलता है, वह यास वा यवास (अपभ्रंश—जवासा, जवांह) ही है, न कि धन्वयास वा दुरालभा । यह यास गान्धार (कन्धार वा अफ़ग़ानिस्तान) में बहुत मिलने से उसे 'गान्धारिका' (गान्धारदेशज) कहा गया है। यास को धन्वयास की संज्ञा देने में कोई हानि नहीं; परन्तु समीचीन भी नहीं । यह दोनों ही प्राय: सर्वांग रूप में मूत्रकृच्छ्र, दाह, रक्तपित्त, कास, श्वास, अर्श, मदात्यय, भ्रमादि में प्रयोग होते हैं। मात्रा—स्वरस १–२ तो०, क्वाथ ५–१० तो०, मूलत्वक् चूर्ण १–२ माषे। शुष्क क्षुप को धुस्तूर, तमाकू, अजमोदा आदि से मिला कर श्वास में धूम्रपान कराते हैं । स्वरस नेत्रशुक्र (Opacity of the Cornea) पर प्रयोग करते हैं, अर्द्धशीर्षक में उस की नस्य देते हैं । यवासपुष्प अर्श पर बांधे जाते हैं । बाजार में जो **धमासा** मिलता है, वह वस्तुतः यवासा है, न कि दुरालभा । वस्तुत: दुरालभा अरबादि देशों से मंगा कर प्रयोग करना चाहिए और जहां यवासा का विधान हो, वहां निजदेशीय यास प्रयोग कर सकते हैं । अरबादि देशों में दुरालभा के सुपक्व क्षुप को काट कर और जलार्द्र कर के वस्त्र पर रख छोड़ने से रेणुतुल्य मधुर कण प्राप्त होते हैं, वा क्षुप पर ही जो कण निर्यास (Tears, gum) की तरह लग जाते हैं, वह संग्रह करके जो मधुर कषाय रेणुतुल्य द्रव्य प्राप्त होता है, वह **यासशर्करा** है, जिसे हकीम **तुरञ्जबीन** और अंग्रेजी में Manna कहते हैं । "कषायमधुरा शीता सतिक्ता **यासशर्करा**"। (च० सू० अ० २७) और "**यास-शर्करा** मधुरकषाया तिक्तानुरसा श्लेष्महरी **सरा** चेति ।" (सु० सू० अ० ४५) । यह दो प्रसिद्ध संहितोक्त प्रमाण उन लोगों के मत को खण्डन करने के लिए पर्याप्त हैं, जो यह कहते हैं कि आर्यों को **तुरंजबीन** का ज्ञान न था । यह वैद्यक द्रव्य है और वैद्यों को निसंकोच व्यवहार करना चाहिए । यासशर्करा में यास सामान्य नाम दुरालभा के लिए भी प्रयोग हो सकता है । यवासा से शर्करा नहीं मिलती वा अल्प

(२) यासो यवासो दुःस्पर्शः कच्छुरा ताम्रमूलिका।
गन्धारिका बालपत्राऽनन्ता धन्वयवासकः ॥११६३॥

पर्याय—(१) दुरालभा (पकड़ने वा मिलने में दुष्कर), दुरालम्भा (अर्थ दुरालभावत्), धन्वयासः (धन्वनि मरुदेशे जातो यासः), मरुद्भव (मरुदेशज—Desert-born), निकण्टक (थोड़े काण्टों वाला)। (२) **यास**—दुःस्पर्श (स्पर्श वा पकड़ने में कठिन), कच्छुरा (कण्डूकारक), ताम्रमूलिका (रक्तमूलिका), गन्धारिका (गान्धारदेशज), बालपत्रा (सूक्ष्मपत्रा), अनन्ता (बहुत होने वाला)॥ ११६२–३॥

(१) धन्वयासो हिमस्तिक्तः कषायो मधुरो लघुः।
सरो निहन्ति पित्तास्रकफमेदोमदभ्रमान् ॥११६४॥
विसर्पकुष्ठवातास्रतृष्णाकासवमिज्वरान्।
(२) दुरालभागुणैस्तुल्यो बुधैरुक्तो यवासकः ॥११६५॥

३७०-१. मुण्डीद्वयम्[1] (श्रावणी, महाश्रावणी)।

Sphaeranthus indicus.	(हिं०, गु०) मुंडी छोटी वा बड़ी,
Globe-thistle.	गोरखमुण्डी, (पं०) मुण्डी बूटी,
A low annual shrub.	(बं०) मुंडिरी, (म०) बोडथरा।
Alterative, diuretic, anthelmintic, blood-purifier.	क्षुद्र वार्षिक क्षुप। रसायन, मूत्रल, कृमिघ्न, रक्तशोधक।

(१) श्रावणी श्रवणा मुण्डी भिक्षुः श्रवणशीर्षका।
अलम्बुषा कुलहलः श्रीमती चम्बुला परा ॥११६६॥

मिलती है। चरक का टीकाकार चक्रपाणि यासशर्करा को 'दुरालभाक्वाथकृता शर्करा' कहता है, और डल्हण सुश्रुत की टीका में यों लिखता है, "यवासक्वाथघनीभावात् शर्करा कृता यवासशर्करा"। क्वाथसे भी शर्करा प्राप्त हो सकती है, परन्तु क्वाथ पुष्पफलयुक्त क्षुप के ऊपरी भाग का करना उचित है। तुरंजबीन (The Manna) उत्तम मृदु रेचक है। दुर्बल, क्षयी, दीर्घकालीन रोगियों को यह विरेचनार्थ दुग्ध में उबाल कर दे सकते हैं। यह रक्तशोधक और पित्तनिष्कासक (Cholagogue) भी है। मात्रा ६ माषे से १ तो० तक या अधिक भी। कभी २ इसमें रेत, तृणादि मिले रहते हैं। यास वा धन्वयास क्षुप उष्ट्र को बहुत प्रिय है, अतः 'उष्ट्रप्रिया', 'उष्ट्रभक्षा' आदि नाम।

१. मुण्डी (श्रावणी) प्रायः वंग और दक्षिणदेशों में बाहुल्य से शालिक्षेत्रों में देखी जाती है, अन्यत्र भारत में कम। वर्षा में क्षुप उगता है और शालि के पकने और कट जाने पर क्षेत्र मुण्डी से भरा हुआ देखा जाता है। शीत काल में ही उसे पुष्प और फल लगते हैं। क्षुप १ हाथ ऊंचा, परन्तु फैला हुआ। पत्र छोटे २ और अण्डाकार, परन्तु रोमश। पुष्प वा फल गोल और मुण्डे हुए सिर के तुल्य, अतः मुण्डी, तपोधन आदि नाम। वृक्ष कदम्ब (अ०९६) के फल के तुल्य गोल होने

(२) महामुण्डी मुण्डनिका छिन्ना ग्रन्थिनिकाऽरुणा ।
कदम्बपुष्पी गोच्छालो वोटवृद्धस्तपोधनः ।
नीचैःकदम्बो वोटस्थः स्थविरो भूकदम्बकः ॥११६७॥

(१) मुण्डी—श्रावणी (श्रावण मास वा वर्षा में होने वाली वा रामायणोक्त श्रवणमुनि के मुण्डित सिर के तुल्य), मुण्डी (मुण्डित शिर के तुल्य गोल पुष्पों वाली), भिक्षु (संन्यासी, अर्थात् संन्यासी जैसे मुण्डे हुए सिर वाली), श्रवणशीर्षका (श्रवण, जिस को दशरथ ने मारा था, के मुण्डित शिर जैसी) । (२) महामुण्डी—(बड़ी मुण्डी), अरुणा (रक्ताभ), कदम्बपुष्पी (कदम्ब जैसे फूलों वाली), तपोधन (संन्यासी), नीचैःकदम्ब (छोटा कदम्ब), स्थविर (बूढ़ा), भूकदम्ब (छोटा कदम्ब) ॥११६-७॥

श्रावणी मधुरा तिक्ता कटुका कटुपाका कटुर्लघुः ।
वीर्योष्णा तुवरा मेध्या स्थिरा वातकफापहा ॥११६८॥
जयेद्गण्डापचीप्लीहमेदोऽपस्मारपाण्डुताः ।
श्लीपदारुचियोन्यर्त्तिकासकृच्छ्रगुदकृमीन् ॥११६९॥

महामुण्डी के गुण मुण्डी के सदृश समझें ॥

३७२. आकाशवल्ली[1] (अमरवल्ली) ।

Cassytha filiformis.	(हिं०, गु०, म०) आकाशबेल, अमरबेल, (बं०) आलोक लता, अकाशबेल ।
A filiform twining parasite.	सूत्राकार आवेष्टक पराशी लता ।
Mucilaginous, tonic and used in eye-diseases.	पिच्छिल, रसायन, नेत्ररोगघ्न ।

आकाशवल्ली खवल्ली दुःस्पर्शा व्योमवल्लिका ।
अवन्ती ग्राहिणी तिक्ता पिच्छलाऽक्ष्यामयापहा ॥११७०॥

से इस छोटे क्षुप को भूमिकदम्ब कहा गया है । वातरक्त, स्फोट, विसर्प, गण्डमाला, अर्शः, रक्तपित्त, अपची, आमवातादि में मुण्डी का व्यवहार क्वाथ, फाण्ठ वा शीत कषाय के रूप में किया जाता है । मुण्डी के प्रायः पुष्प ही बाज़ार में मिलते हैं और काम आते हैं । इन का अर्क पंजाब में खेंचा जाता है और ऊपरोक्त रोगों में व्यवहार होता है । मुण्डी अच्छी रक्तशोधक है । मुण्डीमूल दीपन पाचन और कृमिघ्न है । मुण्डीपक्व तैल स्तनों को श्रीफलवत् दृढ़ करता है (चक्रदत्त–स्त्रीरोगे) । **महा-मुण्डी** (भूकदम्बः) मुण्डी की अपेक्षा बड़ी होती है, और प्रायः रंगदार फलों वाली, गुण तत्सम जानें ।

१. **आकाशवल्ली** सर्वत्र सुलभ, सुप्रसिद्ध और पीत तन्तुमय पराशीवल्ली है, जो वृक्षों तथा झाड़ियों पर फैली रहती है । इसके सूक्ष्म तन्तु उन के काण्ड में प्रवेश कर वहां से अपना आहार प्राप्त करते हैं । अतः उन्हें **पराशी** (Parasite) कहा

३७३-४. सारिवाद्वयम् (अनन्ता श्यामा लता च)।

३७३. सारिवा[1] (अनन्ता, उत्पलसारिवा)।

Hemidesmus indicus. Indian or country Sarsaparilla A low twining shrub. Roots demulcent, alterative, diaphoretic, diuretic, tonic and blood-purifier.	(हिं०) सालसा, गोरीसर, देसी उशबा, (बं०) अनन्तमूल, (म०, गु०) उपलसरी। ह्रस्व आवेष्टनशील लता। मूल, पिच्छिल, धातुशोधक, स्वेदल, मूत्रल, रसायन, रक्तशोधक।

गया है (देखो अंक ३६२)। इसकी मूल न होने से इसे आकाशवल्ली (Sky-twiner) संज्ञा दी गई है। यह वल्ली तिक्त शीत और पिच्छिल है। नेत्राभिष्यन्द में इस का स्वरस डाला जाता है। अमरवल्लीसिद्ध तैल केशों को दृढ़ करता है और व्रणों पर लगाया जाता है। इस के बीज रेचक तथा रक्तशोधक हैं। एक अन्य अमरवल्ली Cuscuta reflexa है, जो स्थूल और मांसल होती है और जिसे नील वा पीत सुगन्धित पुष्प आते हैं। यह वा इस के बीज रेचक, पाचक और रक्तशोधक हैं।

१. सारिवा वंग देश में बहुत होता है, अन्यत्र भी भारत के शैल भागों में मिल जाता है। उस की लता कहीं वृक्षाश्रित और कहीं भूमिलुण्ठित मिलती है। श्रावण में वर्षा होने पर सारिवा की पुरानी जड़ें फूट पड़ती हैं और लता इतस्ततः फैलने लगती है। लता के अग्र भाग के पत्र सूक्ष्म और मूल की ओर शनैः २ बड़े होते जाते हैं। छोटे पत्रों पर श्वेत रेखाएं वा बिन्दु मिलते हैं। आर्द्रमूल को सूंघने से एक विशेष मधुगन्धि (Aroma) और चखने से मधुर स्वाद आता है, परन्तु शुष्क मूल में न गन्ध और न माधुर्य होता है। यह स्वाद और गन्ध एक सत्त्व Coumarin के कारण है। सारिवा प्रायः कलकत्ते से अनन्त मूल के नाम से आता है, और यही नाम हिन्दी वा अन्य भाषाओं में प्रसिद्ध हो रहा है। आर्द्रमूल का लेप सन्धिशोथ पर किया जाता है, उस का स्वरस नेत्र में छोड़ने से पहले अश्रुस्राव होता है, पुनः ठण्डक प्रतीत होती है। सारिवामूल उत्तम मूत्रल है, अतः सुज़ाक, आमवातादि में लाभकारी है। इस के प्रयोग से मूत्र द्विगुण वा त्रिगुण आने लगता है। इस के प्रयोग से क्षुधा भी बढ़ जाती है और इस का सर्वोत्तम लाभ रक्तशोधन (Blood-purification) है और एतदर्थ **अंग्रेज़ी सालसा वा उश्बा** (English Sarsaparilla) के स्थानास्पद प्रयोग करना चाहिए। कई डाक्टरों का विचार है कि सारिवा उस से अधिक गुण करता है, अतः उसे फोड़े, फुंसी, आमवात, वातरक्त, फिरंगरोग (Syphilis) की दूसरी और तीसरी अवस्था में प्रयोग कर सकते हैं। किसी ने सारिवा के गुण यों लिखे हैं, "छेदनं मूत्रकृच्छ्रघ्नं परं वृष्यं रसायनम्। औपदंशिकरोगघ्नं सर्वचर्मविकारनुत्। आमवातं वातरक्तं सूतरोगांश्च

३७४. कृष्णसारिवा[1] (श्यामा लता) ।

Ichnocarpus frutescens.

A large climbing shrub.

Properties as above.

(हिं०) कालीसर, दूधीलता, (बं०) श्यामा लता, (म०) कृष्ण उपलसरी, (गु०) काली वेल्य ।

विशाल लतारूपी क्षुप ।

गुण पूर्ववत् ।

(१) गोपाङ्गना गोपकन्या गोपवल्ली प्रतानिका ।
सारिवा सारदा काष्ठसारिवोत्पलसारिवा ।
फलजिह्वा लताऽऽस्फोता श्वेता गोपी सुगन्धिका ॥११७१॥

(२) अन्या कृष्णा कृष्णमुखा कृष्णवल्ली च चन्दना ।
कालानुसारिवा कालिन्दी भद्रा चन्दनमूलिका ॥११७२॥
सारिवा मधुरा तिक्ता सुस्निग्धा शुक्रला हिमा ।
गुर्वी ज्वरातिसारामदोषत्रयविषापहा ।
अग्निसादारुचिश्वासकासास्रप्रदरान् जयेत् ॥११७३॥

नाशयेत् ।" इस का प्रयोग प्रायः क्वाथ, फांट, पानक (Syrup), टिंकचर और आसवारिष्ट के रूप में हो सकता है ।

१. **कृष्णसारिवा** की लता स्थूलतर, वृक्षाश्रित, दृढ़ और अतिदीर्घ होती है । पत्र अधिक चौड़े और घन, पुष्प गुच्छों में और श्वेताभ । कांड और मूल की त्वचा कृष्णप्राय (Blackish) और काष्ठिक तथा कठोर । गन्ध और माधुर्य का अभाव । यह लता कालका, नेपाल, दक्षिणदेश, बंगादि सब भागों में मिलती है । सारिवा की शुष्क मूल पतली, श्वेताभ और भंगुर होती है, परन्तु कृष्ण सारिवा की कठोर, कृष्ण और स्थूलतर । कहीं सारिवा के स्थान पर वटजटा बेची जाती है, अनुभवी वैद्य दोनों को तोड़ कर शीघ्र पहचान सकता है । श्यामा लता के गुण प्रायः सारिवा के तुल्य समझें, परन्तु न्यून । शास्त्र में जहां 'सारिवा' शब्द हो, वहां अनन्तमूल ग्रहण करना चाहिए, और जहां 'सारिवाद्वय' हो, वहां यह दोनों वा श्यामा लता के अभाव में सारिवा की द्विगुणी मात्रा डालना उचित है । सारिवाद्यासव प्रसिद्ध रक्तशोधक योग है, एवं सारिवा अकेला भी पर्याप्त है, "एकं वा सारिवामूलं सर्वव्रणविशोधनम् ।" (च० व्रणचि०) । जो अमृतसरी उश्बा गुच्छरूप में विकता है, वह विदेशी उश्बा है, जो एक लता Smilax officinalis नामक की मूल है । यह क्षुप अमरीकादि देशों में होता है । Smilax जाती की लताएं यहां भी मिल जाती हैं । उन में कोई २ **कुमारी लता** के नाम से प्रसिद्ध है । काष्ठसारिवा कई ग्रन्थों में श्यामा लता का पर्याय है, जो अधिक समीचीन है ।

३७५. चर्मरङ्गा[1] (स्वर्णपत्रिका, महाजालनी)?

Cassia angustifolia.	(हिं०) सनाय, (बं०) सोना मुखी,
Indian Senna.	सेना मकी, (म०,गु०) सोना मकी।
A sub-glabrous shrub.	हरिताभ क्षुप ।
A good purgative.	सुविरेचक द्रव्य ।

चर्मरङ्गा विन्दुकिनी विभाण्डी पीतकालिका ।

१. स्वर्णपत्री (Senna leaves) मद्रास के प्रान्त में सर्वत्र परन्तु टिनिवेली नामक जिले में बहुत उत्पन्न होती है, अतः भारतीय सनाय को प्रायः Tinnevelly Senna कहा जाता है, और जो सनाय मिश्रदेश के अलैक्सैन्डरिया बन्दरगाह से आती है, उसे Alexandrian Senna (Cassia acutifolia) कहा जाता है । इसके पत्र भारतीय सनाय की अपेक्षा छोटे होते हैं । गुजरात और सिन्ध में सूरती सनाय (C. obovata) मिलती है । स्वर्णपत्री का क्षुप प्रायः ३–४ फुट ऊंचा और झाड़ सा होता है । प्रयोगार्थ पुरानी सनाय नहीं लेनी चाहिए, उस के पत्र भग्न और अवशीर्ण होते हैं । Cathartin सत्त्व के कारण सनाय रेचन करती है, परन्तु इस के प्रयोग से प्रायः शूल और उत्क्लेश की सम्भावना है । यह दोष हटाने के लिए उसे लवंग और शुंठी के साथ मिला कर क्वाथ वा फाण्ट वा चूर्ण किया जाता है । सनाय के प्रयोग से कोष्ठबद्धता (Constipation) उत्पन्न नहीं होती, जो प्रायः सब विरेचक द्रव्यों के प्रयोग के पश्चात् हुआ करती है । कहीं २ लोग स्वर्णपत्रीको चायवत् प्रतिदिन पीते हैं । सनाय का शर्बत (Syrupus Sennae), टिंक्चर (Tinctura Sennae), लेह (Confectio Sennae), फाण्ट (Infusum Sennae) आदि प्रसिद्ध योग हैं जो पाश्चात्य चिकित्सक व्यवहार करते हैं Compound Liquorice Powder(Pulvis Glycyrrhizae Compositus) में, जो प्रसिद्ध मधुर विरेचक चूर्ण है, सनाय १६, मधुयष्टि १६, गन्धक ८, शतपुष्पा ८ और खाण्ड ५२ भाग होती है । कई वैद्य चर्मरंगा वा महाजालनी को स्वर्णपत्री हेमपत्री, रेचनी, कल्याणयादि पर्याय देते हैं और उस के गुणों पर यह श्लोक लिखते हैं, "विड्बन्धं वह्निमान्द्यं च यकृदाद्युदरं तथा प्लीहोदरं बद्धगुदमजीर्णं विषमज्वरम् । कामलां पाण्डुरोगं च कल्याणी क्षपयेद्ध्रुवम् ।" (आत्रेयसंहिता) । सनाय के एक प्रकार (C. auriculata) को अंग्रेज़ी में Tanner's Cassia (चर्मरञ्जक लोगों की फली) कहा जाता है, यह वही भाव है, जो 'चर्मरंगा' शब्द प्रकट करता है । 'महाजालनी' शब्द से सनाय का झाड़ अभिप्रेत है । आवर्त्तकी पाठ मिलने से कई वैद्य उसे मरोड़फली (Indian Screw Plant–Helicteres isora) समझते हैं, जो बम्बे में बहुत उत्पन्न होती है । यह कषाय और ग्राही द्रव्य है, परन्तु चर्मरंगा को सरा कहा गया है। आवर्त्तकी को मूर्वा (अंक २००) भी समझा जाता है, अतः चर्मरंगा को सन्देहग्रस्त ही समझनी चाहिए ।

आवर्त्तकी रक्तपुष्पी महाजालिनिका मता ॥११७४॥
चर्मरङ्गा सरा तिक्ता कषाया कफपित्तहा ।
शोफगुल्मोदरानाहतृषाकण्डूविषापहा ॥११७५॥
कृमिकुष्ठवमिश्वासदाहास्रज्वरनाशनी ।
तत्पुष्पं सहसा प्रमेहहरणं स्वर्णस्य वर्णप्रदम् । ॥११७६॥
बालं तस्य फलं वमिकृमिहरं सर्वप्रमेहापहम् ।
तृष्णाघ्नं सकषायमक्षिहितकृद्रुच्यं तथा दुर्जरम् ॥११७७॥
तद्बीजं मधुमेहहृद्विषहरं रक्तातिसारं जयेत् ।
तन्मूलं पवनप्रकोपि मधुरं तृष्णाप्रमेहं जयेत् ।
श्वासघ्नं गुरु रक्तपित्तशमनं शुक्रक्षये पूजितम् ॥११७८॥

३७६. मार्कण्डी[1] ।

अपरा भूपैष्ठिरिका[2] मार्कण्डी मृदुरेचनी ।
मार्कण्डिका जयेत् कुष्ठमूर्ध्वाधःकायशोधनी ॥११७९॥
विषदुर्गन्धकासघ्नी गुल्मोदरविनाशनी ।
तन्मूलं तुवरं रक्तपित्ततृड्मोहनाशनम् ॥११८०॥
स्वादु पाकेऽनिलहरं गुरु शुक्रक्षयापहम् ।
कृमिकुष्ठप्लीहहरं दीपनं वर्णकृत्परम् ॥११८१॥

३७७. शणपुष्पी[3] (वनशणः) ।

Crotalaria verrucosa.	(हिं०) वन सन, जंगली सन, घागरी,
Wild hemp.	(बं०) वन सन, झनझनिया ।
A much-branched annual shrub.	बहुशाख वार्षिक क्षुप ।
Emetic and blood-purifier.	वामक तथा रक्तशोधक ।

घण्टा रवा माल्यपुष्पी शणपुष्पाऽल्पघंटिका ।

---

१. यदि चर्मरंगा सनाय है, तो **मार्कण्डी** को उस का भेदविशेष समझना चाहिए । 'मृदुरेचनी, अधःकायशोधनी' आदि शब्दों से भी यही प्रतीत होता है । मूल के गुण भी पूर्ववत् हैं । वैद्यक शब्दसिन्धु ने उसे 'भूंई तरवड़' मराठी भाषा का नाम दिया है, जिसे वनस्पतिविशारदों ने Cassia obovata (Country Senna, Bhui-tarwad) नाम दिया है । यही सूरती वा गुजराती सोनामक्की (सनाय) है । यह पूर्वोक्त सनाय (अ० ३७५) में मिला कर बेची जाती है । यह उस की अपेक्षा मृदुरेचनी है । सनाय की फली का फाण्ट भी मृदुरेचक है । चर्मरंगा और मार्कण्डी को सनाय ही समझना चाहिए, क्योंकि आगे भी शणपुष्पी को छोड़ कर दन्ती, त्रिवृदादि रेचक द्रव्यों का वर्णन है । २. ब—भूपैठरिका ।

१. **शणपुष्पी** के छोटे २ क्षुप प्रायः आनूप देश, यथा वंगादि में मिलते हैं । क्षुप २–३ फुट ऊंचा, पूर्व मृदु, पश्चात् कठोर, शाखाधिक्य, पत्र बड़े २ और नोकदार,

घंटा शणा[1] बृहत्पुष्पी शणघंटोऽरुपुष्पिका ॥११८२॥

पर्याय—घंटारवा (घंटावत् शब्दकर ?), माल्यपुष्पी (माला के तुल्य शाखा पर जिसे पुष्प आते हों), शणपुष्पी (सन जैसे फूलों वाली), अल्पघंटिका (छोटे घंटे जैसे फूलों वाली) ॥११८२॥

शणपुष्पा च कटुका वामनी कफपित्तजित् ॥११८३॥

दन्तीद्वयम् (दन्ती द्रवन्ती च)।

३७८. दन्ती[2] (निकुम्भी, विशल्या, विशोधनी)।

Baliospermum axillare or Croton polyandrum.	(हिं०) दन्ती, तिरिफल, (बं०) दन्ती गाछ, (म०) लघुदन्ती, (गु०) दन्त एटले।
A stout leafy shrub.	महाकाय पत्रमय क्षुप।
Root and seeds cathartic.	मूल तथा बीज तीव्ररेचक।

कुछ खट्टे, पुष्प घण्टाकार, श्वेत, पीत वा नील। फली (Pod) लम्बी, जिस में १०–१२ बीज होते हैं। यह क्षुप शिम्बीजाति (Leguminosae N. O.) में गिना जाता है। हमारे शास्त्रों में शणपुष्पी के ३ भेद कहे गए हैं, **(१) क्षुद्रपुष्पी**-सूक्ष्मपुष्पी, **(२) महापुष्पी**–श्वेतपुष्पी, वृत्तपर्णी, **(३) साधारण**। गुणों में सब समान। **पत्रस्वरस** लालास्राव (Salivation) को रोकने तथा व्रणकुष्ठादि रोगों में रक्तशुद्धि के लिए दिया जाता है। बीज वामक हैं। शणपुष्पी के अन्तर्गत ही **शण**–Crotalaria Junicea (Indian Hemp, हिं०, बं०—सन) को समझना चाहिए। उस के पर्याय अन्य निघंटुओं में यह हैं, "शणस्तु माल्यपुष्पः स्याद्वामकः कटुतिक्तकः। निशादनो दीर्घशाखस्त्वक्सारो दीर्घपल्लवः।" त्वक्सार काण्ड वा शाखा की त्वचा ही उस का सार वा कठोर भाग है, जिस से शणसूत्र (सन की रस्सी वा तागे—Hemp cordage) बनते हैं। यह दीर्घ क्षुप वंग देश में बहुत होता है और वहां ही सन की रसियां और बोरियां बनती हैं। ज्यूट (Jute) शण का स्थूल भेद है, जिस से बोरियां बनती हैं। शण के तन्तु सूक्ष्म होने से उन से सूक्ष्म सूत्र बन सकते हैं। शणबीज रक्तशोधक हैं। १. ब—शष्टा।

२. **क्षुद्रदन्ती** का गुल्म (झाड़ी) ४–५ फुट ऊंचा होता है, और भारत के सब पर्वतों पर प्रायः मिलता है। शिखर से नीचे पत्रों का आकार यथाक्रम बढ़ता जाता है। पत्रों में ३–४ कटावों के कारण एरण्डपत्रवत् हस्ताञ्जलि (Palmate) की आकृति बन जाती है, प्रत्येक भाग नोकदार और किनारा कटा हुआ। इस दंदानेदार (Toothed or Dentate) किनारे के कारण ही ऋषियों ने उसे **दन्ती** (दंदानेदार) नाम दिया है। पुष्प, फल और बीज प्रायः एरण्डतुल्य परन्तु छोटे। एक फल से तीन बीज प्राप्त होते हैं।

३७६. द्रवन्ती[1] (बृहद्दन्ती, एरण्डफला)।

Jatropha curcas.
An evergreen shrub.
Uses as mentioned above.

(हिं०) बड़ी दन्ती, मुगलाई अण्ड,
(म०) थोर दन्ती, जेपाल।
सदाहरित क्षुप। गुण यथापूर्व।

(१) दन्ती शीघ्रा हस्तिदन्ता निकुम्भी सोपचित्रिका।
घुणप्रिया चाखुफला चित्रकूला मुकूलका।
द्राक्षापर्णी रेचनी स्याद्विशल्योदुम्बरच्छदा ॥११८४॥
(२) द्रवन्ती शम्बरी फञ्जी न्यग्रोधी मूषिकाह्वया।
प्रत्यक्श्रेणी सुतश्रेणी वृषैरण्डाखुकर्णिका ॥११८५॥
जयावहैरण्डफला वराङ्गी विजया छदा।
आवर्त्तकः केशरुहा वारुणी विषभद्रका ॥११८६॥

पर्याय—(१) लघुदन्ती–दन्ती (दन्तवत् कटे हुए वा दन्दानेदार पत्रों वाली, (Dentate-leaved), शीघ्रा (शीघ्ररेचक), निकुम्भी (कुंभाकार फलों वाली), सो० (सा+उपचित्रिका), घुणप्रिया (घुणों से शीघ्र नष्ट हो जाने वाली), चित्रकूला (चित्रित वा चीरित किनारों वाली), द्राक्षापर्णी (द्राक्षापत्रवत् कर्त्तित पत्रों वाली), विशल्या (कण्टकरहित), उदुम्बरच्छदा (गूलर जैसे पत्रों वाली)। (२) बृहद्दन्ती–द्रवन्ती (मलद्रावक-मल को पतला करने वाली, रेचक), जयावहा

---

१. बृहद्दन्ती की आकृति बहुत कुछ दन्ती से मिलती है। इस की मूल दन्ती की अपेक्षा दीर्घ और स्थूल होती है, वा शतावरी के तुल्य मूलों का गुच्छा सा होता है, अतः इसे कहीं २ 'शतमूलिका' भी कहा गया है। दृढ़बल ने द्रवन्तीमूल के लक्षण यों लिखे हैं, "स्थिराणि बहलानि हस्तिदन्तप्रकाराण्येवं श्यावताम्राणि"—सारवान्, पुष्ट, हस्तिदन्ततुल्य स्थूल और गोल, और वर्ण में श्यावताम्र (Purple), परन्तु इस समय जो दन्ती वा द्रवन्ती की मूल (प्रायः एक ही) मिलती है, वह इन गुणों से युक्त नहीं है और न ही वह इतनी तीव्ररेचक है, जितनी कि होनी चाहिए। कुछ लोगों का विचार है, कि द्रवन्ती का एक अन्य भेद J. glandulifera है, उसे लघुदन्ती समझना चाहिए। अन्य लोग यह विचार रखते हैं, कि जो वानस्पतिक नाम ऊपर लघुदन्ती को दिया गया है, उस का रूपान्तर ही, जो आकार में बड़ा होता है, द्रवन्ती है। वस्तुतः एरण्ड, जयपाल (Croton); दन्ती, द्रवन्ती सब एक ही रेचक जाती–Euphorbacea–के अंग हैं और आकार में परस्पर थोड़ा अन्तर रखते हैं। दन्तीमूल वा द्रवन्तीमूल दोनों ही तीव्ररेचक हैं, और दूष्योदर, जलोदर, गुल्म, कामला, शोफादि में क्वाथ (५–१० तो०) वा चूर्ण ½–१ तो०, के रूप में देते हैं। शास्त्रोक्त अनेक योगों में दन्तीमूल पड़ती है, परन्तु वास्तविक दन्तीमूल संग्रह करने का प्रयत्न करना चाहिए। दन्ती वा द्रवन्ती के बीजों का वर्णन आगे जयपाल में देखें। दन्तीमूल अर्श, सन्धिशोथादि पर लेपार्थ भी काम आती है।

(मल को जय करने वाली, शोधक), एरण्डफला (एरण्डतुल्य फलों तथा बीजों वाली), वराङ्गी (श्रेष्ठरेचनी), विषभद्रका (भद्रविष) ॥११८४–६॥

दन्ती द्रवन्तिका चोष्णा कटुपाकरसा लघुः ।
विकाषिणी सरा तीव्रा दीपनी पाचनी हरेत् ॥११८७॥
कफपित्तोदरानाहशोफशूलगुदाङ्कुरान् ।
विदाहकण्डूकुष्ठास्रप्लीहगुल्माश्मरीकृमीन् ॥११८८॥

कटुपाकरसा—पाके रसे च कटुः । **विकाषिणी**—सन्धिशैथिल्यकारिणी—"सन्धिबन्धांस्तु शिथिलान् यत् करोति विकाशि तत् ।" सन्धिबन्धनों (Tendons) को ढीला करने वाली ॥११८७–८॥

३८०. जयपालः[1] (द्रवन्तीबीजम्) ।

Croton Tiglium.	(हिं०) जमालगोटा, (बं०, म०)
Croton Plant.	जयपाल, (गु०) नेपालो, (पं०)
A small evergreen tree.	जपोलोटा । क्षुद्र सदाहरित वृक्ष ।
Seeds & oil drastic purgative,	बीज तथा तैल तीव्ररेचक, उत्क्लेश-
nauseative, emetic, rubefa-	कारक, वामक, दाहरागकारक,
cient and vesicant.	स्फोटोत्पादक ।

जयपालो दन्तीबीजं मुकूलं तित्तिरीफलम् ।
तयोः फलं रसे पाके मधुरं रेचनं गुरु ॥११८९॥

---

[1] **१. जयपाल** किस के बीज हैं ? शास्त्रों में प्रायः 'दन्तीबीज' ही जयपाल का पर्यायवाची शब्द मिलता है। कुछ वैद्य उसे **द्रवन्तीबीज** कहते हैं, क्योंकि कलकत्ते में दन्तीबीज के नाम से छोटे २ बीज पृथक् मिलते हैं, जो जयपाल की अपेक्षा आकार में आधे होते हैं और वहां इन छोटे बीजों को दन्तीबीज के स्थान पर डालने की प्रथा है और जयपाल को बृहद्दन्तीबीज के स्थान पर और कहीं २ दन्ती वा द्रवन्ती दोनों के स्थान पर शुद्ध जयपाल डाला जाता है । वस्तुतः आजकल जो **जयपाल-बीज** (Croton Seeds) हम व्यवहार करते हैं, वह न दन्तीबीज हैं और न द्रवन्ती बीज, प्रत्युत **जयपालवृक्ष** (C. Tiglium) के बीज हैं । यह क्षुद्र तरु लंका, ब्रह्मा, आसाम, मलक्कादि पूर्वी द्वीपों में वा कहीं २ वंगदेश में भी मिलते हैं। इस वृक्ष के पत्र, पुष्प, फलादि दन्ती वा द्रवन्ती के बीजों की अपेक्षा अधिक तीव्ररेचक और विषैले हैं । इस जयपाल के स्थान पर वृहद्दन्ती के बीज भली भांति व्यवहार किए जा सकते हैं। **अशुद्ध जयपाल का व्यवहार आयुर्वेद में निषिद्ध है,** अतः जयपाल को पूर्व सावधानी से शुद्ध करना चाहिए । **शोधनविधि**—"निस्तुषं जयपालश्च द्विधा कृत्वा विचक्षणः । एतद्बीजस्य मध्यन्तु पत्रवत् परिवर्जयेत् ॥ १ ॥ अष्टमांशेन चूर्णेन टंकणस्य च मेलयेत् । केशयन्त्रे च तद्भाव्यं पाच्यं दुग्धे संप्लुतम् । त्रिरात्रं शुद्धिमायाति जैपालममृतोपमम् ॥ २ ॥" (रसेन्द्र० सं०) ।

सुस्निग्धं बृंहणं वृष्यं बल्यं पित्तकफप्रदम् ।
निहन्त्यनिलदाहकासगुल्मक्षतक्षयान् ॥११९७॥
क्षुद्रदन्तीफलं स्वादु मधुरं रसपाकयोः ।

प्रथम श्लोकानुसार क्रिया सर्वत्र की जाती है, परन्तु २य श्लोकोक्त विधि सर्वत्र प्रचलित नहीं । अन्य ग्रन्थों में अन्य प्रकार कथित हैं । सामान्यत: बीजों को जलयुक्त गोबर में उबाल कर तुष (छिलका) उतार कर मज्जा के दो भागों के मध्य में जो पत्रवत् मूलवृक्ष (Leaf-like Embryo) होता है, उसे निकाल दिया जाता है, वा कभी २ तुष और पत्र पूर्व हटा कर पुन: मज्जा को गोबर में उबालते हैं । इस से बीज मृदु हो जाते हैं और उन का विष भी कुछ कम हो जाता है । तदनन्तर कुछ लोग उसे दुग्ध में २-३ वार उबालते हैं वा अन्य लोग गोबर में उबले हुए बीजदलों को खरल कर के मसीशोषक पत्र (Blotting paper) में डाल कर पीड़नयन्त्र (Press) में देकर तैल निकाल दिया करते हैं । **मज्जासार** (Seed-meal) जो शेष रहता है, इच्छाभेदी, ज्वरकेशरी, सर्वांगसुन्दरादि रसों में डाला जाता है । कहीं २ बीजदलों की पिष्टि नव मृत्तिकापात्रों पर कई वार लगाई जाती है । यह रूक्ष पात्र तैल को शनैः २ चूस लेते हैं । यदि तैल अधिक निकल जाय, तो मज्जासार हीनगुण होजाता है, और यदि कम निकले, तो मज्जासार बलवान् होने से वान्ति, शूलादि होने की सम्भावना रहती है । **सम्यक् शुद्ध जयपाल** का लक्षण यही है, कि वान्ति, शूलादि न होकर रेचन (Purgation) सुखपूर्वक हो जावे । अशुद्ध जयपालबीजों के कल्क वा तैल को यदि त्वचा पर लगा दिया जावे, तो वह स्थान पूर्व रक्ताभ हो कर पुन: स्फोटों (Pistules or Vesicles) से युक्त हो जाता है, जिन का जल निकाल देने से और मक्खनादि स्नेह लगाने से शोथ, दाह, शूलादि की शान्ति होती है । यह क्रिया डाक्टर लोग Croton Liniment (Linimentum Crotonis) को यथास्थान लगाने से आमवात, यक्ष्मा, कासादि रोगों में करते हैं । हस्तमैथुनादि से दुर्बल तथा शिरायुक्त शिश्न के एक भागविशेष पर जयपालतैल (२-३ बिन्दु) लगा कर और स्फोट (Blebs) उत्पन्न करके जल निकाल कर व्रणरोपण के पश्चात् शिश्न अच्छा हो जाता है, परन्तु यह विधि भयानक है । कभी २ लवंगतैलादि में थोड़ा सा जयपालतैल मिला कर **ध्वजभंगतैल** वा **तिला** बनाया जाता है, जो शिश्न पर मलने से उत्तेजना देता है । यदि इस में तैल अधिक होगा, तो शोथ, दाह, स्फोटादि हो कर कष्ट होगा । पाश्चात्य चिकित्सा में बीज का व्यवहार निषिद्ध है और केवल **जयपालतैल** (Croton oil or Oleum Crotonis) विहित (Official) है, जो डाक्टरों से मिल सकता है । **मात्रा**–१ से २ बिन्दु तक, प्रायः १ बिन्दु पर्याप्त है, जो शर्करा, मधु, वा मक्खन में रख कर वा मिलाकर जिह्वा के पश्चिम भाग पर रख कर शीघ्र निगल जाना चाहिए और ऊपर से जल वा शर्बत शिकञ्जबीन पिला देना उचित है । **कठोर** विष्टम्भ, जलोदर, सीसक-

शीतलं सृष्टविण्मूत्रं गरशोफकफापहम् ॥११९१॥

तयोः फलं—दन्तीद्रवन्त्योः फलं। क्षुद्रदन्ती—लघुदन्ती ॥११८६-१॥

३८१. त्रिवृत्[1] (निशोथः)।

Ipomea Turpethum.	(हिं०) निसोथ, त्रिवी, पनिलर,
The Turpeth root.	(बं०) तेउड़ी, (म०) निसोत्तर,
	(गु०) निसोतर।
A large glabrous creeper.	विशाल मृदुहरित लता।
Root or bark purgative.	मूल वा मूलत्वक् रेचक।

विष, बद्धगुदोदरादि में यह एक अच्छा विरेचन है। यह मूर्च्छित तथा उन्मादी को भी दिया जा सकता है। बाल, वृद्ध, क्षीण, गर्भिणी, क्षयी आदि रोगियों को नहीं देना चाहिए। शुद्ध जयपाल भी ½ वा १ रक्ति की मात्रा में शर्करादि से मिला कर दिया जा सकता है। तैल का व्यवहार यद्यपि वैद्य नहीं करते, तथापि हमारे शास्त्रों में विहित है, यथा "तैलं निकुम्भबीजोत्थमत्युग्रं रेचनं परम्। आनाहमुदरं हन्ति संन्यासं च शिरोगदम्॥ १ ॥ धनुस्तम्भं ज्वरोन्मादम् गदमेकाङ्गसंज्ञकम्। आमवातं च शोथं च मर्द्दनात्कासनाशनम्॥ २ ॥" (आत्रेयसंहिता)। जयपाल (तैल वा बीज) एक **घोर क्षोभक विष** (Irritant poison) है। कभी २ एक बीज वा एक बिन्दु तैल से भी मृत्यु हो जाती है। कण्ठदाह, आमाशयदाह, उदरशूल, अरति, उत्क्लेश, वान्ति, विड्भेद, गुददाहादि **लक्षण** प्रकट होकर अधिक दस्तों के आने से बलहानि, मूर्च्छा और मृत्यु हो जाती है। **विषहर उपाय**—जयपाल वा तत्सम्पन्न रस वा तैल की अधिक मात्रा दिए जाने पर यदि उत्क्लेश, दाह, शूलादि लक्षण प्रकट हों, तो **निम्बुपानक** (शर्बत शिकंजबीन कच्चा वा पक्का) रोगी को थोड़े २ अन्तर बाद देना चाहिए, वा तक्र वा दधि। इन द्रव्यों से रोगी शीघ्र अच्छा हो जाता है। जयपाल के विरेचन से दस्त पतले और पीले आते हैं।

१. **त्रिवृत्** (श्वेत वा अरुण) की सुदीर्घ विशाल आनूपदेशप्रिय लता बंग देश में बहुत होती है। अन्यत्र भी मिल जाती है। यह आर्द्र भूमि पर फैली रहती है। **पत्र** गोल, नोकदार और मृदु, परन्तु काण्ड पर बहुत दूर २ लगे हुए। **काण्ड** पर तीन शिराएं, रेखाएं वा धाराएं होती हैं, अतः 'त्रिवृत्' नाम। **पुष्प** श्वेत और घण्टाकार, जैसे काले दाने के, अतः त्रिवृत् और काला दाना (I. Hederacea) दोनों Ipomoea जाती में सम्मिलित हैं। एक फली से ४ बीज निकलते हैं, प्रत्येक कृष्ण वर्ण और मृदु। औषधार्थ प्रायः मूल ही काम आती है। यह सर्वत्र बाज़ार में मिल जाती है। जीर्ण, घुणभक्षित वा सारहीन त्रिवृत् नहीं लेनी चाहिए। कभी २ त्रिवृत् के साथ एक अन्य तत्सदृश मूल (Root of I. bona-nox) मिला दी जाती है। उसे पहचानना कठिन नहीं। त्रिवृत् पर रेखाएं होती हैं और वह रेखारहित होती है। इस मिलावट के कारण ही त्रिवृत् का कार्य अनिश्चित (Uncertain) होता है। त्रिवृत् मूल

त्रिवृत् त्रिभण्डी त्रिवृत्ता त्र्यस्रा कुलवर्णाऽरुणा[1] ।
सर्वानुभूतिस्त्रिपुटी कुम्भा कुटरणायनी[2] ॥११६२॥

पर्याय—त्रिवृत् (त्रिशिरायुक्त वा तीन वार मुड़ी हुई–Wrinkled thrice), त्रिभण्डी (भण्डी–लहर, wave), त्र्यस्रा (त्रिकोण, triangular), अरुणा (लाल वा रक्ताभ), सर्वानुभूति (साधारण रेचक द्रव्य होने से सब लोग उसका अनुभव करते हैं), त्रिपुटी (तीनो उभारों वाली) ॥११६२॥

त्रिवृदुष्णा कटुस्तिक्ता रूक्षा स्वाद्वी विरेचनी ।
कषाया कटुका पाके वातला कफपित्तहा ।
ज्वरशोफोदरप्लीहपाण्डुव्रणविनाशनी ॥११६३॥

३८२. श्यामा त्रिवृत्[3] (कृष्णनिशोथः) ।

Black Turpeth (No. 381). । काली निसोथ (अंक ३८१)

मसूरविदला काला कालमेषी सुषेणिका ।
पालिन्दी विरला श्यामा ताम्रपुष्पाऽर्द्धचन्द्रिका ।
कोषफला मालविका निःसृता कालपर्णिका ॥११६४॥

का चूर्ण ३–४ माषे कोष्ण जल वा शर्कराजल के साथ वा शर्करा वा मधु से मिला कर दिया जा सकता है । कभी २ उसे पिप्पली चूर्ण वा लवणादि द्रव्यों से मिलाया जाता है । मद्रास में त्रिवृदवलेह का प्रचार अधिक है। चरक के कल्पस्थान अध्याय ७ में त्रिवृत् के अनेक योग दिए गए हैं । अर्शः, कामला, गाढ़विट्कता, ज्वर, पित्तोदर, आमवात, क्षय, रक्तपित्त, कृमि, गुल्मादि रोगों में **त्रिवृत् का रेचन** लाभपूर्वक दिया जा सकता है । इसके प्रयोग से शूल, उत्क्लेश, वान्ति आदि दोषों की संभावना नहीं है । यदि कुछ अरुचि हो, तो लवणादि से मिला कर दे दें । त्रिवृत् में रेचक सत्त्व Turpethin है। डाक्टरों ने इसे Jalap (जुलाबा हरा) और Rhubarb (रेवन्दचीनी) से भी उत्तम विरेचन माना है । जहां आर्द्र मिले, वहां मूलत्वक् उतार कर दुग्धसहित प्रयोग करते हैं, अन्यथा शुष्क बाज़ारी मुल का चूर्ण ही । ऊपरोक्त रोगों में **त्रिवृत्पत्रशाक** भी व्यवहार होता है।

१. यू, ब—कुटरुणा । २. मू—सर्वभूरिस्त्रिपुटकी कुंभा कोटरवाहिनी ।

३. **श्यामा त्रिवृत्** त्रिवृत् का ही भेदविशेष है । इस के पुष्प, पत्र, काण्ड, मूलादि भाग कृष्णाभ होते हैं, परन्तु यह मिलती कम है, और श्वेत त्रिवृत् की अपेक्षा अधिक तीव्र और हानिकारक समझी जाती है, अतः उसका प्रयोग निषिद्ध है,"मूलं तु द्विविधं तस्याः **श्यामं चारुणमेव** च। तयोर्मुख्यतरं विद्धि मूलं यदरुणप्रभम् ॥ सुकुमारे शिशौ वृद्धे मृदुकोष्ठे च तच्छुभम् । **मोहयेदाशुकारित्वाच्छ्यामा कण्ठं क्षिणोत्यपि ।** तैक्ष्ण्यात्कर्षति हृत्कण्ठमाशु दोषं हरत्यपि । शस्यते बहुदोषाणां क्रूरकोष्ठाश्च ये नराः ॥" (च० क० अ० ७) । अरुण त्रिवृत् से अभिप्राय श्वेत त्रिवृत् का है, वा अरुणत्रिवृत (लाल निशोथ) दुर्लभ है । आजकल श्वेत ही बाहुल्य से

पर्याय—मसूरविदला (मसूर के दलों के तुल्य बीज हैं जिस के), विरला (कम मिलने वाली), अर्द्धचन्द्रिका (अर्द्धचन्द्राकार बीज हैं जिस के), कोषफला (कोषरूप फल वाली), कालपर्णिका (कृष्ण पत्रों वाली) ॥११६४॥

ततो हीनगुणा श्यामा तीक्ष्णा तीव्रविरेचनी।
कंठोत्कर्षणसम्मोहमूर्च्छादाहभ्रमप्रदा ॥११९५॥

३८३. स्वर्णक्षीरी[1] (हेमाह्वा)।

Argemone mexicana.
Mexican Poppy.
Yellow Thistle.

A robust prickly annual herb with yellow juice.

Seeds, oil and juice laxative and used in skin-diseases.

(हिं०) सत्यानासी, भारभन्द, ब्रह्मदण्डी, फिरंगी धतूरा, उजरकांटा, (बं०) शयालकांटा, (म०, गु०) कांटे धोतरा, फिरंगी धोत्रा, ब्रह्मदण्डी। दृढांग कंटकीय पीतदुग्ध वार्षिक हरितक।

बीज, तैल तथा दुग्ध रेचक, त्वग्रोगशमक।

स्वर्णक्षीरी हेमदुग्धा पटुपर्णी हेमवती।
यवचिञ्ची हैमवती कांचनक्षीरिणी तथा ॥११९६॥

पर्याय—स्वर्णक्षीरी (पीत दुग्धवत् निर्यास वाली), हेमदुग्धा (स्वर्णक्षीरी), पटुपर्णी (लवणरस पत्रों वाली), हैमवती (शीत वा स्वर्णमय अर्थात् पीत रस वाली) ॥ ११९६ ॥

मिलती है। शास्त्र में जहां 'त्रिवृत्' शब्द आवे, वहां श्वेत त्रिवृत् अभिप्रेत होती है। कुछ वैद्य अरुण, श्वेत और कृष्ण तीन भेद त्रिवृत् के मानते हैं, उन में अरुण उत्तम, श्वेत मध्यम और कृष्ण अधम होगी।

१. **स्वर्णक्षीरी** भारत में सर्वत्र क्षेत्रों में मिलती है, और अपने दृढ़ कांटों और भूमि पर फैली हुई होने के कारण क्षुद्र कंटकारी के सदृश प्रतीत होती है, और कहीं २ कटेरी वा कटेली कही जाती है, वस्तुतः दोनों में बड़ा अन्तर है। स्वर्णक्षीरी का काण्ड २–३ फुट ऊंचा चला जाता है, तब उसे पीले **फूल** और पुनः अण्डाकार और कण्टकावृत्त **फल** लगते हैं, जिन में से क्षुद्र, गोल, उज्ज्वल, कृष्ण **बीज** निकलते हैं। सीधी ऊंची और कांटेदार दण्डी वा काण्ड के कारण उसे अनेक प्रान्तों में **ब्रह्मदण्डी** कहा जाता है। (क्यों? कांटेदार दण्ड परमात्मा ही हस्तगत कर सकता है, न कि मनुष्य)। यह संज्ञा शास्त्रोक्त नहीं और न ही उसे **ब्रह्मयष्टि** वा **भारङ्गी** समझना चाहिए (उस का वर्णन आगे देखें अं० ४२०)। क्षेत्रों में होने से उन्हें यह उजार देती है, अतः 'उजरकांटा' 'सत्यानासी' आदि नाम बड़े सार्थिक हैं। वनस्पतिविशारदों के विचारानुसार यह क्षुप उ० अमरीका के **मैक्सीको** (Mexico) प्रान्त से भारत में लाया गया है, अतः उसे गुजरात, बम्बे आदि में **फिरंगी धतूरा** वा **फिरंगी कांटा** कहा जाता है। अहिफेन वा धतूरा

स्वर्णक्षीरी हिमा तिक्ता मदन्युत्क्लेशनी जयेत् ।
कण्डूकृमिविषानाहकफपित्तास्रकामलाः ॥११९७॥

३८४. कङ्कुष्ठम्[1] ।

Garcinia Hanburii.	(हिं०) रेवन्द शारा, अशारारेवन्द,
The Gamboge tree.	(म०) रेवाचीनी सीरा ।
A small pyramidal tree.	ह्रस्व छत्राकार वृक्ष ।
Gamboge drastic cathartic.	निर्यास तीव्र रेचक ।

कंकुकुष्ठं कालबालं विरंगं रङ्गनामकम् ।
कंकुष्ठकं तु पुलकं शोभनं किञ्जवालुकम् ।

(अंक ३५२) के तुल्य एक निद्राजनक विष (Narcotic poison) स्वर्णचीरी के पत्रों और फलों में होने से उसे धतूरा कहा जाता है। यह प्रायः शीत काल में बढ़ती और फैलती है । क्षुप के सब भागों में प्रचुर पीत दुग्धरूप रस निकलने से स्वर्णक्षीरी यथार्थ शास्त्रोक्त नाम है। पीत दुग्ध कुष्ठ, स्फोट, उपदंशिक व्रणादि त्वग्रोगों पर लगाया जाता है। यह व्रणशमक है, न कि लेखन। इन रोगों में तथा जलोदर, कामला और ज्वर में यह दुग्ध घृतयुक्त खिलाया जाता है, यह मृदु रेचक और रक्तशोधक है। कहीं २ यह नेत्र में डाला जाता है वा नेत्रपुट पर बाह्य लेप किया जाता है। बीज पिच्छिल, रेचक, वामक और कासश्वासनाशक हैं। कासश्वास में जहां वमन आवश्यक है, वहां रेचनार्थ यह बीज (३–४ माषे) दिए जा सकते हैं। इन बीजों से एक पीत तैल प्राप्त होता है, जो ३०–४० विन्दु कुछ खाण्ड में मिला कर रेचनार्थ दिया जाता है। यह तैल सदैव ताज़ा व्यवहार करना चाहिए। पुराना तैल निष्क्रिय हो जाता है । यह तैल कभी २ उत्क्लेश करता है। बाज़ारी तैल अच्छा नहीं होता । मूल का लेप व्रणों पर किया जाता है । 'हेमाह्वा पीतदुग्धा तन्मूलं चोकमुच्यते ।' (भाव० नि०)। इस वचनानुसार स्वर्णचीरीमूल चोक है, जो बाजार में 'चोक' वा 'चोक गंढी' के नाम से मिलती है, परन्तु यह बाज़ारी चोक हेमाह्वा के मूल से सर्वथा भिन्न है । चोक का लेप दद्रू, पामा, स्थानिक व्रण (Local sores), यथा लाहौरी फोड़ा (Lahore Sore) आदि पर किया जाता है। यह लेप तीव्र वेदना करता है। १५ मिनट में उसे उतार देना चाहिए। यह उत्तम व्रणलेखन है । स्वर्णचीरी का पीत रस घृत में मिला कर देने से सुज़ाक की जलन दूर होती है। तैल शिरोवेदना में मस्तक पर मला जाता है।

१. कङ्कुष्ठ क्या है ? इस विषय में बड़ा मतभेद है । कहीं २ तो ऐसे निरर्थक वाक्य मिलते हैं, "सद्योजातस्य करिणः शकृत्कङ्कुष्ठमुच्यते । यद्वा सद्यःप्रसूतस्य वाजिबालस्य विट् स्मृतम् । नालं वा वाजिबालस्येत्येवं कंकुष्ठके भ्रमः ।" नवजात हस्ति का विष्ठा कंकुष्ठ कहलाता है । श्रीशालिग्राम ने उसे मुरदासंग.

रोचनं रेचनं ह्रासं वराकं काकपालकम् ॥ ११९८॥

कंकुष्ठं रेचनं[1] तिक्तमुष्णं वर्णविशोधनम् ।

कहा है, जो सीसक धातु (Lead metal) का एक उपधातु है, और 'मृदारश्रृंग' का अपभ्रंश है । यह मलस्तम्भक है न कि रेचक, परन्तु शालिग्राम जी आगे लिखते हैं, "भजेदेनं विरेकार्थे ग्राहिभिर्यवमात्रया ।" कंकुष्ठ के गुण जहां भी मिलते हैं, वह रेचनार्थ हैं, "कंकुष्ठकं तिक्तकटूष्णवीर्यं **विशेषतो रेचनकं करोति** । गुदार्तिगुल्मक्रमिशूलहृत्परं प्रचक्षते शास्त्रविदः पुराणाः ।" (रसप्रकाशसुधाकर), परन्तु मुरदासंग रेचक नहीं, वह केवल मल्हमों में पड़ता है । किसी भी चिकित्सा में उसका रेचनार्थ प्रयोग नहीं दिया गया । श्री० उमेशचन्द्र ने वैद्यक शब्दसिन्धु में 'पार्वतीयमृत्तिका-विशेषे' इतना कहकर छोड़ दिया है, जिससे कुछ पता नहीं चलता । रसतन्त्रकारों और भावमिश्र ने कंकुष्ठ को धातुवर्ग में दिया है, जिससे प्रतीत होता है कि यह कोई उपधातु है, परन्तु कैयदेव ने ओषधिवर्ग में उसे लिखा है । आयुर्वेदप्रकाश में उस का वर्णन यों किया गया है, "हिमाचलैकदेशे तु कंकुष्ठमुपजायते तत्रैकं **नलिकाख्यं** स्यादन्य-**द्रेणुकनामकम्** । पीतप्रभं गुरु स्निग्धं कंकुष्ठं शिलया समम् । मृद्वतीव शलाकाभं सच्छिद्रं नलिकाभिधम् । रेणुकाख्यं तु कंकुष्ठं श्यामपीतरजोऽन्वितम् । त्यक्तसत्त्वं लघु प्रायः पूर्वस्माद्धीनवीर्यकम्" । इससे प्रतीत होता है, कि कंकुष्ठ दो प्रकार का है, (१) **पीताभ नलकाकार** (Yellow sticks), (२) **रेणुकप्रभ** (Granular) और श्यामपीत । यदि हम **रेवन्दशारा** (Gamboge) को देखें, तो यह नलाकार और रेचक द्रव्य है, उसे घिसने पर एक सुन्दर पीत वर्ण प्राप्त होता है । यह तीव्ररेचक है, मात्रा–½ रक्ति से १ रक्ति तक । यह एक वृक्षविशेष का सार वा निर्यास है, जो हिमालय के पूर्वी भाग में मिलता है, परन्तु यह सार प्रायः **स्याम देश** से आता है । सम्भव है कि कंकुष्ठ को नलकाकार बनाने के पश्चात् जो शेष क्षुद्र खण्ड बचते हैं, वह **रेणुकं कंकुष्ठ** हो, परन्तु वह अब बाजार में नहीं मिलता । रेवन्दचीनी (Rhubarb) भी रेचक है, लोगों ने इस **कंकुष्ठ** (Gamboge) को उस का सार समझ कर **रेवन्दसार** वा **रेवन्दशारा** कहना आरम्भ कर दिया हो, परन्तु यह रेवन्दसार (Extract of Rhubarb) नहीं, अतः देशी प्रचलित नाम अशुद्ध है । यह धातुवत् प्रतीत होने से कई ग्रन्थकारों ने उसे धातुवर्ग में ही लिख दिया है । ऊपरोक्त युक्तियों से यही पीत नलकाकार द्रव्य ही कंकुष्ठ सिद्ध होता है । यह तीव्र रेचक होने से गुल्म, जलोदर, विष्टम्भ, कृमि, उदावर्तादि में रेचनार्थ दिया जाता है । यह कुछ उत्क्लेश करता है । यदि मात्रा अधिक हो, तो रोगी को वान्ति हो जाती है । अतः कंकुष्ठ ½ रक्ति से अधिक मत दें और सदैव त्रिफला, शंखभस्म, शुण्ठ्यादि से मिला कर दें । "शुण्ठ्यम्भसा भावितमेव शुद्धिं कंकुष्ठमायाति हि सत्य-मुक्तम् ।" कंकुष्ठ पीत होने से कहीं २ रंगवत् काम आता है । मुरदासंग रंगने में काम नहीं आता । **१. यू० कटुकं.** ।

कफशोफोदरानाहगुल्माध्मानकृमिप्रणुत् ॥११९९॥

३८५. इन्द्रवारुणी[1] (विशाला, गवाक्षी) ।

Citrullus Colocynthis.
The Coloncynth.
A large scabrous creeper. Fruit and root bitter and cathartic.

(हिं०) इन्द्रायण, फरफेन्द, (बं०) राखालशशा, माखाल, (पं०) कौड तुम्मा, (म०) कडू इन्द्रायण, (गु०) इंदरवाणीयुं। विशाल कर्कश लता। फल तथा मूल तिक्त तीव्ररेचक।

(१) ऐन्द्री त्विन्द्री सुरेन्द्राह्वा गवाक्षी सुखारुणी ।
ऐन्द्रैर्वारुः क्षुद्रफला वृषभाक्षी वृषादनी ॥१२००॥
(२) मृगभक्षा मृगैर्वारुर्विशाला वैन्द्रवारुणी ।

---

१. **इन्द्रवारुणी** की लता सुप्रसिद्ध है और भारत में सब जगह क्षेत्रों में भूमि पर फैली हुई वा गुल्मों वा वृक्षों पर चढ़ी हुई मिलती है । इस का फल पंजाब में कौड़तुम्मा कहलाता है । यह पीत और गोलाकार होता है । उसे तोड़ने पर कृष्णाभ वा हरित बीज निकलते हैं,जो एक मृदु, श्वेत और लघु मज्जा में दबे रहते हैं । पाश्चात्य चिकित्सा में यही **इन्द्रवारुणीमज्जा** (Colocynth-pulp) ही काम आती है और उस से अनेक रेचक योग बनते हैं, यथा Pilula Colocynthidis et Hyoscyami नामक गोलियां । Hyoscyamus (पारसीक यवानी), एक मादक और वेदनाशमक द्रव्य है, यह इन्द्रायणमज्जा से इस लिए मिलाया जाता है, क्योंकि केवल मज्जा का प्रयोग उदरशूल उत्पन्न करता है, अतः इ० मज्जा को सदैव नवसादर, शुंठी, लवंगादि से मिला कर व्यवहार करना उचित है । मज्जा की मात्रा १–२ रक्ति । वैद्यक चिकित्सा में इन्द्रायणमूल का ही अधिक व्यवहार है । यह कम रेचक है, और शूल भी नहीं करती वा कम करती है। इ० मूल और पिप्पली की गोलियां वा चूर्ण सन्धिवात में बहुत लाभकारी हैं । जलोदर, कृमि, गुल्म, विबन्ध, ज्वर, आमवात, मूत्ररोगादि में फल वा मूल रेचनार्थ व्यवहार होते हैं । मज्जा अत्यन्त तिक्त है । यह वा उस का कोई योग रात्रि समय देने से प्रातः एक अच्छा बड़ा दस्त हो जाता है, परन्तु इन्द्रायण को सदैव प्रयोग करना उचित नहीं । **प्रकार**— इन्द्रवारुणी के प्रायः दो प्रकार हैं, (१) **इन्द्रवारुणी**—Cucumis trigonus or wild colocynth; यह एक जंगली प्रकार है. (२) **महेन्द्रवारुणी**— (विशाला)—True Colocynth; यह बड़ी इन्द्रायण है । इस का वर्णन ऊपर किया गया है । गुणों में प्रायः दोनों सम हैं । छोटी इन्द्रायण का फल छोटा, लाल, और कांटेदार, और बड़ी का पीला और बड़ा, पुष्प पीत । तरुण आर्द्र इन्द्रायणफल में यवानिका और काला नमक भर कर सम्पुट करके अग्नि में पका और चूर्ण बना कर रखलो । श्वास, उदरशूल, आमवातादि में यह बहुत लाभकारी योग है । बीजों से तैल प्राप्त हो सकता है, जो रेचक है ।

आत्मरक्षा चित्रफला चित्रदेवी महाफला ॥१२०१॥
स्थाणुकर्णी धनुःश्रेणी त्रपुसी गजचिर्भटी ।
गवादनी हस्तिदन्ती सूर्याह्वा मरुसम्भवा ॥१२०२॥

पर्याय—(१) इन्द्रवारुणी (लघ्वी)—सुरेन्द्राह्वा (सुरेन्द्र वा इन्द्र नाम वाली), गवाची (गौ के अक्षिगोलक के तुल्य क्षुद्र फल), (२) महेन्द्रवारुणी—विशाला (बड़ी), महाफला (बड़े फल वाली), गजचिर्भटी (बड़े चिर्भट के समान) ॥ १२००–२ ॥

ऐन्द्री तिक्ता कटुर्लघ्वी कटुपाका विरेचनी ।
उष्णवीर्या हरेत्पित्तं कफमेहव्रणकृमीन् ॥१२०३॥
श्वासकासापचीकुष्ठकृमिप्लीहगरोदरम् ।
कामलामूढगर्भास्रग्रन्थिगण्डामयविषम् ॥१२०४॥

३८६. त्रायमाणा[1] (त्राणा, गिरिसानुजा) ।

त्रायन्ती त्रायमाणाह्वा फलिनी भयनाशिनी ।
बलभद्रा कृतत्राणी बलदेवाऽद्रिसानुजा ।

---

१. **त्रायमाणा** जैसा उपयोगी द्रव्य अभी तक अनिश्चित है । कुछ वैद्य उसे **बनफ़शा** (वनपुष्पा) समझते हैं, और त्रायमाण की जगह इसे व्यवहार करते हैं । यह भ्रमात्मक है । त्रायमाण तिक्त, तीव्र रेचक और ज्वरघ्न है, परन्तु बनफ़शा तिक्त नहीं और मृदु रेचक है । बंगाली वैद्य शुष्क उदुम्बरफल को, जिसे वह **बलाडुमूर** कहते हैं, त्रायमाण समझते हैं । यह कषाय और स्तम्भक है । कुछ दिन हुए मुझे एक मित्र ने **उद्धमपूर** (जम्मू स्टेट) से एक क्षुद्र समूल क्षुप भेज कर लिखा कि यहां पर्वत में लोग इसे त्रायमाण वा त्रामान कहते हैं, यह एक ६–७ अंगुल ऊंचा क्षुप है, पत्र वा पुष्प नीलहरित वा पीत वा नानावर्ण । यह स्वाद में कुनीनवत् तिक्त । इस का क्वाथ ज्वर में व्यवहार करने से रेचन हो कर ज्वर दूर होगया, एवं गुल्म, विबन्ध, रक्तपित्तादि में उसे दिया गया, द्रव्य बड़ा लाभकारी सिद्ध हुआ । अद्रिसानुजा वा गिरिसानुजा से उस के पर्वतीय होने की साक्षी मिलती है, 'त्रामान' नाम बड़ा स्पष्ट है, तिक्तरस, गुल्मादि का नाश उसे ही **त्रायमाणा** सिद्ध करते हैं । मैं अधिक मात्रा में वहीं से मंगा कर उस के प्रचार का प्रयत्न करूंगा । यह Delphinium जाती (Ranunculaceae N. O.) का अंग है । **ममीरा** भी इसी जाती में सम्मिलित है, यह भी तिक्त और ज्वरघ्न है । किसी ने Thalictrum foliolosum को त्रायमाण कहा हैं, यह **ममीरे** (पीली जड़) का नाम है । यह भी मृदुरेचक, तिक्त, ज्वरघ्न, और रसायन है । नेत्र में इस का अञ्जन लगाने से वा जलबिन्दु डालने से नेत्र स्वच्छ हो जाता है, और दृष्टि बढ़ती है । यदि त्रायमाणा को शास्त्रों में 'चक्षुष्य, नेत्र्य' कहा होता, तो हमें ममीरे को त्रायमाणा कहने में हर्ज न था ।

मंगल्या वार्षिकी त्राणा सुहृत्त्राणा सुनामिका ॥१२०५॥

पर्याय—त्रायन्ती (बचाने वाला, रक्षक), अद्रिसानुजा (पर्वतशिखरजा), त्राणा (सुरक्षित, बचा हुआ), सुनामिका (अच्छे नाम वाली) ॥१२०५॥

त्रायन्ती तुवरा तिक्ता सरा पित्तकफापहा ।
ज्वरहृद्रोगगुल्मार्शोभ्रमशूलविषप्रणुत् ॥१२०६॥

३८७. अपामार्गः[1] (खरमञ्जरी, शिखरी) ।

Achyranthes aspera.
The prickly chaff-flower.
An annual prickly herb.
Laxative, diuretic, alterative, emetic and pungent.

(हिं०) चिरचिरा, लटजीरा, (पं०) पुठकंडा, (बं०) आपाङ्, (म०) आघाड़ा, (गु०) अघेड़ो । वार्षिक कंटकीय क्षुप । ग्राही, मूत्रल, रक्तशोधक, वामक, तीक्ष्ण ।

अपामार्गः शैखरिकः शिखरी मञ्जरीफलः ।
अधःशल्यः क्षारमध्या दुर्ग्रहा दुरनिग्रहा ।

---

१. **अपामार्ग** सुप्रसिद्ध क्षुप है, जो पंजाब में **पुठकंडा** के नाम से व्याख्यात है और क्षेत्रों में वा मार्गों के इतस्ततः मिल जाता है, अतः अपामार्ग (अप+आमार्ग, Road-side plant) । डा० चोरी ने इस के अर्थ यों किए हैं, **अप**–जल, water; **मार्ग**–रजक, धोबी, Washerman, अर्थात् ऐसा क्षुप जिस के क्षार से धोबी कपड़े धोते हैं । यह कपोलकल्पित और विचित्र अर्थ हैं । मार्ग का अर्थ कहीं भी रजक नहीं लिखा । मार्ग को मार्जन वा परिमार्जन (शोधने) समझना अशुद्ध है । पुठकंडा 'अधःशल्य' का अर्थवाचक है, (पं०) पुठ वा उल्टे वा नीचे को मुड़े हुए शल्यों वा कांटों वाला (Plant of reflexed prickles) डिमक् महाशय ने इसे 'अध्वशल्यः' कह कर Roadside rice(मार्गशालिः) अर्थ किया है, जो अशुद्ध है । शल्य का अर्थ शालि नहीं हो सकता । 'अधः' को अध्व पढ़ना भी अशुद्ध है । अपामार्ग के पत्र गोल और शाखा पर दूर २ लगे हुए । पत्रों से ऊपर जो शिखर है, उस पर अधोमुखी (Reflexed) पुष्प वा फल होते हैं, जिन पर छोटे २ कांटे होते हैं । यह वस्त्र वा हस्तादि अंगों पर लग जाते हैं, कण्टक अति सूक्ष्म और तनु । बीजों वा फलों के चूर्ण की नस्य उत्तम शीर्षशोधक है, **"प्रत्यक्पुष्पी शिरोविरेचनानाम्"** (च० सू० अ० २५) । बीज और पत्रों का क्वाथ (५–१० तो०) वा चूर्ण (६ माषे) देने से वान्ति हो जाती है । अल्प मात्रा में बीज पाचन हैं । पत्रस्वरस दन्तशूलनाशक है और नेत्र में छोड़ने से शुक्र और नक्तान्ध्य को दूर करता है । सर्वांग अपामार्ग का क्वाथ उत्तम मूत्रल होने से जलोदर, वृक्करोग, शोथादि को दूर करता है । बीजचूर्ण तण्डुलोदक से देने पर रक्तार्श ठीक होता है । अलर्कविष (Hydrophobia), सर्पविषादि में अपामार्ग-मूल का लेप दंश पर किया जाता है । गण्डमाला पर मूल के छोटे २ खण्डों की

अघाटः किणिही मार्गः प्रत्यक्पुष्पी मयूरकः ॥१२०७॥

पर्याय—अपामार्ग (अप+आ+मार्ग-मार्ग के इतस्ततः अपगत वा स्थित क्षुप), शैखिरिक (कंटकीय शिखिर वा पुष्पमञ्जरी वाला), अधःशल्य (अधोमुखी शल्यों वा कांटों वाला पुठकंडा), क्षारमध्या (मध्यगुणयुक्त क्षारमय), दुर्ग्रहा (पकड़ने में दुष्कर कांटों के कारण), प्रत्यक्पुष्पी (अधःपुष्पी, उल्टे फूलों वाला), मयूरक (मोर के तुल्य शिखर वाला) ॥१२०७॥

अपामार्गः कटुस्तिक्तस्तीक्ष्णोष्णो दीपनः सरः ।
वामनो वमनश्छेदी कफमेदोऽनिलापहः ।
निहन्ति शूलहिध्मार्शोदद्रूकण्डूदरापचीः ॥१२०८॥

३८८. रक्तापामार्गः[1] ।

अन्यो वृत्तफलो रक्तबिन्दुकः कपिपिप्पली[2] ।
वशिरो मर्कटी कुन्तः प्रत्यक्श्रेणी खरच्छदा ॥१२०९॥
वशिरस्तद्गुणैर्न्यूनो वातविष्टम्भकृद्धिमः ।
तत्फलं शीतलं स्वादु रसे पाके सुदुर्जरम् ।
विष्टम्भि वातलं रूक्षं रक्तपित्तप्रसादनम् ॥१२१०॥

३८९. जलापामार्गः[3] ।

सेमाष्ठिलस्तोयवृत्ती रामठस्तोयमञ्जरी ।
ऊलकः शोषहा तोयापामार्गश्चमयूरकः[4] ।
रामठः[5] कटुकः शोफकफमारुतनाशनः ॥१२११॥

माला बांधी जाती है । अपामार्गक्षार दीपक, पाचक, कासघ्न और कफसारक (Expectorant) है । मूल को कटी में बांधने से सुखप्रसव होता है । इस के तावीज़ से योषापस्मार (Hysteria) कभी २ ठीक हो जाता है । किस तरह इस से लाभ होता है, यह कहना कठिन है ।

१. रक्तापामार्ग ऊपरोक्त अपामार्ग का ही रूपान्तर है । केवल भेद इतना है कि इसका काण्ड, शाखा, पुष्प, फल, बीज, पत्रादि कुछ रक्ताभ होते हैं, पत्र कुछ, छोटे और गोल । यह शीतवीर्य, और ग्राही है । वंग, यसद और सीसक धातुओं को भस्म करने में, अपामार्ग (सर्वांग वा बीज) बहुत काम आता है ।

२. ब, यू—कफपिपली ।

३. जलापामार्ग प्रायः निम्न और जलाढ्य भूमि में होता है, परन्तु यह कम मिलता है । अन्य निघंटुकारों ने इस का वर्णन नहीं किया । न ही इस का प्रयोग ग्रन्थों में देखा जाता है ।

४. ब—तोयाबामाग्रेदुवुमयूरकः ।

५. ब—रामकः ।

३९०. तालीसपत्रम्[1] ।

Abies webbiana.
A lofty pyramidal tree.
Carminative, expectorant, astringent, antispasmodic and stimulant.

(सर्व भाषा) तालीसपत्र ।
उच्च कोणाकार वृक्ष ।
वातानुलोमक, कफसारक, ग्राही, आक्षेपनिवारक तथा उत्तेजक ।

तालीसकं तु तालीसं पत्रं तालीसपत्रकम् ।
तन्वन्तामलकीपत्रं पत्राढ्यं[2] शुकोदरम् ॥१२१२॥

पर्याय—पत्र (पत्राढ्य, पत्रमय), तन्वन्ता (तनु+अन्ता, पतले किनारों वा सिरों वाला), आमलकीपत्र (आमले जैसे पत्तों वाला) ॥१२१२॥

तालीसं तिक्तकटुकं कृमिवातकफापहम् ॥१२१३॥

३९१. तेजोवती[3] ।

Bark of Z. alatum.
See No. 299.

(सर्व भाषा) तेजबल ।
तुम्बरुत्वक् देखो अंक २९९ ।

तेजस्विनी तेजोवती बलासघ्नी महौजसी ।
हयघ्नी वल्कला पीता पारिजाता सुतेजसा ।
पारिजातस्वसा तिक्ता तेजोह्वा स्वल्पवल्कला ॥१२१४॥

---

१. **तालीसपत्र** सुप्रसिद्ध पत्राढ्य द्रव्य है, जो बाज़ारों में मिलता है। उस में कुछ काष्ठिक भाग भी होता है । उत्तम तालीसपत्र पत्राढ्य होना चाहिए और पत्र प्रायः लम्बा और रंग में भूरा । यह कास, श्वास, अरुचि, यक्ष्मा आदि की चिकित्सा में काम आता है । तालीसादि चूर्ण उस का प्रसिद्ध योग है । उस का फाण्ट बच्चों को कास, ज्वरातिसार, वमनादि में दिया जाता है । वनस्पतिविशारदों में तालीसपत्र के वैज्ञानिक नामों में बड़ा मतभेद है । ऊपरोक्त नाम प्रायः बहुमत है । यह वृक्ष कोणजातीय (Coniferae N. O.) है (देखो अंक १०४) और हिमालय में बहुत मिलता है । किसी ने तालीसपत्र को Flacourtia Cataphracta (प्राचीनामलकी—अं० ४६) के पत्र कहा है । यह पत्र गोल वा अण्डाकार होते हैं । किसी ने Taxus Baccata माना है । बम्बई में जो तालीसपत्र मिलता है, और वहां "बिरमी वा त्रिर्मी" भी कहलाता है, वह इस के ही पत्र हैं, परन्तु यह विषैले हैं । किसी ने तालीसपत्र को दालचीनी के पत्र समझा है ।

२. द—पत्राढ्यं । यू—पुस्तक में तालीसपत्र का पाठ ही नहीं मिलता ।

३. **तेजोवती** का वर्णन पीछे तुम्बरु (अंक २९९) में कर चुके हैं । जिस वृक्ष का फल तुम्बरु है, उस की त्वक् का नाम **तेजोवती** वा तेजबल है । यह दन्तरोगों में लाभकारी है और मञ्जनों में पड़ती है । इस से दन्त शुद्ध और स्वच्छ रहते हैं । यह त्वक् दीपन, पाचन, सुरभि और वातानुलोमक भी है ।

पर्याय—तेजस्विनी (तेजोमय, तीक्ष्ण, कटु), तेजोवती (तेजोमय), बलासघ्नी (कफनाशक), महौजसी (महान् ओजः वाली), हयघ्नी (अश्वघ्नी), वल्कला (त्वक्), तेजोह्वा (तेजोनामा) ॥१२१४॥

तेजोवती कटुस्तिक्ता रुच्या दीपनपाचनी।
उष्णावातकफश्वासकासहिध्मास्यरोगजित् ॥१२१५॥

३९२. रास्ना[1] ?

रास्ना युक्ता गन्धमूला सुरसा रसना रसा।
एलापर्णी युक्तरसा सुवहा गन्धनाकुली।
सुगन्धातिरसा रस्या श्रेयसी सुरभिर्मता ॥१२१६॥

---

१. **रास्ना** सन्देहग्रस्त है। वंगीय रास्ना एक प्रकार का पराशी क्षुप (Parasitic plant—अंक ३६२ का नोट देखो) है, जिसे लैटिन में Vanda Roxburghi कहा गया है। यह एक पर्णमय हरित क्षुप है, जो वंगदेश में आम्र, अम्लिका, जम्बु, वटादि वृक्षों पर होता है। इस में काण्ड नहीं होता, प्रत्युत लम्बे २ और द्विगुणित (Doubled on themselves) स्थूल पत्रों के मूल मिल कर कुछ काण्ड सा बन जाता है। **पुष्प** फीके बैंगुनी रंग के लगते हैं। बंगीय वैद्य इसी क्षुपे की शुष्क जड़ों तथा पत्रों को रास्ना कहते हैं और यही रास्ना वहां से पंजाब में आती है। इस को वहां दुकानदार गमलों में लगाकर दुकान के आगे लटका देते हैं। इसे बन्दा वा वृक्षादनी (अंक २६२) का भेदविशेष कह सकते हैं, परंतु यह नीरस, निर्गन्ध शुष्क द्रव्य रास्ना नहीं हो सकता, क्योंकि रास्ना को शास्त्रों में गन्धमूला, युक्तरसादि पर्याय दिए हैं और द्रव्य भी सुगन्धित और रसमय होना चाहिए। इस रास्ना में तनिक गन्ध नहीं, सुगन्ध कहां ? कुछ वंगीय चिकित्सक 'एलापर्णी' पर्याय देख कर बोल उठते हैं, कि इस रास्ना के पत्र एलापत्रतुल्य हैं। यह भी भ्रम है, न उन में रस और न सुगन्ध एलातुल्य है और न ही आकार में बहुत सादृश्य है। यू० पी० और बम्बे में एक **पत्ररास्ना** मिलती है, यह शुष्क लवणरस पत्र भी रास्ना नहीं हो सकते हैं। कई वैद्य कहते हैं कि यह वायुरोगों में लाभकारी है। मद्रास में मैं ने देखा है, कि वैद्य कुलञ्जन (पान की जड़—अंक १०८) को रास्ना तथा गन्धरास्ना वा गन्धनाकुली कह देते हैं और उसे ही प्रयोग करते हैं। इस में सन्देह नहीं, कि यह सुगन्धित द्रव्य है, परन्तु 'सुरस' नहीं। वंगीय रास्ना वा बन्दा भी दो प्रकार का है, एक प्रकार का नाम ऊपर दिया गया है, दूसरे का लेटिन नाम Acampe papillosa or Saccolabium papillosum है। इनके पुष्प और पत्रों में भी कुछ भेद है, परन्तु यह दोनों ही वंगदेश में रास्ना कहलाते हैं। साधारण लोग इन को एक ही समझते हैं। कोकण देश में इनके सदृश एक क्षुप S. Wightianum और दूसरा S. praemorsum रास्ना कहलाता है। मरहटे कृषक इन को 'कंभेर' कहते हैं। पारस तथा अरब में एक क्षुप Inula Helenium है, जिस को अरबी

पर्याय—रास्ना (रसमय), गन्धमूला (सुगन्धित मूल वाली), सुरसा (रसमय), रसा (सुरसा), एलपर्णी (एलातुल्य सुगन्धित और रसमय पत्रों वाली), श्रेयसी (श्रेष्ठ), सुरभि (सुगन्धित) ॥१२१६॥

रास्ना तिक्ता गुरूष्णामपाचनी कफपित्तहा ।
निहन्ति शोफवातास्रश्वासकासविषज्वरान् ॥
हिध्माशीतामवाताढ्यवातशूलोदराणि च ॥१२१७॥

आढ्यवात—वातरक्त (Gout) ॥१२१७॥

लोग 'रासन' पुकारते हैं । यह द्रव्य सुगन्धित भी है । इन दो कारणों से डिमक (Dymock) साहब इस को वास्तविक 'रास्ना' समझते हैं । उस के सदृश्य एक क्षुप Inula racemosa काश्मीर के उत्तर पश्चिम में मिलता है, काश्मीरी लोग उस को 'पोष्कर' कहते हैं, सम्भव है कि यह पुष्करमूल (अंक २८०) हो, जो अभी तक सन्देहग्रस्त है । **रास्नाभेद**—नरहरि ने कहा है, "रास्ना तु त्रिविधा प्रोक्ता मूलं पत्रं तृणं तथा । ज्ञेयौ मूलदलौ श्रेष्ठौ तृणरास्ना तु मध्यमा"—अर्थात् रास्ना ३ प्रकार की है, मूलरास्ना, पत्ररास्ना और तृणरास्ना, इन में पहली दो श्रेष्ठ हैं और पिछली मध्यम गुण वाली, परन्तु उन्हों ने पुनः इन रास्नाओं के व्यवच्छेदक लक्षण नहीं कहे । यह भेद अन्य निघंटुओं में नहीं मिलते । कई ग्रन्थों में टीकाकारों तथा किसी २ निघंटुकार ने भी नाकुली को रास्नाभेद कह दिया है, यह भी अशुद्ध है । निघंटुकारों ने प्रायः रास्ना के पर्यायों में नाकुली (अंक १६६-७) को और नाकुली के पर्यायों में रास्ना को नहीं लिखा । कैयदेवोक्त गन्धनाकुली से अभिप्राय सुगन्धित द्रव्य है । **रास्ना-प्रयोग**—'रास्ना वातघ्नानां' यह चरक का वचन है, अर्थात् रास्ना वातघ्न चिकित्सा-द्रव्यों में श्रेष्ठ है, इसी कारण से वायु को और आमवात की चिकित्सा में रास्ना अनेक योगों, यथा रास्नागुग्गुलु, रास्नातैल, रास्नादशमूल, रास्नादि क्वाथ, रास्नादि लौह, रास्नादि घृत वा तैल, रास्नापञ्चक, रास्नासप्तकादि, में मुख्य रूप से पड़ती है, परन्तु जब शुद्ध रास्ना मिलती ही नहीं, तो यह योग बहुत गुणकारी नहीं हो सकते । वंगीय रास्ना पर धन व्यर्थ न करके रास्ना योगों में छोड़ देना अच्छा है, वा कुलञ्जन ही डाल देना चाहिए । यदि यू० पी० वाली पत्ररास्ना मिल जावे, तो उसे भी प्रयोग कर लेने में हानि नहीं । कुछ लोग Tylophora asthmatica को रास्ना कहते हैं, यह क्षुप बम्बे प्रान्त में मिलता है । यह प्रवाहिका (Dysentry) में लाभकारी है । रास्नातुल्य उस में कोई गुण नहीं ।

३६३. अश्वगन्धा[1]।

Withania somnifera.	(हिं०) असगन्ध, (बं०) अश्वगन्धा, (म०) आसकन्द, (गु०) आखसन्ध।
An erect shrubby plant.	उच्छ्रित गुल्माकार क्षुप।
Root sedative, tonic, alterative, aphrodisiac and nutritive.	मूल ग्राही, रसायन, धातुपोषक, वाजिकर, तथा पुष्टिदायक।

अश्वगन्धा कुष्ठगन्धा हयाऽश्वाऽश्वावरोहकः।
वाराहकर्णी गोकर्णी तुरगी वरदा वृषः।
बल्या वाजीकरी पीना वर्हिःपित्तं च कञ्चुकी ॥१२१८॥

पर्याय—अश्वगन्धा (अश्वमूत्रतुल्यगन्धयुक्त मूल), कुष्ठगन्धा (दुर्गन्धित), वाराहकर्णी (शूकरकर्णतुल्य पत्रों वाली), तुरगी (घोड़ी), बल्या (बलकर), वाजिकरी (वाजीव करोति, घोड़े की तरह बलवान् कर देती है), पीना (स्थूल) ॥ १२१८ ॥

अश्वगन्धा कषायोष्णा तिक्ता वृष्या रसायनम्।
बलपुष्टिप्रदा हन्ति कफकासानिलव्रणान्।
शोफकण्डूविषश्वित्रकृमिश्वासक्षतक्षयान् ॥१२१९॥

---

१. अश्वगन्धा का क्षुप प्रायः सर्वत्र मिलता है। **क्षुप** २–४ फुट ऊंचा; **पत्र** गोल, मांसल, नोकदार, रोमश। **पुष्प** और **फल** प्रायः शाखाओं वा पत्रों के कोण में लगते हैं। फल आकृति में काकमाची के फल के तुल्य गोल। तरुण आर्द्र मूल को तोड़ने पर अश्वमूत्र के तुल्य गन्ध आता है, जो शुष्क मूल में नहीं रहता। मूल पतली, परन्तु मूलकवत् शंक्वाकार (Conical), भीतर से श्वेत और स्वाद में तिक्तमधुर। जो अश्वगन्धामूल बाज़ार में मिलता है, वह पंजाब प्रान्त में होने वाली अश्वगन्धा का मूल नहीं, प्रत्युत यह नागपुर वा बम्बे से प्रायः आता है और उसे **नागौरी आसगन्ध** कहा जाता है। यह क्षुप बम्बे और मध्य प्रान्त में बहुत होता है। पंजाबी अश्वगन्धा पंचांग रूप में क्राथों में डाल सकते हैं, परन्तु जहां चूर्ण की आवश्यकता हो, वहां नागपुरी अश्वगन्धा ही प्रयोग करना चाहिए। अश्वगन्धामूल एक उत्तम वीर्यवर्धक और मांसकर रसायन है। दुग्ध वा मक्खन और मधु से मिलाकर अश्वगन्धाचूर्ण खिलाने से दुर्बल शिशु तथा व्यवायक्षीण वा श्रमक्षीण पुरुष सबल और पुष्ट हो जाते हैं। स्तन्यवृद्ध्यर्थ स्त्रिएं सेवन कर सकती हैं। वातरोग, उन्माद, यक्ष्मा, निद्रानाश, शुक्रक्षय, और साधारण दौर्बल्य में यह रसायनरूप दिया जा सकता है। रजोदर्शन के पश्चात् कुछ दिन सेवन करने से गर्भस्थिति हो सकती है। अश्वगन्धादि चूर्ण (शार्ङ्गधर), अश्वगन्धाघृत, अश्वगन्धावलेह, अश्वगन्धारिष्ट, और अश्वगन्धादि क्राथ प्रसिद्ध योग हैं। नारायण तैल, च्यवनप्राशादि में भी अश्वगन्धा डाला जाता है। अश्वगन्धा के फल वा उन का क्राथ दुग्ध में डालने से दुग्ध जम जाता है।

३९४. सहचरः[1] (झिण्टी, कुरण्टकः, सैरेयः) ।

Barleria prionitis.	(हिं०) पियाबांसा, कटसरैया,, कालाबांसः,(बं०)झांटी,झिराटी,(मं०) कोरंटा, (गु०) कांटाशेलियो ।
A perennial spiny bush.	बहुवार्षिक कंटकी गुल्म ।
Bitter, astringent, anticatarrhal and febrifuge.	तिक्त, ग्राही,प्रतिश्यायघ्न,ज्वरहर ।

सैरेयकः सहचरः शैरेयो मृदुकण्टकः ।
कोमलप्रसवो दासी वर्णाख्यः किंकिरातकः ॥१२२०॥
झिण्टी सहचरोऽम्लानः सैर्यकश्च महासहा ।
भेदाः { रक्तपुष्पः कुरबकः पीतपुष्पः कुरण्टकः ॥१२२१॥
नीलपुष्पश्चार्त्तगलः सैरेयः श्वेतपुष्पकः ।
बाणस्तूद्यानपाकी स्याच्छोणकः केशरञ्जनः ॥१२२२॥
शैरेयो मधुरस्तिक्तः स्निग्धोष्णः केशरञ्जनः ।
केश्यो बलासपित्तास्रकुष्ठकण्डूविषं जयेत् ॥१२२३॥

बलाचतुष्टयम्[2] ।

३९५. बला (वाट्यालकः) ।

Sida cordifolia.	(हिं०) खिरैंटी, वारियार, (बं०) बेड़ेला, बला, (मं०) चिकना, खिरहर, (गु०) खरेंटी ।
A commor weedy herb.	साधारण तृणरूपी हरितक ।

---

१. सहचर की कांटेदार झाड़ी पार्वतीय देशों में प्रायः मिल जाती है, परन्तु दक्षिण में उसका बाहुल्य है । पंजाब के पर्वतों पर भी देखी जाती है । वासकतुल्य पत्रों के कारण पियाबांसा, कालाबांसादि नाम दिये जाते हैं । पत्रकोणों में लंबे, सरल, क्षीण और तीक्ष्णाग्र कांटे होते हैं । पुष्पों के वर्णानुसार ही झिण्टी के रक्त, पीत नील और श्वेत चार भेद हैं, जिन के नाम ऊपर मूलपाठ में देखें । ऊपरोक्त लेटिन नाम श्वेत वा नील झिण्टी का है । अन्य नामों के विषय में कुछ मतभेद है । सुश्रुतोक्त सहचरादि गण प्रसिद्ध है । दक्षिण में झिण्टीस्वरस मधुमिश्रित बच्चों को ज्वरकास, प्रतिश्यायादि में दिया जाता है । झिण्टीक्वाथ दन्तचालशमक है । वायुरोगों में झिण्टीस्वेद लाभकारी है । पत्रकल्क व्रणों को फोड़ने के लिए बांधा जाता है ।

२. बलाचतुष्टय में चार प्रसिद्ध क्षुप सम्मिलित हैं अर्थात्—(१) बला, (२) महाबला, (३) अतिबला, (४) नागबला । इन का वर्णन क्रमशः आगे दिया गया है । यह चारों N. O. Malvacea के अंग हैं, जिस का एक

बला[1] वाट्यालको वाटी समांशा शीतकुंचिका ।
शिष्या भद्रौदना क्रूरा प्रभार्या खरयष्टिका ।
सहा समंगौदनाह्वा शीतपाकी च विजला ॥१२२४॥

पर्याय—बला (बलवर्द्धक), वाट्यालक (क्षुद्र बीजों वाली), भद्रौदना (उत्तम ओदन बनता है, जिसके बीजों से), क्रूरा (कठोर काष्ठ वाली) खरयष्टिका (कठोर काण्ड वाली, Woody herb), सहा (क्रूर, सहनशील), ओदनाह्वा (ओदन भात नाम वाली), शीतपाकी (शीतकाल में फल पकता है, जिसका), विजला (शुष्का, हीनरसा) ॥१२२४॥

३९६. महाबला[2] (बृहद्बला) ।

Sida rhombifolia. A pale-flowered herb.	(हिं०) सहदेई, बड़ी खरैंटी,(बं०) बड़ पीत बेड़ेला, (गु०) सहदेवी, (म०) भांबुर्डी । पीतपुष्प हरितक।

वाट्यायूनी वीरपुष्पी वाट्या वीर्या बृहद्बला ।

प्रसिद्ध क्षुप **गुले ख़ैरा** (Malva or Mallow flower–Althoea officinalis) है । उसके बीजों को **तुख़्मे ख़तमी** और मूल को **रेशा ख़तमी** कहते हैं । **ख़ब्बाज़ी** (Malva sylvestris) भी इस वर्ग में शामिल है । ख़तमी, ख़बाज़ी और बलाचतुष्टय की समानता का कारण पुष्पों और बीजों की रचना में सादृश्य है । यह सब प्रायः पिच्छल, मूत्रल, शीत, गुरु, स्निग्ध और धातुपोषक हैं । ख़तमी और ख़बाज़ी का वर्णन आयुर्वेद में नहीं मिलता, तथापि हम उन्हें बलाभेद कह सकते हैं ।

१. **बला** का क्षुप भारत में सर्वत्र भूमि पर इतस्ततः मिलता है । ऊंचाई प्रायः १ हाथ; **पत्र** हृदयाकार और नोकदार, किनारा कटा हुआ, स्वाद में पिच्छिल । **पुष्प** पत्रों के कोण में छोटे २ और पीतवर्ण । कुछ वैद्य इस पीतपुष्प बला को महाबला समझते हैं और बला एक अन्य क्षुद्र क्षुप (S. Humilis) को कहते हैं, जो ५–६ इंच ऊंचा होता है और पत्र तुलसी के सदृश गोल और छोटे २, पुष्प छोटे और हलके पीले रंग के । यदि यह बला न मानी जाए, तो इसे क्षुद्रता के कारण भूमिबला कह दिया जाता है । यह भी तृणक्षेत्रों (Grassy plots) में बहुत मिल जाती है ।

२. महाबला, जैसा कि नाम से प्रसिद्ध है, बहुत बड़ी होती है, परन्तु पत्रादि प्रायः तत्सदृश । इसे सहदेवी नाम दिया जाता है, परन्तु जो **सहदेवी** नाम से क्षुप प्रसिद्ध है, वह Vernonia cinrea है, जो भारत में सब जगह तृणवत् क्षेत्रों में मिलता है, इस का पुष्प गोल, व्यास में ½ इंच और वर्ण में रक्तनील होता है । यह क्षुप N. O. Compositea (संयुक्त पुष्पों की जाती) में सम्मिलित है और बला से आकार एवं गुणों में सर्वथा भिन्न है । यह ज्वरघ्न और स्वेदल है । महाबला के विषय में कुछ मतभेद है, क्योंकि बला के अनेक प्रकार स्थानभेद से मिल जाते हैं ।

महाबला सहदेवी भारद्वाजी सुकर्णिका ।
ऋष्यपुष्पी पीतपुष्पी ऋष्यगन्धा महासहा[1] ॥१२२५॥

पर्याय—वीर्या (वीर्यवर्धक), बृहद्बला (बड़ी बला), सुकर्णिका (अच्छे पुष्पों वाली), पीतपुष्पी (पीले फूलों वाली), महासहा (बड़ी बला) ॥१२२५॥

३९७. अतिबला[1] (कङ्कतिका) ।

Sida indica. or Abutilon indicum. A large annual shrub.	(हिं०) कंघी, ककहिया, (बं०) पेटारी, (म०) कंघाई, चिकंकती, (गु०) खपाट्य । विशाल वार्षिक क्षुप ।

ततोऽन्याऽतिबला रिष्यप्रोक्ता कंकतिका सहा ॥१२२६॥

पर्याय—अतिबला (बहुत बड़ी बला), कङ्कतिका (कंघी, कंघी के तुल्य कटे हुए फलों वाली, with Comb-edged fruits) ॥१२२६॥

३९८. नागबला[2] (गाङ्गेरुकी) ?

Sida spinosa. An erect spiny shrub.	(हिं०) गंगेरन, (बं०) गोरखचाकुले, (म०) गांगेरी । उच्छ्रित, कण्टकीय क्षुप ।

गाङ्गेरुकी विश्वदेवी काला नागबला तथा ।
खरधन्वनिका घण्टा खण्डा पुष्पगवेधुका ॥१२२७॥

पर्याय—गाङ्गेरुकी (गंगातट पर अधिक होने वाली), नागबला (नागवत् सर्पणशील बला वा नागतुल्य बलदायक रसायन) ॥१२२७॥

---

१. **अतिबला** का क्षुप २-३ हाथ ऊंचा होता है और कंघी के नाम से सुप्रसिद्ध है । गोल फल के किनारे कंघी की तरह दंदानेदार होते हैं । पत्र बला की अपेक्षा अधिक चौड़े होते हैं ।

२. **नागबला** का अभी कुछ निश्चय नहीं । कलकत्ते में **'गोरखचाकुले'** के नाम से गोल लम्बे और कठोर लकड़ी के टुकड़े मिलते हैं, यह स्वाद में मधुर और पिच्छिल हैं । कोई वैद्य यह कहता है कि नागवत् सर्पणशील बलातुल्य क्षुप का नाम नागबला होना चाहिए । अजमेर के वैद्य कहते हैं कि नागबला केवल हमारी मरुभूमि में ही होती है । जो ऊपर लेटिन नाम दिया गया है, वह एक बलातुल्य कांटेदार क्षुप का नाम है । पर्यायों से यह सिद्ध नहीं होता कि नागबला में कांटे होते हैं वा न । हिन्दुस्थान में जो **गंगेरन** नाम से क्षुप मिलता है, वह कंटकरहित है । कई उसे ही नागबला समझते हैं । कई वैद्य नागबला को सहदेवी (महाबला ?) के सदृश परन्तु बड़ा क्षुप मानते हैं । सहदेवी और महाबला एक नहीं, यह बात पीछे कह चुके हैं ।

बलाचतुष्टयगुणाः[1] (Properties)

Mucilaginous, diuretic, cooling, astringent and nutritive.	पिच्छिल, मूत्रल, शीत, ग्राही, तथा पुष्टिकर ।

बलाचतुष्टयं स्निग्धं मधुरं रसपाकयोः ।
शीतलं ग्राहि धात्वोजोबलायुःकान्तिवर्द्धनम् ॥१२२८॥
हन्ति वातास्रपित्तास्रदोषत्रयक्षतंक्षयान् ।
बल्या नागबला गुर्वी रक्तपित्तत्तयापहा ॥१२२९॥
वृष्या रसायनी तस्याऽश्मन्तफलवत्फलम् ।
बलाबीजं स्वादु पाके कषायं मधुरं रसे ॥१२३०॥
हिमं वीर्ये गुरु गुणे स्तम्भनं लेखनं भृशम् ।
विबन्धाध्मानपवनज्वरपित्तकफास्रजित् ॥१२३१॥

बलाबीजं—सर्वबलाबीजं । स्तम्भनं—वीर्यस्तम्भकं । लेखनं—कफच्छेदनं कफपातकं वा ॥ १२२८–३१ ॥

३९९. प्रसारणी[2] (गन्धाढ्या) ।

Peaeria foetida. A glabrous foetid shrub. Laxative, emetic and anti rheumatic.	(हिं०) पसरन, गन्धप्रसारनी, खिप, (बं०) गन्धभादाले, गंदाल्, (म०) हीरांवेल, प्रसारण, (गु०) गन्धाना । मृदु पूतिगन्ध क्षुप । रेचक, वामक, आमवातघ्न ।

---

१. गुण—चारों ही बलाएं रसायन, पिच्छिल, अल्पमधुर, स्निग्ध और गुरु हैं, तथा रक्तपित्त, वातरोग, वीर्यक्षय, दौर्बल्य, स्तन्यक्षय, ज्वर, हृद्रोग, वातरक्तादि में विहित हैं । नागबला महारसायन मानी गई है (च०चि० अ०१) अनेक तैलों, घृतों, लेह, चूर्णादि योगों में बलाएं डाली जाती हैं । परन्तु जहां चारों का विधान हो, वहां यथालाभ एक वा दो मात्रानुसार डाल दें । बला और अतिबला तो मिलती हैं और डाली जा सकती हैं, शेष दो बलाएं संदिग्ध हैं । बलाएं क्वाथों वा चूर्णों में सर्वांग पड़ती हैं, और कभी २ मूल भी काम आती है । पत्रकल्क व्रणों को पकाने के लिए बांधा जाता है । बाज़ार में बलाबीज (खरैटी के बीज) मांगने से क्षुद्र कृष्ण बीज मिलते हैं । यह वस्तुतः अतिबला (कंघी) के बीज हैं । यह पिच्छिल, शुक्रस्तम्भक और वृष्य (Aphrodisiac) हैं, तथा रक्तार्श, मूत्रकृच्छ्र, पूयमेह (सुज़ाक) आदि में दिए जाते हैं । मात्रा ३-४ माषे, समगुणशर्करा से मिलाकर दुग्ध वा जल से । बीजबन्द को भी बलाबीज समझा जाता है ।

२. प्रसारणी की विशाल लता जलाढय देश में होती है । वंग देश में बहुत मिलती है । पंजाब वा अन्य प्रान्तों में विरल । काण्ड पर दूर २ दो पत्र एकत्र लगते हैं । पत्र गडूचीतुल्य परन्तु छोटे, मांसल और रसमय (Juicy), मसल कर

प्रसारणी सुप्रसरा सारणी सरणी सरा ।
भद्रकाली भद्रबला प्रहिता पेहिवातिका (?) ।
चारुपर्णी राजबला भद्रपर्णी प्रतानिका ॥१२३२॥

पर्याय—प्रसारणी ('प्रसार्य्यन्तेऽङ्गान्यनया'—आमवातादि से संकुचित अङ्गों को फैलाने वाली), वा 'प्रकर्षेण सारयति रेचयति'—अतिरेचक, पूर्वार्थ समीचीनतर है), सुप्रसरा (अच्छी तरह से अंगों को फैलाने वाली), सरा (सारक, रेचक), भद्रबला (श्रेष्ठ बला), प्रहिता (प्रकर्षेण वातहिता), चारुपर्णी (सुन्दर पत्रों वाली), राजबला ('बलानां बलप्रदानां राजेव'—उत्तम बलकर), प्रतानिका (प्रतानवती लता) ॥१२३२॥

प्रसारणी सरा तिक्ता वीर्योष्णा शुक्रला गुरुः ।
वर्णसन्धानबलकृद्वातरक्तत्रिदोषहा ॥१२३३॥

शतावरीद्वयम् (शतावरी महाशतावरी च) ।

४००. शतावरी[1] (शतमूली) ।

Asparagus racemosus. A tall spinous climber with sweet tuberous roots. Demulcent, diuretic, nutritive, aphrodisiac and tonic.	(हिं०) सतावर, शतावर, (बं०) शतमूली, (म०, गु०) शतावरी । दीर्घ, कण्टकीय, मधुरकन्द लता । पिच्छिल, मूत्रल, पुष्टिकर, वाजीकर, रसायन ।

उन्हें सूघा जावे, तो अधोवात के तुल्य दुर्गन्ध आता है, अतः गन्धाढया, पूतिगन्धा गन्धाल्यादि नाम । बंगाल में लोग प्रसारणी का शाक मन्दाग्नि आदि में व्यवहार करते हैं । उसे उबालने पर गन्ध नहीं रहती । **पत्रकल्क** उष्ण करके उदरशूल में दिया जाता है । वातरोगों में प्रसारणी अत्युत्तम ओषधी मानी जाती है । प्रसारणीतैल, कुब्जप्रसारणी तैल, त्रिशतिप्रसारणी तैल आदि प्रसिद्ध वातरोगनाशक तैल हैं । कुब्ज,पङ्गु,गृध्रसी आदि वातरोगों से जहां संधिएं विकृत होकर अचल हो जाती हैं । वहां यह तैल मलने और पुन: रूक्ष स्वेद करने से अङ्गप्रसार होने की संभावना है । इन रोगों में भावमिश्र ने खाने के लिए एक प्रसारणीलेह बताया है । **प्रसारणीफल** के मंजन से दांत काले और कृमि से सुरक्षित हो जाते हैं । बम्बे वा गुजरात में जिसे 'चांद वेल' कहा जाता है, वह प्रसारणी नहीं । प्रसारणी की मूल वर्षा होने पर फूटती है और शरत्काल में पूर्णरूप से पुष्ट हो जाती है, तब ही उसे संग्रह करना चाहिए, "समूलपत्रामुत्पाटय शरत्काले प्रसारणीम्" और तैल मोदकादि बना रखने चाहिएं । शुष्क प्रसारणी गुणहीन हो जाती है । वंग देश में यह वृक्षों पर चढ़ी रहती है, परन्तु मूल का पंकाढ्य स्थान में रहना आवश्यक है वा यह लता पंक में ही बढ़ती रहती है ।

१. **शतावरी** प्राय: सर्वत्र और पर्वतों पर विशेषत: बहुत मिल जाती है ।

बहुपत्रा शतपदी शतमूली शतावरी।
नारायणी द्विपिशत्रुर्द्वीपिताऽधरकण्टका ॥१२३४॥

पर्याय--बहुपत्रा (बहुत और सूक्ष्म पत्रों वाली), शतपदी (सैंकड़ों पादों वा मूलों वाली), शतमूली (अनन्त मूलों वाली), द्विपिशत्रु (हस्तिदन्ततुल्य कन्द वाली) ॥ १२३४॥

शतावरी हिमा तिक्ता स्वाद्वी गुर्वी रसायनी।
सुस्निग्धा शुक्रला बल्या स्तन्यमेदोऽग्निपुष्टिदा।
चक्षुष्या वातपित्तास्रगुल्मातिसारशोफजित् ॥१२३५॥

४०१. महाशतावरी[1] (सहस्रमूला, वरी)।

Asparagus gonoclados.
A spiny undershrub.
Used as NO. 400.

(हिं०) बड़ी सतावर, (बं०) महाशतमूली, (म०) बड़ी शतावरी।
कण्टकाकार क्षुद्र गुल्म।
गुण पूर्ववत्।

अभीरुस्तुंगनी केशरी पीवरी दीवरी वरी।
सहस्रमूला[2] मधुरा फणिजिह्वोर्द्धकण्टका।
ऋष्यप्रोक्ता मूलपत्रा महापरुषदन्तिका ॥१२३६॥

काण्ड और शाखा क्षीण, कण्टकयुक्त; कांटे तीक्ष्ण परन्तु मुड़े हुए। पत्र सोये के तुल्य सूक्ष्म और सूत्राकार। मूल में अनेक श्वेत लम्बे कन्द होते हैं, जो गुच्छों के तुल्य बने रहते हैं। यह कन्द (Fusiform tubers) शुष्क होकर बाजार में शतावरी के नाम से बिकते हैं। वर्षा में कन्द फूटकर नई शाखाएं उत्पन्न हो जाती हैं। लता आकार में पीताभ होती है और शिशिर काल में सूख जाती है। शतावरी कहीं २ छोटी लता वा लतारूपी गुल्म (Climbing undershrub) के तुल्य होती है। गुण आगे महाशतावरी में देखें।

१. **महाशतावरी** के पत्र, कण्टकादि शतावरी के तुल्य होते हैं, परन्तु कन्द अधिक दीर्घ, स्थूल और मधुर। बाज़ार में प्रायः महाशतावरीमूल ही शुष्क होकर शतावरी के नाम से मिलती है। यह झाड़ी प्रायः पर्वतों पर देखी जाती है। दोनों शतावरियों को गोल पीलुतुल्य फल आते हैं। **शतावरी के अङ्कुरों** का शाक बनता है, जो शीतवीर्य होने से रक्तार्श, रक्तपित्तादि में लाभकारी है। शतावरी वा महाशतावरी दोनों वीर्यस्तम्भक, रसायन, वाजिकर और धातुपोषक हैं। स्वाद मधुरतिक्त। शतावरीपाक, शतावरीघृतादि अनेक प्रसिद्ध पुष्टिकर योग हैं। यह नारायण तैल, फलघृतादि में भी पड़ती है। रक्तातिसार, कृच्छ्र, शुक्रमेहादि में शतावरीचूर्ण शर्करामिश्रित दुग्ध वा जल से दे सकते हैं। मात्रा—प्रायः ३–६ माषे चूर्ण, स्वरस—१–२ तो०। वंगीय वैद्य श० स्वरस को अनुपानरूप में वीर्यरोगों के लिए रसों के साथ व्यवहार करते हैं। शतावरी धातुस्राव और शुक्रक्षय को रोकती है। २. ब—सहस्रवीर्या।

पर्याय—अभीरु (भयरहित, अच्छी तरह फैलने और बढ़ने वाली), पीवरी (पीताभ), वरी (श्रेष्ठ), सहस्रमूला (अनन्त मूलों वाली), ऊर्द्धकण्टका (ऊपर को मुड़े हुए कांटों वाली), शूलपत्रा (तीक्ष्ण पत्रों वाली), महा० (अति कठोर दांतों वाली) ॥ १२३६ ॥

महाशतावरी हृद्या मेधाग्निबलशुक्रदा ।
ग्रहण्यर्शोऽक्षिशिरोगघ्नी शीतवीर्या रसायनी ॥१२३७॥
तदंकुरो लघुस्तिक्तो वृष्यो हृद्यस्त्रिदोषनुत् ।
निहन्ति वातपित्तास्रग्रहणीगुदजक्षयान् ॥१२३८॥

४०२. हपुषा[1] (हवुषा, प्लीहहन्त्री) ।

Juniperus communis.	(हिं०, पं०) हाऊबेर, (बं०) हवूषा,
The Juniper.	(म०) हाऊबेर, (गु०) होश ।
An evergreen diffuse shrub.	सदाहरित, प्रतत गुल्म ।
Carminative, stimulant, diuretic and stomachic.	वातानुलोमक, उत्तेजक, मूत्रल, पाचक ।

१. **हपुषा** उत्तर भारत में प्रायः हाऊबेर को कहा जाता है, दक्षिण में इस के विषय में मतभेद है । कलकत्ते में बंगाली दुकानदारों से हपुषा मांगा जावे, तो वह शीतलचीनी (अंक २८४) के वृन्त की लकड़ियां तोड़ कर दे देते हैं, इसी कारण से श्री० उमेशचन्द्र ने वै० श० सि० में हपुषा को "मरिचवृन्तवद्दीर्घकृष्णवर्णा" लिखा है, जो अशुद्ध है, पुनः उस का हिन्दी नाम हाऊबेर लिखा है, यदि वह यह दोनों वस्तु मिला कर अनुसन्धान करते, तो ऐसा असंगत लेख न लिखते । 'हपुषा' वा 'हवुषा' का अपभ्रंश 'हाऊ' ही हो सकता है और बदरीतुल्य होने से 'बेर' शब्द जोड़कर **'हाऊबेर'** संज्ञा प्राप्त होती है । पुनः हाऊबेर को तोड़ने पर मत्स्यवत् आम गन्ध की प्राप्ति और अश्वत्थ (अं०८४) वा उदुम्बर (अंक ८३) के फल के सदृश वर्ण और आभ्यन्तरिक कणमय आकृति मिलने से हपुषा **हाऊबेर** ही सिद्ध होता है । हपुषा की झाड़ियां नेपाल, कुमाऊं, भोटानादि में मिलती हैं । हाऊबेर प्रायः नेपाल से आता है । पत्र शतावरी के तुल्य, कठोर और सुगन्धित । फल गोल तथा नीलकृष्ण । उस से ३ बीज निकलते हैं । यह बदरीतुल्य बीज हाऊबेर प्रायः उष्ण, मधुरतिक्त, मूत्रल और प्लीहनाशक हैं । जलोदर, गुल्म, प्लीहा, यकृद्वृद्धि, सुज़ाक, अजीर्णादि में लाभकारी हैं । मात्रा २–३ माषे । फलों के स्रवण से एक तैल निकलता है, जिसे अंग्रेज़ी में Juniper oil (Oleum Juniperi) कहते हैं, यह पाश्चात्य चिकित्सा में जलोदर, सुज़ाक, वृक्करोगादि में मूत्रवृद्धि के लिए व्यवहार होता है । मात्रा–तैल ५–२० बिन्दु । भावमिश्र ने हपुषा के दो भेद कहे हैं, "तन्मध्ये प्रथमफलं मत्स्यवद्विस्रगन्धकम् । द्वितीयमश्वत्थफलसदृशं मत्स्यगन्धि च ।" अब केवल दूसरा भेद ही मिलता है ।

हपुषा विपुषा विस्रा विगन्धा शूलनाशनी[1] ।
यकृद्वर्णा[2]ऽश्वत्थफला वपुषा ध्वांक्षनासिका[3] ।
विस्रगन्धा[4] मत्स्यगन्धा कच्छूघ्ना विषहरणी[5] ॥१२३९॥

पर्याय—विस्रा (आमगन्धि, दुर्गन्धि), विगन्धा (विशेषगन्धयुक्ता), यकृद्वर्णा (यकृत्तुल्यघनरक्तवर्णा), मत्स्यगन्धा (मच्छली जैसी गन्ध वाली)॥ १२३९॥

हपुषा तुवरा तिक्ता कटूष्णा दीपनी गुरुः ।
ग्रहणीशूलगुल्मार्शोवातपित्तोदरापहा ॥१२४०॥

४०३. धातकी[6] (ताम्रपुष्पी, मदहेतुः) ।

Woodfordia floribunda.
A large evergreen shrub.
Flowers astringent and sedative.

(हिं०) धाय के फूल, (बं०) धाई फूल, (म०) धायरी, धायफूल, (गु०) धावनी ।
विशाल सदाहरित गुल्म ।
पुष्प कषाय तथा ग्राही ।

मदहेतुः सीधुपुष्पी धातकी मदनी मदा ।
ताम्रपुष्पी वह्निपुष्पा कुंजरा मद्यवासिनी ।
पार्शुभिक्षा पार्वतीया मदनीयातिनिःसहा ॥१२४१॥

पर्याय—मदहेतु (आसवारिष्ट में मद्योत्पत्ति का कारण), सीधुपुष्पी (मद्य-जनक पुष्प), धातकी (उत्पादक, मदकारक), मदनी (मदजनक), ताम्रपुष्पी (रक्तपुष्पी), मद्यवासिनी (मद्यगन्धा) ॥ १२४१ ॥

धातकी शीतला कट्वी कषाया मदकृल्लघुः ।
तृष्णापित्तास्रवीसर्पविषातिसारजन्तुजित् ॥१२४२॥
रूक्षं स्वादु विषघ्नं च तच्छाकं वीर्यं शीतलम् ।
पित्तलं दीपनं पथ्यमतिसारविनाशनम् ।
रूक्षं कषायं लघु च धातक्याः कुसुमं मतम् ॥१२४३॥

---

१. ब—कूलनाशनी । २. ब—यकृद्धना । यकृत्तुल्यघनवर्णेति भावः । ३. ब—ध्वांक्षनाशनी ।४. यू—विश्वगन्धा । ५. ब, यू—विषदूषणी ।

६. **धातकी** की विशाल झाड़ियां वा क्षुद्र वृक्ष उद्यानों में सर्वत्र मिल जाते हैं । **पत्र** अनार के तुल्य और **पुष्प** रक्त, दीर्घ और नल्याकार । शुष्क पुष्प बाज़ार में बहुत मिलते हैं । यह प्रायः आसवारिष्टों के निर्माण में काम आते हैं, क्योंकि इन पुष्पों की विद्यमानता से फेन और सुरासन्धान (Fermentation) शीघ्र होता है । यह पुष्प अनेक ग्राही और रक्तरोधक चूर्णों में पड़ते हैं । पुष्पचूर्ण (३–४ माषे) रक्तप्रदर, रक्तातिसार, श्वेतप्रदरादि में मधु वा दधि के साथ बहुत लाभकारी है । यह चूर्ण व्रणों पर रोपणार्थ छिड़का जाता है ।

४०४. लाङ्गली[1] (हलिनी, कलिकारी, गर्भपातिनी)।

Gloriosa superba. Plough-plant. Fire-plant. A glabrous herb with arched fleshy root-stock. Purgative, emetic, poisonous, tonic and stomachic.	(हिं०) कलिहारी, कलियारी, (बं०) विषलाङ्गला, (म०) कललावी, (गु०) कलगारी। मृदु हरितक मांसल कुंचित कन्द सहित। रेचक, वामक, विषमय रसायन।

लाङ्गली हलिनी सीरी विशल्या गर्भपातनी।

१. **लाङ्गली** का क्षुप हरिद्राक्षुप से बहुत सादृश्य रखता है, परन्तु उस की अपेक्षा अधिक ऊंचा होता है और पत्र कम चौड़े। काण्ड सीधा नहीं जाता, प्रत्युत कन्द से निकलते ही एक ओर को कुंचित हो जाता है, जिस से उस की आकृति लाङ्गलाकार वा हलाकार (Plough-like) बन जाती है, अतः लांगली, हलिनी आदि नाम। कन्द (Corm) भी सरलगामी नहीं होता, प्रत्युत भूमि में हलवत् कुंचित रहता है। **कन्द** श्वेत, मृदु, मांसल और तिक्त होता है। क्षुप के शिखर पर ५-६ अंगुल लम्बे चौड़े पुष्प लगते हैं, जो पाकानुसार हरित, पीत और रक्त हो जाते हैं। इस रक्तवर्ण पुष्प के कारण ही 'अग्निशिखा', 'वह्निजिह्वा' आदि नाम रखे गए हैं और उद्यानों में सौन्दर्यार्थ लगाए जाते हैं। लाङ्गली पंजाब के पर्वतों पर कहीं २ मिल जाती है, परन्तु बंगदेश और दक्षिण में बहुत होती है। कन्द प्रायः वर्षा ऋतु में फूटता है। कन्द को भूमि में यथासमय लगाने पर लाङ्गली लग सकती है। लांगलीपुष्प बहुत कुछ 'अकीक' से मिलता है। **गुण**— लांगली को **सप्त उपविषों** में गिना गया है, "अर्कक्षीरं स्नूहीक्षीरं लांगली-करवीरकौ। गुञ्जाहिफेनो धत्तूरः सप्तोपविषजातयः।" (भा० नि०)। अतः उस का अन्तःसम्मार्जन (Internal use) सावधानी से करना चाहिए। २ से ५ रक्ति तक की मात्रा एक वार और दिन में २-३ मात्राएं दी जा सकती हैं। इस का अल्पमात्रिक प्रयोग आमाशय को बल देकर क्षुधा बढ़ाता है। श्रीवाग्भट्ट ने उत्तरतन्त्र अ० ३९ में लांगलीरसायन का उल्लेख किया है। गण्डमाली, अर्श, पक्क शोथादि पर कलिहारी का लेप किया जाता है। सुखप्रसव और अपरापातन के लिए लांगली का लेप स्त्री की नाभी, वस्ति, वंक्षणसन्धि, हस्तादि पर किया जाता है। गर्भपातनार्थ लांगलीकल्क योनि में रखा जाता है। यह कल्क वृश्चिक, सर्प, कुक्कुटादि के दंश पर बांधा जाता है। शार्ङ्गधरोक्त कासीसादि तैल में भी यह पड़ती है। १-२ माषे कलिहारी खा लेने से वान्ति, रेचन, शूल, हृदयसादादि हो कर मृत्यु हो जाती है। लांगलीकन्द दो प्रकार का होता है, (१) गोल, (२) लम्बा और द्विभागयुक्त। पहले को स्त्रीलांगली और दूसरे को पुरुष लांगली कहा जाता है। गुणों में दोनों समान हैं।

इन्द्रपुष्पी वह्निजिह्वा प्रदीप्ताऽग्निशिखा शिखा।
कालिकारी वह्निमुखी प्रमाता पुष्पसौरभा[1] ॥१२४४॥

पर्याय—लाङ्गली (पुच्छवत् वा हलवत् कुंचित, वक्र, angled like a tail or plough), हलिनी (हलाकार, वक्र), सीरी (हलिनी, सीरो हलः), विशल्या (कण्टकरहित), वह्निजिह्वा (अग्निवत् अरुणपुष्पा), प्रदीप्ता (ज्वालातुल्य अरुण पुष्पों वाली), अग्निशिखा (अग्निवत् अरुण पुष्प शिखर पर हैं जिस के), शिखा (शिखर वाली) ॥ १२४४ ॥

लाङ्गली कटुका तिक्ता सक्षारा पित्तला सरा।
तीक्ष्णोष्णा गर्भहा लघ्वी वस्तिशूलनिबर्हणी।
बलासकुष्ठशोफार्शोव्रणजन्तुविनाशनी ॥१२४५॥

४०५. गिरिकर्णिका[2] (श्वेतापराजिता)।

A white variety of Clitoria ternatea. See No. 166.	सफेद कोयल। देखो अंक १६६।

अश्वखुरा श्वेतपुष्पी महाश्वेता गवादनी।
विषघ्नी कामदा श्वेतकटभी गिरिकर्णिका ॥१२४६॥
नीलस्यन्दी नीलपुष्पी श्वेतस्यन्दापराजिता।
वल्ली विभण्डा वशिका व्यक्तगन्धा च पाणिनी ॥१२४७॥
गिरिकर्णी हिमा तिक्ता ग्रहघ्नी कण्ठदृष्टिदा।
त्रिदोषशूलकुष्ठामव्रणशोफविषापहा ॥१२४८॥

४०६. लज्जालुः[3] (नमस्कारी, संकोचनी)।

Mimosa pudica. Sensitive plant. Humble plant. A sensitive prickly shrub. Alterative and aphrodisiac.	(हिं०) लाजवन्ती, छुई मुई, शर्मानी, (बं०) लाजुक, लज्जावती, (म०) लाजरी, (गु०) रिशामणी। सचेतन कंटकीय विटप।

---

१. ब—पुष्पसौभरा।

२. **गिरिकर्णिका** श्वेतापराजिता का नाम है। अंक १६६ में अपराजिता के दो भेद श्वेत और नील बताए थे। वहां केवल नीलापराजिता के पर्यायादि दिए गए हैं और यहां श्वेतापराजिता के। गुण और प्रयोग नीलापराजितावत् समझें।

३. **लज्जालु** का कंटकीय क्षुद्र विटप अपने सूक्ष्म बीजों से सर्वत्र लग जाता है। लंका में वा अन्यत्र भी कहीं २ यह स्वज मिलता है। लंका में मार्गों के इतस्ततः वा क्षेत्रों में बहुत होता है। **पत्र** अति सूक्ष्म, शमी (जंड) वा खदिर (खैर) के समान। स्पर्श करने पर पत्र संकुचित हो जाते हैं, जिस से लज्जा का भाव प्रकट होता है। मूल, काण्ड एवं पुष्प अरुण वर्ण होते हैं। **फली** १ अंगुल लम्बी और सूक्ष्म कंटकयुक्त। इस से सूक्ष्म बीज निकलते हैं। यह बीज वृष्य

नमस्करी रक्तपादा समङ्गाऽञ्जलिकारिका ।
शमीपत्रा रक्तमूला[1] रुहा खदिरीकाऽरुणा ।
लज्जास्पृक्का गन्धकारी कण्डूकार्यस्रारोधनी ॥१२४९॥

पर्याय—नमस्कारी (नमस्कार करने वाली, लज्जा से झुक जाने वाली), रक्तपादा (रक्तमूला), शमीपत्रा (शमी जड के तुल्य पत्रों वाली), खदिरीका (खदिरतुल्य पत्रों वाली), अरुणा (रक्ताभा),लज्जा (लज्जावती), स्पृक्का (स्पर्शवती), अस्रारोधनी (प्रदरनाशक) ॥१२४९॥

नमस्कारी हिमा तिक्ता कषाया कफपित्तहा ।
योनिरोगमतिसारं रक्तपित्तं च नाशयेत् ॥१२५०॥

४०७. कोकिलाक्षः[2] (इक्षुरकः, वज्रकण्टकः) ।

Hygrophila spinosa.

A marshy spinous herb.

Seed mucilaginous and aphrodisiac.

Roots and leaves cooling and diuretic.

(हिं०) तालमखाना, कुलियाकांटा, कैलया, (बं०) कुले खाड़ा, कुले कांटा, शूलमर्दन, (म०) विखड़ा, (गु०) पखरो ।

जलासन्न कंटकीय हरितक ।
बीज पिच्छिल तथा वाजीकर ।
मूल तथा पत्र शीत, मूत्रल ।

और वीर्यस्तम्भक हैं । पत्र और मूल वा सर्वांग क्षुप रक्तशोधक है, अतः कुष्ठादि में उन का चूर्ण दुग्ध से दिया जाता है । पत्र ग्राही तथा व्रणरोपक हैं । पत्रकल्क अण्डवृद्धि (Hydrocele) पर बांधा जाता है । मात्रा—पत्र वा मूल का चूर्ण ५–६ माषे, बीज १–३ माषे ।

१. ब—समपात्रा समूला ।

२. **कोकिलाक्ष** का कंटकीय क्षुप जलासन्न भूमि पर होता है और दक्षिण के कोकण विभाग में अधिक होता है । **क्षुप** ४–५ फुट ऊंचा, **काण्ड** इक्षुवत् एकाकी, शाखारहित, पर्वयुक्त, चतुष्कोण और पतले । पर्वग्रन्थि (Node) पर काण्ड के चारों ओर ५–६ लम्बे पत्र, और १ इंच लम्बे कांटे । इसी ग्रन्थि पर पत्रों से ऊपर काण्ड के चारों तरफ पुष्प लगे रहते हैं । यह वर्ण में नील वा गुलाबी, कांटेदार और आकृति में बहुत कुछ द्रोणपुष्पी (अंक १५९) के तुल्य जानें । इन पुष्पों के पकने पर क्षुद्र, रक्ताभ बीज निकलते हैं, जिन्हें **तालमखाना** कहा जाता है । मूल एवं पत्र शीत, पिच्छिल और मूत्रल हैं, अतः उन का क्वाथ वा स्वरस अश्मरी, रक्तपित्त, वातरक्त, मूत्रकृच्छ्रादि में दिया जाता है । **बीज** मुख में डालने पर ईसबगोलवत् फूल कर पिच्छिलता के कारण जिह्वा और तालु को चिपट जाते हैं, अतः यह वातकास, मूत्रकृच्छ्र, रक्तपित्तादि में दिए जाते हैं, परन्तु उनका बहुधा उपयोग वीर्यस्तम्भनार्थ किया जाता है । **मात्रा**—२–४ माषे चूर्ण दुग्ध वा जल से, मूल-

कोकिलाक्षो भिक्षुरिक्षुबालिका तैलकण्टकः[1]।
अथेक्षुरः[2] क्षुरोऽप्यण्डः क्षुरकश्चेक्षुगन्धिका ॥१२५१॥
कोकिलाक्षो हिमस्तिक्तः स्वाद्वम्लः स्निग्धपिच्छलः।
वृष्यो वातामवाताश्मतृष्णादृष्टिखुड़ास्रजित् ॥१२५२॥
इक्षुरस्य दलं स्वादु तिक्तं शोफविषापहम्।
शूलपाण्डूदरानाहवातमूत्रविबन्धनुत् ॥१२५३॥

खुडास्र—वातरक्त, वा खुड—वातरक्त, अस्र—रक्तपित्त ॥१२५१-५३॥

४०८. नदीकान्ता[3] ?

स्यान्नदी कामुको रक्तमञ्जरी निम्नजस्तथा।
जलदस्तु नदीकान्तस्तोयजातः प्रतीबलः ॥१२५४॥
नदीकान्तःकटुस्तिक्तः कषायो विनियच्छति।
बलासमेदोमेहास्रक्रिमिशोफोदराणि च ॥१२५५॥

४०९. मेषान्त्री[4]।

मेषान्त्री वृषगन्धा च वस्तान्त्री वृत्तपत्रिका।
अजान्त्री छगलान्त्री मेषामानेयकः स्मृतः ॥१२५६॥
वृषगन्धा लघुस्तिक्ता कषाया मधुरा हिमा।
कटुपाका सरा श्लेष्मपित्तघ्नी वातकोपनी ॥१२५७॥

क्काथ ५-२० तोले। बीज केवल वा अन्य तत्सम द्रव्यों, यथा मूसली, शतावरी, अश्वगन्धा, लज्जालुबीज, बलाबीज (बीज बन्द ?) आदि से मिला कर व्यवहार होते हैं। उनके साथ समगुण शर्करा, थोड़ी सी एलायची तथा कर्पूर मिला दिया जावे, तो यह स्वप्नदोष (Nocturnal emissions), शुक्रस्रावादि के लिए एक उत्तम योग होगा। कोकिलाक्ष रक्त और श्वेत पुष्पों के कारण कहीं २ दो प्रकार के मिलते हैं।

१. द–तिलकंटकः।

२. द–कुवेराक्षुः।

३. **नदीकान्ता** काकजंघा का पर्याय है, क्योंकि वह नदी के तट पर ही प्रायः होती है, परन्तु काकजंघा पीछे अंक १७५ में वर्णित हो चुकी है, उस का पुनरुल्लेख व्यर्थ है। संभव है कि यह कुछ और हो, क्योंकि ऊपरोक्त पाठ में काकजंघा वा उस के अन्य प्रसिद्ध काकपूर्वक नामों में से यहां एक भी नहीं। नदीकान्ता ह्रस्वकारवेल्लक वा जम्बु वृक्ष को भी कहते हैं।

४. **मेषान्त्री**–इस नाम से कोई प्रसिद्ध क्षुप अब नहीं मिलता। बंगाल में एक क्षुप 'छागल बँटे' नाम से मिलता है, संभव है यही मेषान्त्री हो। किसी ने इसको Convolvulus artgentens नाम दिया है, जो इशकपेचा के समान एक नदीतटवर्ती लता है। मेषान्त्री को मेषशृंगी (अ० १८४) से पृथक् समझना चाहिए।

४१०. पर्पटः[1] (क्षेत्रपर्पट) ।

Fumaria parviflora.
An annual glabrous herb.
Bitter, diuretic, diaphoretic, febrifuge and anthelmintic.

(हिं०, म०) पित्तपापड़ा, (फा०) शाहतरा, शातरा, (बं०) खेतपापड़ा, (गु०) पित्तपापड़ो । वार्षिक मृदु हरितक । तिक्त, मूत्रल, स्वेदल, ज्वरघ्न, कृमिनाशक

पर्पटो वरतिक्तः स्यात्पित्तहा शीतवल्लभः ।
चर्माह्वयो रजोरेणुः कवचश्चर्मकण्टकः ।
सूक्ष्मपत्रोऽथ सृष्टीकस्त्रियष्टिर्यवकण्टकः ॥१२५८॥

पर्याय—वरतिक्त (श्रेष्ठ तिक्त), पित्तहा (पित्तनाशक), शीतवल्लभ (शीतकालज), सूक्ष्मपत्र (छोटे २ कटे हुए पत्रों वाला) ॥१२५८॥

पर्पटः कटुकः पाके रसे तिक्तो हिमो लघुः ।
संग्राही वातलो हन्ति दाहपित्तकफज्वरान् ।
पिपासारोचकच्छर्दिरक्तपित्तमदभ्रमान् ॥१२५९॥

४११. जयन्ती[2] (जया) ।

Sesbania aegyptica.
A short tree-like plant.
Bitter, astringent, anthelmintic and suppurative.

(हिं०) जाही, जेतरासिन, बलमोटा, (बं०) जैंती गाछ, (म०) शिंभारी, (पं०) जन्तर, जैन्तर, जैंत ।
तरुवत् ह्रस्व पादप ।
तिक्त, ग्राही, कृमिघ्न, व्रणपाचक ।

---

१. **पर्पट** का क्षुद्र मृदु हरितक शीतकाल में यव और गोधूम के क्षेत्रों में बाहुल्य से देखा जाता है । ग्रीष्म ऋतु में शुष्क हो जाता है, परन्तु मूल भूमि में दबी रहती है, जो वर्षा होने पर फूट पड़ती है । **पत्र** मृदु, कटे हुए और सूक्ष्म, जो सर्वपरिचित हैं । पर्पट का प्रायः सर्वांग क्षुप काम आता है और शुष्क रूप में बाजार में मिलता है । इस का **क्वाथ** (५–१० तो०) प्रायः ज्वर, रक्तपित्त, मन्दाग्नि, अतिसार, उदरकृमि, कुष्ठ, व्रणादि त्वग्रोगों में दिया जाता है । इस का **अर्क** भी ज्वरादि रोगों में काम आता है । वंगीय वैद्य एक अन्य हरितक (Oldenlandia Corymbosa) को क्षेत्रपर्पट कहते हैं, जो आकार में ऊपरोक्त पर्पट से सर्वथा भिन्न है । यद्यपि गुण दोनों के प्रायः समान हैं । यह हरित एक फुट ऊंचा होता है, पत्र ३–४ अंगुल लम्बे और ½ अंगुल चौड़े, सीधे, खर और रोमश । पूर्वोक्त पर्पट श्रेष्ठ है । पर्पट जीर्ण वा मन्द ज्वर में लाभकारी है और क्षुधावर्धक है ।

२. जयन्ती का ह्रस्व तरु वा दीर्घ क्षुप सब जगह मिलता है । पंजाब में बहुत होता है । उंचाई ८–१० फुट वा अधिक । **पत्र** इमली के तुल्य सूक्ष्म, तिक्त और विशेष गन्ध से युक्त । फली लम्बी, जिस में २५–३० क्षुद्र बीज निकलते हैं । क्षेत्रों

बला मोटा सूक्ष्ममूला जयन्ती विजया जया।
हरिता चैव विज्ञेया सूक्ष्मपत्रापराजिता ॥१२६०॥
बला मोटा कटुस्तिक्ता लघुः पित्तकफापहा।
मूत्रकृच्छ्रं विषं हन्ति विवादे कुरुते जयम् ॥१२६१॥

हरिद्राचतुष्टयम्[1]।

४१२. हरिद्रा[2] (रजनी, निशा, योषितिप्रिया)।

Curcuma longa.	(हिं०) हलदी, (बं०) हलुद, (पं०, गु०) हलदर, (म०) हलद।
The Turmeric.	
An annual tubrous herb.	वार्षिक कन्दमय विटप।
Aromatic, astringent, stomachic and also used externally.	सुरभि, ग्राही, पाचक तथा वहिःसम्मार्जनीय।

हरिद्रा वर्णिनी गौरी पीता रोमशमूलिका।
विष्टेष्टा हरिता वैश्या रजनी रञ्जनी निशा ॥१२६२॥
पिराडं भद्रा भद्रलता पीताङ्गी वरवर्णिनी।
दीर्घरंगा वर्णवती पिण्डा वर्णविलासिनी ॥१२६३॥

पर्याय—हरिद्रा (पीत रंग वाली हरित्-हरी वा पीली), वर्णिनी (रंगमय), रोमशमूलिका (रोमदार मूल वाली), रजनी (रात्रि, निशा), रञ्जनी (रंगदा) निशा (रात्रि), वरवर्णिनी (उत्तम रंग देने वाली) ॥१२६२–३॥

निशा तिक्ता कटु रूक्षा वर्ण्योष्णा कफपित्तहा।
पाण्डुव्रणापचीमेहत्वग्दोषविषशोफजित् ॥१२६४॥

के इतस्ततः इसकी बाड़ लग जाती है, परन्तु यह २–३ वर्ष से अधिक नहीं रहता, शीत काल में पत्ररहित हो जाता है। प्रतिश्याय, कफज्वरादि श्लैष्मिक रोगों में, जहां नासास्रावादि हो, जयन्ती का पत्रक्वाथ वा शाक बहुत लाभ करता है। कोष्ण पत्रकल्क व्रण, मेढ्रपाक, अण्डवृद्धि, सन्धिशोथादि पर बांधा जाता है। स्वरस (१ तो०) कृमिनाशक है। मधुमेह तथा सोमरोग में जयन्तीपत्रक्वाथ (५ तो०) बहुत लाभकारी है। मूत्र और शर्करा दोनों कम हो जाते हैं। इन रोगों में जयन्तीपत्रकल्क आटे में मिला कर रोटी दे सकते हैं। जयन्तीमूलचूर्ण (५–६ माषे) दुग्ध से खिलाने पर श्वित्र दूर होता है। काञ्जीपिष्ट जयन्तीपुष्प पुराणगुड़सहित रजोदर्शन के पश्चात् ३ दिन तक खाने से स्त्री को गर्भ नहीं हो सकता है (भा० योनि०)।

१. **हरिद्राचतुष्टय** में हरिद्रा, वनहरिद्रा, दार्वी और आम्रगन्धि हरिद्रा सम्मिलित हैं, जिन का वर्णन आगे देखें। शास्त्रों में प्रायः 'हरिद्राद्वय' का उल्लेख मिलता है, जिस से हरिद्रा और दार्वी अभिप्रेत हैं।

२. **हरिद्रा** का क्षुप कर्चूर, अकीक वा आर्द्रक के तुल्य होता है। शुष्क पीतवर्ण **कन्द** सर्वत्र व्यञ्जन में वर्ण, रक्तशोधन तथा पाचन के लिए डाला जाता है।

४१३. वनहरिद्रा[1] (अरण्यरजनी)।

Curcuma aromatica.

Wild turmeric.

Form and uses as before.

(हिं०) वनहलदी, जंगली हलदी, (बं०) बनहलुद, (म०) रान हलद, (गु०) वन हलदर ।

क्षुपाकार तथा गुण पूर्ववत् ।

अरण्यरजनीकन्दः कुष्ठवातविनाशनः ।
सर्वदोषविषघ्नश्च हिध्माश्वसनकासजित् ॥१२६५॥

४१४. आम्रगन्धिहरिद्रा[2] ।

Curcuma amada.

Mango ginger.

Cooling, carminative and stomachic.

(हिं०) अम्बिया हलदी, आमा हलदी, (बं०) आम आदा, (म०) आंबे हलद, (गु०) आंबा हलदर, (पं०) चवां हलदी ?

शीत, वातानुलोमक, पाचक ।

मद्रास और वंगदेश में हरिद्रा प्रायः आर्द्र मिलती है, जिस की पिष्टि व्यञ्जनों में छोड़ी जाती है । हरिद्रा क्षुप कन्द से ही उत्पन्न होता है । हरिद्रा स्वरस मधुमिश्रित वंगीय वैद्य प्रायः प्रमेह में चन्द्रप्रभावटी आदि के साथ अनुपान रूप में देते हैं । यह स्वरस कुष्ठ तथा कृमिरोगों में भी लाभकारी है । व्रणपाचनार्थ हरिद्राचूर्ण पुलटिसों में डाला जाता है । जलौकाप्रवृत रक्त को बन्द करने के लिए हरिद्राचूर्ण दंश पर डाला जाता है । शिरोऽर्त्ति में हरिद्रालेप मस्तक पर किया जाता है । वृश्चकदंश पर हरिद्राधूम्र (Turmeric fumes), जो हरिद्राचूर्ण को अंगारों पर डालने से उत्पन्न होगा, देने से वेदना शान्त होती है । यह धूम्र मूर्च्छा में संबोधन के लिए लाभकारी है । हरिद्रा का धूम्रपान (हुक्का यन्त्र द्वारा) हिक्का को तुरन्त बन्द कर देता है । प्रतिश्याय में हरिद्राधूम्र से पुष्कल नासास्राव हो कर रोग दूर हो जाता है । हरिद्रा के तनुविलयन को अभिष्यन्द में आश्च्योतन करने से नेत्रार्त्ति दूर हो जाती है । हरिद्रा में एक सुरभि तैल (Turmeric Oil) और एक पीत रंग (Curcumin) होता है । यह दोनों हरिद्रा के प्रधान सत्त्व हैं । हरिद्रापुष्पपिष्टि दद्रु, पामादि पर लगाई जाती है ।

१. **वनहरिद्रा** हरिद्रा का स्वज भेद है, कन्द अधिक स्थूल और कर्पूरगन्धि, अतः उसे कहीं २ कर्पूर हलदी (कर्पूर हरिद्रा) भी कहा जाता है । उस के गुण और प्रयोग साधारण हरिद्रा के तुल्य समझें।

२. **आम्रगन्धिहरिद्रा** वंग और बम्बे प्रान्तों में बहुत होती है । वहां बाज़ारों में आर्द्र मिलती है । लोग उस से चटनी और अचार बनाते हैं । यह कन्द दूर से आर्द्रक तुल्य प्रतीत होता है, और तोड़ने पर आम्रवत् गन्ध देता है । आमावस्था में भीतर से श्वेत और पकने पर नारंगी के तुल्य वर्णवान् । क्षुप की आकृति हरिद्रा वा

आम्रगन्धिहरिद्रा तु शीतला वातला तथा ।
पित्तहृत्स्वादु तिक्ता च वृष्या स्यात्सन्निपातजित् ॥१२६६॥

४१५. दारुहरिद्रा[1] (दार्वी, पीतदारु) ।

Berberis asiatica.

A spinous hilly shrub.

Bitter, tonic, diaphoretic, antiperiodic and aperient.

(हिं०) दारु हलदी, (बं०) दारु हरिद्रा, (म०) दारु हलद, (गु०) हलदर । सकंटक पार्वतीय गुल्म । तिक्त, रसायन, स्वेदल, ज्वरघ्न, मृदुरेचक ।

कटंकटेरी पर्जन्या दार्वी दारुनिशा निशा ।
पीतदारु हरिद्रा स्यात्पीतद्रुः पीतचन्दनम् ।
पचंपचा हेमकान्तिः पीतदारु सुदारु च ॥१२६७॥

पर्याय—दार्वी (काष्ठ), दारुनिशा (काष्ठिक हलदी), पीतदारु (पीतकाष्ठ), पीतद्रु (पीतवृक्ष), हेमकान्ति (स्वर्णवर्णा), सुदारु (सुन्दर पीत काष्ठ) ॥१२६७॥

तद्वद्दार्वी विशेषेण कर्णनेत्रास्यरोगजित् ॥१२६८॥

आर्द्रक के तुल्य । कई लोग इसे भी कर्पूरहरिद्रा कह देते हैं । शुष्क कन्द वा चूर्ण पंजाब में **चवां हलदी** के नाम से मिलता है, जिसे मुसलमान लोग हलवे में पीतवर्ण के लिए डालते हैं । चवां हलदी रक्तशोधक है और श्वित्र(Leucoderma)में इस का हलवा दिया जाता है । १ छटांग चवां हलदी, ½ सेर सूजी, १ सेर खांड, १ सेर घृत तथा पर्याप्त जल । यह हलवा शीतकाल में प्रयोग करना चाहिए, क्योंकि यह उष्णवीर्य है । यह शीत ऋतु में १०–१५ दिन तक नहीं बिगड़ता ।

१. **दारुहरिद्रा** की कांटेदार झाड़ी ६–७ फुट ऊंची होती है, जो भोटान, नेपाल, अलमोड़ा, नैनीताल, शिमला, डेरादूनादि पर्वतों पर बहुत मिलती है । मूल से ही अनेक शाखाएं निकल आती हैं, जो सब भूमि की ओर झुकी रहती हैं । शाखासमूह को ही काण्ड समझना चाहिए । बाह्य वल्कल पांशुवर्ण, परन्तु भीतर से काष्ठ और मूल का रंग पीला होता है । इस पीत रंग के कारण ही इस क्षुप को दारुहरिद्रा कहा गया है, अन्यथा हरिद्रा और यह सर्वथा भिन्नाकार क्षुप हैं । 'दारु' शब्द इस भेद को स्पष्ट कर देता है, क्योंकि हरिद्रा कन्द है और 'दारुहरिद्रा' पीत काष्ठ । **पत्र** कठोर, किनारा सरल परन्तु कांटेदार, **पुष्प** बृहत् पीतवर्ण । औषधार्थ प्रायः मूलकाष्ठ एवं काण्ड का स्थूल अधोभाग काम आता है । शेष शाखाएं घरों में ज्वलनार्थ काम आती हैं । दारुहरिद्रा प्रमेह, ज्वर, अर्श, नेत्ररोग, शोथादि अनेक रोगों में काम आती है। यह प्रायः क्वाथों,चूर्णों वा अन्य घृतादि योगों में पड़ती है । मात्रा-क्वाथ ५–१० तो०, घनक्वाथ १–२ तो०, दारु हरिद्रा में प्रधान सत्त्व एक पीत तिक्त द्रव्य Berberine है, जो रसक्रिया द्वारा प्राप्त होता है । दार्वी का प्रसिद्धतम योग रसाञ्जन है, जो आगे वर्णित है । उपरोक्त क्षुप के अतिरिक्त दार्वी के अन्य दो भेद

४१६. रसाञ्जनम्[1] (दार्वीरसक्रिया) ।

Solid extract of Berberis asiatica. (No. 415)

(हिं०) रसौत, रसौंन, (बं०) रसवत्, (म०) रसांजन, (गु०) रसवती, घनीभूत दार्वीक्वाथ (अं० ४१५) ।

दार्वीक्वाथसमं क्षीरं पादं पक्त्वा यथा घनम् ।
तदा रसाञ्जनं ख्यातं नेत्रयोः परमं हितम् ॥ (भा० नि०) ॥

अर्थ—दारुहरिद्रा के क्वाथ के समान गो वा अजा का दुग्ध मिलाकर पकाओ, जब पाद शेष रहे वा क्वाथ घन (गाढ़ा) हो जावे, तब उस (घनीभूत क्वाथ) को **रसाञ्जन** (दार्वीरसस्य क्वाथस्याञ्जनं) कहते हैं। यह नेत्रों के लिए बहुत लाभकारी है।

रसाञ्जनं कटु श्लेष्मविषनेत्रविकारनुत् ।
उष्णं रसायनं तिक्तं छेदनं व्रणदोषजित् ॥ (भा० नि०) ॥

हैं, B. Lycium तथा B. arista, यह तीनों परस्पर मिलते हैं और दार्वी कहलाते हैं। इन्हें एक रक्तश्याम मधुराम्ल फल आता है, जो **कश्मल** कहलाता और खाया जाता है। इसकी आकृति और गुण **ज़िरिश्क** (Berberis vulgaris) से मिलते हैं, यह पित्तहर और तृष्णाशमक है।

१. **रसाञ्जन** को श्री कैयदेव ने यद्यपि आगे धातुवर्ग में अञ्जनों के साथ वर्णन किया है। तथापि यहां उसकी समीचनता देखकर भावमिश्रोक्त श्लोक उद्धृत किए गए हैं, जिन से रसाञ्जन की रचना स्पष्ट हो जाती है। दार्वी की मूल तथा अधरकाण्ड को खण्डित करके १६ गुणा जल में उबाला जाता है। जब चतुर्थांश जल शेष रहता है, तो क्वाथ छानकर पुनः उसे मृदु अग्नि पर घन किया जाता है। दुग्ध डालने का विधान यद्यपि शास्त्र में दिया है, तथापि पहाड़ी लोग, जो रसाञ्जन बनाते हैं, दुग्ध नहीं डालते वा अत्यल्प डालते हैं। जब क्वाथ गुड़वत् घन हो जावे, उसे पत्रों के छोटे २ कोषों (दोनों) में भर देते हैं। शीत होने पर रसाञ्जन जमकर दृढ़ हो जाती हैं, तब इसे अमृतसरादि नगरों को विक्रयार्थ भेज देते हैं। एवं निर्मित रसाञ्जन में बालु, पत्र, मृत्तिकादि अपद्रव्य होते हैं, अतः बाज़ारी रसाञ्जन को व्यवहार से पूर्व शुद्ध कर लेना चाहिए। विधि यह है, "तोयेऽत्युष्णे परिक्षिप्य द्रवीकुर्याद्रसाञ्जनम् । वाससा स्रावयित्वा च शोषयं भानुरश्मिना ॥ एवं विशोधितं सर्वकर्मसु परियोजयेत् । विशुद्धं नाशयेद्व्याधीन्नाविशुद्धं कदाचन् ॥" रसाञ्जन को जल में घोलने और वस्त्र में छानने से मृत्तिका आदि स्थूल द्रव्य पृथक् होकर शेष शुद्ध रसाञ्जनक्वाथ रह जाता है, जो धूप में सूखने पर घन हो जावेगा। इस शुद्ध रसाञ्जन को **रसाञ्जनसत्त्व** (सत रसौंत) भी कहते हैं, जो कहीं २ बाजार में मिल जाता है। रक्तार्श, रक्तप्रदर, उदरकृमि, प्रवाहिका, कामलादि रोगों में रसाञ्जन खिलाई जाती है। मात्रा ४ रक्ति से १ माषा तक मक्खन वा जल से। चातुर्थक ज्वर (Tertian fever) में ३–४ दिन तक लगातार रसाञ्जन २—३ मात्रा प्रतिदिन खिलाने से ज्वर रुक जाता है। अन्येद्युष्क (Quotodian)

४१७. अतिविषा[1] (श्वेतकन्दा, भङ्गुरा)

Aconitum heterophyllum.	(हिं०) अतीस, (पं०) पतीस, (बं०)।
Non-poisonous aconite.	आतइच, (मं०), अतिविष, (गु०)
An erect leafy herb.	अतिवख, अतिविष।
Root bitter, astringent, tonic	उच्छ्रित पत्रमय हरितक।
and antiperiodic.	कन्द तिक्त, ग्राही, रसायन, ज्वरघ्न।

ज्वर में भी लाभ होता है। रसाञ्जन खाने के पश्चात् त्वचा स्वेद से आर्द्र हो जाती है। क्षुधा लगती है और पाचक शक्ति बढ़ती है। रसाञ्जन का प्रयोग बच्चों के लिए बड़ा लाभकारी है। तिक्त रससे उनका स्वास्थ्य बढ़ता है, दुग्ध पचता है, शौच ठीक आता है और उदरविकार, कृमि आदि नहीं होते। शुद्ध रसाञ्जन को मूलकस्वरस से भावना देकर चणकतुल्य गोलियां बना ली जावें, तो यह २—३ गोलियां प्रातःकाल जल के साथ निगलने से रक्तार्श ठीक हो जाता है। रसाञ्जन का तनु विलयन (Lotion) नेत्र में छोड़ने से वा घन विलयनको शलाका से नेत्रों में लगाने से अश्रुस्राव होकर नेत्र शुद्ध हो जाता है। यह कुक्कड़ों में फटकड़ी के साथ प्रयोग होता है। रसाञ्जन, फटकड़ी और अहिफेन को जल में घिसकर नेत्राभिष्यन्द में नेत्रपुट (Eye-lids) के ऊपर बाहर लेप करने से वेदना शान्त होती है। रसाञ्जन के तनु विलयन से कर्ण, योनि, लिंग, गुदा, व्रणादि का प्रक्षालन और मुखरोगों में गण्डूष कर सकते हैं।

१. अतिविषा दो प्रकार की है, (१) **श्वेतकन्दा**, और (२) **कृष्णकन्दा**, जिस के पर्याय प्रतिविषा से उपविषाणिका तक मूलपाठ में दिए गए हैं। अन्य शास्त्रों में रक्त और पीत भेदों का भी वर्णन है, परन्तु अब केवल **शुक्लकन्दा अतिविषा** मिलती है। कन्द बाहर से पाशुंवर्ण होता है, परन्तु तोड़ने पर भीतर से दुग्धवत् श्वेत और स्वाद में अतितिक्त। इस अतिविषा का क्षुप २—३ फुट ऊंचा होता है, **पत्र** अधिक और बड़े, परन्तु बहुशः कर्त्तित, **पुष्प** नील वा हरित। यह क्षुप काश्मीरादि पर्वतों पर मिलता है। इस की मूल का नाम ही अतिविषा है। यद्यपि 'अतिविषा' नाम घोर विष का वाचक है, तथापि यह विष नहीं वा उपविष है। अतिसार में शुंठी, मुस्तकादि से मिला कर दी जाती है। विषम ज्वर को रोकने के लिए १ वा १½ माषा की २—३ मात्राएं दिन में दी जा सकती हैं। अजीर्ण में अग्निसन्दीपनार्थ २—३ रक्ति की मात्रा पर्याप्त है, जो प्रातःकाल जल से दी जा सकती है। कृमि, कास, अतिसारादि में साधारण मात्रा ४—६ रक्ति है। यदि ४—५ माषे वा अधिक अतिविषा खिला दी जावे, तो गलशोषादि विषलक्षण प्रकट हो जाते हैं। डिमक् साहब लिखते हैं, कि अतिविषा का वर्णन आयुर्वेद में चक्रदत्त, शार्ङ्गधरादि नवीन ग्रन्थों में मिलता है। यह कथन अशुद्ध है, क्योंकि चरक और सुश्रुत में कई स्थलों पर अतिविषा का विधान है। यह बच्चों को एक रक्ति की मात्रा में ज्वर, अतिसार,

अतिविषा शुक्लकन्दाऽपरा प्रतिविषा विषा ।
घुणप्रिया घुणा माद्री श्यामकन्दासितारुणा ।
भंगुरोपविषो विश्वशृंगी चोपविषाणिका ॥१२६९॥

पर्याय—अतिविषा (तीव्र विष), शुक्लकन्दा (श्वेत कन्द वाली), प्रतिविषा (विषघ्न—Counter-poison), विषा (विषमयकन्द), घुणप्रिया (घुणों से शीघ्र खाई जाने वाली), उपविषा (गौण विष), शृंगी (शृंग्याकार horn-like), उपविषाणिका (क्षुद्र शृंग के तुल्य) ॥ १२६९ ॥

विषा सोष्णा लघुस्तिक्ता दीपनी पाचनी जयेत् ।
कफपित्तातिसारामविषकासवमिक्रुमीन् ॥ १२७० ॥

४१८. कटुरोहिणी[1] (कटुकी, कट्वी) ।

Picrorhiza Kurrooa.	(हिं०) कुटकी, कौड़, कड्डू, (बं०) कट्की, (म०) कुटकी, (गु०) कड्डू ।
A low hairy herb.	ह्रस्व रोमश हरित ।
Root bitter, aperient, chologogue and antiperiodic.	मूल तिक्त, रेचक, पित्तसारक, ज्वरहर ।

कट्वी तिक्ता मत्स्यपित्ता मत्स्यविन्ना छिजाङ्गिकी ।
कुष्ठभेदा काण्डरुहा चक्रांगी जननी कटुः ॥१२७१॥
कटुका मत्स्यशकला रोहिणी शकुलादनी ।
अशोकरोहिणी तिक्ता रोहिणी कटुरोहिणी ॥१२७२॥

पर्याय—कट्वी (कड़वी), तिक्ता (कड़वी–bitter), काण्डरुहा (गुडूचीवत् काण्ड से उगने वाली), चक्रांगी (चक्रवत् चिह्नयुक्त), मत्स्यशकला (मच्छली के समान छिलकों वाली), शकुलादनी (मच्छली को खाने वा मारने वाली) ॥

कृमि, कासादि में दे सकते हैं । अतिविषा वत्सनाभ (Aconite) की जाती में सम्मिलित है, जिस पर लेख अन्यत्र देखें ।

१. **कटुरोहिणी** हिमालय में काश्मीर से सिक्कम तक उत्पन्न होती है । मूल अंगुली तुल्य स्थूल, तथा पर्वमय और ८–१० इंच लम्बी भूमि में दबी रहती है, और पत्र तथा पुष्प उस से निकल कर भूमि के बाहर आ जाते हैं । कट्वी रंग में कृष्ण, भृशभंगुर, अतितिक्त, और ग्रन्थियों वा पर्वों से युक्त होती है । ज्वर, जलोदर, कामला, पाण्डु, आमवात, अजीर्णादि में इस का चूर्ण (३ माषे) वा क्वाथ ५–१० तो० दिया जाता है । यह रेचक और यकृत् से पित्त निकाल कर पीले दस्त लाता है । तिक्त रस के कारण मन्द विषम ज्वरों में अतिविषावत् दी जा सकती है । अल्प मात्रा (१ माषा वा कम) में अग्निसंदीपक, आमपाचक, और रसायन है । बच्चों को कृमि में दे सकते हैं । पंचतिक्तादि अनेक ज्वरघ्न योगो में कट्वी पड़ती है । कट्वी में तिक्त सत्व Picrorhizin है ।

कटुका शीतला तिक्ता कटुपाकरसा लघुः।
भेदनी दीपनी रूक्षा कफपित्तज्वरापहा।
प्रमेहश्वासकासास्रदाहकुष्ठकृमिन् जयेत् ॥१२७३॥

४१६. लोध्रः[1] (शावरः, तिल्वकः)।

Symplocos Crataegoides.
A small evergreen tree.
Bark astringent, tonic and suppurative.

(हिं०) लोध, पठानी लोध, सावर लोध, (बं०) लोधकाष्ठ, (म०) लोध, (गु०) लोदर।
ह्रस्व सदाहरित वृक्ष।
वल्क ग्राही, रसायन, व्रणपाचक।

(१) तिरीटस्तिल्वको रोध्रः कानीनः (२) पट्टिकाऽपरः।
श्वेतरोध्रः शावरको घनत्वक्कोऽक्षिभेषजम्।
जीर्णबध्नो बृहत्त्वक्को मार्जनः सन्तरोद्भवः ॥१२७४॥

पर्याय—(१) तिरीट से कानीन तक **तिल्वक** के नाम हैं, यह रेचक लोध्र है, (२) **पट्टिका** लोध्र—पट्टिका (चपटी), श्वेतरोध्र (श्वेत वल्कल वाली लोध्र), शावरक (शावरदेशज), घनत्वक्कः (स्थूल वल्कल), अक्षिभेषज (नेत्रौषधि) ॥१२७४॥

---

[1] लोध्र शास्त्रों में दो प्रकार की है, (१) **तिल्वक**, जिसे चरक ने तिल्वक-कल्प (क० अ० ६) में शोधक (रेचक) माना है और उसका लेटिन नाम S. racemosa है। यह वृक्ष छोटा नागपूर, आसाम, ब्रह्मादि के पर्वतों पर मिलता है। पत्र बड़े २, पुष्प पीत सुगन्धित, परन्तु अब इस वृक्ष की त्वक् बाज़ार में नहीं मिलती; (२) **श्वेत रोध्र** वा **पट्टिका लोध्र** (पठानी लोध्र), यह लोध्र S. Crataegoides की त्वक् है, जो बाज़ार में आज कल मिलती है। इस का वृक्ष तिल्वक से छोटा होता है, परन्तु वल्कल अधिक स्थूल, भंगुर और पांशुवर्ण वा श्वेत। ऊपरोक्त पाठ में 'पट्टिका' और इस से आगे सब नाम इसी लोध्र के हैं। यह लोध्र कषाय और ग्राही है, तथा अतिसार और रक्त प्रदर में दी जाती है। इस के लेप से व्रण पक जाते हैं वा लीन हो जाते हैं। शिथिल और स्रावी दन्तमांस में इस के गण्डूष से लाभ पहुंचता है। लोध्रजल नेत्ररोगों में काम आता है, तथा नेत्र पर लोध्र का लेप किया जाता है। स्त्रीभग में लोध्रलेप करने से वा उस के क्वाथ से उत्तरवस्ति (Douche) करने से योनि संकुचित हो जाती है। प्रसव के पश्चात् यह बहुत लाभकारी है। मालवान्तर्गत शावर पर्वत से आने के कारण उसे **शावर लोध्र** और चपटी होने से **पट्टिकालोध्र** कहा जाता है। कई टीकाकारों ने तिल्वक और पट्टिका लोध्र को एक माना है। 'पठानी' पट्टिका का अपभ्रंश है वा पठानों के देश से आने के कारण, क्योंकि यह लोध्र काश्मीर की ओर भी होती है और पठान लोग उसे लाते हैं। 'शावर' शब्द पहाड़ी लोगों के लिए भी आता है और पठान एक पहाड़ी जाती है।

रोध्रः कषायश्चक्षुष्यः कफपित्तहरः सरः ।
हिमः शोफातिसारासृग्दरास्रारुचितृड्विषम् ॥१२७५॥
निहन्यात्तस्य कुसुमं तुवरं मधुरं हिमम् ।
सतिक्तं मधुरं पाके संग्राहि कफपित्तनुत् ॥१२७६॥

४२०. कर्कटशृङ्गी[1] (कुलीरशृंगी) ।

Galls of Pistacia integerrima. A deciduous tree. Astringent and expectorant, used in asthma, phthisis, etc.

(हिं०) काकड़ा सिंगी, ककड़ाशिंगी, (बं०) कांकड़ाशृंगी, (म०, गु०) काकड़ाशिंगी । 'कक्कर' नामक वृक्ष पर कृमिज कोषविशेष । ग्राही, कफहर, श्वासक्षयघ्न ।

महाघोषा कर्कटी कर्कटाख्या विषाणिका ।
कुलीरशृंगी कुलीरा शृंगी कर्कटशृंगिका ।
चन्द्रास्पदा नतांगी स्याद्वक्रा वनजा मूर्द्धजा ॥१२७७॥

पर्याय—महाघोषा (बहुत शब्द करने वाली), कर्कटी (कुलीरकाकार), विषाणिका (सींग के सदृश), शृंगी (शृंगतुल्य), नतांगी (वक्रांगी), वक्रा (टेढ़ा) ॥ १२७७ ॥

शृंगी तिक्ता कषायोष्णा कफवातक्षतक्षयान् ।
श्वासोर्द्धवाततृट्कासहिध्मारुचिवमीर्जयेत् ॥१२७८॥

---

१. **कर्कटशृंगी** एक शृंगाकार (Horn-like) कोष है, जो एक कीट-विशेष द्वारा 'कर्कट' वृक्ष की शाखाओं पर बनता है । यह वृक्ष पंजाब में तथा सुलेमान, शिमला, कुमाओं, गढ़वालादि पर्वतों पर मिलता है । उसका प्रसिद्ध पंजाबी नाम कक्कर है, जो बहुत कुछ तूणी (अ० २४८) से मिलता है । कर्कट शृंगी एक अन्य वृक्ष Rhus succedanea पर भी होती है, परन्तु यह गुणों में पूर्वोक्त शृंगी से हीन है । कर्कट वा कुलीरक (Crab or water-Crane) नामक समुद्रजन्तु के चोंच वा दंश के तुल्याकार वा शृंगाकार होने से इस कोष को कर्कटशृंगी वा कुलीरकशृंगी कहा गया है । बाह्य वर्ण रक्ताभ वा कृष्णाभ, और शीघ्रभंगुर । शृंगी में कभी २ मृत्तिका निकलती है । यह मृत्तिका नहीं, प्रत्युत अनुवीक्षण यन्त्र में देखने से तदुत्पादक कीट का मृतदेह प्रतीत होता है । **शृंगीचूर्ण** मधुमिश्रित वा अन्य द्रव्यों से संयुक्त करके कफ, कास, श्वास, वमन, क्षयादि में दिया जाता है । फुप्फुसों से कफ निकाल देता है । मात्रा १-२ माषे । शृंगीचूर्ण छोटे बच्चों को भी कासादि में दे सकते हैं । यह ग्राही होने से अतिसार में भी दिया जाता है । 'कक्कर' वृक्ष का फल कहीं २ मन्दाग्नि में दिया जाता है । इस का अन्य कोई भाग काम नहीं आता ।

४२१. भार्गी[1] (ब्राह्मणयष्टिका)।

Clerodendron siphonanthus. A perennial glabrous shrub. Root used in Lung-diseases.	(हिं०) भारंगी, ब्रह्मनेटी, (बं०) बामनहटी, ब्रह्मयष्टि, (म०, गु०) भारंगी। बहुवार्षिक मृदुहरित क्षुप। मूल फुप्फुसरोगनाशक।

खरशाकं शुक्रमाता भार्गी ब्राह्मणयष्टिका।
फंजी पद्माऽङ्गारवल्ली महागर्द्दभगन्धिका।
भृगुजा भंगुरा हंसी पालिन्दी मार्गपर्विणी ॥१२७६॥

पर्याय—खरशाक (खरमूत्रगन्धयुक्त पत्रों वाली वा कठोर पत्रों वाली), शुक्रमाता (शुक्रकर), ब्राह्मणयष्टिका (दीर्घ काण्ड के कारण), पद्मा (पद्मवत् श्वेत और मधुगन्धि पुष्पों वाली) ॥१२७६॥

भार्गी तिक्ता कषायोष्णा दीपनी पाचनी लघुः।
कट्वी रूक्षा ज्वरश्वासकासशोफकफानिलान्।
पीनसारुचिगुल्मास्रयक्ष्माणं विनियच्छति ॥१२८०॥

४२२. कट्फलः[2] (उग्रगन्धः, महावल्कलः)।

Myrica sapida. A small evergreen tree. Bark stimulant, aromatic, diaphoretic, astringent and sternutatory.	(हिं०) कायफल, (बं०) कट्फल, कायछाल, (म०) कुंभ्याची साल, (गु०) कायफल। क्षुद्र सदाहरित वृक्ष। वल्कल उष्ण, सुरभि, स्वेदल, ग्राही तथा छिक्काजनक।

सोमवल्को महावल्कः कट्फलः सोमपादपः।

---

१. **भार्गी** का क्षुप ५-८ फुट ऊंचा और शाखारहित होता है, पत्र ७-८ इंच लम्बे और १, २ इंच चौड़े, खर, नोकदार। **पुष्प** शिखर पर गुच्छरूप, श्वेत वा पीत तथा सुगन्धित। यह प्रायः वंगदेश और दक्षिण में अधिक होता है। वहां से उसकी काष्ठिक मूल विक्रयार्थ आती है। यह शृंगीवत् कासश्वासादि में दी जाती है। भार्गीगुड़ और भार्ग्यादि क्वाथ प्रसिद्ध योग हैं। कहीं २ C. serratum को भार्गी कहा जाता है, यह क्षुप भी उसकी पूर्वोक्त जाती से सम्बन्ध रखता है, परन्तु उस से बड़ा होता है, पत्र कटे हुए। दक्षिण में Premna herbacea को भार्गी कहते हैं, यह अग्निमन्थ (०अ० ४) के तुल्य क्षुप है। इस की मूल पूर्वोक्त भार्गी से अधिक लाभकारी है, परन्तु आजकल प्रथमोक्त भार्गी ही सर्वमान्य है।

२. **कट्फल** क्या है, **फल** वा **छाल** ? वणिग्द्रव्य, जो बाज़ार में कायफल के नाम से मिलता है, छाल वा वल्कल है, न कि फल। यह स्थूल रक्ताभ छाल कट्फल वृक्ष से प्राप्त की जाती है, जो शिमला, सोलन, नेपाल, आसाम, चीन और

श्रीपर्णी कुमुदा कुम्भा भद्रा भद्रवती त्रुटी ।
महाकायो महाकुम्भा कुम्भिका रोहिणी तथा ॥१२८१॥

पर्याय—सोमवल्का (शीत त्वचा वाली), महावल्कल (स्थूल त्वचा वाला), श्रीपर्णा (सुन्दर पत्रों वाला), कुम्भा (कुम्भाकार फलों वाला), रोहिणी (रक्तवर्णयुक्त) ॥१२८१॥

कट्फलं कटुकं तिक्तं कषायं कफवातजित् ।
निहन्ति मेहगुल्मार्शःश्वासकासारुचिज्वरान् ॥१२८२॥

४२३. कतकम्[1] (अम्बुप्रसादनम्, चक्षुष्यम्) ।

Strychnos potatorum. Clearing Nut. A deciduous tree. Demulcent, diuretic, used in eye-diseases and to clear water.	(हिं०) निर्मली बीज, पत्यपसारी, (बं०) निर्मली फल, (म०) निवली च्या बिया, (गु०) निर्मली । वृक्ष, पत्र पतनशील । पिच्छिल, मूत्रल, नेत्ररोगघ्न, जल-प्रसादक ।

जापान में मिल जाता है । वृक्ष अनुच्च, छायावान् सदाहरित और सुरभि । पर्णसमूह शाखाओं के अन्त पर । पत्र ४–५ इंच लम्बे, चौड़े और सुरभि । नर और नारी पुष्प भिन्न २ वृक्षों पर लगते हैं । फल जायफलाकार वा सेब के तुल्य, ग्रीष्म ऋतु में पक कर मधुराम्ल - हो जाते हैं । पहाड़ी लोग इन्हें रुचि से खाते हैं । जापान में इन का अचार पड़ता है । यह फल कायफल है, और इस फल के कारण त्वक् का नाम भी कट्फल है । कट्फल (वल्कल) का चूर्ण इष्टिकावत् रक्ताभ होता है और प्रायः प्रतिश्याय, मूर्च्छादि में नस्यार्थ दिया जाता है । **"घ्रेयं कट्फलचूर्णं ।"** (सु० उ० २६ अ०) । यह दीपक पाचक और कफहर है, तथा श्वास, कास, मूत्रातिसार (Diuresis) आदि में दिया जाता है । मात्रा २–३ माषे । यह चूर्ण दांतों और मसूड़ों को दृढ़ करने के लिए मला जाता है । कट्वल्कल में एक रक्त रंग है, अतः यह त्वचा कहीं २ वस्त्ररञ्जनार्थ काम आती है । कट्फल और शुंठी का चूर्ण त्वचा पर जल से लिप्त किया जाय, तो पिड़काएं (छाले) निकल आती हैं ।

१. **कतक** का वृक्ष दक्षिण भारत में मिलता है, उत्तर भारत में दुर्लभ । इस की आकृति विषमुष्टि (Nux-vomica अंक ७६) से मिलती है, परन्तु यह उस से कुछ बड़ा होता है । फल में से **निर्मलीबीज** निकलते हैं । यह आकृति में कुचले की टिकड़ियों के सदृश होते हैं, परन्तु उस से आधे वा कम और तत्सम कठोर । यह बीज जल में रखने से भीग कर पिच्छल हो जाते हैं । इन का जल वा क्वाथ मूत्रकृच्छ्र में पिलाया जाता है । यह अतिसाररोधक भी हैं । इनमें कुचले का न ही तिक्त रस और न विष है, अतः इन का अन्तःप्रयोग भयरहित हैं । मात्रा १–२ माषे । यह बीज वामक (Emetic) हैं, मात्रा ६ माषे । नदी के अस्वच्छ जल से पूर्ण घट

कतं कतफलं कात्थं श्लक्ष्णं वारिप्रसादनम् ।
तोयप्रसादनफलं चक्षुष्यं लेखनात्मकम् ॥१२८३॥

पर्याय—श्लक्ष्ण (मसृण, खरतारहित), वारिप्रसादन (जल स्वच्छ करनेवाला), चक्षुष्य (नेत्रों को लाभकारी), लेखनात्मक (मलशोधक, खुरचने वाला) ॥१२८३॥

कतकं तुवरं तिक्तं विशदं शीतलं लघु ।
विकाशि मधुरं छेदि चक्षुष्यं कफवातनुत् ॥१२८४॥
तृष्णां दाहं विषं गुल्मं हन्ति तोयमलापहम् ।
शीतलं तत्फलं बालं रक्तपित्तहरं परम् ॥१२८५॥
तृण्मोहविषनुद्वातकरं चक्षुष्यमुत्तमम् ।
मध्यमं श्लेष्मपित्तघ्नं रुचिकृद्दुर्जरं परम् ॥१२८६॥
तस्यैव च फलं पक्वं वातकृत्मेहनाशनम् ।
सुपिच्छलं छर्दिकरं श्लेष्मपित्तप्रसेककृत् ॥१२८७॥
शोफपाण्डुप्रतिश्यायकामलागरनाशनम् ।
कतकस्य च मूलं तु सर्वकुष्ठप्रणाशनम् ॥१२८८॥

कतकं—कतकबीज (निर्मली बीज) । बालं फलं—कचा फल । चक्षुष्यमुत्तमम्—नेत्रों के लिए उत्तम औषध । मध्यमं—अर्द्धपक्कफल ॥१२८४–८॥

४२४. कार्पासी[1] (पटदा) ।

Gossypium herbaceum. The cotton plant. Root-bark abortive and emmenagogue. Seeds galactogogue. Leaves and flowers demulcent.	(हिं०) कपास, रुई, (बं०) तूल, कार्वास, (म०) कापसी, कापूस, (गु०) कपास । मूलत्वक् गर्भपातक तथा रजःप्रसादक । पत्र तथा पुष्प पिच्छिल ।

के गल पर बीज घिसने और कुछ काल उपेक्षा करने से जल स्वच्छ हो जाता है। यह विधि फटकड़ी (Alum) के प्रयोग की अपेक्षा उत्तम है । इसी कारण से कतक को **निर्मली** वा **अम्बुप्रसादक** (Clearing nut) कहा गया है। कतकबीज को स्वच्छ जल में घिस कर और मधु से मिला कर नेत्र में लगाने से शुक्ररोग, नेत्रमलादि दूर होकर नयन स्वच्छ हो जाते हैं, "कतकस्य फलं घृष्ट्वा मधुना नेत्रमञ्जयेत् । ईषत् कर्पूरसहितं तत् स्यान्नेत्रप्रसादनम् ।" (भावप्रकाश) । "कतकः सैन्धवेन वा······अञ्जनमर्जुने ।" (चक्र० नेत्र०) ।

1. **कार्पासी** सर्वजगत्प्रसिद्ध क्षुप है । कार्पासीमूलत्वक् का क्वाथ (१०–१४ तो०) वा चूर्ण (६ माषे) रजःकृच्छ्र (Dysmennorrhea) में देने से मासिक धर्म खुलकर आ जाता है। इसके साथ मिश्रेया (सोए) उपकुंचिका (कलौंजी) पुराने गुड़ादि द्रव्य भी मिला सकते हैं । यह क्वाथ गर्भपातक भी है। मूलत्वक् का

कार्पास्याच्छादनफला पद्मा नग्नावपन्यपि[1] ।
पटदाऽन्या बन्ध्यफला भद्रकार्पासिकापि च ।
कर्पासः पटदस्तूलं पिचव्यो वादरः पिचुः ॥ १२८९ ॥
कर्पासिका किंचिदुष्णा कषाया मधुरा लघुः ।
तत्पलाशं समीरघ्नं रक्तहृन्मूत्रवर्द्धनम् ॥ १२९० ॥
तत्कर्णपिडिकानादपूयास्रावविनाशनम् ।
तद्बीजं श्लेष्मलं वृष्यं स्निग्धं स्तन्यविवर्द्धनम् ॥ १२९१ ॥

४२५. वटपत्री[2] ?

कटम्लनालिका गोधाव्रती श्यामा तु मोहनी ।
वटपत्री रैवतिका दीनकः शान्तको मतः ॥ १२९२ ॥
वटपत्री कषायोष्णा योनिमूत्रगदापहा ।
तत्फलं मधुरं रूक्षं कषायं स्तम्भनं हिमम् ।
लेखनं कफपित्तघ्नं विबन्धाध्मानवातकृत् ॥ १२९३ ॥

४२६. देवगन्धा[3] (आरामशीतला) ।

आरामशीतला देवगन्धा कुकुटमर्दकः ।

कार्य अर्गट (Ergot) के तुल्य जानना चाहिए, परन्तु क्रिया में कुछ मन्द । **कार्पासीपुष्प** का पानक (Syrup) यकृद्रोग, कामलादि में दिया जाता है । पुष्पों का उपनाह (Poultice) दग्धव्रणों पर किया जाता है । **पत्रस्वरस** पिच्छिल है और प्रवाहिका में दिया जाता है । **कार्पासीबीज** (बिनोले–Cotten seeds) स्निग्ध, मधुर, मृदुरेचक, पिच्छिल और स्तन्यवर्धक हैं । स्तन्यवृद्ध्यर्थ पशुओं को दिए जाते हैं । उनका क्वाथ (दुग्धमिश्रित) वा इनसे निकाला हुआ शुद्ध **तैल** (Cotten oil) दुग्ध में मिलाकर स्त्रियों को स्तन्य बढ़ाने के लिए दे सकते हैं । बीजों से एक विशेष योग **लैकटोगल** (Lactagol) डाक्टरों ने बनाया है । यह श्वेत चूर्ण सा है । इसके खाने के ३–४ दिन के बाद स्तन स्थूल हो जाते हैं और दुग्ध बढ़ जाता है । कार्पास का व्यवहार व्रणबन्धनार्थ, वा आमवात, शूल, उरःक्षत (Pneumonia) आदि में स्वेद करने तथा स्थानविशेष को शैत्य से बचाने के लिए किया जाता है । वस्त्रनिर्माण के योग्य होने से सर्वसृष्टि कार्पास की ऋणी है । कार्पास का एक स्वज भेद **अरण्य कार्पासी** (Hibiscus lampos) है । १. ब–पाठ्या नग्नावपन्यपि ।

२. "**वटपत्री** पाषाणभेद ही का रूपान्तर है । इसके पत्ते बड़ के समान होते हैं । इसी से इसका नाम वटपत्री है–(शालिग्राम निघण्टु) । किसी ने वटपत्री को Zizyphus trinervia नाम दिया है । यह बदरीजाति का वृक्ष है । वटपत्री न ही कोई प्रसिद्ध क्षुप है और न ही उसका प्रयोग शास्त्रों में देखा जाता है ।

३. "**आरामशीतला** रामशालीति महाराष्ट्रख्यातसुगन्धपत्रशाकविशेषे ।

चिटिका भक्षिका भूरिनवनीता प्रकीर्त्तिता।
देवगन्धा कटुस्तिक्ता हिमा पित्तकफास्रजित ॥ १२८४ ॥

४२७. अश्मभेदः (पाषाणभेदः)?

अश्मभेदो वृषच्छेदः प्रस्तरो नगभेदकः।
पाषाणभेदो नगभिदश्महाऽश्मरिभेदनः॥ १२८५ ॥

पर्याय—अश्मभेद (पत्थर को तोड़ने वाला), नगभेदक (अश्मभेद), अश्मरीभेदन (पत्थरी को तोड़ने वाला) ॥ १२८५ ॥

अश्मभेदो हिमस्तिक्तः कषायो वस्तिशोधनः।
भेदनो हन्ति दोषार्शोगुल्मकृच्छ्राश्महृद्रुजः।

आरामशीतलापि पश्चिमदेशे कथ्यते।" (वै० श० सिं०)। श्री कैयदेव ने भी इस का भाषा नाम **रामशालि** लिखा है, परन्तु यह कोई प्रसिद्ध क्षुप नहीं।

१. **पाषाणभेद** अभी तक सन्देहग्रस्त है। प्रायः उस क्षुप को पाषाणभेद कहा जाता है, जो उद्यानों में सौन्दर्यार्थ लगाया जाता है। **क्षुप** २–३ फुट ऊंचा; **पत्र** स्थूल, मांसल, २–३ इंच चौड़े, प्रायः गोल, किनारा कुछ कटा हुआ, सुगन्धित और तनिक अम्ल। बहुसम्मति यही है, कि यह क्षुप अश्मभेद है, परन्तु यह सम्मति सन्देह से निवृत्त भी नहीं। **पत्रस्वरस** दीपक, पाचक और बच्चों को उदरशूल में दिया जाता है। कहीं २ यह पत्र (स्वरस वा क्वाथ) श्वास, कासादि में देते हैं। यदि यह पत्र अधिक मात्रा में खा लिए जावें, तो कुछ मद सा चढ़ जाता है। इन पत्रों की चटनी भी बनती है। कहां तक यह क्षुप मूत्रल और अश्मरीघ्न है, निश्चय रूप से कहना कठिन है। यह क्षुप शीतवीर्य है और बंगाली वैद्य इसी कारण से इसे **हिमसागर** कहते हैं और उस से एक प्रसिद्ध तैल **हिमसागर तैल** नामक बनाते हैं, जो पैत्तिक शिरोऽर्त्ति में शिर पर मला जाता है। पंजाब में एक रक्ताभ मूल वा ग्रन्थि **'पठान गंढी'** (वस्तुतः पाषाणग्रन्थि) नाम से मिलती है, यह उत्तम मूत्रल है और वृक्कशूलादि में लाभकारी है। मलयदेश में भी इसी प्रकार की ग्रन्थि मिलती है। सम्भव है, यही पाषाणभेद हो। यह Saxifraga Ligulata की मूल है। यह क्षुप पर्वतों पर मिलता है। अश्मभेद वस्तुतः वह द्रव्य है, जो पत्थरी (Calcus or Stone in Bladder) और शर्करा (Gravel) को दूर कर दे। शल्यकर्म की आवश्यकता न पड़े। पात्थरचूर (पत्थर को दूर कर देने वाली) आदि शब्द तदर्थवाचक हैं। कुछ लोग यह कहते हैं कि अश्मभेद ऐसा क्षुप है, जो पर्वतों पर पत्थर को फोड़ कर निकल आवे, अतः पात्थर फोड़ नाम। प्रथमोक्त पाषाणभेद (हिमसागर) शिलाओं पर लगा हुआ देखा जाता है। इस के पत्र को सीधा व्रणशोथ पर बांधने से व्रण पक जाता है और उल्टा बांधने से व्रण फट जाता है। कुछ वैद्य Coleus aromaticus नामक क्षुप को पाषाणभेद मानते हैं। यह क्षुप पर्वतों पर मिलता है।

योनिरोगप्रमेहांश्च प्लीहशूलव्रणानपि ॥ १२९६ ॥

४२८. विडङ्गम्[1] (कृमिघ्नम्) ।

Embelia Ribes.

A large, scandent shrub.

Anthelmintic, alterative, stomachic and carminative.

(हिं०) वायविडंग, (पं०) बाबरंग, (बं०) विडंग, (म०) वावडिंग, (गु०) वावढींग । लतारूप महान् क्षुप । कृमिघ्न, रसायन, पाचक, वातानुलोमक ।

विडङ्गं कृमिजिद्वेल्लजं जन्तुघ्नं मृगगामिनी ।
कृमिहन्तृ कृमिहरं केरालं चित्रतण्डुलम् ।
अमोघा तण्डुला घोषा भूतघ्नं कृमिरिप्वपि ॥१२९७॥

पर्याय—कृमिजित् (पेट के कीड़ों को मारने वाला—Vermifuge), वेल्लज (वल्लीज, लताज), जन्तुघ्न (कृमिघ्न), चित्रतण्डुल (चित्रित बीजों वाला), अमोघा (कृमिहनन में निश्चित), तण्डुला (कणरूप वा बीजमय), कृमिरिपु (कृमिशत्रु) ॥ १२९७ ॥

विडंगं कटुकं पाके रूक्षं तिक्तोष्णं लघु ।
वीर्योष्णं दीपनं रुच्यं कृमिवातकफापहम् ।
विष्टम्भाध्मानशूलाममेदोमेहोदराणि च ॥१२९८॥

---

१. **विडङ्ग** को काम्पिल्लकबीज समझना भूल है (देखो अंक २४७)। विडंग एक लतारूप क्षुप है, जो बम्बे प्रान्त, दक्षिण एवं हिमालय के अधस्तट पर मिलता है। लता का काण्ड मनुष्य की ऊरु के तुल्य स्थूल हो जाता है। यह लता अपनी मृदु शाखाओं द्वारा अन्य वृक्षों पर चढ़ी रहती है। **पत्र** लम्बे और नोकदार। **पुष्प** सूक्ष्म और गुच्छेदार। **फल** कृष्ण मरिचतुल्य गोलाकार और श्वेत श्याम वा चित्रित। यह फल बाजार में मिलते हैं। **विडंगचूर्ण** १ तो० रात्रि दुग्ध के साथ खाने से और प्रातः एरण्डतैल (२½ तो०) पीने से मृत उदरकृमि बाहर निकल आते हैं। वा ६ माषे की मात्रा दिन में दो वार (प्रातः और रात्रि) लेने से और अगले दिन विरेचन से कृमि निकल जाते हैं। एवं कई दिन तक ऐसा कर सकते हैं। बच्चों के लिए मात्रा २–३ माषे है। अल्प मात्रा से गुण नहीं होता। वैसे तो विडंग उदर के सब कृमियोंको नाश करता है, 'विडंगं कृमिघ्नानम्' (चरक); तथापि पृथुव्रध्न कृमि (Tape-worm) जो फीते के सदृश होता है, के लिए विशेष हितकर है। बच्चों को ५–६ दाने प्रति दिन दुग्ध में उबाल कर पिलाने से आनाहादि का भय नहीं रहता। सुश्रुत (चि० अ० २७) में विडंग को रसायनरूप माना गया है। रजःशोधक पोटलियों तथा अन्य कृमिघ्न लेपों, चूर्णों वा तैलों में विडंग पड़ता है। अर्धावभेदक में विडंगनस्य का विधान है (वंगसेन)। विडंग में एक अम्ल सत्त्व Embelic acid मिला है।

४२९. शुण्ठी[1] (नागरं, विश्वौषधम्)।

Zingiber officinale.
Dry ginger.
A bi-ennial tuberous plant.
Aromatic, stimulant, carminative, stomachic, anticatarrhal, antirheumatic, and rubefacient.

(हिं०) सोंठ, (बं०) शुंठ, (पं०) सुंढ, (म०) सुंठ, (गु०) शुण्ठ्य।
द्विवार्षिक कन्दमय क्षुप।
सुरभि, उत्तेजक, वातानुलोमक, पाचक, प्रतिश्यायघ्न, आमवातघ्न, दाहस्फोटकारक।

शुण्ठी महौषधं विश्वमौषधं विश्वभेषजम।
नागरं कटुकं भद्रं राहुच्छत्रं कटूत्कटम ॥१२६६॥

पर्याय—महौषध (महोपयोगी औषध), विश्वभेषज (सारे संसार का औषध), नागर (नगरों में होने वाला क्षुप), कटुक (रस में कटु—Pungent in taste), भद्र (श्रेष्ठ औषध), कटूत्कट (उत्कट अति कटु) ॥१२६६॥

नागरं मधुरं पाके स्निग्धोष्णं कटुकं लघु।

---

१. शुण्ठी सर्वजगत्प्रसिद्ध श्वेत, शुष्क, कटु, तीक्ष्ण कन्द है, जो परिपुष्ट आर्द्रककन्द को अच्छी तरह धोकर और श्लक्ष्ण त्वचा उतार कर धूप में शुष्क करने से प्रस्तुत होता है। शुंठी प्रायः मद्रास प्रान्त से आती है, जहां श्वेत आर्द्रक बाहुल्य से उत्पन्न होता है। पंजाबी आर्द्रक शुष्क होकर उतना श्वेत नहीं रहता। शुंठी दीपन पाचन होने से अनेक वातकफात्मक रोगों, यथा अर्श, आमातिसार, गलरोग, आमवात, विबन्ध, ऊरुस्तम्भ, शूल, श्लीपद, शोथ, शीतज्वर, मेदोरोग, हिक्का, कास, श्वासादि में नानारूप व्यवहार होती है। मात्रा—चूर्ण १–२ माषे उष्ण जल वा तक्रादि से, क्वाथ ४–५ तो० शर्करा वा मधु से मिला कर। शुण्ठीचूर्ण तक्र, दधि, शाकादि में छोड़ा जाता है, शोथयुक्त सन्धि, जंघादि अंगों पर मला जाता है, जल में मिला कर ..तक, शंख, उदरादि अंगों पर शूलनिवृत्त्यर्थ लेप किया जाता है। यदि लेप अधिक काल तक लगा रहे, तो त्वचा रक्त होकर पिड़काएं उत्पन्न हो जाती हैं, अतः राजिका (अ० १४६) की तरह शुंठी काम दे सकती है। शुंठीचूर्ण लवणमिश्रित क्षुधावर्धक, लालाजनक, कण्ठशोधक और आमपाचक है। सौभाग्यशुंठी सुप्रसिद्ध पाचक और पुष्टिकर योग है। शुण्ठी को विरेचक द्रव्यों से उत्क्लेश, शूलादि दोष दूर करने के लिए मिलाया जाता है। शुण्ठी में एक सुरभि उड्डनशील तैल और दूसरा Gingerin नामक सत्त्व है। [illegible]र लोग शुंठी का पानक (S[illegible] Zingiberis) और [illegible]क्चर (T[illegible] Zingiberis) [illegible] हैं। शुण्ठी आमाशय और [illegible] और उन से वायु (Flat[illegible] उसे **वातानुलोमक** (C[illegible]

रुच्यं मलानां संग्राहि हृद्यं वायोर्विबन्धनुत् ॥१३००॥
दीपनं पाचनं वृष्यं स्वर्यं वातकफापहम् ।
निहन्ति शूलहृद्रोगशोफार्शःश्लीपदोदरम् ।
आनाहं श्वासकासामवमीहिध्मामपित्तलम् ॥१३०१॥

४३०. आर्द्रनागरम्[1] ।

कटूष्णं दीपनं वृष्यं रुच्यमार्द्रकनागरम् ।
श्वासकासवमिहिक्कावातश्लेष्मविबन्धनुत् ॥१३०२॥

४३१. आर्द्रकम्[2] (शृंगवेरं, कटुकन्दम्) ।

Zingiber officinale.
Fresh ginger.

(हिं०) अदरक, (बं०) आदा, (म०) आलें, (गु०) आदु ।

कटुकन्दं शृंगवेरमार्द्रकं कटुकन्दकम् ॥१३०३॥
पर्याय—कटुकन्द (तीक्ष्ण कन्द), आर्द्रक (गीला, ताज़ा, Fresh) ॥१३०३॥
तत्तुल्यमार्द्रकं विद्यात् सतीक्ष्णं भेदनं गुरु ।
पाचनं रोचनं वृष्यं कटूष्णं वह्निदीपनम् ॥१३०४॥
कफानिलहरं स्वर्यं विबन्धानाहशूलजित् ।
अंकुरं शृंगवेरस्य रक्तजित् श्लेष्मवातलम् ।
अव्यक्तरसवीर्यत्वात्तत्परं तु कफापहम् ॥१३०५॥

---

१. **आर्द्रनागर** और आर्द्रक में भेद है । आर्द्रनागर मद्रास प्रान्त में मिलता है और श्वेत होता है । इस से ही शुष्क नागर (शुंठी) बनती है । आर्द्रक श्वेत नहीं होता । यही भेद दिखाने के लिए श्री कैयदेव ने **आर्द्रनागर** का पाठ दिया है । अन्य निघंटुकारों ने ऐसा कोई पाठ वा विचार अपनी पुस्तकों में नहीं दिया ।

२. **आर्द्रक** का क्षुप सर्वत्र मिलता है । व्यवहार में कन्द ही आता है । उस के पुष्प वा बीज दुर्लभ हैं । क्षुप कन्द से ही लग जाता है । आर्द्रक के गुण सर्वशः शुण्ठी के तुल्य जानें, परन्तु शुण्ठी अधिक शुष्कोष्ण है और आर्द्रक जलसंपर्क के कारण कम उष्ण है । आर्द्रक प्रायः शाकादि में पड़ता है, उस का अचार (काञ्जिकार्द्रक) भी बनता है । घृतभृष्ट आर्द्रक मन्दाग्नि, आमवातादि रोगों में लाभकारी है । लवणार्द्रक का प्रयोग भोजन से पूर्व रुचिकर, क्षुधावर्धक और हितकर है । भावमिश्र की भी यही सम्मति है, "**भोजनाग्रे सदा पथ्यं लवणार्द्रकभक्षणं । अग्निसंदीपनं रुच्यं जिह्वाकण्ठविशोधनम्**" । शुण्ठी वा आर्द्रक ग्राही है, न कि शोधक पोटा द्रव्य प्रायः ग्राहयि कृमिघ्न लेपों, विबन्ध को पाचन शक्ति से दूर करते अर्थात्भेदक में ... का विधान है (वंगसेन ... किया है, "**आग्नेयगुणभूयिष्ठं**
Embelic acid मिला है । **... ग्राहि शुण्ठ्यादयो यथा ।**
... शक्तिर्विबन्धभेदेऽस्या